लेखक का निवेदन

पाठकों के सामने बुंदेलखंड के इतिहास पर एक छोटी सी पुस्तक उपस्थित करने का प्रयत्न करके त्रुटियों की क्षमा माँगता हूँ। इस विषय पर कोई क्रमबद्ध पुस्तक न होने से ही यह प्रयत्न किया गया है। सामाजिक स्थिति पर, यथासंभव सामग्र उपलब्ध होने के अनुसार, विचार किया गया है। इतिहास के लिये सरकारी आर्कियालॉजिकल सर्वे की रिपोर्टों, सामयिक पत्रों में प्रकाशित ऐतिहासिक लेखों, प्राचीन प्रचलित कथाओं, तत्कालीन कवियों की पुस्तकों और आधुनिक ऐतिहासिक ग्रंथों का अधिकतर सहारा लिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे नीचे लिखे महानुभावों से विशेष सहायता मिली है अतएव मैं आप लोगों का विशेष आभारी हूँ—

श्रीयुत वृंदावनलाल वर्म्मा—झाँसी, श्रीयुत दीवान प्रतिपालसिंहजी—पहरा, श्रीमान् कुँवर प्रतिपालसिंहजी—खनियाधाना, स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी—बनारस, श्रीमान् महाराजा साहब—चरखारी, पं० वासुदेवराव सूबेदार—सागर, श्री कुँअर कन्हैयाजू—मऊ—सहनिया, प्रोफेसर यदुनाथ सरकार—कलकत्ता।

उपर्युक्त महानुभावों के अतिरिक्त और भी कई महाशयों ने मुझे इस पुस्तक के लिखने में यथाशक्ति सहायता दी है किंतु उन सब लोगों का नामोल्लेख न कर हृदय से मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ।

ज्येष्ठ कृष्ण ३,
संवत् १९९०

गोरेलाल तिवारी

परिचय

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर-पशु निरा है और मृतक समान है॥"

प्रत्येक जाति का गौरव उसके इतिहास में सन्निहित रहता है और इस गौरव की रक्षा करना उस जाति के प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्त्तव्य है। हमारा अतीत यदि गौरवपूर्ण है तो नीचे गिरते हुए भी हम यह आशा कर सकते हैं कि जिस दिन हमें अपने इस भूले हुए अतीत की याद आ जावेगी उसी दिन हमारा सोया हुआ स्वाभिमान जाग उठेगा और हम सँभल खड़े होंगे। जिस जाति के पास अपना इतिहास है उसे निराश होने का कोई कारण नहीं दीखता। इसके विपरीत जिन जातियों के पास यह संपत्ति नहीं है उन्हें पग पग पर प्रलोभन का भय बना रहता है। उन्हें भुलाने के लिये, भ्रष्ट करने के लिये, मिट्टी का एक साधारण खिलौना ही यथेष्ट है। आज पश्चिम में अनंग का जो नग्न नृत्य दिखाई दे रहा है उसका क्या कारण है? क्यों वहाँ के नवयुवक एक के बाद दूसरे प्रलोभनों में फँसते चले जा रहे हैं? इसी लिये कि उनकी रक्षा के लिये—उनके पथ-प्रदर्शन के लिये—सीता, सावित्री अथवा पद्मिनी नहीं हैं।

यही कारण है कि जब किसी देश पर विजातीय जाति का अधिकार होता है तो वह उस विजित जाति के अतीत गौरव को—इतिहास को—कलुषित रूप में दिखाकर उस जाति के स्वाभिमान तथा आत्म-विश्वास को नष्ट करने का प्रयत्न करती है। यही कारण है जिससे कुछ दिन पूर्व हम अपने कृष्ण को काल्पनिक पुरुष, शिवाजी को फरेबी डाकू तथा पहाड़ी चूहा, प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप

को एक तुच्छ राजपूत सैनिक और देश-भक्त महारानी लक्ष्मीबाई को विद्रोही समझने लगे थे। किंतु हर्ष का विषय है कि अब हमारे दृष्टि-कोण में परिवर्तन हो रहा है और हम अपने इतिहास को विदेशी नहीं, भारतीय दृष्टि से देखने और समझने की चेष्टा करने लगे हैं।

जहाँ तक हमें विदित है, बुंदेलखंड के इतिहास पर आज तक कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखा गया है। इस संबंध में कदाचित् यह पहला ही प्रयत्न है और—जैसा कि प्रथम प्रयत्न में अवश्यंभावी था—इस पुस्तक के लिखने में लेखक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इस पुस्तक के लिखने में ५ वर्ष लग गए। इतिहास के लिखने में बड़ी सामग्री जुटाने की आवश्यकता होती है और धैर्य से काम करना पड़ता है। यह सब करने पर भी सफलता मिलना या न मिलना केवल लेखक की प्रतिभा पर ही निर्भर नहीं रहता, वरन् वह अधिकांश में प्राप्त सामग्री तथा बाह्य साधनों पर निर्भर रहता है।

प्रस्तुत पुस्तक में रामायण-काल से लेकर आज तक का विवरण दिया गया है। इसमें पुराण, काव्य, कविता, इतिहास, गाथा, दंत-कथा, शिलालेख आदि इतिहास के लिये सहायक प्रायः सभी साधनों से सहायता लेकर लेखक ने उचित निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया है। हमारी सम्मति में वे अपने इस प्रयत्न में किसी सीमा तक सफल भी हुए हैं।

जैसा कि होना चाहिए, प्रस्तुत पुस्तक में महाराज छत्रसाल के लिये बहुत अधिक पृष्ठ व्यय किए गए हैं। किंतु इस अवसर पर भी हमें अपनी वही जातीय कमजोरी दिखाई देती है, जो हमारे इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ में भरी पड़ी है। बुंदेलखंड को स्वाधीन करने के प्रयत्न में महाराजा का विरोध कुछ देशद्रोही स्वार्थी बुंदेलों

ने ही किया। विभीषण के समय से लेकर आज तक हमारे इतिहास में इस प्रकार के प्राणी बराबर मिलते जा रहे हैं। इनका अस्तित्व आज भी मिटते दिखाई नहीं देता। एक ओर यदि महाराणा प्रताप हैं तो दूसरी ओर उसी समय, उसी कुल में, सगरसिंह भी मिलते हैं। हमारे पतन का बहुत अधिक श्रेय हमारे इसी जातीय दुर्गुण को है। यदि अपने इतिहास के अवलोकन से हम अपनी इस कमजोरी को दूर कर सकें तो हमारा बड़ा कल्याण हो।

अंत में मुझे एक निवेदन और कर देना है। किसी पुस्तक के परिचय देने का काम प्राय: कोई ख्याति-प्राप्त विद्वान् ही करता है; किंतु मुझे न तो किसी प्रकार की ख्याति ही प्राप्त है और न मैं इतिहास का विद्वान् ही हूँ। मुझे अपनी योग्यता से बाहर का यह काम अपने ऊपर लेना उचित नहीं था; किंतु लेखक महोदय के निरंतर अनुरोध को अस्वीकार करना भी तो मेरे लिये असंभव था। आशा है, विज्ञ पाठक मेरी अल्पज्ञता पर दृष्टि न देकर पुस्तक के गुण-दोष के अनुसार ही उसका आदर करेंगे।

जूनी लाइन, विलासपुर (सी० पी०)
९ मई, सन् १९३३ ई०

यदुनंदनप्रसाद श्रीवास्तव

विषय-सूची

विषय				पृष्ठ
१—प्रारंभिक इतिहास	...	...	...	१
२—मौर्य साम्राज्य	...	...	...	९
३—गुप्त और हूण साम्राज्य	...	...	...	१८
४—हर्षवर्धन का राज्य और कछवाहे	...		...	२४
५—चेदि राज्य	...	...	...	३१
६—चंदेलों का राज्य (परमाल के समय तक)			...	४१
७—चंदेलों का राज्य (परमाल के समय के पश्चात्)				५३
८—चंदेलों का राज्य	...	...	...	६२
९—अफगानों का राज्य	...	...	...	७२
१०—मुगलों का राज्य	...	...	...	८७
११—गोंड़ (राजगोंड़) लोगों का राज्य (रानी दुर्गावती तक)				९७
१२—गोंड़ों का राज्य (रानी दुर्गावती के पश्चात्)			...	१०६
१३—बुंदेलों की उत्पत्ति	...	...	...	११४
१४—वीरसिंहदेव और चंपतराय		...	...	१२९
१५—महाराज वीरसिंहदेव के पश्चात् का हाल			...	१४४
१६—औरंगजेब और चंपतराय ...		...	...	१५५
१७—महाराज छत्रसाल (बाल्यकाल)		...	...	१६२
१८—छत्रसाल और शिवाजी	...	...	...	१७२
१९—बुंदेलों का मेल	...	...	...	१७७
२०—मुसलमानों से युद्ध	...	...	...	१८१
२१—मुगलों की हार	...	...	...	१९१
२२—मराठों से सहायता	...	...	...	२०६

विषय | पृष्ठ

२३—छत्रसाल महाराज का राज्य २१८
२४—महाराज छत्रसाल के पश्चात् राज्य के विभाग २३१
२५—मराठों का राज्य २४०
२६—भारतवर्ष में झगड़े २४६
२७—गोसाईं लोगों के आक्रमण २५६
२८—अँगरेजों का आक्रमण २५९
२९—गोंड राज्य का पतन २६५
३०—अलीबहादुर की नवाबी २६९
३१—हिम्मतबहादुर की लड़ाइयाँ २७७
३२—अँगरेजों से संधियाँ २८३
३३—पेशवाई का अंत और अँगरेजों का राज्य ... ३३१
३४—राजविद्रोह के पहले बुंदेलखंड का हाल ... ३३६
३५—राज-विद्रोह का कारण ३४३
३६—विद्रोह का आरंभ ३४९
३७—दक्षिण बुंदेलखंड में विद्रोह ३५४
३८—झाँसी और काल्पी की लड़ाइयाँ ३६०
३९—बलवे की शांति ३६७
४०—आधुनिक दशा ३७२
परिशिष्ट १ ... ... ३७७
परिशिष्ट २ ... ... ३७९
परिशिष्ट ३ ... ... ३८१
परिशिष्ट ४ ... ... ३८३
अनुक्रमणिका ३८७

बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास

अध्याय १

प्रारंभिक इतिहास

१—भारतवर्ष के मध्य भाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विंध्याचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि-सौंदर्यालंकृत जो प्रदेश है उसे बुंदेलखंड कहते हैं। समय समय पर इसके नाम दशार्ण, वज्र, जेजाक-भुक्ति, जुझौती, जुझारखंड तथा विंध्येलखंड भी रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विंध्याटवी में स्थित होने के कारण इस प्रदेश का नाम विंध्येलखंड पड़ा, बाद में अपभ्रष्ट हो यह बुंदेलखंड कहलाया। इस भूभाग के उत्तर में यमुना का प्रचंड प्रवाह, पश्चिम में मंद मंद बहनेवाली चंबल और सिंध नदियाँ, दक्षिण में नर्मदा नदी और पूर्व में बघेलखंड है। इस प्रदेश का उत्तरीय भाग—जिसमें आज-कल झाँसी, जालौन, ललितपुर, बाँदा और हमीरपुर के जिले हैं—अँगरेजी राज्य में है। मध्य भाग में ओड़छा, समथर और दतिया के राज्य तथा चरखारी, छत्रपुर, पन्ना, बिजावर, अजयगढ़ इत्यादि छोटे छोटे राज्य हैं। दक्षिणी भाग में सागर, दमोह और जबलपुर के जिले हैं। इस प्रांत में बहनेवाली मुख्य नदियाँ बेतवा, धसान, सुनार, केन और टोंस (तमसा) हैं, जिनके जल से यह भाग बहुत उपजाऊ हो गया है। यहाँ के पर्वतों में कई प्रकार के खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। उनमें हीरा, ताँबा, लोहा आदि मुख्य हैं।

२—वैदिक काल में आर्य लोगों की बस्तियाँ पंजाब और उत्तर भारतवर्ष में यमुना के उत्तर में ही थीं। पंजाब से आर्य लोग यमुना के उत्तरीय भाग में होते हुए बिहार की ओर बढ़े। उस समय भी बुंदेलखंड में आर्यों ने अपना आधिपत्य नहीं जमाया था। यमुना के नीचे सघन वन था और यहाँ उस समय उन लोगों के निवास-स्थान थे जिन्हें वेदों में दस्यु, यातुधान और राक्षस कहा है। ये लोग आर्यों के समान सभ्य नहीं थे और इनका वर्ण भी आर्यों के समान गोरा न था। आर्य लोगों को यमुना पार करके दक्षिण का देश अपने अधिकार में करना पूर्व की ओर बढ़ने की अपेक्षा अधिक कठिन जान पड़ा। इस प्रदेश में बसनेवाली आदिम जातियों के रहन-सहन के विषय में जानने के लिये कोई ऐतिहासिक साधन नहीं है। वेदों में भी इनकी भरपूर निंदा की गई है।

३—रामायण में नर्मदा नदी का नाम नहीं आया। इससे स्पष्ट है कि उस समय आर्य लोगों की बस्तियाँ नर्मदा तक नहीं पहुँची थीं। परंतु कई ऋषि यमुना के दक्षिण में आकर रहे थे। ये ऋषि केवल तप करनेवाले ब्राह्मण ही नहीं परंतु बड़े योधा थे जो अपने अनुयायियों को साथ लेकर राक्षसों से युद्ध करके, उनको भगाकर तथा उनके स्थान में अपने आश्रम बनाकर, रहने लगे थे। श्री रामचंद्रजी को ऐसे कई आश्रम मिले। अत्रि, सुतीक्ष्ण और शरभंग ऋषियों के आश्रम यमुना के दक्षिण में ही थे। इन आश्रमों का ठीक स्थान कौन था यह बताना बड़ा कठिन है, परंतु अत्रि का आश्रम अवश्य ही बुंदेलखंड में रहा होगा।

४—महाराज रामचंद्र शृंगवेरपुर के निकट गंगा को पार कर प्रयाग पहुँचे। फिर यमुना को पार करके चित्रकूट में आकर रहे। यह चित्रकूट गिरि प्रसिद्ध ही है और इसके विषय में कोई शंका नहीं हो सकती। कुछ लोग इसे भी दंडकारण्य का भाग मानते हैं।

बुंदेलखंड महाराज रामचंद्र के समय में दंडकारण्य का भाग था। महाराज रामचंद्र ने अगस्त्य मुनि का आश्रम भी देखा था। यह आश्रम कहाँ था इसका पता रामायण से ठीक नहीं चलता। परंतु महाभारत में अगस्त्य ऋषि का आश्रम कालिंजर कहा गया है। यह एक तीर्थस्थान था। यहाँ पांडव लोग अपनी तीर्थयात्रा करते हुए पहुँचे थे। विंध्य पर्वत-श्रेणी को पार करके दक्षिण में जाने का कठिन कार्य सबसे पहले अगस्त्य ऋषि ने ही किया था। इनका एक आश्रम संभवत: कालिंजर में रहा हो, पर दंडकारण्य में भी इनके आश्रम रहे होंगे जहाँ पर श्री रामचंद्र गए थे।

५—चित्रकूट से किष्किंधा जाते समय महाराज रामचंद्र बुंदेलखंड के कुछ भाग में से अवश्य ही निकले होंगे। रामचंद्र महाराज पंचवटी में रहे थे। अधिकतर विद्वानों की यही राय है कि यह पंचवटी गोदावरी नदी के उद्गम-स्थान के निकट और नासिक के समीप है। परंतु कई विद्वानों का यह भी मत है कि पंचवटी मद्रास प्रांत का भद्राचलम् नाम का स्थान है। हम पहला मत ही ग्राह्य समझते हैं। अत: महाराज रामचंद्र चित्रकूट से पंचवटी, दमोह और सागर जिलों में से होते हुए गए, यही अनुमान होता है। उन्हें मार्ग में कुछ थोड़े से ऋषियों के स्थानों के सिवा कोई उल्लेखनीय सभ्य जाति नहीं मिली। इसी से जान पड़ता है कि इस भाग में उस समय आदिम निवासी ही रहते थे जो कि आर्य नहीं थे। भवभूति के उत्तर-रामचरित में वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के निकट मुरला (नर्मदा) और तमसा (टोंस) नदियों का नाम आया है। ये नदियाँ जबलपुर जिले में है।

६—महाराज रामचंद्र के राज्यकाल के लगभग आठ सौ या एक हजार वर्ष बाद महाभारत का युद्ध हुआ। इस युद्ध के समय आर्य लोगों ने बहुत से प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। कहीं कहीं

अनार्यों के भी बड़े बड़े राज्य थे जो आर्यों के राज्यों के समान ही व्यवस्थित थे। पांचाल लोग आर्यों की ही शाखाओं में से थे। इनका राज्य बुंदेलखंड के उत्तर में यमुना के उस पार था। चेदि-राज्य भी आर्य लोगों ने ही बसाया था। इनका पहला राजा वसु नाम का था जिसके एक पुत्र बृहद्रथ ने मगध का राज्य जमाया था। वसु के दूसरे पुत्र मत्स्य ने विराट का मत्स्य राज्य स्थापित किया था। कुंतिभोज राज्य भी इसी तरह बसा था। यह राज्य चंबल नदी के उस पार था। दशार्ण राज्य भी आर्य्यों की एक शाखा ने स्थापित किया था।

७—चेदि राज्य बुंदेलखंड के पूर्वीय भाग में था। आज-कल का दमोह जिला और उसके उत्तर के रजवाड़ों का प्रांत (दशार्ण नदी के पश्चिम का भाग) महाभारत के समय में चेदि देश ही में था। इसका विस्तार पश्चिम में बेतवा और उत्तर में यमुना नदी तक था। दशार्ण देश में सागर जिला और बुंदेलखंड का कुछ भाग था, और इसकी राजधानी विदिशा (भिलसा) थी। इस देश का नाम "दशार्ण" (धसान) नदी पर से पड़ा था। यह नदी भोपाल रियासत से निकलकर सागर जिले में होती हुई झाँसी जिले में आई है, पश्चात् यहाँ से बेतवा में मिल गई है। महाभारत के समय बुंदेलखंड के पश्चिमी भाग में आभीर लोग रहते थे। ये आर्य्य न थे। ये अनार्य्य रहे होंगे, पर पीछे से आर्य्यों ने इन्हें अपने में मिला लिया होगा। बुंदेलखंड के दक्षिण में उस समय विदर्भ देश भी था। यह आर्य्यों का स्थापित किया हुआ था। ऐसे ही पूर्व में दक्षिण-कोशल राज्य था। यहाँ भी आर्य्यों का ही राज्य था। चेदि देश में महाभारत के समय शिशुपाल राजा था। इसकी राजधानी चँदेरी थी। यह स्थान आजकल भी प्रसिद्ध है। ऐसे ही दशार्ण देश में हिरण्यवर्म्मा राजा राज्य करता था। इसकी कन्या पांचाल-राज

द्रुपद के पुत्र शिखंडी को ब्याही थी। पर यह पुरुषत्वहीन था। इसी से हिरण्यवर्म्मा और राजा द्रुपद में युद्ध भी हुआ था, पर पीछे से सुलह हो गई थी। इसके पश्चात् इस दशार्ण देश में राजा सुधर्मा का नाम मिलता है। राजा सुधर्मा और पांडव-सेनापति भीमसेन से पूर्व-दिग्विजय के समय युद्ध हुआ था। इसमें भीमसेन की विजय हुई थी। इतिहासज्ञ विद्वानों ने महाभारत का समय वि० सं० से लगभग ३००० वर्ष पूर्व माना है। यही मत यहाँ पर विना विवाद किए मान लेना उचित है।

८—कर्मों के अनुसार जातिभेद आर्य्यों में पहले से ही रहा है। आर्य्यों की जो शाखा फारस देश में रहती थी और जिसे आर्य्य लोग असुर कहते थे उसमें भी जातिभेद पाया जाता है। वहाँ पर ब्राह्मणों का काम करनेवाले अथ्र्व, क्षत्रिय अर्थात् राजाओं का काम करनेवाले राथैस्थ, वैश्यों का कर्म करनेवाले वास्त्रिम और शूद्रों का काम अर्थात् सेवा करनेवाले हुइटी कहलाते थे। इससे जान पड़ता है कि कर्मों के अनुसार समाज के चार विभाग बहुत पुराने हैं। परंतु वैदिक काल में विवाह आदि संबंध के लिये कोई बंधन न थे। महाराज रामचंद्र के समय आर्य्य लोग अनार्य्यों से बहुत द्वेष रखते थे। परंतु महाभारत के समय में यह द्वेष बहुत कम हो गया था और आर्य्य लोग अनार्य्य जाति की कन्याओं से ब्याह करने में भी कोई आपत्ति न करते थे। इन विवाहों के उदाहरण बुंदेलखंड में तो कम परंतु बाहर बहुत पाए जाते हैं। शांतनु का विवाह एक मछली मारनेवाले धीमर की लड़की के साथ हुआ था। यह धीमर निषाद था। मत्स्य देश के राजा विराट की उत्पत्ति भी इसी प्रकार थी।

९—जाति-भेद पहले कर्मों के अनुसार ही था और बहुधा पिता का व्यवसाय पुत्र सीखा करता था। इससे जाति का कर्म भी परं-

परागत होने लगा। धीरे धीरे जातियों ने अपने समाज में विभिन्न जातियों के मनुष्यों को आने से रोकने के लिये भिन्न जातियों से विवाह-संबंध बंद कर दिए। बहुत समय के बाद विभिन्न जातियों के बीच खान-पान भी बंद हो गया। ये सब विचार महाभारत के बहुत दिनों बाद हुए। जाति-बंधन महाभारत के समय में बहुत कम था। यदि ब्राह्मण किसी क्षत्रिय या वैश्य कन्या से विवाह करके पुत्र उत्पन्न करता था तो वह पुत्र भी ब्राह्मण कहलाता था और उसे ब्राह्मण के अधिकार देने में अन्य ब्राह्मण कोई आपत्ति न करते थे[१]। इसी से जान पड़ता है कि जाति-बंधन महाभारत के समय में उतना दृढ़ नहीं था जितना कि बाद के समय से हो गया है।

१०—महाराज रामचंद्र के समय में एक-पत्नीव्रत अच्छा समझा जाता था परंतु एक से अधिक स्त्रियों से ब्याह करने में कोई हानि न समझी जाती थी। महाभारत के समय में, जान पड़ता है कि, नैतिक दृष्टि से समाज बहुत शिथिल हो गया था। संभव है कि इसका कारण अनार्यों का संसर्ग हो। विवाह के समय कन्या की उम्र लगभग १६ वर्ष की हो जाती थी। द्रौपदी, रुक्मिणी और दमयंती ब्याह के समय इसी उम्र की रही होंगी। इस समय बाल्य-विवाह की प्रथा नहीं थी। कन्या कहीं कहीं अपना वर स्वयं चुन सकती थी। स्वयंवर के कई उदाहरण महाभारत में मिलते हैं।

११—दशार्ण और चेदि देशों में हिरण्यवर्म्मा, सुधर्मा, शिशुपाल इत्यादि राजाओं का राज्य था। जो राजा बहुत पराक्रमी होता था या जो अन्य राजाओं को अपने वश में कर लेता था वह सम्राट् कहलाता था। महाभारत के समय में जरासंध एक बड़ा शक्ति-

---

(१) त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद्ब्राह्मणो भवेत्।
स्मृताश्च वर्णाश्चत्वारः पंचमो नाधिगम्यते॥
महाभारत, अनुशासनपर्व अध्याय ४७। १८

शाली राजा था। सम्राट् जरासंध की ओर से चेदि देश का राजा शिशुपाल साम्राज्य-सेना का अधिपति था। इससे जान पड़ता है कि चेदि देश का राज्य भी जरासंध के साम्राज्य के अंतर्गत हो गया था। श्रीकृष्ण ने जरासंध को हराया था और शिशुपाल को भी मारा था। उस समय द्वारका में प्रजातंत्र राज्य था। श्रीकृष्ण द्वारका के प्रजातंत्र राज्य के राष्ट्रपति थे और जरासंध तथा शिशुपाल आदि साम्राज्यवादी राजाओं से उनका द्वेष था। जरासंध और शिशुपाल की हार होने से साम्राज्य टूट गया, परंतु चेदि में एक-सत्तात्मक राज्य-संस्था चली आई।

१२—जरासंध के साम्राज्य में भिन्न-भिन्न राज्य तो अपनी आंतरिक शासन-संस्था में बिलकुल स्वतंत्र थे, परंतु परस्पर सहायता के लिये जरासंध के आधिपत्य में एक हो जाते थे। इससे जरासंध का साम्राज्य आधुनिक साम्राज्य से भिन्न था। चेदि राज्य के संबंध का इतना ही इतिहास महाभारत में मिलता है। दशार्ण देश का हाल और भी कम मिलता है और जो कुछ मिला ऊपर लिखा जा चुका है। महाभारत के युद्ध में यहाँ के राजा को भगदत्त ने मारा था।

१३—चेदि और दशार्ण ये दोनों एक-सत्तात्मक राज्य थे। इनकी राजसंस्था अन्य तत्कालीन राज्यों के समान ही रही होगी। राजा राजघराने का ही व्यक्ति रहता था और राजा के ज्येष्ट पुत्र को चुना जाने का पहला अधिकार था। परंतु प्रजा ही राजा को चुनती थी। राजा आठ मंत्रियों की राज-सभा बनाता था[1]।

---

(१) अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत्।

महाभारत, शांतिपर्व ८५।११

परंतु कहीं कहीं १८ मंत्रियों के मंत्रिमंडल का भी उल्लेख है[1]। इन अठारह मंत्रियों में (१) प्रधान मंत्री, (२) पुरोहित, (३) युवराज, (४) चमूपति, (५) द्वारपाल, (६) अतखेशक, (७) बंदीगृहों का अध्यक्ष, (८) कोषाध्यक्ष, (९) व्ययनिरीक्षक, (१०) प्रदेष्टा, (११) धर्माध्यक्ष, (१२) नगर का अध्यक्ष, (१३) राज्यसंस्था को आवश्यक सामान ला देनेवाला, (१४) सभाध्यक्ष (न्याय विभाग का प्रधान कर्मचारी), (१५) दंडधारी, (१६) दुर्गरक्षक, (१७) सीमारक्षक और (१८) जंगलों का रक्षक, ये लोग रहते थे। प्रत्येक गाँव में एक मुखिया रहता था जिसे ग्रामाधिपति कहते थे। ग्रामाधिपति को जंगल की आमदनी वेतन के रूप में मिलती थी। राज्यसंस्था के खर्च के लिये जमीन का लगान और व्यवसाय के कर, ये दो आमदनी के मार्ग थे। जमीन का लगान उपज के दशम भाग से छठे भाग तक था। जमीन का मालिक राजा नहीं समझा जाता था। व्यवसायियों को ढोर और सोने के व्यवसाय में पचासवाँ भाग राजा को देना पड़ता था। यह कर लेते समय माल की कीमत, उस पर लगनेवाला खर्च और जो कुछ और खर्च लगता था उसका विचार कर लिया जाता था[2]। कभी कभी युद्ध के समय प्रजा से ऋण भी ले लिया जाता था।

---

(१) कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दशपंच च।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः॥

महाभारत, सभापर्व ५।३८

(२) विक्रयं क्रयमध्वानं भक्तं च सपरिच्छदम्।
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजां कारयेत् करान्॥

महाभारत, शांतिपर्व ८७।१३

पशूनामधिपञ्चाशद्धिरण्यस्य तथैव च।
धान्यस्य दशमं भागं दास्यामः कोशवर्धनम्॥

महाभारत, शांतिपर्व ६७।२३

१४—जमीन के मालिक वे ही मनुष्य समझे जाते थे जिनके पास जमीन रहती थी[1]। वे लोग अपनी जमीन को बेच सकते थे और दान में भी दे सकते थे। जमीन का मालिक राजा न समझा जाता था। उन दिनों सोने के सिक्के चलते थे जिन्हें निष्क कहते थे।

१५—इस समय में विद्यार्थियों की शिक्षा की ओर भी पूरा ध्यान दिया जाता था। प्रत्येक राज्य में परिषद रहा करती थी जिसमें ब्राह्मण लोग विद्या सिखाया करते थे।

महाभारत के पश्चात् कई शताब्दियों तक का ठीक हाल नहीं मिलता। जिन राजघरानों का इतिहास मिल सका वह आगे के अध्यायों में दिया जाता है।

अध्याय २

मौर्य साम्राज्य

१—विक्रम संवत् के लगभग ३०० वर्ष पहले मगध का राज्य बहुत शक्तिशाली हो गया था। यहाँ पर शासन-संस्था एक-सत्तात्मक थी। इसके सिवा भारत के अन्य भागों में कहीं कहीं गणतंत्र राज्य थे। जब सिकंदर ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की तब उसको भारतवर्ष में कई गणतंत्र राज्य मिले थे। इस समय बुंदेलखंड की ठीक स्थिति क्या थी यह नहीं कह सकते। बुद्ध भगवान् का देहांत हुए लगभग साढ़े चार सौ वर्ष हो चुके थे जब सिकंदर ने यूनान से चढ़ाई की। उस समय मगध में नंद घराने का

---

(१) तस्मात्क्रीत्वा महीं दद्यात्स्वल्पामपि विचक्षणः।

महाभारत, अनुशासनपर्व, ६०।२४

राजा राज्य करता था। सिकंदर के लौट जाने के बाद प्राचीन राज-घराने का एक युवक, जिसका नाम चंद्रगुप्त मौर्य था, नंदवंश के शासक को मारकर स्वयं राजा बन गया। चंद्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान् और पराक्रमी राजा था। इसका मंत्री कौटिल्य था। कौटिल्य राजनीति में बहुत प्रवीण था। इसी की सलाह से कार्य करने में चंद्रगुप्त को पूरी सफलता मिली। मगध राज्य के आसपास कई ऐसे राज्य थे जहाँ पर शासन-संस्था प्रजा-सत्तात्मक थी। चंद्रगुप्त ने इन सबको अपने अधिकार में कर लिया। अन्य राजाओं को चंद्रगुप्त के राज्य में मिल जाना पड़ा। चंद्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य में नर्मदा के उत्तर का सब भाग आ गया था। इससे बुंदेलखंड भी चंद्रगुप्त के साम्राज्य में था। चंद्रगुप्त के मरने पर उसका लड़का बिंदुसार विक्रम-संवत् के २४० वर्ष पूर्व साम्राज्य का अधिकारी हुआ।

२—मौर्य साम्राज्य बड़ा होने के कारण उसके चार बड़े विभाग थे। प्रत्येक विभाग की राजधानी में साम्राज्य की ओर से एक शासक नियत रहता था। बुंदेलखंड उज्जैन के शासक के अधीन था। बिंदु-सार के राज्य-काल में उसका लड़का अशोक उज्जैन का शासक नियत किया गया था। यही विक्रम-संवत् के २१५ वर्ष पूर्व अपने पिता के मरने पर साम्राज्य का अधिकारी हुआ। अशोक बौद्ध था और उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये बहुत प्रयत्न किया।

३—मौर्य साम्राज्य के समय की शासन-प्रथा का बहुत सा हाल कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मिलता है। वाणिज्य और व्यवसाय पर सदा राज्य की ओर से निरीक्षण रहता था और इनकी उन्नति के लिये सब प्रकार के यत्न किए जाते थे। प्रत्येक ग्राम तथा बड़े स्थानों में न्यायालय थे। जन्म और मृत्यु का पूरा विवरण राज-कर्मचारी रखा करते थे। विद्यालयों का प्रबंध प्रत्येक स्थान में था और उच्च शिक्षा के लिये काशी और तक्षशिला में परिषदें थीं।

४—अशोक ने कई स्थानों पर धर्म-प्रचार के लिये शिलालेख खुदवाकर लगवाए थे। इसके शिलालेख नागौद और जबलपुर के पास रूपनाथ में हैं। इस समय बुंदेलखंड में भी बौद्धधर्म का प्रसार हो गया था। संभवतः इस समय एरन राजधानी रही होगी। चंद्रगुप्त के राज्य-काल में यूनान से मेगास्थिनीज नाम का एक प्रवासी भारतवर्ष में आया था। उसके वर्णन में बुंदेलखंड का विशेष हाल नहीं मिलता।

५—सम्राट् अशोक का देहांत संवत् के १७४ वर्ष पूर्व हुआ। अशोक के लड़के अशोक के समान योग्य न हुए और अशोक का देहांत होते ही साम्राज्य दो भागों में बँट गया। पूर्व के भाग का शासक दशरथ और पश्चिम भाग का शासक संप्रति नाम का अशोक का नाती हुआ। अनुमान से जाना जाता है कि बुंदेलखंड पश्चिम के भाग में ही रहा। इसके पश्चात् मौर्य साम्राज्य का सेनापति पुष्यमित्र शुंग, अपने स्वामी बृहद्रथ को मारकर, स्वयं राजा बन गया और सारा मौर्य साम्राज्य अपने अधिकार में कर बैठा। इस प्रकार शुंगों के राज्यकाल का आरंभ विक्रम-संवत् के १२७ वर्ष पूर्व हुआ। यह वंश जाति का ब्राह्मण था।

६—बुंदेलखंड भी शुंगों के अधिकार में रहा। बेसनगर (भिलसा के निकट) में पुष्यमित्र शुंग का युवराज अग्निमित्र सूबे-दार था। बुंदेलखंड इसी सूबे के अंतर्गत था। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये बहुत प्रयत्न किया था और जीवहिंसा बंद करा दी थी। परंतु पुष्यमित्र शुंग बौद्ध धर्म का कट्टर विरोधी था और उसने बौद्ध धर्म को उखाड़ देने के लिये भरपूर प्रयत्न किया। पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ रचा और फिर से हिंसामयी पूजा का आरंभ कर दिया। उसने कई बौद्ध भिक्षुओं को मरवा डाला और बौद्ध विहारों में आग लगवा दी। शुंगों का राज्य ११२ वर्ष तक रहा। पुष्यमित्र

के मरने पर फिर राजाओं में बहुत अदल-बदल हुई। इस वंश का अंतिम राजा देवभूति अपने ब्राह्मण मंत्री वसुदेव के हाथ से मारा गया। हत्या करने के बाद यही मंत्री राजसिंहासन पर बैठ गया। वसुदेव से दूसरा राजवंश आरंभ होता है जिसे कान्वायन वंश कहते हैं। कान्वायन राजवंश ४५ वर्ष के बाद ही नष्ट हो गया। इस वंश का नाश विक्रम-संवत् ३० में हुआ। यह वंश भी ब्राह्मण ही था।

७—मौर्य राज्य के पहले से ही भारतवर्ष में अनेक गणतंत्र राज्य[1] थे। इनमें से मध्यदेश[2] में पांचाल, कुरु, मत्स्य, यौधेय, सपटच्चर, कुंत्य और शूरसेन लोग रहते थे। इनको मौर्य साम्राज्य ने कहीं पर तो नष्ट कर दिया था और कहीं साम्राज्य के अंतर्गत कर लिया था। गणतंत्र राज्यों में मल्लक (मालवा) नाम का राज्य बुंदेलखंड के पश्चिम में और पंचाल के उत्तर में था। अशोक के समय में ये सब साम्राज्य के अंतर्गत थे। मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् इन स्थानों में फिर से गणतंत्र राज्य स्थापित हो गए। बुंदेलखंड का चेदि राज्य एक राजा के अधिकार में था। मौर्यों ने उसे अपने अधिकार में कर लिया था। मौर्य साम्राज्य के नष्ट होने पर चेदि देश में फिर से पुरानी प्रथा का एक-सत्तात्मक राज्य स्थापित हो गया। पश्चिम में मालवा देश में फिर से पुरानी प्रथा का गणतंत्र राज्य स्थापित हुआ। मालवा का गणतंत्र राज्य बड़ा शक्तिशाली और विस्तीर्ण था। इन गणतंत्र राज्यों के सिक्के मिले हैं, जिनसे इनका समय और स्थान ज्ञात हो जाता है।

---

(१) काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः।
लिच्छिविकवृजिकमल्लकमद्रककुकुरकुरुपांचालादयो राजशब्दोपजीविनः॥
कौटिल्य अर्थशास्त्र।

(२) पांचालाः कुरवो मत्स्याः यौधेयाः सपटच्चराः।
कुन्त्यः शूरसेनाश्च मध्यदेशे जनाः स्मृताः॥
विष्णुधर्मोत्तर महापुराण अध्याय ८

एरन सागर जिले में, खुरई के पश्चिम, बीना नदी के किनारे बसा हुआ है। यहीं पर कई पुरानी मूर्त्तियाँ भी मिली हैं जिनका वर्णन आगे किया जायगा। एरन का प्राचीन नाम एराकण्या था। यहाँ पर १७ सिक्के मिले हैं। वे एरन के गणराज्य के चलाए हुए सिक्के हैं। इन सिक्कों में से एक पर धर्मपाल राजन्या लिखा है पर उसका चित्र नहीं है। शेष नाम-रहित हैं। इससे यह पाया जाता है कि ये सिक्के किसी एक राजा के चलाए नहीं हैं। इन पर बोधिवृक्ष, धर्मचक्र बने हैं। सूर्य का चिह्न भी बना है। इनसे यह भी जान पड़ता है कि यहाँ बौद्ध धर्म का ही प्रभाव रहा है[1]। यह गणराज्य भी मौर्य साम्राज्य के नष्ट होने पर बना होगा। इसका विस्तार कहाँ तक होगा यह कहना कठिन है।

८—इन गणतंत्र राज्यों की सबसे बड़ी शासन-सभा को गण कहते थे। इस गण में राज्य के सब लोग अपने प्रतिनिधि भेजते थे। कहीं पर गण के सब सदस्य राजा कहलाते थे। इन राज्यों को अपना अस्तित्व बनाए रखने में बड़ी कठिनाई हुई। इन्हें उत्तर में शक लोगों से और पूर्व में गुप्त लोगों से सामना करना पड़ा। अंत में इनकी प्रजा-सत्तात्मक शासन-संस्था का लोप ही हो गया।

९—प्रायः इसी समय मालवा के उत्तर में नाग राजाओं का राज्य था। नाग राजाओं का हाल विष्णुपुराण में भी मिलता है। विष्णुपुराण में लिखा है कि नौ नाग राजाओं का राज्य पद्मावती[2] और कांतीपुरी में रहेगा। पद्मावती का आधुनिक नाम पवायाँ है।

---

(१) A, Cunningham: Archeological Survey of India, Vol. X, P. 75. and republic tradition in ancient Indian Polity (Modern Review 1920, P. 13.)

(२) पद्मावती को कनिंघम नरवर मानते हैं, परंतु पद्मावती का आधुनिक नाम पवाँया ही है।

यह ग्वालियर रियासत के डभोरा स्टेशन से १२ मील पर है। कांतीपुरी को आजकल कुतवार कहते हैं। यह अहसन नदी के तट पर ग्वालियर से २० मील पर स्थित है।

१०—नरवर में नागवंशी राजाओं के बहुत से सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों से निम्नलिखित राजाओं के नामों का पता लगा है। इन राजाओं के संवत् भी अनुमान से निम्न-लिखित हैं—

१	भीम नाग	विक्रम-संवत्	५७
२	खा (खर्जुर नाग)	,,	८२
३	वा (वर्म्मा या वत्स)	,,	१०७
४	स्कन्द नाग	,,	१३२
५	बृहस्पति नाग	,,	१८७
६	गणपति नाग	,,	२०२
७	व्याघ्र नाग	,,	२२७
८	वसु नाग	,,	२५२
९	देवनाग	,,	२७७

देवनाग नाम का नवाँ राजा था। इस वंश का अधःपतन गणपत नाग के समय से ही हो चला था। इसे समुद्रगुप्त ने अपने अधिकार में कर लिया था। इसका हाल इलाहाबाद के विजय-स्तंभ में लिखा है।

११—पवायाँ में वि० सं० ८२ में नागवंशी राजाओं के ३० सिक्के और शिवनंदन नामी एक राजा का शिलालेख भी मिला है*। इन सिक्कों में से २० सिक्के गणेंद्र (गणपत) के, ६ देव (देवेंद्र) के और एक स्कंद नाग का है, शेष खराब हो गए हैं।

---

* राज्ञः स्वामिशिवनंदिस्य संवत्सरे चतुर्थे ग्रीष्मपक्षे द्वितीयदिवसे। (२) द्वादशे १०२ एतस्य पूर्वाये गोष्ठया मणिभद्रा गर्भसुखिताः भगवतो। (३) मणिभद्रस्य प्रतिमा प्रतिष्ठापयन्ति गोष्ठवं भगवा आयुवलं वाच्यं कल्या-

१२—नाग राजाओं के समय से ही भारतवर्ष पर शक लोगों के आक्रमण होने लगे थे। पहले शक लोगों का राज्य पंजाब में जमा। यहाँ से ये लोग उज्जैन, काठियावाड़ और महाराष्ट्र देश में फैले। इन लोगों के प्रांतीय शासक क्षत्रप और महाक्षत्रप कहलाते थे। इन क्षत्रपों के राज्यकाल के सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों पर एक ओर यावनी भाषा में शासकों के विरुद और नाम लिखे हैं तथा दूसरी ओर उनका अनुवाद ब्राह्मी अक्षरों में है। शक लोगों का राज्य मालवा में स्थापित हो गया था और यहाँ एक क्षत्रप शक लोगों की ओर से रहता था। जबलपुर जिले में भेड़ाघाट नामक स्थान में कुछ प्राचीन मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें लिखा है कि भूमक की लड़की ने इनकी स्थापना की। इससे अनुमान होता है कि भूमक का राज्य यहाँ तक भी रहा होगा। भूमक शक लोगों का एक क्षत्रप था। इसी से जान पड़ता है कि सारे बुंदेलखंड में शक लोगों का आधिपत्य हो गया था। किंतु इन लोगों का राज्य बुंदेलखंड में बहुत दिन नहीं रहा। नासिक के एक शिलालेख में लिखा है कि शालिवाहन वंश के राजा ने शक लोगों को महाराष्ट्र से भगा दिया था। शालिवाहन वंश के राजा का नाम गौतमी पुत्र और शक क्षत्रप का नाम नहपाण था जिसे क्षहरात भी कहते थे। इसी समय तिलंगाने के आंध्रभृत्यों ने शक लोगों को हरा दिया। पुराणों में लिखा है कि कान्वायन वंश के पश्चात्

णाभ्युदयं। (४) च प्रीतोदिशतु ब्राह्मणस्य गोतमस्य कुमारस्य (कुमारस्य) ब्राह्मणस्य रुद्रदासस्य शिवन्तदपि। (५) समभूतिस्य जीवस्य कंजवलस्य शिवनेमिस्य शिवभद्रस्य कमकस्यधतदे। (६) वसदा॥ सिंधु के जल-प्रपात के पास धूमेश्वर महादेव का लिंग है। यही धूमघाट है। यह पवायां के नैऋत्य में २ मील पर है। यहां पर एक मंदिर भी बना हुआ है।

(माधुरी माघ नं० ८२)

आंध्रभृत्यों का राज्य हुआ। इससे पता लगता है कि कान्वायनों के बाद भारतवर्ष के अधिकांश में आंध्रभृत्यों का ही राज्य रहा और इन लोगों ने भारतवर्ष के पूर्व के देशों पर अपना अधिकार अवश्य ही कर लिया होगा। बुंदेलखंड में इनका अधिकार हुआ या नहीं और हुआ तो कितने दिन रहा यह कहना कठिन है। आंध्रराजा पुलुमायी उज्जैन के महाक्षत्रप रुद्रदमन का दामाद था। इन दोनों में भी लड़ाई हो गई थी और आंध्र राजाओं ने जितना भाग पहले क्षत्रपों से ले लिया था वह भाग फिर से रुद्रदमन ने पुलुमायी को हराकर अपने अधिकार में कर लिया। इसलिये यदि बुंदेलखंड में आंध्र राजाओं का अधिकार हुआ भी हो तो वह बहुत दिन नहीं ठहरा। शक लोगों के महाक्षत्रप काठियावाड़ और मालवा में राज्य करते थे। मालवा का पहला महाक्षत्रप चेष्टन था। इसने विक्रम संवत् १३८ में अपनी राजधानी उज्जैन में जमाई थी। इसके पश्चात् इसका नाती रुद्रदमन महाक्षत्रप हुआ जिसने पुलुमायी से लड़ाई की थी। इनकी गद्दी पर बैठने की प्रथा विचित्र ही थी। पिता के मरने पर ज्येष्ठ पुत्र को गद्दी न मिलती थी परंतु उसके मरने पर उनके भाई वयःक्रम के अनुसार गद्दी के अधिकारी होते थे। और सब भाइयों के हो चुकने के पश्चात् बड़े भाई के बड़े लड़के को गद्दी मिलती थी। महाक्षत्रपों ने अपने नाम के सिक्के भी चलाए थे। इनके सिक्कों से इनके वंश और इनके वंश के शासकों का पता चलता है। संवत् ३५८ तक महाक्षत्रपों का राज्य मालवे में रहा।

१३—शक लोगों को उत्तर में पल्हव लोगों से सामना करना पड़ा। पल्हव लोगों के शिलालेख पेशावर में मिले हैं। परंतु ये लोग पंजाब के दक्षिण तक नहीं बढ़े और मालवा तथा बुंदेलखंड में इनका कोई प्रभाव न हुआ। इन लोगों को कुषाण वंशी

तुर्कों ने भारतवर्ष से हटा दिया और फिर भारतवर्ष में कुषाण-वंशी राजाओं का आधिपत्य हो गया।

१४—कुषाण-वंशी राजाओं के सिक्के काबुल, पंजाब और मथुरा के सिवाय मालवा में भी मिले हैं। इसी से जान पड़ता है कि कुषाण राजाओं का राज्य मालवा में भी हो गया था। राजतरंगिणी में कनिष्क, हविष्क और वासुदेव—इन तीन कुषाण-वंशी राजाओं का नाम है और उनके विषय में लिखा है कि वे तुरुष्क वंश के थे। सिक्कों से पता चलता है कि कुषाण-वंश के पहले दो राजा और थे जिनका नाम कुजुल-कड़फाइसेस और वेम-कड़फाइसेस था। इनमें से दूसरा शैव था, क्योंकि इसके सिक्कों पर शिव और नंदी की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। कुषाण-वंश का सबसे प्रतापी राजा कनिष्क हुआ। यह बौद्ध मतानुयायी था। कनिष्क का राज्य गुजरात तक फैल गया था। मालवा में भी कनिष्क का राज्य था, परंतु कनिष्क के मरते ही उसका राज्य मालवा से उठ गया।

१५—बुंदेलखंड में मौर्य साम्राज्य जब तक रहा तब तक शांति रही आई, पर मौर्य साम्राज्य के नष्ट होते ही शुंगों के समय में अवश्य ही राजकीय विग्रह इस देश में होते रहे होंगे। कान्वायनों के राज्य में भी यही दशा रही होगी। इसी समय चेदि देश अपने राजा के आधिपत्य में स्वतंत्र हो गया और ऐसे ही मालवा में गणसत्तात्मक राज्य स्थापित हो गया। फिर शक लोगों का आक्रमण हुआ। उनसे और आंध्रभृत्यों से युद्ध हुआ। इस समय भी बुंदेलखंड में बहुत अशांति रही होगी। परंतु बुंदेलखंड ने इतने आघात सहने पर भी अपनी स्वातंत्र्य-प्रियता न छोड़ी।

१६—इस विग्रह के समय में देश की स्थिति में सभ्यता की दृष्टि से कुछ विशेष उन्नति न हो सकी। इस समय में बौद्ध राजाओं ने बौद्धधर्म का प्रचार किया और दूसरों ने उसे उखाड़ फेंकने की

चेष्टा की। अन्य राजाओं का ध्यान भी इसी ओर रहा और उन्नति की ओर विशेष ध्यान न दिया गया। इसी अशांति के समय में मगध में गुप्तराज्य की शक्ति बढ़ी और बुंदेलखंड को भी उस शक्ति के आगे सिर झुका कुछ दिनों तक गुप्तों के आधिपत्य में रहना पड़ा।

अध्याय ३

गुप्त और हूण साम्राज्य

१—मगध देश में बड़े राजघरानों के नाश हो जाने पर छोटे छोटे वैभवहीन राजा रह गए थे। इनमें से एक का विवाह नैपाल के लिच्छवि राजघराने में हो गया। इस राजा का नाम चंद्रगुप्त था। चंद्रगुप्त के पिता का नाम घटोत्कच था। परंतु गुप्त राजवंश का वैभव इसी के समय से ही बढ़ने लगा। लिच्छवि राजवंश से संबंध होने से चंद्रगुप्त को बहुत सहायता मिली। चंद्रगुप्त ने महा-राजाधिराज का पद धारण किया और विक्रम संवत् ३७८ में गुप्त नामक संवत्सर का प्रचार किया। चंद्रगुप्त का लड़का समुद्रगुप्त अपने वंश का सबसे प्रतापी राजा हुआ। उसने चंद्रगुप्त मौर्य की नाईं अपने राज्य की सीमा तिलंगाने तक फैलाने का उद्योग किया और अनेक राजाओं को परास्त कर उन्हें मांडलिक बना लिया। उसने जितने प्रदेश जीते उनका हाल इलाहाबाद के उसी स्तंभ पर है जिस पर अशोक का लेख है। उसने पद्मावती के राजा गणपति नाग को अपने अधिकार में करके अपना मांडलिक बना लिया। इस समय पद्मावती में नाग राजाओं का राज्य था। ये समुद्रगुप्त के अधिकार में आ गए। मालवा को भी समुद्रगुप्त ने

अपने अधिकार में कर लिया था। इस समय मालवा में कोई खास राजा राज्य नहीं करता था। वरन् वहाँ पर फिर से गणतंत्र राज्य स्थापित हो गया था। झाँसी और ग्वालियर के बीच आभीर लोग रहते थे। इन्हें भी समुद्रगुप्त ने अपने अधिकार में कर लिया था। इस भाग को आजकल अहीरवाड़ा कहते हैं।

२—बघेलखंड के समीप कैमूर पर्वत के पास रहनेवाले मुरुंड लोगों को समुद्रगुप्त ने अपने राज्य में शामिल कर खड़परिखा जाति भी अपने अधीन कर ली थी। यह जाति दमोह जिले में रहती थी। समुद्रगुप्त के शिलालेख में ऐरीकेना प्रदेश का भी नाम है। यह सागर जिले का एरन ग्राम है। यहाँ के राजा से भी समुद्रगुप्त से युद्ध हुआ था और विजय-श्री समुद्रगुप्त को ही मिली थी। उसने इसकी प्रशस्ति भी लिखवाई थी, पर शिला टूट गई है। समुद्रगुप्त के मरने पर चंद्रगुप्त (दूसरा) विक्रम सं० ४३१ में गद्दी पर बैठा। इसने भी अपने राज्य की सीमा चारों ओर बढ़ाई। चंद्रगुप्त के शिलालेख भिलसा के निकट उदयगिरि में मिले हैं। इलाहाबाद के पास गढ़वा और साँची में भी इस राजा के लेख मिले हैं। इससे भी जान पड़ता है कि सारा बुंदेलखंड इसी राज्य में था। जब समुद्रगुप्त दिग्विजय को निकला तो वह सागर जिले से होता हुआ दक्षिण को गया था। जान पड़ता है कि सागर जिला उसे बहुत ही प्रिय लगा, क्योंकि उसने बीना नदी के किनारे एरन में 'स्वभोग नगर' बनाया था। हटा तहसील के सकौर ग्राम में २४ सोने के सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों पर गुप्तवंशीय राजाओं के नाम अंकित हैं। ८ मुहरों पर महाराज समुद्रगुप्त का नाम, १५ पर महा-राजाधिराज चंद्रगुप्त का नाम और एक पर स्कंदगुप्त का नाम खुदा है।

३—चंद्रगुप्त के मरने पर कुमारगुप्त राजा हुआ। कुमारगुप्त के शिलालेख कई स्थानों पर मिले हैं। दो गढ़वा नामक स्थान में,

एक विलसद में, एक मानकुँअर में, एक मथुरा में और एक मंडसर में मिला है। विलसद एटा जिले में, मानकुँअर इलाहाबाद जिले में और मंडसर मालवा के पश्चिमी भाग में है। इससे कुमारगुप्त के राज्य का विस्तार जाना जाता है। गढ़वा का शिलालेख ४७४ विक्रम-संवत् का है। कुमारगुप्त के पश्चात् स्कंदगुप्त राजा हुआ। स्कंदगुप्त के शिलालेख भी कई स्थानों में पाए गए हैं। स्कंदगुप्त का राज्य भी उतना ही विस्तीर्ण था जितना कि समुद्रगुप्त का था और बुंदेलखंड अवश्य ही उसके राज्य के अंतर्गत था। स्कंदगुप्त के शिलालेखों में हूण लोगों का नाम आया है और एक लेख में लिखा है कि स्कंदगुप्त ने हूण लोगों को हराया। परंतु स्कंदगुप्त के पश्चात् गुप्त-वंश का पतन आरंभ हो गया। स्कंदगुप्त के पश्चात् उसके भाई पुरगुप्त, फिर उसके लड़के नरसिंहगुप्त और फिर उसके लड़के कुमार-गुप्त दूसरे ने राज्य किया। इसके पश्चात् जान पड़ता है कि इस वंश का नाश हो गया।

४—हूण लोगों के आक्रमण स्कंदगुप्त के समय से ही आरंभ हो गए थे। स्कंदगुप्त ने हूण लोगों की बढ़ती रोकने का प्रयत्न किया था परंतु इसके पश्चात् हूण लोग भारतवर्ष में घुस आए। स्कंदगुप्त की मृत्यु के चार ही वर्ष पीछे हूणों का राजा तोरमाण एरन में आ गया। उस समय एरन प्रांत स्कंदगुप्त के भाई-बंदों के हाथ में बुधगुप्त नाम के राजा के अधीन था। परंतु बुधगुप्त स्वयं राज-काज न देखता था और उसकी ओर से सुरश्मिचंद्र नामक मांडलिक यमुना और नर्मदा के बीच के प्रांत का शासन करता था। सारा बुंदेलखंड इसी मांडलिक सुरश्मिचंद्र के अधीन था। सुरश्मिचंद्र की ओर से एरन का राज्य चलाने के लिये मैत्रायणीय शाखा के ब्राह्मण मातृविष्णु और धान्यविष्णु नियत थे। इन्हीं के समय में तोरमाण ने विक्रम संवत् ५४२ में अपना आधिपत्य बुंदेलखंड पर

जमाया। एरन के वराह के वक्षस्थल में इसका उल्लेख अभी तक विद्यमान है, परंतु जान पड़ता है कि हूणों का राज्य स्थायी रूप से इस ओर नहीं जमा।

५—एरन में जो सिक्के मिले हैं उनका वर्णन ऊपर हो चुका है। वे सिक्के उस समय के हैं जब एरन में गणसत्तात्मक राज्य था। एरन में एक बड़ा स्तंभ है जो लगभग ३८ फ़ुट ऊँचा है और जिस पर ५ फुट ऊँची दो मूर्तियाँ बनी हैं। इस स्तंभ पर एक लेख भी है। इस लेख में पहले गरुड़वाहनवाले तथा समुद्र में रहनेवाले विष्णु की वंदना है। फिर यह लिखा है कि यह लेख बुधगुप्त के राज्य काल में मैत्रायणीय शाखावाले ब्राह्मण मातृविष्णु और धान्यविष्णु ने अपने माता-पिता के सुख के लिये लिखवाया। इसी स्तंभ के निकट वाराह अवतार का मंदिर है। इसमें वाराह अवतार की एक विशाल मूर्ति है। यह मूर्ति मातृविष्णु के छोटे भाई धान्यविष्णु की बनवाई हुई है। वाराह के वक्षस्थल पर भी एक लेख है। इस लेख में पहले वाराह भगवान् की स्तुति है। फिर उसमें लिखा है कि यह मंदिर तोरमाण के राज्य के पहले वर्ष में मैत्रायणीय शाखावाले ब्राह्मण धान्यविष्णु ने बनवाया। इन दो महत्त्वपूर्ण वस्तुओं के सिवाय यहाँ और भी कई दर्शनीय मंदिर और मूर्तियाँ हैं। मातृविष्णु के स्तंभ में गुप्त संवत् भी दिया हुआ है। उसी से यह जाना जाता है कि एरन के वाराह मंदिर का समय वि० स० ५४२ था। इस समय तोरमाण ने अपना आधिपत्य बुंदेलखंड पर कर लिया था। स्तंभ से ज्ञात होता है कि मातृ-विष्णु गुप्त लोगों के अधीन था। परंतु उसका भाई धान्यविष्णु तोरमाण हूण का आधिपत्य स्वीकार करके उसके अधीन हो गया था। इन हूणों से गुप्तवंशीय राजाओं का भी इसी एरन में युद्ध हुआ था। यह बात एरन के सती के चौरे से ज्ञात होती है

इस चौरे पर लिखा है कि भानुगुप्त के साथ सरभ राजा का दामाद गोपराज आया था। वह यहाँ मारा गया और उसकी स्त्री (सरभ राजा की कन्या) सती हो गई थी।

६—हूण राजाओं में केवल दो राजाओं के नाम मिले हैं। पहले तोरमाण के विषय में कुछ लिखा जा चुका है। दूसरा नाम मिहिरकुल का है। यह नाम मंडसर और ग्वालियर के शिलालेखों में मिला है। ग्वालियर के शिलालेख में मिहिरकुल के राजत्व-काल का संवत् दिया है, पर मंडसर का लेख वि० सं०५८९ का है। इस लेख से यह ज्ञात होता है कि इसे यशोधर्मन ने हराया था। यह भी मालूम होता है कि यशोधर्मन के पिता विष्णुधर्मन ने अपना राज्य स्थापित कर महाराजाधिराज की पदवी धारण की थी। इससे जान पड़ता है कि हूणों का राज्य ४० वर्ष से अधिक नहीं रह सका। इसी बीच में यशोधर्मन ने इसे नष्ट कर दिया। यशोधर्मन की राजधानी मंडसर में थी और वह सारे उत्तर का शासक था। उसने मगध के राजा से भी मैत्री कर ली थी। इतिहासकार कहते हैं कि इसका राज्य हिमालय से लेकर दक्षिण में ट्रावनकोर तक फैल गया था। इससे यह प्रतीत होता है कि इसका राज्य बुंदेलखंड में अवश्य ही रहा होगा।

७—खोह (उचेहरा के पास) में परिव्राजक महाराज हस्तिन और उसके पुत्र शंखशोभा के कई ताम्रपत्र मिले हैं। इनमें गुप्तसंवत् और वार्हस्पत्य वर्ष अलग अलग दिए हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि परिव्राजक महाराज हस्तिन भी गुप्तों के मांडलिक राजा थे। इन ताम्रपत्रों में परिव्राजक महाराज की वंशावली इस प्रकार दी है— "सुशर्म्मा, देवाढ्य, प्रभंजन, दामोदर, हस्तिन और शंखशोभा।" परिव्राजक महाराज हस्तिन का समय वि० सं० ५३२ और शंखशोभा का ५७५ है। संभवतः महाराज सुशर्म्मा वि० सं० ४३२ में मौजूद थे।

८—भभूरा ग्राम में एक यष्टि (यज्ञस्तंभ) मिली है। उसमें परिव्राजक महाराज हस्तिन के पुत्र शंखशोभा और राजा सर्वनाथ के नाम आए हैं। परिव्राजक महाराज तो खोह के राजा थे और सर्वनाथ कारीतलाई में राज्य करते थे। ये दोनों समकालीन हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कारीतलाई का राजा भी गुप्तों का मांडलिक राजा था इस वंश की नामावली इस प्रकार है। ओगदेव-कुमारदेवी, कुमारदेव-जयस्वामिनी, जयस्वामी-रमादेवी, व्याघ्रदेव-अजहितादेवी, जयनाथ और सर्वनाथ। इन दोनों अंतिम राजाओं का राजत्व-काल वि० सं० ४७६ और ४६८ है।

६—दमोह जिले के वटियागढ़ ग्राम में गुलाम नसीरुद्दीन महमूद के समय का एक शिलालेख वि० सं० १३८५ का मिला है। इसे चेदि देश के सूबेदार जलाल खोजा ने उत्कीर्ण करवाया था। यह सूबेदार खड़परिका नामक जाति का सूबेदार भी था। इस जाति का उल्लेख हरिषेण कवि-रचित समुद्रगुप्त के इलाहाबादवाले शिलालेख में है। इस जाति ने समुद्रगुप्त से युद्ध किया था। यदि संवत् १३८५ वाली खड़परिका जाति ही समुद्रगुप्त के शिलालेख की खड़परिका है तो ऐसा कहना अनुचित न होगा कि यह भी बुंदेलखंड के दक्षिणी भाग (जंगल) में रहनेवाली एक प्रभावशालिनी स्वतंत्र जाति थी। इसी से यह अनेकानेक राजकीय उलट-फेर होने पर भी लगभग ६०० वर्षों तक अपना अस्तित्व बनाए रही। शिलालेख में विक्रम संवत् १३८५ लिखा है इससे यह लेख गुलामवंश के बदले तुगलक वंश का हो सकता है, क्योंकि गयासुद्दीन तुगलक के लड़के मुहम्मद दूसरे का राजत्व-काल इसी संवत् के आस-पास रहा है।

१०—इस समय में शिल्पविद्या की बहुत उन्नति हुई। इस समय के बने मंदिर, स्तंभ और मूर्तियाँ शिल्पोन्नति की साक्षी देती

हैं। जाति-भेद इस समय बढ़ गया था। इसके पहले जितनी स्वतंत्रता जातीय विषयों में थी उतनी अब न रही थी। इस समय जातियों की संख्या भी बहुत बढ़ गई थी। भिन्न भिन्न जातियों के मेल से कई जातियाँ बन गई थीं और कई जातियाँ व्यवसाय के अनुसार भी बन चुकी थीं। इससे इनके संयम भी दृढ़ हो गए थे। राजा अपनी सेना के जोर से चाहे जो कुछ कर सकते थे। इसी कारण कई उदाहरण ऐसे मिलते हैं जहाँ बलशाली मंत्रियों ने राज्य अपने अधिकार में कर अपने इच्छानुसार नीति में फेर-फार कर दिए। इन राजाओं की ओर से प्रांतों के जो शासक होते थे उनको बड़े बड़े अधिकार रहते थे। यमुना से नर्मदा तक के मध्य-प्रांत के शासक सुरश्मिचंद्र और एरन के शासक मातृविष्णु के उदाहरण सामने हैं। संभवतः इसी वंश में जुझौति देश का ब्राह्मण राजा भी पैदा हुआ हो। ये राजकर्मचारी केंद्रस्थ शासकों के कमजोर होते ही स्वयं स्वतंत्र हो जाते थे। ग्राम-संस्थाएँ प्राचीन प्रथा के अनुसार ही अपने मुखिया के अधिकार में थीं और न्याया-लय भी उसी प्रकार रहे होंगे जैसे कि मौर्य काल में थे। परंतु इस समय मनुस्मृति जिस रूप में आजकल प्रचलित है उस रूप में आ गई थी। स्मृति के सिवाय और और भी स्मृतियाँ हो गई थीं, इससे कानून भी प्रचलित स्मृति के अनुसार रहता होगा। मनुस्मृति बहुत पुरानी है। इसमें जो फेर-फार हुए हैं उनका पता लगाना असंभव है।

अध्याय ४

हर्षवर्धन का राज्य और कछवाहे

१—यशोवर्धन के राज्य के पश्चात् पंजाब के राजाओं की शक्ति बढ़ने लगी। यहाँ का पहला राजा शिलादित्य था। इसके

पश्चात् हर्षवर्धन हुआ। इसकी राजधानी थानेश्वर थी। प्रभाकरवर्धन का युद्ध मालवा के शासक से हुआ परंतु प्रभाकरवर्धन हार गया। इसके पश्चात् इसका लड़का राज्यवर्धन थानेश्वर की गद्दी पर बैठा। राज्यवर्धन ने फिर भी मालवा के राजा से युद्ध किया परंतु इसे बंगाल के राजा नरेंद्रगुप्त ने हरा दिया। पीछे से इसे राजा ने विश्वासघात से मार भी डाला। राज्यवर्धन के पश्चात् इसका भाई हर्षवर्धन गद्दी पर बैठा। इसे शिलादित्य भी कहते थे। हर्षवर्धन जेठ वदि १२ रविवार वि० सं० ६४७ में उषाकाल के समय पैदा हुआ था[1] और १६ वर्ष की अवस्था में वि० सं० ६६३ में राजगद्दी पर बैठा। हर्षवर्धन ने मालवा अपने अधिकार में कर लिया। हिंदुस्तान का सारा उत्तरीय भाग भी उसके अधिकार में हो गया था। वह बड़ा प्रतापी राजा था। उसके पास बहुत बड़ी शिक्षित सेना थी। उसने सारा राज्य अपने बाहुबल से ही बढ़ाया था।

२—हर्षवर्धन की बहिन का नाम राज्यश्री था। यह कन्नौज के मौखरी राजा गृहवर्म्मा को ब्याही गई थी। जब मालवा के राजा देवगुप्त ने कन्नौज पर चढ़ाई करके गृहवर्म्मा को युद्ध में परास्त कर उसे

---

(१) हर्ष की जन्मकुंडली—जन्म तारीख ४-६, ५९० इष्ट ४० घड़ी।

११ ९
१२ १० ८
१ रा के ७
६
चं २ ४
३बु.शु.श मं ५

र	चं	मं	बु	गु	शु	श	राहु	केतु
२	१	४	२	२	२	२	०	६
१०	१	१८	१३	१६	१६	१९	२३	२३
५९	५४	२६	६	१५	५४	३७	२९	९

मार डाला तब राज्यवर्धन ने इसका बदला लेने के लिये मालवा पर चढ़ाई की थी। पर जब उसे नरेंद्रगुप्त ने मार डाला तब हर्षवर्धन ने इन दोनों का बदला लेने के लिये मालवा पर चढ़ाई की। इस चढ़ाई में हर्षवर्धन की विजय हुई, पर राज्यश्री हर्षवर्धन के आने के पूर्व ही वहाँ से चली गई थी। वह पता लगाने पर हर्षवर्धन को एक जंगल में मिली थी। गृहवर्म्मा को कोई संतान तो थी नहीं, इससे हर्षवर्धन थानेश्वर और कन्नौज दोनों का राजा हो गया और उसने कन्नौज में अपनी राजधानी बनाई।

३—हर्षवर्धन ने गद्दी पर बैठने पर अपने नाम का संवत् भी चलाया था। उसके नाम का एक ताम्रपत्र भी मिला है। उसमें हर्षवर्धन की वंशावली दी है। हर्षवर्धन के पिता तो शैव थे पर उसने बौद्धधर्म की दीक्षा ली थी। इससे उसने जीव-हिंसा करना छोड़ दिया था। न वह स्वतः मांस खाता था, न औरों को खाने देता था। यदि कोई खाता तो उसे प्राणदंड की सजा दी जाती थी। वह अपने विस्तीर्ण राज्य का प्रबंध स्वतः दौरा करके करता था। उसके राज्य में बेगार नहीं ली जाती थी। जो आदमी राजा के काम में लगाए जाते थे उन्हें पूरा पूरा पैसा मिलता था। शिक्षा की ओर भी उसका पूरा ध्यान था। वह अच्छा कवि और नाटककार भी था। बौद्ध नाटिका प्रियदर्शिका, नागानंद और रत्नावली नाटिका उसी के बनाए हुए कहे जाते हैं। संभव है कि रत्नावली की रचना में बाण ने कुछ सहायता दी हो। बाण इसी के दरबार का कवि था। इसके प्रसिद्ध ग्रंथ कादंबरी और हर्षचरित्र हैं। हर्ष ने लोगों के उपकार के लिये शहर और बाहर भी धर्मशालाएँ बनाई थीं और इनमें एक एक वैद्य भी रहता था। ये वैद्य बीमारों को बिना मूल्य औषध देते थे। सारा बुंदेलखंड हर्षवर्धन के राज्य में था। यह विक्रम सं० ७०३ में मरा।

४—चीनी यात्री हुएनशियांग हर्षवर्धन के समय में ही भारत-भ्रमण करने के लिये आया था। इसने अपनी यात्रा के वर्णन में जुझौति (बुंदेलखंड), महेश्वरपुरा और उज्जैन में ब्राह्मण राजाओं का राज्य बतलाया है। इस समय जुझौति की राजधानी कहाँ थी, इसका तो पता लगता नहीं; पर लोगों का ऐसा अनुमान है कि एरन ही राजधानी रही होगी, क्योंकि यह प्राचीन राजधानी थी। यहाँ पर बौद्धधर्म-चक्रांकित कई सिक्के और गुप्तकालीन शिलालेख भी मिले हैं। इसी समय में पड़िहार भी बढ़े थे। ये कन्नौज के महाराजा हर्षवर्धन के मांडलिक थे। जान पड़ता है कि पड़िहारों का राज्य दक्षिणी बुंदेलखंड में था। दमोह जिले के दक्षिण भाग में सिंगोरगढ़ का किला पड़िहारों का बनवाया हुआ है। पड़िहार लोग राजपूत थे। इनकी राजधानी पहले मऊ में थी, पर पीछे से उच्छकल्प (उचेहरा) में हुई। यहाँ के राजाओं के पास प्राचीन वंशावली नहीं है। इससे उचेहरा राजधानी का समय निश्चित करना असंभव है।

५—हर्षवर्धन के कोई संतान न थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् सारे साम्राज्य में अराजकता सी फैल गई। इस समय में धार के राज्य की शक्ति बहुत बढ़ी। बुंदेलखंड के पश्चिमी भाग पर भी धार के राजा का अधिकार हो गया था। परंतु किस भाग तक धार के राज्य का अधिकार हो गया था यह कहना कठिन है। इस वंश के प्रथम राजा का नाम उपेंद्र था। पर कोई इसे कृष्ण और कोई भोज भी कहते हैं। इसका राजत्व-काल वि० सं० ८७५ से ८८२ के बीच में माना जाता है।

६—धार के प्रसिद्ध राजा का नाम भोज था। ग्वालियर के शिलालेख से मालूम होता है कि यह राजा भोज गुहादित्य का पुत्र

था[1]। इसी राजा भोज के वंश में नवीं पीढ़ी में वह राजा भोज हुआ है जिसके लिखे हुए कई ग्रंथ प्रचलित हैं। धार के राजा भोज प्रथम के लड़कों का हाल नहीं मालूम होता। पर सीयक दूसरे से जो राजा उपेंद्र की छठीं पीढ़ी में हुआ था कुछ कुछ हाल मिलता है। धार का राज्य कब तक बुंदेलखंड में रहा इसका निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। प्रसिद्ध ग्रंथकर्ता राजा भोज के संबंध में ऐतिहासिक विद्वानों का मतैक्य नहीं है और उसका इतिहास बुंदेलखंड के इतिहास से भी संबद्ध न होने के कारण उक्त विवादग्रस्त विषय की चर्चा करना यहाँ उचित नहीं जान पड़ता।

७—विक्रम संवत् के आरंभ से लगभग ९५० वर्षों के पश्चात् तक कछवाहों के राज्य का कुछ भी विस्तृत हाल हमें नहीं मिलता। वास्तव में यह राजवंश बहुत पुराना है। कछवाहे लोग अपनी उत्पत्ति महाराज रामचंद्र के पुत्र कुश से बतलाते हैं। इसी वंश के सूरजसेन नामक राजा का राज्य कुंतलपुरी (कुटवार) नामक ग्राम के आस-पास था। इस राजा ने संवत् ३३२ में ग्वालियर का किला बनवाया। सूरजसेन कोढ़ी था। इसका कोढ़ ग्वालियर के निकट एक सिद्ध ने अच्छा कर दिया था। इसी सिद्ध के कहने से सूरजसेन ने ग्वालियर का किला बनवाया और इसी सिद्ध के आदेशानुसार अपना नाम सूरजपाल रख लिया। फिर सूरजपाल के वंशजों ने भी अपने नाम के आगे 'पाल' शब्द लगाया।

---

(१) इतिहास में भोज नाम के कई राजाओं का नाम आया है। उड़ीसा में भी भोज नाम का राजा था जिसने विक्रम संवत् के पहले राज्य किया था। बंगाल में तीन राजा भोज नाम के हुए। कर्नल टॉड ने मालवा के भोज प्रमार का वर्णन किया है। भोज प्रमार का राज्य संवत् ६३१ के लगभग रहा। धार के भोज का भी वर्णन टॉड साहब ने किया है। धार के इस भोज का शासन संवत् ७२१ से आरंभ होता है।

सूरजपाल के पश्चात् इस वंश का चौरासीवाँ राजा तेजकर्ण नाम का था। इसके समय में कछवाहों का राज्य कन्नौज के राजा भोज पड़िहार के अधीन हो गया।

८—तेजकर्ण के कुछ वर्षों पश्चात् वज्रदामा नामक राजा का हाल मिलता है। इसने कन्नौज के पड़िहार राजा से ग्वालियर छीन लिया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। किंतु यह राजा तत्कालीन चंदेल राजा के अधीन रहा होगा। अलबरूनी का यह कहना कि उस समय चंदेल राज्य में ग्वालियर और कालिंजर दो मुख्य गढ़ थे ठीक जान पड़ता है। वज्रदामा के पिता का नाम लक्ष्मण था। इस समय कछवाहा राजवंश की दो शाखाएँ थीं। एक शाखा का राज्य जयपुर की ओर था और दूसरी शाखा यह थी जिसका राज्य नरवर के आस-पास था।

९—वज्रदामा का पिता लक्ष्मण जैन था परंतु वज्रदामा वैष्णव था। वज्रदामा के राज्यकाल का आरंभ अनुमान से विक्रम संवत् १००७ या १०३४ से होता है। वज्रदामा के पश्चात् मंगलराज और मंगलराज के पश्चात् कीर्तिराज का राज्य हुआ। कीर्तिराज के राज्य-काल का आरंभ विक्रम संवत् १०४७ के लगभग होगा। कीर्तिराज बड़ा प्रतापी राजा था। इसने मालवा के राजा को परास्त करके उस देश पर अपना अधिकार जमा लिया। पश्चिमी बुंदेलखंड पर भी कछवाहों का अधिकार था। कीर्तिराज के समय में महमूद गज-नवी ने ग्वालियर पर चढ़ाई की थी। कीर्तिराज ने उसकी अधी-नता स्वीकार करके अपने राज्य की रक्षा की।

१०—कीर्तिराज के पश्चात् भुवनपाल राजा हुआ। इसे कोई कोई त्रिलोकपाल और भुवनपाल भी कहते हैं। भुवनपाल बड़ा दानी और धनुर्विद्या-विशारद था। भुवनपाल के पश्चात् देवपाल उपनाम अपराजित और देवपाल के पश्चात् उसका पुत्र पद्मपाल

राजा हुआ। पद्मपाल बड़ा धार्मिक और भक्त राजा था। पद्म-पाल के पश्चात् उसका भतीजा महिपाल राजा हुआ। महिपाल बड़ा दानी राजा था। शिलालेखों से जान पड़ता है कि महिपाल ने जैन और वैष्णव मंदिरों को बहुत सा दान दिया था। वह संवत् ११५० में जीवित था। ग्वालियर के सास-बहू मंदिर में इसके नाम का संवत् ११५० का एक शिलाशेख है। इनकुंड के जैन मंदिर में भी कछवाहों के शिलालेख मिलते हैं। ग्वालियर का सास-बहू का मंदिर वैष्णव मंदिर है। इससे जान पड़ता है कि इस राजा के समय से कछवाहे वैष्णव हो गए थे। महिपाल के पश्चात् त्रिभुवनपाल (उपनाम मनोरथ) राजा हुआ। मनोरथ मथुरा में रहना पसंद करता था और कायस्थों को बहुत चाहता था। ग्वालि-यर गजट में इस मनोरथ को मधुसूदन लिखा है। इसने संवत् ११६१ में ग्वालियर में महादेव का एक मंदिर बनवाया था। मनो-रथ के पश्चात् उसका पुत्र विजयपाल सिंहासन पर बैठा। इसके राजत्व-काल का संवत् ११९० है। विजयपाल के पश्चात् सूरपाल और उसके पश्चात् अनंगपाल का नाम मिलता है। इसका उत्तरा-धिकारी सोलेखपाल था, जिसे संवत् १२५३ में शहाबुद्दीन ने ग्वालि-यर के किले में घेर लिया था किंतु ग्वालियर गजेटियर में लिखा है कि संवत् ११८६ में पड़िहारों ने यह किला कछवाहों से छीन लिया था। इससे प्रकट होता है कि सोलेखपाल पड़िहार होगा। अंत में कुतुबुद्दीन ने इस किले पर अपना अधिकार कर लिया। किंतु यह किला पुनः पड़िहारों के हाथ में आ गया और फिर अलतमश के अधिकार में चला गया। कछवाहों की एक शाखा इनकुंड में बहुत दिनों तक राज्य करती रही। इनके दो शिलालेख मिले हैं, जिनमें युवराज अभिमन्यु, विजयपाल, विक्रमसिंह राजाओं का उल्लेख है।

अध्याय ५

चेदि राज्य

१—प्राचीन समय में बुंदेलखंड के दक्षिण और पूर्व का प्रदेश यादववंशी राजाओं के अधिकार में था। इनकी राजधानी महिष्मती थी। यादव-वंशी प्रसिद्ध पराक्रमी राजा सहस्रार्जुन यहाँ राज्य करता था। यह वही सहस्रार्जुन है जिसने एक बार लंकाधिपति रावण को बाँध रखा था। सहस्रार्जुन की संतान आगे चलकर हैहय वंश के नाम से प्रसिद्ध हुई। महाभारत के समय में हैहयों का राज्य बहुत विस्तीर्ण हो गया था। उस समय महिष्मती में राजा नील राज्य करता था। यह नील कौरवों की ओर से युद्ध में लड़कर मारा गया। महाभारत काल का प्रसिद्ध राजा शिशुपाल भी हैहयवंशी था। वह चेदि देश का राजा था। जान पड़ता है यह चेदि नाम शिशुपाल के पितामह चिदि के नाम से हुआ है। चिदि का पुत्र दमघोष था। दमघोष के पीछे शिशुपाल सिंहासन पर बैठा जो अपने अयोग्य आचरण के कारण श्रीकृष्ण के हाथों मारा गया।

२—पीछे से इन्हीं हैहयवंशी क्षत्रिय राजाओं ने नर्मदा-तटस्थ डाहल मंडल, महाकोशल, कर्णाट आदि पर अपना अधिकार जमाया। इन देशों की राजधानी पहले त्रिपुर और तुमान रही। फिर मध्य-प्रदेश के इन हैहयों की दो शाखाएँ हो गईं। दूसरी शाखा ने नर्मदा के ही किनारे त्रिपुरा को अपनी राजधानी बनाया। यह शाखा इतिहास में चेदि के कलचुरियों के नाम से प्रसिद्ध है। कलचुरियों की यह शाखा कब बनी और ये लोग त्रिपुरी जाकर कब बस गए इसका कुछ निश्चय नहीं। परंतु तेवर में जो सिक्के मिले हैं वे कोई कोई एक हजार वर्ष से अधिक पुराने हैं। तेवर जबलपुर से ६ मील दूर एक छोटा सा गाँव है। प्राचीन पौरंदरी समान

त्रिपुरी थी। किंतु अब यहाँ के निवासी कलचुरियों का नाम भी नहीं जानते।

३—आज तक जितने शिलालेख मिले हैं उनमें इस देश का नाम चेदि ही लिखा है। चेदि का राजवंश कलचुरि वंश के नाम से विख्यात है। कविवर चंद ने राजपूतों की ३६ जातियाँ लिखी हैं। उनमें से एक जाति का नाम कलचर भी है। संभव है कि कलचुरि कलचर का ही बदला हुआ रूप हो। कलचुरि संवत् विक्रम संवत् के ३०५ वर्ष बाद शुरू हुआ। लुइस राइस संगृहीत "मैसूर के शिलालेख" नाम की पुस्तक के २२६ पृष्ठ में लिखा है कि कलचुरि राजा कृष्णराज ने कालिंजर पर अधिकार जमाकर कालिंजरपुरवराधीश्वर की उपाधि धारण की। वह कालिंजरपुर के राजा को मार वहाँ का अधिकारी बन गया। पर कलचुरि राजवंश के राजाओं के शिलालेखों से इस राज्य का जमानेवाला कार्तवीर्य राजा जान पड़ता है। चालुक्य-वंशी राजा मंगल (मंगलीस) के शिलालेख से दो कलचुरि राजाओं का हाल मिलता है। यह शिलालेख वि० सं० ६०८ का जान पड़ता है। इस लेख में लिखा है कि चालुक्य राजा मंगल ने शंकरगण के पुत्र बुद्धराज को हरा दिया। यह बुद्धराज शंकरगण का पुत्र चेदिराज वंश का ही होना चाहिए। चालुक्य राजाओं के दो लेख और भी मिले हैं। इनमें कलचुरि राजाओं से चेदि देश छीनने का हाल है। इसके बाद का हाल नहीं मिलता।

४—कलचुरि राजाओं की लगातार वंशावली कोकल्लदेव राजा के समय से मिलती है। इन राजाओं के नाम के शिलालेख बिलहरी और बनारस में मिले हैं। बनारस के लेख से ज्ञात होता है कि कोकल्लदेव ने नंदादेवी चंदेल कन्या से विवाह किया। बनारस तथा बिलहरी दोनों शिलालेखों में कन्नौज के राजा भोजदेव के साथ

के युद्ध का वर्णन है[1]। इस समय कन्नौज में भोजदेव राजा राज्य करता था। भोजदेव का राज्य-काल लगभग विक्रम संवत् ९१९ से ९६० तक रहा होगा, क्योंकि भोजदेव का सब से पहला शिलालेख देवगढ़[2] के किले पर खुदा है और उसमें विक्रम संवत् ९१९ दिया है। भोजदेव के और भी लेख ग्वालियर और पहेवा में मिले हैं। बनारस के ताम्र-लेख में भोजदेव के पुत्र महेंद्रपाल-देव का भी नाम आया है। इन लेखों से कोकल्लदेव का राज्य-काल और उसके समकालीन राजाओं का हाल ज्ञात होता है। बिलहरी के लेख में एक युद्ध का वर्णन और भी है। वह युद्ध कोकल्लदेव ने दक्षिण के कृष्णराज से किया था। यह कृष्णराज राष्ट्रकूट वंश का था। इसने कोकल्लदेव की लड़की महादेवी के साथ ब्याह किया था। इन सब राजाओं के वर्णन से जान पड़ता है कि कोकल्लदेव का राज्य-काल विक्रम संवत् ९१९ से ९६० तक रहा होगा। कोकल्लदेव के राज्य का विस्तार भी बनारस तक चला गया होगा, क्योंकि इसका एक शिलालेख वहाँ भी मिला है। इस राजवंश का सबसे बड़ा प्रतापी राजा यही था।

५—कोकल्लदेव के पुत्र का नाम मुग्धतुंग था। कोकल्लदेव के पश्चात् यह राजगद्दी पर बैठा। इसका नाम भी बिलहरी के शिला-लेख में है। उसमें लिखा है—जब वह दिग्विजय को निकला तब वह कौन सा देश है जिसको उसने नहीं जीता? उसका चित्त मलय की ओर खिंचा, क्योंकि समुद्र की तरंगें वहाँ अपनी कला दिख-लाती हैं, वहाँ केरल की युवतियाँ क्रीड़ा करती हैं, वहाँ भुजंग चंदन

---

(१) Alexander Cunningham: Archæological Survey of India. Tour in the Central Provinces, Vol. IX, Page 82.

(२) यह झाँसी जिले में ललितपुर के पास है।

के वृक्षों की सुगंध लूटते हैं। इसके समय में इसके राज्य का कुछ भाग कृष्ण परमार के हाथ में चला गया। इस समय मालवा में परमार लोगों का राज्य था। कृष्णराज इसी परमार वंश का था। भिलसा जिले में मिले हुए एक लेख से ज्ञात होता है कि राजा कृष्ण के मंत्री कौंडिन्य वाचस्पति ने दो नगर चेदिराज से जीत लिए। परमारवंश का राजा कृष्ण मुग्धतुंग के समय में ही था।

६—मुग्धतुंग के पश्चात् उसका पुत्र बालहर्ष राजा हुआ, किंतु वह शीघ्र मर गया। उसके बाद उसका भाई केयूरवर्ष सिंहासन पर बैठा। इसका वर्णन भी बिलहरी के लेख में है। इसकी रानी का नाम नोहला था। यह चालुक्य वंश की थी। इस रानी ने शिव का एक मंदिर बनवाया था और उसके खर्च के लिये सात गाँव दिए थे। इन गाँवों में से पोंड़ी नामक गाँव अभी तक इस मंदिर के लिये लगा हुआ है। केयूरवर्ष भी बड़ा दानी राजा था। इसने एक मठ के लिये तीन लाख गाँव लगा दिए। यह मठ गोलकी मठ कहलाता है। तेवर के निकट नर्मदा के किनारे एक मठ है। पुरातत्त्वविद इसी को गोलकी मठ कहते हैं। केयूरवर्ष का राज्य विक्रम संवत् ९८० से १००० तक रहा होगा। केयूरवर्ष का दूसरा नाम युवराज लिखा है। इसकी लड़की कंदका देवी का विवाह राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष के साथ हुआ था।

७—युवराज के पश्चात् लक्ष्मणदेव नाम का राजा सिंहासनारूढ़ हुआ। बिलहरी के लेख से जान पड़ता है कि लक्ष्मण केयूरवर्ष का पुत्र था और वह केयूरवर्ष के बाद ही राजगद्दी पर बैठा। लक्ष्मणदेव ने कोशल राज्य को जीत लिया और उड़ीसा राज्य पर आक्रमण करके वहाँ से कालिया नाग लाकर शिवजी के मंदिर सोमनाथ (सौराष्ट्र) में चढ़ा दिया। नोहला रानी के बनवाए मंदिर के प्रबंध के लिये इसने हृदयशिव नाम के एक पुजारी को

नियत किया। विलहरी के निकट एक तालाव लक्ष्मण-सागर नाम का है जो इसी राजा का बनवाया कहा जाता है। चालुक्य देश के एक लेख से मालूम होता है कि वहाँ के राजा विक्रमादित्य ने चेदि देश के राजा लक्ष्मण की पुत्री से विवाह किया था। आस-पास के समकालीन राजाओं का विचार करके अनुमान किया जाता है कि लक्ष्मणदेव का राज्य-काल विक्रम संवत् १००० से १०२५ तक रहा होगा।

८—बनारस और बिलहरी के लेखों से ज्ञात होता है कि लक्ष्मण के दो पुत्र थे। इनमें बड़े का नाम शंकरगण और छोटे का युवराज था। विलहरी का लेख युवराज के समय का ही है। इससे इसमें युवराज के समय तक का ही हाल है। यह लेख विलहरी के नोहला रानी के मंदिर से मिला है और इसमें मंदि के पुजारियों का भी हाल दिया है। यह लेख अब नागपुर के अजायबघर में है।

९—बनारस के लेख से जान पड़ता है कि लक्ष्मण के पश्चात् युवराज राजा हुआ। भिलसा के समीप उदयपुर नामक स्थान में मालवा के परमार राजा भोज का एक शिलालेख मिला है। मालवा में परमार राजाओं का राज्य था। कृष्ण परमार का वर्णन ऊपर हो चुका है। भोज परमार इसी कृष्ण परमार के वंश का था। भोज परमार के काका का नाम वाक्पति था। भोज के पहले भोज का काका वाक्पति परमार (मुंज) मालवा में राज्य करता था। उदयपुर के शिलालेख में लिखा है कि वाक्पति ने युवराज को हराकर त्रिपुर ले लिया। इससे जान पड़ता है कि वाक्पति और युवराज सम-कालीन थे। त्रिपुर परमारों के पास नहीं गया, परंतु युद्ध अवश्य हुआ। युवराज का राज्यकाल विक्रम संवत् १०२५ से १०५० तक रहा। मुंज संवत् १०३१ में राजगद्दी पर बैठा था, ऐसा उज्जैन के शिलालेख से पता लगता है।

१०—युवराज के मरने पर उसका पुत्र कोकल्लदेव (दूसरा) गद्दी पर बैठा। कोकल्लदेव बड़ा पराक्रमी था। इसने अपने राज्य को बढ़ाया था।

११—कोकल्लदेव (दूसरे) के पश्चात् उसका पुत्र प्रसिद्ध गांगेयदेव अपने पिता की राजगद्दी पर बैठा। यह बड़ा प्रभावशाली राजा था। इसके नाम का एक ताम्रलेख जबलपुर के निकट कुम्हीं नामक स्थान में मिला है। उस ताम्रलेख में गांगेयदेव के विषय में यह लिखा है कि गांगेयदेव प्रयाग के निकट अक्षयवट के नीचे मरे और उनके पश्चात् उनकी १५० रानियाँ सती हो गई[1]। इस राजा का युद्ध कन्नौज के राठौर राजाओं से हुआ था। कहा जाता है कि कन्नौज के राठौर राजाओं ने गांगेयदेव को प्रयाग में बंदी बना लिया था और यहीं उनका देहांत हुआ। परंतु यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण भी नहीं मिला है। गांगेयदेव ने सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के चलाए थे जिन पर एक ओर दुर्गादेवी की मूर्ति और दूसरी ओर श्रीमान् गांगेयदेव का नाम है। इससे परमार राजा भोज से युद्ध हुआ था जिसमें भोज की जीत हुई थी।

१२—गांगेयदेव के पश्चात् उसका लड़का कर्णदेव गद्दी पर बैठा। कर्णदेव अपने बाप से भी अधिक प्रतापी निकला। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ काशीप्रसाद जायसवाल उसे भारतीय नेपोलियन कहते हैं। उसने भारतवर्ष के सभी राज्यों पर आक्रमण किया और उन्हें अपने अधिकार में कर लिया। पांड्य, थोड़, पुरल, कीर, कुंग, बंग, कलिंग, गुर्जर, हूना आदि सभी ने कर्ण के सामने अपना माथा नवाया। रासमाला में लिखा है कि १३६ राजा उसके चरणकमल

---

(१) A. Cunningham: Archæological Survey of India. Tour in the Central Provinces, Vol. IX, page 87.

की पूजा करते थे। कर्ण ने राज्य पाते ही दस बारह वर्ष के भीतर सारे भारतवर्ष में अपना सिक्का जमा लिया था। वह राजा इतना प्रतापी हो गया है कि कर्ण डहरिया अर्थात् 'डाहल का कर्ण' के नाम से अब कहावतों में प्रसिद्ध है। डाहल मंडल कर्ण का पैतृक देश था। इसके समय में त्रिपुरी समस्त भारतीय शक्ति का केंद्र बन गई थी और कलचुरि वंश की कीर्त्ति सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई थी। इसके समय का एक ताम्रलेख बनारस में मिला है। कर्ण-देव के समय में मालवा में भोज परमार और चालुक्य देश में भीम-राज का राज्य था। कर्ण ने भोज परमार को हराया था और उसके राज्य पर चढ़ाई की थी। जबलपुर के ताम्रलेख से जाना जाता है कि कर्णदेव ने आंध्र के राजा भीमेश्वर को हराया। भीमेश्वर चालुक्य देश का भीम राजा ही है। कुम्हीं के ताम्रलेख से ज्ञात होता है कि कर्णदेव ने कर्णावती नामक नगर बसाया था। यह कर्णा-वती आजकल का कारीतलाई स्थान है या करनबेल, इसमें मतभेद है। कारीतलाई में कई मंदिर हैं और उसके स्थान को कर्णपुर कहते हैं। यहाँ के मंदिर राजा कर्ण के बनवाए कहे जाते हैं। कर्ण का युद्ध चंदेलराज कीर्तिवर्मा से हुआ था। इस युद्ध में चंदेलराज कीर्तिवर्मा ने कर्णदेव को हरा दिया था। उसका उल्लेख कीर्तिवर्मा के समय में रचित प्रबोधचंद्रोदय नाटक में है। कालिंजर के शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि चंदेल राजा ने कर्णदेव को हराकर दक्षिण का प्रदेश जीता था। मऊ के एक लेख में इस कीर्तिवर्मा की विजय का हाल है। इन लेखों का वर्णन चंदेल राजाओं के वर्णन के समय किया जायगा। अभी केवल इतना ही कहना है कि चंदेलराज कीर्तिवर्मा और चेदिराज कर्णदेव समकालीन थे। कर्ण का कितना प्रदेश कीर्तिवर्मा ने ले लिया था यह निश्चय रूप से नहीं कह सकते। कर्णदेव का राज्यकाल विक्रम

संवत् ११०० से ११२५ तक रहा होगा। ऐसा भी पता लगता है कि इसने गुजरात के चालुक्य राजा भीम की सहायता से धार के परमार राजा भोज के साथ युद्ध किया था और उसकी मृत्यु के पश्चात् इन दोनों ने दुबारा धार नगरी पर आक्रमण किया था। इस समय भोज का उत्तराधिकारी जयसिंह था। यह इस युद्ध में मारा गया। पीछे से संधि हो गई। इसका विवाह चेदि राजवंश में हुआ था।

१३—कर्णदेव के पश्चात् उसका पुत्र यश:कर्ण राजा हुआ। इसके समय से कलचुरी वंश का ह्रास होने लगा। इसके नाम का कोई लेख चेदि देश में नहीं मिला। पर इसका नाम राठौर वंश के एक ताम्रपत्र में आया है। इसमें लिखा है कि यश:कर्ण ने रुद्रशिव को एक ग्राम दिया था। यह गाँव रुद्रशिव ने कन्नौज के राजा गोविंद-चंद्र के सामने एक दूसरे व्यक्ति को दे दिया था। इससे इसके राज्यकाल का पता लगता है। अनुमान से इसका राजत्व-काल विक्रम संवत् ११२५ से ११५० तक जान पड़ता है। इससे और परमार राजा उदयादित्य के ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मणदेव से युद्ध हुआ था। इसके छोटे भाई का नाम नरवर्म्मा था।

१४—यश:कर्ण का पुत्र गयाकर्ण था जो यश:कर्ण के पश्चात् राजगद्दी पर बैठा। इसके राजत्व-काल में इसका पुत्र नरसिंहदेव युवराज था। जबलपुर के ताम्रलेख में इसका नाम आया है। गयाकर्ण का विवाह मालवा के राजा उदयादित्य की नातिन अलहन-देवी से हुआ था। इसकी माता का नाम श्यामलादेवी था। यह मेवाड़ के गुहिल राजा विजयसिंह की कन्या थी।

१५—गयाकर्ण के पश्चात् उसका लड़का नरसिंहदेव गद्दी पर बैठा। इसके राज्यकाल में इसका छोटा भाई जयसिंहदेव राज्य का बहुत सा कार्य किया करता था। कुम्हीं के ताम्रपत्र में जयसिंह-

देव के अभिषेक का वर्णन है जिससे जान पड़ता है कि नरसिंहदेव के पश्चात् उसका भाई जयसिंहदेव गद्दी पर बैठा था।

१६—जयसिंह का पुत्र विजयसिंह था जो जयसिंह के पश्चात् राजा हुआ। इसकी स्त्री का नाम गोशलदेवी था, जैसा कि एक शिलालेख से जान पड़ता है। इसका एक शिलालेख चेदि संवत् ९३२ का मिला है। इसके लड़के का नाम अजयसिंह था, यह भी शिलालेखों में आया है। चेदि संवत् ९३२ (विक्रम संवत् १२३८) के पश्चात् कोई लेख इन राजाओं के नहीं मिलते।

१७—मालवा के राजाओं के आक्रमण चेदि देश पर बहुत पहले से ही आरंभ हो गए थे। उत्तर में भी चंदेलों की शक्ति बढ़ गई थी और खजुराहो तथा कालिंजर पर इनका अधिकार हो गया था। अंत में इन लोगों ने कलचुरि राजवंश का नाश करके अपना आधिपत्य सारे बुंदेलखंड पर जमा लिया। पूर्व में बघेले आगे बढ़े और उन्होंने चेदि देश का शेष भाग अपने अधिकार में कर लिया। अब केवल हैहयवंशी राजपूत रह गए हैं जिनके वंशज जबलपुर और नरसिंहपुर जिले में पाए जाते हैं। किस प्रकार चेदि देश का भाग धीरे धीरे चंदेलों के हाथ में आया, इसका वर्णन आगे के चंदेल राजवंश के वर्णन के साथ किया जायगा। परंतु यहाँ पर इतना कह देना आवश्यक है कि कलचुरियों का राज्य दमोह के पश्चिम और कालिंजर के उत्तर को नहीं बढ़ा। सागर जिले में कलचुरियों का राज्य नहीं रहा। यह पहले मालवा प्रांत का भाग समझा जाता था। धार के परमार राजाओं के अधिकार में सागर बहुत दिनों तक रहा। राहतगढ़ धार के राजाओं के समय में एक मुख्य स्थान था। धार के राज्य में यह विक्रम संवत् की चौदहवीं शताब्दी तक रहा।

शिलालेखों से तथा अन्य लेखों से चेदि देश के राजाओं का जो पता चला है उनके नाम और संवत् नीचे दिए जाते हैं।

कलचुरि राजाओं के नाम

चेदि सं०	विक्रम सं०	राजाओं के नाम
०	३०६	चेदि या कलचुरि संवत् का आरंभ
१	३०७	
		काकवर्ण (चेदि का राजा, इसे शिशुपाल के वंशजों ने मारा।)
२७१	५५७	शंकरगण (चेदि का राजा)
३०१	६०७	बुद्ध (चेदि का राजा। इसका लड़का मंगल चालुक्य से हारा।)
४३१	७३७	हैहय(जिसको विनयादित्य चालुक्य ने हराया।)
४८१	७८७	हैहय (की राजकुमारी लोक महादेवी का विवाह विक्रमादित्य (दूसरा) चालुक्य के साथ हुआ।)
६२६	९३२	कोकल्ल (पहला) (कन्नौज के राजा भोज का समकालीन)
६५१	९५७	मुग्धतुंग
६७६	९८२	युवराज
७०१	१००७	लक्ष्मण ने बिलहरी में लक्ष्मणसागर नामक तालाब बनाया।
७२६	१०३२	युवराज (वाक्पति का समकालीन)
७५१	१०५७	कोकल्ल (दूसरा) गंडदेव का समकालीन
७७१	१०७७	गांगेयदेव
७९१	१०९७	कर्णदेव (भोज का समकालीन)
८३१	११३७	यशःकर्ण
८६६	११७२	गयाकर्ण

चेदि सं०	विक्रम सं०	राजाओं के नाम
९०२	१२०८	नरसिंहदेव
९३०	१२३६	जयसिंहदेव (भाई)
९३२	१२३८	विजयसिंहदेव

अध्याय ६

चंदेलों का राज्य (परमाल के समय तक)

१—हर्षवर्धन के साम्राज्य के नष्ट होने के पश्चात् बुंदेलखंड के उत्तरीय भाग में ब्राह्मण राजवंश का राज्य बहुत दिनों तक रहा। इस राजवंश का पूरा वर्णन कहीं नहीं मिलता। बहुत दिनों के पश्चात्, जब कि चेदि देश में कोकल्लदेव (पहले) का राज्य था, उत्तर बुंदेलखंड में चंदेलों का राज्य और मालवा में परमारों का राज्य पाया जाता है। इस समय में नरवर (ग्वालियर) में कछवाहा राजपूत लोग और कन्नौज में भोजदेव और फिर उसके वंशजों का राज्य था। चंदेलों के पहले बुंदेलखंड में पड़िहार लोगों का राज्य था। ये लोग बहुत दूर के गुर्जर लोगों की एक शाखा थे और परमार लोग, जो मालवा में राज्य करते थे, गुर्जर लोगों की दूसरी शाखा के थे। इन राजघरानों का बहुत सा हाल अब पुस्तकाकार निकल चुका है।

२—जो देश चंदेल लोगों के अधिकार में रहा वह धसान नदी के पूर्व में और विन्ध्याचल पर्वत के उत्तर और पश्चिम में था। उत्तर में वह यमुना नदी तक और दक्षिण में केन नदी के उद्गम-स्थान तक फैला हुआ था। केन नदी इस देश के बीच में से

बहती है और महोबा तथा खजुराहो इसके पश्चिम में और कालिंजर तथा अजयगढ़ इसके पूर्व में हैं। इस प्रदेश में आज-कल के बाँदा और हमीरपुर जिले तथा चरखारी, छत्रपुर, बिजावर, जैतपुर, अजयगढ़ और पन्ना की रियासतें हैं। चंदेल राजाओं ने अपनी उन्नति के दिनों में इस प्रांत की सीमा पश्चिम में बेतवा नदी तक बढ़ा ली थी।

३—कहा जाता है कि चंदेल लोगों का वंश चंद्रमा से चला है। चंद्रमा ने काशी के गहरवार राजा के पुरोहित की कन्या हेमवती से एक पुत्र उत्पन्न किया जिसने महोबा में अपना राज्य जमाया। इस चंद्रमा के पुत्र का नाम चंद्रवर्मा था। इस कथा की सत्यता जाँचने के लिये कोई ऐतिहासिक साधन नहीं है। केवल राजा धंगदेव का एक शिलालेख मिला है। इस लेख में चंदेल वंश का चलानेवाला नन्नुक नाम का एक पुरुष बताया गया है। पर कथानकों में चंदेल वंश के आदिपुरुष चंद्रात्रेय का भी उल्लेख आता है। चंदेलों के प्रांत का नाम (जयशक्ति) जेजा के नाम पर से जेजाभुक्ति या जेजाकभुक्ति पड़ा था। कुछ लोगों का यह भी कथन है कि वैदिक काल में यजुर्वेदीय कर्मकांड का पहले पहल यहीं अभ्युदय होने के कारण यह प्रदेश यजुर्होति कहलाया जिससे बिगड़कर जेजाभुक्ति बना। पूर्व में इसे जुझौति या जुझौती भी कहते थे। जेजा (जयशक्ति) वाक्पति का ज्येष्ठ पुत्र है। इसके छोटे भाई का नाम विजयशक्ति था।

शिलालेखों में चंदेल राजा नानुकदेव के पहले के राजाओं का कोई वर्णन नहीं मिलता। चंदेल वंश के जिन राजाओं का हाल मिला है उनके नाम और संवत् नीचे दिए जाते हैं—

विक्रम संवत्	राजाओं के नाम
८५७	नानुकदेव
८८२	वाक्पति

विक्रम संवत्	राजाओं के नाम
...	विजय
...	राहिल
...	हर्षदेव
९८२	यशोवर्मादेव
१०१०	धांगादेव
१०५६	गंडदेव
१०८२	विद्याधरदेव
१०९७	विजयपालदेव
११०७	देववर्मादेव
११२०	कीर्तिवर्मादेव
११५५	हल्लक्षणवर्मादेव (पहला)
११६७	जयवर्मादेव
११७७	हल्लक्षणवर्मादेव (दूसरा)
११७९	पृथ्वीवर्मादेव
११८६	मदनवर्मादेव
१२८२	परमर्द्दिदेव
१२५९	त्रैलोक्यवर्मादेव
१२९७	वीरवर्मा (पहला)
१३०९	भोजवर्मा
१३५७	वीरवर्मा (दूसरा)
१३८७	शशांक भूप
१४०३	भिलमादेव
१४४७	परमर्दि
... ...	... ...
... ...	... ...

विक्रम संवत्	राजाओं के नाम
... ...	... ...
... ..	... ...
१५७७	कीरतसिंह
... ...	... ...
... ...	... ...

४—नन्नुक, वाक्पति और विजयशक्ति इन तीन राजाओं के समय का कोई हाल नहीं मिलता, केवल नाम ही नाम मिलते हैं। अवश्य नन्नुक के विषय में लिखा है कि इसने पड़िहारों को मऊ के युद्ध में परास्त किया था, जिससे कुछ तो दशार्ण (धसान) नदी के पश्चिम की ओर चले गए और कुछ दक्षिण की ओर आए। जो लोग दक्षिण की ओर आए उन लोगों ने प्राचीन तेली राजा को परास्त कर अपना राज्य जमाया और उचेहरा राजधानी नियत की। इसी युद्ध से चंदेलों के राज्य की नींव पड़ी।

५—विजय के बाद इस वंश में राहिल नामक राजा हुआ। इसने रोहिला नाम का एक गाँव बसाया और वहाँ एक सुंदर मंदिर बनवाया। मंदिर तो टूट-फूट गया है पर गाँव महोबा से दो मील की दूरी पर अब तक बसा हुआ है।

६—हर्ष राहिल का लड़का और उत्तराधिकारी था। इसके विषय में इतना पता लगता है कि इसने कन्नौज के तत्कालीन राजा क्षितिपाल (महिपाल) पर चढ़ाई की थी। पर जब उसने अधीनता स्वीकार कर ली तब यह वहाँ से वापस चला आया। इसके दो रानियाँ थीं, एक का नाम कनेशुका और दूसरी का कच्छपा था। इसके लड़के का नाम यशोवर्म्मदेव था। यही हर्ष के पश्चात् राजा हुआ।

७—यशोवर्म्मदेव के दो विवाह हुए थे। इसकी एक रानी का नाम नर्म्मदेवी और दूसरी का नाम पुष्पा था। यह बड़ी ही सुलक्षणा

और धर्मनिष्ठ थी। इसके पातिव्रत की ख्याति दूर दूर तक फैल गई थी। खजुराहो के शिलालेख में यशोवर्म्मदेव के राज्य का वर्णन इस प्रकार लिखा है कि इसने अपने बाहुबल से गौड़, खस, कोशल, काश्मीर, कन्नौज, मालवा, चेदि, कुरु, गुर्जर इत्यादि देशों को जीत कालिंजर के कलचुरियों को परास्त किया और उनसे कालिंजर ले लिया। यह कन्नौज के राजा को परास्त कर उसके यहाँ से विष्णु की प्रतिमा ले आया।

८—यशोवर्म्मदेव के पश्चात् उसका लड़का धंगदेव राजगद्दी पर बैठा। इसने शिवजी का एक बड़ा मंदिर बनवाया था। ऐसा कहते हैं कि यह १०० वर्ष तक जीता रहा और अंत समय में इसने प्रयागराज में त्रिवेणी संगम पर प्राण छोड़े थे। खजुराहो के शिलालेख में इसकी इस मृत्यु का वृत्तांत है। यह लेख वि० सं० १०५६ का है। इससे जान पड़ता है कि यह इसी वर्ष परलोक को सिधारा होगा। एक ताम्रलेख भी इसी साल का इसके हाथ का मिला है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह १०५५ में जीवित था। चंदेलवंश का यह बड़ा प्रतापी राजा था। इसने आस-पास के प्रदेशों के राजाओं को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। इतना ही नहीं, वरन् इसकी ख्याति दूर दूर तक फैल गई थी। इसी से जब गजनी के मुसलमान बादशाह सुबुक्तगीन ने भटिंडा के राजा जयपाल पर चढ़ाई की तब उसने भारतवर्ष के अनेक क्षत्रिय राजाओं को अपनी सहायता के लिये बुलवाया था। उस समय धंगदेव भी अपनी विशाल सेना लेकर सहायता के लिये पहुँचा था।

९—खजुराहो के चतुर्भुज के मंदिर में एक और भी शिलालेख इसके समय का मिला है। यह वि०सं० १०११ में उत्कीर्ण हुआ था। इसमें चंदेल राजाओं की वंशावली नन्नुकदेव से दी हुई है। राजा

धंगदेव के समय चंदेलों के राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया था। इसकी उत्तरीय सीमा यमुना तक पहुँच गई थी। पूर्व में काशी, पश्चिम में बेतवा और दक्षिण सीमा केन नदी के उद्गम के पास थी। इस तरह से यह प्रदेश १२० मील लंबा और १०० मील चौड़ा हो गया था। यह राजा बड़ा ही दानी, प्रतापी, विवेकी, कला-कौशल-निपुण और बुद्धिमान् था। यह धार्म्मिक और भगवद्भक्त भी कम न था। इसने कई मंदिर बनवाए थे। उनमें से एक शिवमंदिर अब भी मौजूद है।

१०—गंडदेव धंगदेव का पुत्र और उत्तराधिकारी था। यह अपने पिता के मरने पर गद्दी पर बैठा। यह भी अपने पिता के समान पराक्रमी था। इसने कन्नौज पर इसलिये चढ़ाई की थी कि कन्नौज के राजा ने महमूद गजनवी की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इसकी चढ़ाई वि० सं० १०७७ में हुई थी। इस बार वह कन्नौज पर अधिकार कर वापस चला गया था। इस समय कन्नौज में राठौर वंशी राजा महेंद्रपाल राज्य करता था। (किसी किसी इतिहासज्ञ ने इस वंश को गुर्जर लिखा है)।

११—गंड चंदेल ने कन्नौज प चढ़ाई करके राजा महेंद्रपाल को अपने अधीन क लिया, यह खबर सुनते ही महमूद गजनवी ने विक्रम संवत् १०७८ में दुबारा चढ़ाई की। इस बा वह सीधा कालिंजर की ओर आया। इस समय चंदेल राजा गंड ने बड़ी वीरता से उसका सामना किया। यह ३६००० पैदल, ४५००० सवा और ६४० हाथियों का हलका लेकर गजनवी का आक्रमण रोकने के लिये आया था। इसके विरोध के कारण महमूद गजनवी आगे न बढ़ सका और उसे लौट जाना पड़ा।

१२—कन्नौज की चढ़ाई और महमूद गजनवी का युद्ध चंदेल राज्य की शक्ति का परिचय देते हैं। इसने कन्नौज के तत्कालीन

राजा महेंद्रपाल के पुत्र जयपाल पर चढ़ाई करने के लिये अपने पुत्र विद्याधर को भेजा था। इसके समय में कलचुरि राजा युवराज (माहत) के पुत्र और जयदेव के भाई कोकल्लदेव दूसरे ने चढ़ाई की थी। खजुराहो में विश्वनाथ के मंदिर में एक शिलालेख मिला है। यह लेख गंडदेव के राजत्व-काल का है। इसमें मंदिर के निर्माण-कर्ता धंगदेव का नाम और वि० सं० १०५६ लिखा है। इसमें यह भी लिखा है कि गंडदेव गद्दी पर बैठा, जिससे यह निर्विवाद रूप से पाया जाता है कि धंगदेव के पश्चात् ही वि० सं० १०५६ में गंडदेव गद्दी पर बैठा था।

१३—गंडदेव के पश्चात् विद्याधरदेव राजा हुआ। इससे और कन्नौज के तत्कालीन राजा त्रिलोचनपाल से बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा। राजा भोजदेव भी समय समय पर इसकी प्रशंसा किया करता था। विद्याधर के पश्चात् विजयपाल राजा हुआ। पर इसके विषय में कोई उल्लेखनीय बात नहीं मिलती।

१४—विजयपाल का पुत्र देववर्म्मा था जो अपने पिता के पश्चात् राजगद्दी पर बैठा। ननयौरा में विक्रम संवत् ११०७ का एक ताम्रलेख मिला है। इसमें देववर्म्मा का विरुद कालिंजराधिपति लिखा है। इसमें इसकी माँ का नाम भुवनादेवी लिखा है। जिननाथ-देव के एक जैन मंदिर में जो देववर्म्मा के प्रपितामह के समय में बना था देववर्म्मा के समय में एक शिलालेख लगाया गया था। इस लेख में देववर्म्मा और उसके पूर्वजों के नाम लिखे हैं। यह मंदिर खजुराहो में है।

१५—देववर्म्मा के पश्चात् उसका भाई कीर्तिवर्मा राजा हुआ। कीर्तिवर्मा का राज्य बहुत दिनों तक रहा। उसका एक लेख देव-गढ़ में विक्रम संवत् ११५४ का है। महोबा के पास का कीरत-सागर नामक तालाब इसी का बनवाया हुआ है। इसके नाम के

सोने के सिक्के भी मिले हैं जिन पर इसका नाम श्रीमत् कीर्तिवर्म्म-देव लिखा है। देवगढ़* में इसका शिलालेख मिलने से ज्ञात होता है कि इसका राज्य देवगढ़ तक पहुँच गया था और ललितपुर और सागर इसके राज्य में था। ये जिले चंदेल राज्य में कब आए, इसका ठीक हाल नहीं मालूम होता। कीर्तिवर्म्मा का समकालीन मालवा का राजा भोज परमार था। इसके समय में गुजरात में भीमदेव

---

* देवगढ़ का लेख इस प्रकार है—

ॐ नमः शिवाय।

चांदेल्लवंशकुमुदेन्दु विशालकीर्तिः
ख्यातो बभूव नृपसंघनतांघ्रिपद्मः।
विद्याधरो नरपतिः कमलानिवासो
जातस्ततो विजयपालनृपो नृपेन्द्रः॥

तस्माद्धर्मपर श्रीमान् कीर्तिवर्मनृपोऽभवत्।
यस्य कीर्तिसुधाशुभ्र त्रिलोक्यं सौधतामगात्॥
अगदं नूतनं विष्णुमाविर्भूतमवाप्य यम्।
नृपाब्धि तस्समाकृष्टा श्रीरस्थैर्यममार्जयत्॥

राजोडुमध्यगतचन्द्रनिभस्य यस्य
नूनं युधिष्ठिर सदाशिव रामचंद्राः।
एते प्रसन्न गुणरत्ननिधौ निविष्टा
यत्तद्गुणमकररत्नमये शरीरे॥

तदीयामात्य मन्त्रीन्द्रो रमणीपुरविनिर्गतः।
वत्सराजेति विख्यात श्रीमान्महीधरात्मजः॥

ख्यातो बभूव किल मन्त्रपदैकमात्रे
वाचस्पतिस्तदिह मन्त्रगुणैरुभाभ्याम्।
यो यं समस्तमपि मण्डलमाशु शत्रो-
राच्छिद्य कीर्तिगिरिदुर्गमिदं व्यधत्त॥

श्री वत्सराजवट्टोयं नूनं तेनात्र कारितः।
ब्रह्माण्डमुज्वलं कीर्तिं आरोहयतुमात्मनः॥

संवत् ११५४ चैत्र वदि २ बुधौ।

और कन्नौज में राठौर लोगों का राज्य था। चेदि देश में इस समय कलचुरि राजा कर्णदेव राज्य करता था। कलचुरि राजा कर्णदेव को कीर्तिवर्म्मा ने हरा दिया था। इस विजय से कीर्तिवर्म्मा को इतना आनंद हुआ कि उसने विजय के ऊपर एक नाटक प्रबोधचंद्रोदय नाम का बनवाया। यह नाटक वेदांत से भरा हुआ है, परंतु इसमें कर्ण की हार और कीर्तिवर्म्मा की जीत बताई गई है।

१६—देवगढ़ ललितपुर के निकट बेतवा के किनारे है। यहाँ पर एक मंदिर के स्तंभ पर संवत् ९१९ का लिखा राजा भोज के नाम का शिलालेख है। यह राजा भोज कन्नौज का राजा था। इससे जान पड़ता है कि संवत् ९१९ में देवगढ़ कन्नौज के राजाओं के अधिकार में था। सागर और ललितपुर भी इस समय में कन्नौज के राज्य के भीतर रहे होंगे। यहाँ पर दूसरा लेख एक शिला पर मिला है। यह लेख विक्रम संवत् ११५४ का लिखा कीर्तिवर्म्मा चंदेल के समय का है। इस लेख का लिखनेवाला वत्सराजा कीर्तिवर्म्मा का मंत्री था। वत्सराज का नाम यहाँ पर महीधर लिखा है, परंतु मऊ के लेख में उसका नाम अनंत लिखा है। अनुमान किया जाता है कि उसका नाम अनंत और विरुद महीधर था। खजुराहो में लक्ष्मीनाथ के मंदिर का एक लेख, जिसमें विक्रम संवत् ११६१ दिया है, कीर्तिवर्म्मा के ही समय का है। सागर और दमोह कीर्तिवर्म्मा के राज्य में कन्नौज के राज्य से ही आए होंगे।

१७—कीर्तिवर्म्मा के समय का एक लेख महोबा में मिला है। यह पीर मोहम्मद की दरगाह की दीवार में लगे हुए एक पत्थर पर था। अब यह पत्थर इलाहाबाद के अजायबघर में है। इस लेख में चंदेल राजाओं की वंशावली धंगदेव से कीर्तिवर्म्मा तक दी हुई है। इसमें चेदि देश के कलचुरि राजा गांगेयदेव का नाम भी आया है। इस लेख में देश का नाम जेजाभुक्ति नहीं लिखा, बल्कि ऐसा

लिखा है कि जिस प्रकार पृथु से पृथ्वी कहलाती है उसी प्रकार जेजा से जेजाभुक्ति कहाई। जेजाभुक्ति नाम राजा पृथ्वीराज चौहान ने अपने मदनपुरवाले वि० सं० १२३९ के शिलालेख में भी लिखवाया है। कीर्तिवर्म्मा का एक शिलालेख अजयगढ़ में भी मिला है। इसकी राजधानी खजुराहो में थी।

१८—कीर्तिवर्म्मा के पश्चात् उसका लड़का हलक्षण राज्यगद्दी पर बैठा। हलक्षण को कहीं कहीं पर सलक्षण भी कहा है। इसके नाम के सोने और ताँबे के सिक्के मिले हैं जिन पर इसका नाम हलक्षण लिखा है। इसने अंतर्वेद में एक बड़ा युद्ध किया था और उसमें विजय पाई थी। इस युद्ध का पूरा हाल नहीं मिलता।

१९—जयवर्म्मदेव हलक्षण के पश्चात् राजगद्दी पर बैठा। इसके नाम के ताँबे के सिक्के मिले हैं। ये सिक्के इँगलैंड के अजायब-घर में अँगरेजों ने रखे हैं। जयवर्म्मदेव ने खजुराहो में धंगदेव के बनवाए शिवमंदिर में जो शिलालेख था उसे सुधरवाया। धंगदेव के समय का शिलालेख कीर्णाक्षरों में था। इस लेख को जयवर्म्मा ने अपने मंत्री के द्वारा अच्छे अक्षरों में लिखवाया। जयवर्म्मा का मंत्री गौड़ कायस्थ था। मंत्री की असीम विद्वत्ता का भी वर्णन इस शिलालेख में मिलता है। यह लेख विक्रम संवत् ११७३ का है। इससे और कन्नौज के पड़िहार राजा भीमपाल के बेटे शुक्र-पाल से युद्ध हुआ था। इस युद्ध में शुक्रपाल की जीत हुई थी। अजयगढ़ के शिलालेख से ऐसा भी पता लगता है कि इससे और चेदि राजा यश:कर्णदेव तथा मालवाधिपति लक्ष्मणदेव से भी युद्ध हुआ, पर इनमें जीत जयवर्म्मा की ही हुई थी।

२०—जयवर्म्मा के पश्चात् उसका छोटा भाई हलक्षण दूसरा (या सलक्षण दूसरा) राजा हुआ। इसने लगभग दो वर्ष ही राज्य किया। इसके राज्य में कोई उल्लेखयोग्य घटना नहीं हुई।

२१—हल्लक्षण दूसरे के पश्चात् पृथ्वीवर्म्मदेव राजा हुआ। इसके समय के कुछ ताँबे के सिक्के भी मिले हैं। इसने कन्नौज के परिहार राजाओं से मैत्री कर ली थी। इसके पश्चात् मदनवर्म्मा राजा हुआ।

२२—मदनवर्म्मा का राज्य बहुत दिनों तक रहा। इसके समय के बहुत से शिलालेख मिले हैं। सबसे पहला लेख वि० सं० ११८६ का है और सबसे बाद का वि० सं० १२२० का है। महोबा के निकट जो सुंदर तालाब मदनसागर नाम का है वह इसी का बनवाया हुआ है। तालाब के किनारे दो मंदिर भी इसी ने बनवाए थे जो अब तक मौजूद हैं। इसी के समय में चंदेल राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर फिर से पहुँचा था। इसने गुर्जर प्रांत के राजा को भी हरा दिया था। यह इसके समय के लेखों से ज्ञात होता है, जिनका वर्णन नीचे किया जाता है। मदनवर्म्मा के बसाए हुए नगर का नाम मदनपुर है, जो सागर जिले में है।

२३—मदनवर्म्मा का एक शिलालेख कालिंजर में मिला है। कालिंजर बहुत प्राचीन नगर है। पांडवों ने भी इसे देखा था। उस समय यह एक तीर्थस्थान समझा जाता था। पद्मपुराण में भी इसका नाम आया है। कालिंजर की पहाड़ी का प्राचीन नाम कालंजराद्रि है जो शिव (काल) के नाम से पड़ा है। कहा जाता है कि कालिंजर का किला चंदेलों के पूर्वज चंद्रवर्म्मा का बनवाया हुआ है। मैसूर के वि० सं० ११०७ के शिलालेख से भी, जो हरिहर में मिला है, यही जान पड़ता है कि कलचुरि राजाओं ने कालिंजर को अपने अधिकार में कर लिया था। यह बात बहुत करके वि० सं० की छठी शताब्दी के पहले की होगी।

२४—महमूद गजनवी जब गंडदेव से लड़ने आया तब उसने कालिंजर के किले को देखा और उसकी बड़ी प्रशंसा की। कालिंजर

में जो शिलालेख हैं वे अधिकतर मदनवर्म्मा और परमर्दिदेव के राज्य के समय के हैं। मदनवर्म्मा का पहला लेख कालिंजर के नीलकंठ के मंदिर के बाहर की एक शिला पर मिला है। यह लेख विक्रम संवत् ११८६ का है। मदनवर्म्मा के समय में कालिंजर एक प्रधान नगर रहा होगा। परंतु राजधानी बहुत करके खजुराहो में ही रही होगी, जैसा कि मदनवर्म्मा के पूर्वजों के समय में था। इसके समीप नृसिंह के मंदिर के निकट भी एक शिलालेख है। इसके सिवाय कई लेख नीलकंठ के मंदिर के निकट मिले हैं। महोबा के नेमीनाथ के मंदिर में भी मदनवर्म्मा के नाम का विक्रम-संवत् १२११ का एक लेख है। खजुराहो के जैनमंदिर में विक्रम-संवत् १२१५ का एक लेख मदनवर्म्मा के नाम का है।

८५—मदनवर्म्मा के पश्चात् कीर्तिवर्म्मा नाम का एक राजा हुआ। उसके पश्चात् परमर्दिदेव या परमाल नाम का एक राजा हुआ। कीर्तिवर्म्मा का राज्य शायद एक वर्ष भी नहीं रह पाया और परमाल का राज्य आरंभ हो गया। इसके समय के शिला-लेख मदनपुर, अजयगढ़, खजुराहो और महोबा में मिले हैं। कालिंजर के नीलकंठ के मंदिर में भी परमर्दिदेव के नाम का एक शिलालेख है[1]।

---

१ यह लेख इस प्रकार है:—

आकाश प्रसर प्रसर्पत दिशस्त्वं पृथ्वि पृथ्वी भव
मत्यक्षीकृतमादिराजयशसां युष्माभिरुज्जृंभितम्।
अद्य श्रीपरमार्द्धिपार्थिवयशो राशेर्विकाशोदयाद्-
बीजोच्छ्वास विदीर्ण दाडिममिव ब्रह्मांडमालोक्यते॥
कीर्तिस्ते नृप दूतिका मुररिपोरंके स्थितामिन्दिरा-
मानीय प्रददौ तवेति गिरिशः श्रुत्वार्धनारीश्वरः।

अध्याय ७

चंदेलों का राज्य (परमाल के समय के पश्चात्)

१—परमाल (परमर्दिदेव) के समय में आल्हा का युद्ध और पृथ्वीराज चौहान का आक्रमण हुआ था। आल्हा के युद्ध का विस्तृत वर्णन आल्हा महाकाव्य में है। परमाल इस ग्रंथ में महोबे का राजा कहा गया है। खजुराहो का वर्णन इस ग्रंथ में नहीं आया। जान पड़ता है कि परमाल के समय में महोबे में ही राजधानी थी। यह महोबे का राजा था और महाराजाधिराज कहलाता था।

२—ऐतिहासिक घटनाओं से पूर्ण होने के कारण यहाँ पर आल्हा की प्रसिद्ध लड़ाई का सारांश देना ठीक जान पड़ता है। यह सारांश आल्हा काव्य से किया गया है।

३—महोबे के राजा परमाल का आल्हा नाम का एक योद्धा था। आल्हा बनाफर जाति के दशरथ का पुत्र था। कहा जाता है कि आल्हा ने बाल्यावस्था में पृथ्वीराज और अन्य राजाओं को सुल्तान महमूद के विरुद्ध सहायता देकर अपने पराक्रम का परिचय दिया था। इस समय में बंगाल प्रदेश में सोलंकी राजपूत वंश का मानजू नाम का राजा राज्य करता था और मिथिला देश के जनकपुर नामक स्थान में ब्रह्मादेव नाम के पड़िहार राजा का राज्य

ब्रह्माभूच्चतुराननः सुरपतिःप्रभुः सहस्रं दृशां
स्कंदो मंदनतिर्विवाहविमुखो धत्ते कुमारव्रतम् ॥
नागो भाति मदेन कं जलरुहैः पूर्णेन्दुना शर्वरी
शीलेन प्रमदा जवेन तुरगो नित्योत्सवैर्मन्दिरम् ।
वाणी व्याकरणेन हंस मिथुनैर्नद्यः सभा पंडितैः
सत्पुत्रेण कुलं त्वया वसुमती लोकत्रयं विष्णुना ॥

था। जब मानजू ने ब्रह्मादेव प चढ़ाई की तब आल्हा ने ब्रह्मादेव को सहायता दी और उसे हारने से बचाकर उसका 'मद' रख लिया। इससे आल्हा 'मदराख' भी कहलाने लगा। आल्हा की स्त्री का नाम माचलदेवी, पुत्र का नाम ईंदल, भाई का नाम ऊदल और माँ का नाम देवलदेवी था। परमाल के साले का नाम माहिलदेव था जो राजा परमाल का मंत्री था। परमाल के राज-कवि का नाम जगनायक था।

४—माहिलदेव का किसी कारण से परमाल राजा से वैमनस्य हो गया, परंतु माहिलदेव आल्हा के कारण परमाल का कुछ न बिगाड़ सकता था। आल्हा सदा परमाल की सहायता के लिये तैयार रहता था। माहिलदेव चाहता था कि किसी कारण से आल्हा राजसभा से निकाल दिया जाय जिसमें वह फिर परमाल की सहायता न कर सके। इसकी युक्ति माहिल ने ढूँढ़ निकाली और एक समय, जब आल्हा का लड़का ईंदल परमाल राजा के घोड़े पर बैठ गया तब, माहिल ने तुरंत इस बात की शिकायत परमाल राजा से करके आल्हा, ऊदल और ईंदल को राज्य से निकलवा दिया।

५—उस समय के कन्नौज के राजा का नाम जयचंद्र था। जयचंद्र के सब सूबेदार जयचंद्र से नाराज हो गए थे और अपने प्रांत का कर जयचंद्र के पास नियमानुसार न भेजते थे। आल्हा और ऊदल जब जयचंद्र के पास पहुँचे तब जयचंद्र ने उन्हें अपने सूबेदारों को अधिकार में करने के लिये भेजा। आल्हा और ऊदल वीर थे ही। इन्होंने जयचंद्र के सूबेदारों को तुरंत हराकर उन्हें जयचंद्र के अधिकार में कर दिया। अब वे लोग जयचंद्र को नियत कर देने लगे। जयचंद्र इस पर बहुत प्रसन्न हो गया और उसने कन्नौज के समीप रायकोट नामक स्थान आल्हा और ऊदल को रहने के लिये दिया।

६—माहिलदेव ने आल्हा और ऊदल को राज्य से निकलवाकर चंदेलों के राज्य को नष्ट करने का प्रयत्न किया। उसने चंदेलों की सेना तो किसी बहाने से दक्षिण में भेज दी और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान को परमाल के देश पर आक्रमण करने के लिये निमंत्रित किया।

७—पृथ्वीराज चौहान इस समय साँभर में था। जब उसे मालूम हुआ कि महोबे की सेना दक्षिण भेज दी गई है तब उसने चंदेल राज्य पर आक्रमण किया। वह पहले सिरसा (या सिरस्वागढ़) को रवाना हुआ। यह झाँसी के उत्तर में पहोज नदी के किनारे है। उस समय सिरस्वागढ़ के आसपास का प्रांत चंदेलों के राज्य में था और चंदेल राजाओं की तरफ से उस प्रांत पर एक शासक नियत रहता था। इस समय के शासक का नाम मलखान था। यह मलखान आल्हा की मौसी का लड़का था। जब मलखान ने देखा कि पृथ्वीराज अपनी बड़ी सेना लेकर राज्य पर चढ़ आया तब उसने परमाल राजा को सहायता के लिये लिखा। परंतु माहिलदेव ने परमाल राजा से कहा कि सहायता की कोई आवश्यकता नहीं है। मलखान को अपने प्रांत का बचाव अपनी सेना के द्वारा स्वयं करना चाहिए।

८—मलखान को यह उत्तर पाकर बहुत आश्चर्य और खेद हुआ, परंतु वह हिम्मत न हारा। अपनी सेना को एकत्र कर वह पृथ्वीराज चौहान की बड़ी सेना का सामना करने की तैयारी करने लगा। उसने अपने एक सरदार पूरन जाट को ग्वालियर के निकट की घाटी के पास पृथ्वीराज चौहान को रोकने के लिये भेज दिया और वह स्वयं अपनी सेना को लेकर पृथ्वीराज के आक्रमण की बाट देखने लगा।

९—पृथ्वीराज चौहान के पास बड़े बड़े वीर सेनापति थे। ये सेनापति पृथ्वीराज के संबंधी ही थे। पृथ्वीराज अपनी सेना

को लेकर सिरस्वागढ़ पर गया। साँभर से सिरस्वागढ़ तक पहुँचने में उसे १२ दिन लगे थे। सिरस्वागढ़ पर उसने मलखान की सेना पर तीन बार आक्रमण किए। तीनों बार मलखान ने उसे हटा दिया। अंतिम बार के युद्ध में पृथ्वीराज का सेनापति डिंभाराय मारा गया। इसके पश्चात् फिर एक बड़ा युद्ध हुआ। इस युद्ध के समय मलखान ने ही पृथ्वीराज की फौज पर धावा किया। लड़ाई रात तक होती रही और जब दो दंड रात रह गई थी तब मलखान शूरता से लड़ता हुआ मारा गया। मलखान के मरने पर मलखान की स्त्री सती हो गई। पृथ्वीराज ने फिर मलखान के भाई अलखान को उस प्रांत का शासक बना दिया। इस प्रकार सिरस्वागढ़ का इलाका पृथ्वीराज के अधिकार में आ गया।

१०—इसके पश्चात् पृथ्वीराज महोबा की ओर चला। उस समय महोबा में परमाल की सेना न थी। सारी सेना जलालपुर के पास मसराही नामक स्थान में बेतवा के किनारे थी। पृथ्वीराज महोबा के पास आकर ठहरा और माहिलदेव ने परमाल राजा को खबर दी कि पृथ्वीराज परमाल से पारस और दिव्य अश्व हिरनागर चाहता है। परमाल ने अपने बचाव का प्रयत्न किया। उसने अपने दोनों लड़के ब्रह्माजीत और रणजीत को कालिंजर के किले में भेज दिया। वह अपनी स्त्री के साथ मनियादेवी की शरण में चला गया और आल्हा को सहायता के लिये बुलवाया। इस काम के लिये राजकवि जगनायक भाट हिरनागर अश्व पर कन्नौज भेजा गया। माहिलदेव ने इन सब बातों का पता पृथ्वीराज को दे दिया। पृथ्वीराज हिरनागर अश्व को लेना चाहता था और उसने जगनायक से घोड़ा जबरदस्ती ले लेने के लिये सेना भेजी। जगनायक उस समय कालपी जा रहा था और वह बसवारी नामक स्थान पर, जो महोवे के उत्तर में है, रोक लिया गया। परंतु हिरनागर रोकने-

वालों को बचाके जगनायक को कोरहट तक ले गया। जगनायक वहाँ कोरहट के राजा का अतिथि होकर ठहरा। राजा ने जगनायक के घोड़े की जीन ले ली जिससे जगनायक को बहुत बुरा लगा। फिर जगनायक कन्नौज पहुँचा और वहाँ पर आल्हा और ऊदल ने उसका सत्कारपूर्वक स्वागत किया। जगनायक भाट ने आल्हा और ऊदल को परमाल और परमाल की रानी का सँदेशा सुनाया। आल्हा पहले सहायता देने को राजी न हुआ, क्योंकि परमाल ने उसे बिना कारण देश-निकाला दे दिया था और जयचंद्र की नौकरी के कारण आल्हा सहायता करने न जा सकता था। परंतु फिर जगनायक ने उसे जोश दिलाया। जगनायक ने कहा कि आल्हा के पिता दशरथ का बनवाया शहिल्य ताल पृथ्वीराज ने फोड़ दिया है और पृथ्वीराज आल्हा के अखाड़े में कसरत करता है। यह हाल सुनने पर आल्हा को बड़ा क्रोध आया। आल्हा की मा ने भी आल्हा को लड़ने के लिये उत्साहित किया। तब आल्हा ने पृथ्वीराज से लड़ाई करने का निश्चय कर लिया और वह कन्नौज के राजा जयचंद्र से अनुमति माँगने गया। जयचंद्र ने पहले अनुमति न दी पर इससे आल्हा को क्रोध आया और उसने जयचंद्र के सामने बिना जयचंद्र की आज्ञा के चले जाने का निश्चय कर लिया। इस पर जयचंद्र राजी हो गया और उसने आल्हा की सहायता के लिये अपनी कुछ सेना भी दी। आल्हा की सेना के नायकों में से जयचंद्र के भतीजे राना लाखन और राना गुन्नाथ भी थे। नरवर का रावराजा भी एक सेनानायक था। कुल ३२ सेनानायक आल्हा की सेना में जयचंद्र की ओर से थे।

१६—जगनायक भाट ने मार्ग में कोरहट के राजा का दुर्व्यवहार आल्हा को सुनाया। आल्हा ने उस राजा को डराकर उससे जीन छुड़ा ली और वह राजा भी आल्हा की सेना के साथ हो

गया। आल्हा ने मार्ग में सिंघा नाम के एक परमार राजा को हराकर उसे भी अपने साथ कर लिया।

१२—इसी बीच में पृथ्वीराज और परमाल राजा में सुलह हो गई थी। परंतु जब पृथ्वीराज की सेना ने आल्हा के आने का हाल सुना तब धाँधूराय नाम का पृथ्वीराज का एक सेनापति अपनी सेना लेकर बेतवा के किनारे जाकर अड़ गया। आल्हा की सेना ने काल्पी के समीप यमुना को पार किया और गारागढ़ और हमीरपुर ले लिया। फिर वे सब कानाखेरा घाट के पास बेतवा में पूर होने के कारण ठहर गए। धाँधूराय अपनी सेना को लेकर दूसरी ओर ठहरा था। जब आल्हा की फौज पूर कम होने के लिये ठहरी थी उसी समय धाँधूराय अचानक नदी पार करके लाखन राना की सेना पर आ टूटा। लाखन राना की फौज घबरा गई और भाग गई। लाखन अकेला रह गया, परंतु वह भी घेर लिया गया। बाकी सब सेना भी भागने लगी, परंतु आल्हा की मा देवलदेवी ने इन सबको भागने से रोका और लड़ने को उत्साहित किया। आल्हा और मीर तालन वापस आ गए। मीर तालन एक मुसलमान था परंतु वह आल्हा का बड़ा मित्र था। आल्हा और मीर तालन इन दोनों ने धाँधूराय को भगा दिया। फिर सब सेना को महोबा आ जाना पड़ा। यहाँ पर पृथ्वीराज और परमाल के बीच संधि होने से युद्ध बंद हो गया। यह संधि केवल एक वर्ष के लिये ही हुई थी। पृथ्वीराज दिल्ली चला गया और संधि के पश्चात् युद्ध करने के लिये उरई के निकट का मैदान नियत कर लिया गया।

१३—नियत समय पर उरई के मैदान में सेनाएँ इकट्ठी हुईं। बेतवा के समीप मोहानी नामक गाँव के पास परमाल की सेना एकत्र हुई। परमाल ने जब दोनों ओर की सजी हुई सेना देखी तब वह घबरा गया और आल्हा से कहने लगा कि मुझे

कालिंजर ले चलो। आल्हा ने बहुत कहा, किंतु परमाल ने न माना। अंत में आल्हा परमाल को लेकर कालिंजर गया। आल्हा कालिंजर से लौटकर आ न पाया था कि लड़ाई होने लगी और आल्हा के आने के पहले ही परमाल की सारी सेना हारकर भाग गई। कहा जाता है कि इस पर आल्हा को बड़ा क्रोध आया और उसने पृथ्वीराज की सारी सेना काट डालने के लिये तलवार खींची, पर मैहर की देवी शारदा ने आल्हा का हाथ पकड़ लिया और देवी के कहने से पृथ्वीराज ने आल्हा को मना लिया। तब से आल्हा का पता नहीं है। आल्हा को मना लेने की बात विश्वास करने योग्य नहीं जान पड़ती।

१४—काव्य में अतिशयोक्ति बहुत है। आल्हा के पराक्रम का खूब वर्णन किया गया है। संभव है कि आल्हा की मृत्यु इसी युद्ध में हुई हो। आल्हा के समय के चंदेल राजाओं के आठ किलों के नाम दिए हैं। वे ये हैं—बारीगढ़ (महोबे के पास), कालिंजर, अजयगढ़, मनियागढ़, मड़फा, मैादहा, काल्पी और गढ़ (जबलपुर के पास)

१५—पृथ्वीराज चौहान का आक्रमण और लड़ाई, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, वि० सं० १२३९ में हुई। इस युद्ध में परमर्दिदेव की हार हुई और धसान के पश्चिम का भाग राजा पृथ्वीराज चौहान के अधिकार में चला गया। वि० सं० १२६० में कुतबुद्दीन ऐबक की चढ़ाई चंदेल राज्य पर हुई। इसने चंदेल राजा परमर्दिदेव को कालिंजर के किले में आ घेरा। वह किला छोड़ने पर राजी हो गया, पर मंत्री ने ऐसा करने से मना किया। जब वह न माना तब परमर्दिदेव के मंत्री ने ही उसे मार डाला। इसके पश्चात् किला कुतबुद्दीन ने ले लिया, पर पीछे से मुसलमानों ने मंत्री को भी मरवा डाला और मंदिरों को गिरवाकर उनके स्थान

पर मसजिदें बनवाईं। ऐसा जान पड़ता है कि किले को शीघ्र ही चंदेलों ने फिर से अपने अधिकार में कर लिया, क्योंकि त्रैलोक्य-वर्म्मन के राजत्व-काल में यह चंदेलों के ही पास था।

१६—परमर्दिदेव के मरने पर उसका पुत्र त्रैलोक्यवर्म्मन राजा हुआ। इसके नाम का एक शिलालेख वि० सं० १२६९ का अजयगढ़ में मिला है और दो ताम्रपत्र (छतरपुर के पूर्व १२ मील, गूढ़ा ग्राम में) संवत् १२६१ के मिले हैं। इस समय त्रैलोक्य-वर्म्मन चंदेल और मुसलमानों के बीच युद्ध हुआ था। इस युद्ध में चंदेल सेनापति खेत रहा। वि० सं० १२९० में दिल्ली के बादशाह शमसुद्दीन अलतमश ने बुंदेलखंड पर चढ़ाई की थी। इस समय मुसलमानों का सेनापति नसीरुद्दीन तायसो था। मुसलमानों ने खजाना लूटने के लिये कालिंजर पर चढ़ाई की थी। यहाँ से ये लगभग सवा करोड़ मुद्राएँ लूटकर ले गए। इस युद्ध में चंदेलों को बड़ी हानि पहुँची पर पीछे से त्रैलोक्यवर्म्मन ने इसकी पूर्त्ति कर ली। कालिंजर के पूर्व ४० मील पर ककरेड़ी नाम का ग्राम है। यहाँ वि० सं० १२३२, १२५२ और १२९६ के शिलालेख मिले हैं। यहाँ के राजा ने प्रथम दोनों शिलालेखों में तो कलचुरियों का आधिपत्य माना है, पर संवत् १२९६ के शिलालेख में इसने चंदेलों का प्रभुत्व स्वीकार किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि त्रैलोक्यवर्म्मन ने कलचुरि-वंश के अंतिम राजा विजयसिंह को परास्त कर नर्मदा नदी का उत्तरीय भाग अपने राज्य में मिला लिया हो।

१७—त्रैलोक्यवर्म्मन के पुत्र का नाम वीरवर्म्मदेव (पहला) था। यही अपने पिता के पश्चात् गद्दी पर बैठा। इससे और नलपुरा के राजा गोविंद, मधुवनी के राजा गोपाल तथा गोपगिरि (ग्वालियर) के राजा हरिदेव से युद्ध हुआ था। इस युद्ध में सेना-

पति मलपुरा-निवासी कश्यपगोत्री बलभद्र तिवारी थे। वीरवर्म्म-देव की राजमहिषी को कल्यानीदेवी कहते थे। यह नलपुरा के राजा गोविंददेव की कन्या थी। इसके मंत्री का नाम गणपत था।

१८—वीरवर्म्मदेव के पश्चात् उसका पुत्र भोजवर्म्मदेव राजा हुआ। इसके समय के शिलालेख भी अजयगढ़ में मिले हैं। ये शिलालेख नाना नामक मंत्री के लिखवाए हुए हैं। यह जाति का कायस्थ था। शिलालेखों से ऐसा भी जान पड़ता है कि इसके पूर्वज परमाल के समय से चंदेलों के मंत्री रह आए थे। शिलालेख में नाना की बड़ी प्रशंसा लिखी है। इसका गोत्र कश्यप था। नाना मंत्री से भोजवर्म्मदेव को बहुत सहायता मिलती थी। इसके कारण ही भोजवर्म्मदेव वैरियों के दाँत खट्टे कर सका, और कालिंजर चंदेलों के हाथ में रह सका।

१९—भोजवर्मदेव के पश्चात् वीरवर्मा (वीरनृप) राजा हुआ। उसके पश्चात् शशांक भूप गद्दी पर बैठा। इनके नाम शिलालेखों में आए हैं। फिर भिलावादेव का नाम अजयगढ़ के समीप के एक लेख में मिला है। भिलावादेव के पश्चात् परमर्दिदेव (द्वितीय) का नाम संवत् १४६६ के लेख में मिला है। परमर्दिदेव (द्वितीय) के लगभग एक सौ वर्ष बाद कीरतसिंह का राज्य-काल आरंभ हुआ। कीरतसिंह के समय तक चंदेल राज्य कालिंजर के आस-पास ही रह गया था।

२०—जेनरल ए० कनिंघम ने अपनी आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया नाम की पुस्तक में तथा जरनल ए० सो० बंगाल भाग १ पृष्ठ ४२ सन् १८८१ में लिखा है कि चंदेलवंश का अंतिम राजा कीर्तिसिंह था। यह शेरशाह के साथ लड़ा था और उसके एक सैनिक के हाथ से मारा गया था। दुर्गावती इसी की कन्या है जो गढ़मंडल के राजा दलपतिशाह को ब्याही गई थी; परंतु

सरस्वती जून सन् १६१० तथा ओड़छा स्टेट गजेटियर में लिखा है कि जिस समय शेरशाह ने कालिंजर पर चढ़ाई की थी उस समय यहाँ पर बुंदेलों का राज्य था और भारतीचंद ओड़छे के राजा ने इसका सामना करने के लिये अपने भाई मधुकरशाह को भेजा था, पर कुछ लाभ न हुआ। किला मुसलमानों के हाथ चला ही गया।

२१—रानी दुर्गावती भी इसी राजा कीर्तिसिंह की लड़की बतलाई जाती है। परंतु अबुलफजल ने अपने अकबरनामे में लिखा है कि रानी दुर्गावती राठ के चंदेल राजा शालवाहन की कन्या थी (राठ आजकल हमीरपुर जिले में है)। ज० ए० सो० बं० के भाग ४० पृष्ठ २३३ में चंदबरदाई के रायसे के आधार पर लिखा है कि राजा कीर्तिसिंह ने गढ़मंडल के गोंड़ राजा का मनियागढ़ के जंगल में शिकार के समय पीछा किया था। पीछे से इन दोनो में युद्ध छिड़ गया। राजा कीर्तिसिंह हार गया और कैद हो गया। इन सब लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्गावती के विषय में अबुलफजल ने जो कुछ लिखा है वह सत्य है, क्योंकि ये दोनों समकालीन हैं और चंदबरदाई लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व हुआ है।

२२—चंदेलों के अधःपतन के पहले से ही दक्षिण में गोंड़ लोगों का, पूर्व में बघेलों का और बुंदेलखंड में बुंदेलों का राज्य बढ़ने लगा था। इनका वर्णन आगे किया जायगा।

अध्याय ८

चंदेलों का राज्य

विस्तार और आंतरिक स्थिति

१—चंदेल वंश के जिस प्रथम राजा नानुकदेव का इतिहास में पता चलता है कि वह संवत् ८५० के आसपास खजुराहो में राज्य

करता था, उसके पहले हमें चंदेलों का कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता। नवीं और दसवीं शताब्दी में चंदेलों ने पूर्व और पश्चिम के कुछ प्रदेशों पर अधिकार करके अपने राज्य का विस्तार किया। उस समय चेदि में कलचुरियों का राज्य था। स्वभावतः चंदेले अपनी इस समकालीन शक्ति के संसर्ग में आए। उनमें परस्पर विवाह-संबंध स्थापित हुए। चंदेल राजा राहिल ने अपनी पुत्री नंदादेवी का विवाह तत्कालीन कलचुरि राजा कोकल के साथ किया था।

२—राहिल के बाद जब चंदेलवंश का परम प्रतापी राजा यशोवर्धन सिंहासन पर बैठा तब उसने कालिंजर के किले पर अधिकार करके चंदेल वंश की कीर्त्ति उज्ज्वल की। उस समय कालिंजर पर कलचुरियों का अधिकार था। कलचुरि राजा अपने को कालिंजर-पुरवराधीश्वर की उपाधि से अभिहित करते थे। किंतु यशोवर्धन ने कालिंजर पर अधिकार करके इस पदवी को स्वयं धारण किया। इस समय कालिंजर भारत की राज-शक्तियों का प्रधान केंद्र गिना जाता था। आल्हा में भी गाया करते हैं—

किला कालिंजर का माँगत है, बैठक माँगे ग्वालियर क्यार।

३—पहले यह दुर्ग चारों ओर से प्राचीरवेष्टित था। उसमें प्रवेश के लिये चार द्वार थे। आज भी इस प्राचीन दुर्ग के कुछ ध्वंसावशेष देख पड़ते हैं। यहाँ चंदेल वंश के कई शिलालेख मिले हैं, जिनसे भारत के तत्कालीन इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ा है। गंडदेव के राजत्व-काल में महमूद गजनवी ने इस किले पर आक्रमण किया था। गंडदेव ने एक बड़ी सेना लेकर महमूद का सामना किया। अंत में वह हार गया और उसने महमूद से संधि कर ली।

४—पृथ्वीराज की लड़ाई के समय राजा परमर्दिदेव इसी किले में आकर रहा था। संवत् १२०० में। जब कुतुबुद्दीन ने कालिंजर

पर आक्रमण किया तब परमर्दिदेव कालिंजर में था। कुतुबुद्दीन ने उसे परास्त करके किले को अपने अधिकार में कर लिया। उसकी ओर से उसका एक सूबेदार हजब्बरुद्दीन नाम का किले पर कुछ दिनों तक शासन करता रहा। उसके बाद शीघ्र ही कालिंजर फिर हिंदुओं के हाथ में आ गया। अंत में संवत् १६०२ में शेरशाह ने कालिंजर पर आक्रमण किया और वहाँ के चंदेलवंश के अंतिम राज कीर्तिसिंह को मारकर कालिंजर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। शेरशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र इसलामशाह कालिंजर में ही देहली के सिंहासन पर बैठा। इसके कुछ दिनों बाद रीवाँ के बघेल राजा रामचंद्र ने किलेदार से यह क़िला मोल ले लिया। संवत् १६२६ तक वह इस किले पर अधिकार किए रहा। उसके बाद वह किला अकबर के हाथ में चला गया। औरंगजेब के समय तक कालिंजर मुसलमानों के हाथ में रहा। उसके बाद महाराज छत्रसाल ने कालिंजर पर अपना अधिकार कर लिया।

५—कालिंजर भारतीय इतिहास में एक विशेष स्थान ग्रहण किए हुए है। यह अत्यंत प्राचीन नगर है। वेदों ने इसे तपस्याभूमि कहकर अभिहित किया है। महाभारत में कई जगह इसका नाम आया है। लिखा है कि जो व्यक्ति कालिंजर के सरोवर में स्नान करता है उसे एक हजार गोदान का पुण्य मिलता है। शैव-साहित्य में भी कालिंजर का विशेष उल्लेख पाया जाता है।

६—पौराणिक काल के बाद से कालिंजर कई राज्यों की क्रीड़ा-स्थली रहा। किंतु यहाँ का प्रसिद्ध गढ़ किस राजा का बनवाया है, इसका हमें कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसमें संदेह नहीं कि कालिंजर का गढ़ विक्रम की तीसरी या दूसरी शताब्दी से पूर्व का है। यह गढ़ विंध्यगिरि पर एक ऊँचे स्थान पर बना है। पहले यह चारों ओर से प्राचीरवेष्टित था। प्रवेश के लिये चार द्वार थे।

चंदेल काल में यह किला बहुत प्रसिद्ध रहा। उस समय के मुसलमान इतिहासकार निजामुद्दीन ने लिखा है कि उस जमाने में भारतवर्ष में कालिंजर की जोड़ का और कोई किला नहीं था। आल्हा में भी इसकी प्रशंसा की गई है।

७—यहाँ चंदेलों के समय के कई मंदिर और तालाब हैं। उस समय के कई शिलालेख भी मिले हैं जिनसे भारत के, और विशेषकर बुंदेलखंड के तत्कालीन इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ता है।

८—विक्रम संवत् १२८६ में इस पर अल्तमश का आक्रमण हुआ। वह इस किले से बहुत सा धन लूटकर ले गया। परंतु यह किला फिर हिंदुओं के हाथ में आ गया। एक मुसलमान इतिहासकार ने इसके कई बार लूटने का वर्णन किया है। लूट हो जाने के पश्चात् हिंदू राजाओं का अधिकार फिर से इस पर हो गया। तुगलक बहुधा लूट-मार के उद्देश्य से ही आक्रमण करते थे, इससे उनके राज्यकाल में यह किला फिर मुसलमानों के हाथ से निकल गया। इस समय में फिर यह चंदेलों के पास आ गया होगा और उस पर चंदेलों के राजवंश के कुछ लोग राज्य करते रहे होंगे, परंतु इसका ठीक पता नहीं लगता कि उन राजाओं के नाम क्या थे। विक्रम संवत् १६०२ में शेरशाह ने इस किले को ले लिया और अपने दामाद को यहाँ पर रखा। परंतु रीवाँ के बघेल राजा ने उससे कालिंजर के किले को ले लिया। पीछे से अकबर के समय में यह किला रीवाँ के बघेल राजा रामचंद्र के हाथ में आया। राजा रामचंद्र से यह किला अकबर बादशाह ने ले लिया। फिर अकबर के वंशज औरंगजेब से यह किला महाराजा छत्रसाल ने ले लिया।

६—अजयगढ़ चंदेलों के राज्य का एक मुख्य स्थान था। यह केन नदी के समीप एक छोटी पहाड़ी पर है। यहाँ का किला भी कालिंजर के किले के बराबर ही है। कहा जाता है कि अजय-

गढ़ अजयपाल नामक राजा का बनाया हुआ है। परंतु इस नाम के राजा का पता नहीं लगता। यहाँ पर राजा परमर्दिदेव के बनवाए हुए मंदिर और तालाब हैं। यहाँ पर विक्रम संवत् १३४५ का एक शिलालेख मिला है जिससे मालूम होता है कि मलिक का नाती नाना नाम का चंदेल राजाओं का एक बुद्धिमान् मंत्री था। अजयगढ़ त्रैलोक्यवर्मा के पहले से चंदेलों के राज्य में था। पृथ्वीराज चौहान ने परमर्दिदेव से धसान नदी के पश्चिम का भाग ले लिया था पर अजयगढ़ चंदेलों के राज्य में रहा।

१०—खजुराहो बहुत दिनों तक चंदेलों के राज्य की राजधानी रहा। कालंजर में चंदेलों का दुर्ग था। सेना इत्यादि वहीं रहती थी और खजुराहो में महल थे। यह पहले जुझौति देश की राजधानी था। पर किसी किसी के मत से जुझौति देश की राजधानी एरन थी। संभवत: यहाँ का ब्राह्मण राजा एरन के धान्यविष्णु, मातृविष्णु इन दो भाइयों में से किसी एक का वंशज हो। जुझौति आधुनिक बुंदेलखंड का ही प्राचीन नाम है। खजुराहो चंदेलों के राज्य में बहुत पहले से है। यहाँ के मंदिरों में तीन बड़े बड़े पाषाण-लेख हैं। ये प्राय: चंदेल-नरेश गंड और यशोवर्मन के समय के हैं। हर्षवर्धन के समय में प्रसिद्ध यात्री हुएनसांग खजुराहो आया था। उसने यहाँ कई मंदिरों का होना लिखा है। यहाँ का चौंसठ योगिनियों का मंदिर चंदेलों के जमाने का जान पड़ता है। यह प्राय: सातवीं शताब्दी का बना है। इसके बाद भी चंदेल-नरेशों ने यहाँ कई विशाल पाषाण-मंदिर बनवाए। ये मंदिर आज दिन भी स्थापत्य की दृष्टि से भारतवर्ष के सर्वोत्कृष्ट मंदिर कहे जाते हैं। भारतवर्ष में इनकी जोड़ का सुंदर मंदिर नहीं है। इनके प्रत्येक प्रस्तरखंड में, प्रत्येक कोने में, प्रत्येक रेखा में मानों चंदेलों की कीर्त्ति का अमर इतिहास लिखा है। इनका अपूर्व सौंदर्य, सुडौल आकार-

प्रकार, भारी विस्तार और चित्रकार की कूँची को लज्जित करनेवाला बारीक नक्काशी का काम देखकर चकित होना पड़ता है। सौभाग्य से ग्यारहवीं शताब्दी में खजुराहो मुसलमानों के आक्रमण से दूर पड़ गया था। इसलिये चंदेलों के समय के ये विशाल मंदिर, चंदेलों की धर्म-प्रवीणता, कला-प्रेम और अनंत ऐश्वर्य के ये मूल साक्षी अब भी ज्यों के त्यों अक्षत खड़े हैं।

११—मनियागढ़ केन नदी के किनारे है। यह छतरपुर में खजुराहो से १२ मील है। यह एक पहाड़ पर है। अब इसकी एक पुरानी प्रायः ७ मील लंबी पत्थर की प्राचीर मात्र शेष रह गई है। आल्हा में इस गढ़ का खूब जिक्र आया है। यह चंदेलों के आठ किलों में से था।

१२—महोबा चंदेल राज्य के बहुत प्राचीन स्थानों में से है। कहा जाता है कि यहाँ पर चंदेल वंश के आदि पुरुष चंद्रवर्मा ने महोत्सव किया था। यह महोबा उसी महोत्सव का स्थान है। परमाल (परमर्दिदेव) के समय में यह चंदेल राज्य की राजधानी था। पृथ्वीराज चौहान ने विक्रम संवत् १२३९ में इसे ले लिया था, परंतु फिर छोड़ दिया था। संवत् १२४० में जब पृथ्वीराज ने दूसरी लड़ाई की तब, जान पड़ता है कि, महोबा ले लिया गया था। संवत् १२४० के पश्चात् महोबे में चंदेलों का कोई लेख नहीं मिलता। इसके बाद महोबा दिल्ली के मुसलमान बादशाहों के हाथ में चला गया था। महोबा और कालपी ये दोनों नगर कुतुबुद्दीन ने विक्रम संवत् १२५३ में ले लिए थे। तब से महोबे और कालपी में एक मुसलमान सूबेदार दिल्ली के बादशाह की ओर से रहता था। तैमूर के आक्रमण के समय में जो गड़बड़ हुई थी उसी में कालपी और महोबे का सूबेदार मुहम्मदखाँ स्वतंत्र हो गया था। विक्रम संवत् १४५१ में जौनपुर के सूबेदार इब्राहीमशाह ने कालपी पर आक्रमण

किया, परंतु एक साल के बाद जब दिल्ली के बादशाह और जौनपुर के सूबेदार के बीच युद्ध हुआ तब काल्पी और महोबा मालवा के बादशाह हुशंगशाह के हाथ में चले गए। परंतु फिर से जौनपुर के सूबेदार ने यह प्रदेश अपने कब्जे में कर लिया।

१३—मदनपुर कोई बड़ा गाँव नहीं है, परंतु चंदेलों के समय में यह एक प्रधान नगर था। यह गाँव सागर के उत्तर में और ललितपुर से कुछ दक्षिण की ओर है। यहाँ पर पहले कई अच्छे मंदिर और पत्थरों की खदान थी। यह गाँव चंदेल राजा मदनवर्मा का बसाया हुआ है। परंतु मदनवर्मा के पहले भी यहाँ पर एक बस्ती थी। यह यहाँ पर मिले हुए विक्रम संवत् ११९२ के एक लेख से मालूम होता है। चौहान राजा पृथ्वीराज ने परमाल पर जब चढ़ाई की तब वह यहाँ तक आया था। यहाँ के जैन मंदिर के एक स्तंभ पर परमाल की लड़ाई और पृथ्वीराज के विजय का हाल लिखा है। पृथ्वीराज ने इस समय परमाल को हटाकर इसके आस-पास का देश जीत लिया था। पृथ्वीराज के नाम के यहाँ तीन लेख मिले हैं। इन पर संवत् १२३९ अंकित है।

१४—बिलहरी नामक ग्राम कटनी रेलवे स्टेशन से १० मील पश्चिम को है। इसका प्राचीन नाम पुष्पावती था और इसका बसानेवाला राजा कर्ण कहा जाता है। यह राजा कर्ण विक्रमादित्य का समकालीन था ऐसी कथा चली आ रही है। परंतु इसका ठीक पता इतिहास में नहीं मिलता। यह देश कलचुरि राजाओं के अधिकार में लगभग विक्रम संवत् १२१० तक रहा। फिर यह नगर और इसके आस-पास का प्रांत चंदेलों के हाथ में चला गया। आजकल के दमोह जिले की भूमि का अधिकांश चंदेलों के हाथ में इसी बिलहरी नगर के साथ आया होगा। नोहटा भी उसी समय का चंदेलों का बसाया हुआ है। बिलहरी

के आस-पास के प्रदेश के शासन के लिये बिलहरी में चंदेलों की ओर से एक सूबेदार रहता था। परंतु इसी के आस-पास का कुछ प्रदेश पड़िहारों के हाथ में और कुछ राष्ट्रकूटों के हाथ में बारहवीं शताब्दी के आस-पास पाया जाता है। पृथ्वीराज के युद्ध के पश्चात् चंदेलों की शक्ति का ह्रास होने लगा था। जान पड़ता है कि इसी समय यहाँ पर इन लोगों ने अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया होगा। पड़िहारों का राज्य इस समय दमोह के पूर्वी भाग में था। दमोह जिले में सिंगोरगढ़ का किला पड़िहारों का बनवाया हुआ है यह किला विक्रम संवत् १३६० के लगभग बना होगा। बारहवीं शताब्दी में हटा तहसील राठौरों के हाथ में रही होगी। हटा के समीप फतहपुर के निकट पिपरिया नामक ग्राम के मैदान में युद्ध के कुछ स्मारक पाए जाते हैं। इनसे मालूम होता है कि महा-मांडलिक जयतसिंह राष्ट्रकूट और किसी दूसरे राजपुत्र हेमसिंह के साथ लड़ाई हुई थी। इस युद्ध का काल संवत् ११६८ दिया हुआ है। पिपरिया के कीर्तिस्तंभों से पता नहीं लगता कि जयतसिंह किस राजा का मांडलिक था और हेमसिंह किस घराने का राजपुत्र था परंतु बहुरीबंद नामक गाँव के उसी समय की जैनमूर्ति के लेख से अनुमान किया जाता है कि यह कलचुरियों के अधीन था इसी समय का एक लेख हटा के निकट जटाशंकर नामक स्थान में भी मिला है। इसमें विजयसिंह की एक प्रशस्ति है। इसमें लिखा है कि विजयसिंह ने दिल्ली जीत ली, गुर्जरों को मार भगाया और वह चित्तौड़ से जूझ गया। इसी लेख से मालूम होता है कि विजयसिंह के पिता हर्षराज ने कालिंजर, डाहल, गुर्जर और दक्षिण को जीता था। यह विजयसिंह गुहिल वंश का था। गुहिल विजयसिंह मालवा के राजा उदयादित्य का दामाद था और इसकी लड़की अल्हणदेवी का ब्याह कलचुरि

राजा गयाकर्ण के साथ हुआ था। गुहिल ने हटा और दमोह पर धावा किया परंतु वह वहाँ ठहरा नहीं और लूट-मार करके वापिस चला गया।

१५—गढ़ा नामक स्थान जबलपुर के समीप है। आल्हा नामक काव्य में गढ़ा का किला चंदेलों के किलों में से एक बताया गया है। परंतु यह ठीक नहीं जान पड़ता।

१६—देवगढ़ कीर्तिवर्मा चंदेल के समय में चंदेल राज्य में था। एक शिलालेख विक्रम संवत् ११५४ का कीर्तिवर्मा के मंत्री का खुदवाया हुआ यहाँ पर मिला है। परंतु आल्हा के समय में यह गढ़ गोंड़ राजाओं के हाथ में आ गया था, क्योंकि कहा गया है कि आल्हा ने गोंड़ राजाओं को देवगढ़ से निकाल दिया। गोंड़ लोगों ने यह गढ़ कीर्तिवर्मा के पश्चात् ले लिया होगा।

१७—सिरस्वागढ़ पहोज नदी के किनारे है। यह नगर भी चंदेलों के हाथ में था, क्योंकि पृथ्वीराज चौहान ने पहले इसी पर धावा किया था। यह कीर्तिवर्मा चंदेल के समय में भी चंदेलों के हाथ में रहा होगा।

१८—उपर्युक्त स्थानों के इतिहास से चंदेल राज्य के विस्तार का हाल मालूम हो सकता है। कीर्तिवर्मा के समय में राज्य का विस्तार यमुना नदी से लेकर दमोह और सागर जिले के दक्षिण तक था। पूर्व में कालिंजर से लेकर पश्चिम में सिरस्वागढ़ और देवगढ़ तक था। ये स्थान राज्य में ही शामिल थे कीर्तिवर्मा के पश्चात् राज्य के भिन्न भिन्न प्रांतों में भिन्न भिन्न स्वतंत्र राज्य स्थापित होने लगे। पूर्व में बघेले और दक्षिण में गोंड़ लोग प्रबल होने लगे। धसान नदी के पश्चिम का भाग—अर्थात् सागर, ललितपुर, ओड़छा, झाँसी, सिरस्वागढ़ इत्यादि—पृथ्वीराज ने ले लिया। फिर मुसलमानों का आक्रमण आरंभ हुआ।

१९—गुप्त साम्राज्य के नष्ट होते ही सारे भारतवर्ष में अराजकता सी फैल गई थी। प्राचीन राज्य-व्यवस्था और गणतंत्र राज्य-प्रथा को गुप्त साम्राज्य ने नष्ट कर दिया था। इस समय में जो बलवान् होता था और जिसके पास बड़ी सेना होती थी वही स्वतंत्र बन के अपने आस-पास के प्रदेश का राजा बन जाता था। चेदिवंश का विस्तार और चंदेलों का राज्य इसी समय में हुआ। ये राजा धर्म के अनुसार चलना चाहते थे पर प्राचीन राज्य-व्यवस्था को भूल गए थे। इनके भिन्न भिन्न प्रदेशों में इनकी ओर से शासक नियत रहते थे, जो प्रत्येक बात में स्वतंत्र थे। केंद्रस्थ शासक के प्रति उनका केवल इतना ही कर्त्तव्य था कि वे प्रत्येक वर्ष एक नियत कर दे दिया करें। केंद्रस्थ शासक को सदैव इन सूबेदारों का डर बना रहता था और इसी लिये एक बड़ी सेना राजधानी में रखी जाती थी, जिसमें ये प्रांतीय शासक लोग सिर न उठा सकें। इसी कारण से जब केंद्रस्थ शासक बलहीन होता था तब ये लोग स्वतंत्र बन बैठते थे। मुसलमानों के आक्रमण के समय यही हाल प्रायः सारे भारतवर्ष का था। राजा लोग अपने पड़ोसी को हराकर उसका देश छीन लेने में ही वीरता समझते थे। आपस में मेल करके बाहर से आकर आक्रमण करनेवालों से लड़ना इन लोगों ने न सीखा। सारे राजा लोग आपस में लड़ते थे और ऐसे ही समय पर विदेशियों ने यहाँ आकर अपना शासन जमाया।

२०—इस समय देश में वैष्णव धर्म का ही प्रचार अधिक था। गुप्त राजाओं के समय में बौद्ध धर्म को बहुत हानि पहुँची पर जैन धर्म बढ़ता ही गया। ऐसा जान पड़ता है कि जैन और वैष्णव धर्मों में कभी द्वेष नहीं हुआ। चंदेल राजा, जो कि वैष्णव थे, जैन मंदिरों को भी दान देते थे। चंदेलों के समय के बने कई जैन मंदिर भी पाए जाते हैं।

अध्याय ९

अफगानों का राज्य

१—मुसलमानों ने भारतवर्ष पर हमले करना वि० सं० ७६९ में आरंभ कर दिया था। इनके पहले हमले सिंध में हुए थे। इस समय यहाँ चच का लड़का दाहिर आलोर (राजधानी) में और उसका भतीजा (राजा चंद्र का लड़का) ब्रह्मनाबाद में राज्य करते थे। दाहिर के दो लड़के थे। इनके नाम फूफी और जयसिंह थे। इसके सूर्यदेवी और पालदेवी नाम की दो लड़कियाँ भी थीं। इन्होंने ही मुहम्मद कासिम से अपने बाप का बदला लिया था।

२—मुहम्मद कासिम के पश्चात् दूसरा मुसलमान बादशाह, जिसने भारतवर्ष पर आक्रमण किया, महमूद गजनवी था। इसके कई आक्रमण हुए हैं। बुंदेलखंड पर इसका पहला आक्रमण वि० सं० १०७८ में कालिंजर पर हुआ था। उस समय वहाँ पर गंडदेव चंदेल राज्य करता था। इसका हाल मुसलमान इतिहासकार निजामुद्दीन ने लिखा है कि गंडदेव चंदेल की हार हो गई थी और महमूद गजनवी कालिंजर से बहुत सा खजाना लूटकर ले गया था। इसके आक्रमण अधिकतर लूट-मार के लिये ही हुए थे। भारतवर्ष की अतुल संपत्ति लूटकर ले जाना ही इसका उद्देश्य था।

३—गंडदेव चंदेल के राज्य पर, जब यह वि० सं० १०८० में दुबारा आया था, तब चंदेल राजा गंडदेव ने ३०० हाथी और बहुत सा धन देकर इससे संधि कर ली थी और उसकी तारीफ में बहुत सी कविता भी भेजी थी जिसे सुन महमूद बहुत खुश हुआ और उसने उसके राज्य में १४ किले और भी बढ़ा दिए। यहाँ से वह ग्वालियर गया। यहाँ आते ही उसने घेरा डाल दिया। तब राजा देवपाल

कछवाहे ने वाध्य होकर उसे ३५ हाथी और बहुत सा धन देकर संधि कर ली और ग्वालियर को लुटने से बचाया।

४—दूसरा आक्रमण करनेवाला मुसलमान बादशाह गोर का शासक शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी था। इसे मुइज्जुद्दीन साम भी कहते थे। इससे और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान से वि० सं० १२४८ में तरैन (करनाल और थानेश्वर के बीच दिल्ली से १०० मील उत्तर) में युद्ध हुआ था। इस युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के सामंत चामुंड-राय के हाथ से इसे गहरी चोट लगी थी, इससे यह वापिस चला गया, पर दूसरी बार इसने पृथ्वीराज चौहान को थानेश्वर के युद्ध में वि० सं० १२५० में हराया। इसके पश्चात् पृथ्वीराज चौहान को कैद कर मार डाला; परंतु रायसे में लिखा है कि मुहम्मद गोरी पृथ्वी-राज को पकड़कर गजनी ले गया। वहाँ उसने उसे अंधा कर दिया। कुछ दिनों के बाद पृथ्वीराज ने चंद वरदाई की सहायता से शहा-बुद्दीन को मार डाला। उस समय भारतवर्ष के राजा लोग आपस में लड़ना ही अपना कर्तव्य समझते थे। पृथ्वीराज के हारने के बाद दिल्ली भी मुहम्मद गोरी के हाथ में आ गई पंजाब प. ले से ही इसके अधीन था। कुतुबुद्दीन ऐबक कुहराम (पटियाला) में रहता था।

५—संवत् १२५३ में मुहम्मद गोरी अपने सेनापति कुतु-बुद्दीन ऐबक को लेकर बयाना के राजा हरिपाल को परास्त करता हुआ ग्वालियर आया। यहाँ के राजा लोहनदेव पड़िहार ने इससे संधि कर अपना पिंड छुड़ाया। इस युद्ध में बयाना का सूबेदार बहाबुद्दीन तघरुल बेग भी आया था।

६—कुतुबुद्दीन बड़ा ही पराक्रमी था। इसने मुहम्मद गोरी के पीछे कई राजाओं को परास्त कर अपने अधीन कर लिया था। अंत में इसने वि० सं० १२५९ में कालिंजर पर चढ़ाई की। इस

समय यहाँ पर राजा परमर्दिदेव राज्य करता था। पर यह न तो योग्य शासक ही था न उसमें शूरता ही थी। यह युद्ध से सदा डरा करता था। पृथ्वीराज चौहान ने इसके राज्य का बहुत सा भाग पहले ही से वि० सं० १२३९ में छीन लिया था। पर जो कुछ रह गया था उसके जाने की भी अब बारी आई। बिचारे परमार्दिदेव से कुछ न बन पड़ा। उसने कुतुबुद्दीन की अधीनता स्वीकार करनी चाही पर उसके मंत्री ने इसे ही मार डाला और वह स्वयं युद्ध करता रहा। परंतु पीछे से वह भी युद्ध में मारा गया। इससे कालिंजर पर कुतुबुद्दीन का अधिकार हो गया। इस जीते हुए प्रदेश के शासन के लिये उसने हजब्रूद्दीन हसन नामक एक मुसलमान सरदार को सूबेदार नियत कर दिया। यहाँ से कुतुबुद्दीन महोबा लेता हुआ काल्पी गया। उस समय महोबा काल्पी के राजा के अधीन था। इससे महोबा, काल्पी और इसके आस-पास का प्रदेश भी मुसलमानों के हाथ में आ गया। पर कालिंजर को हिंदुओं ने कुतुबुद्दीन के सूबेदार से छीन लिया।

७—मुहम्मद गोरी के मरने पर कुतुबुद्दीन स्वतंत्र हो गया। यह गोर के बादशाह शहाबुद्दीन (मुहम्मद गोरी) का गुलाम था। ऐबक इसकी जन्मभूमि थी। निशाँपुर के एक सौदागर ने इसे मुहम्मद गोरी के हाथ बेचा था। इसी से इसे ऐबक कहते हैं। इसका वंश गुलाम वंश कहलाया। इस वंश का तीसरा बादशाह अलतमश नाम का था। यह कुतुबुद्दीन का दामाद था। यह कुतुबुद्दीन के लड़के आरामशाह को वि० सं० १२६८ में गद्दी से उतारकर बादशाह हो गया। कालिंजर आरामशाह के पूर्व ही हिंदुओं के हाथ में चला गया था। इससे इसने वि० सं० १२६१ में फिर कालिंजर पर चढ़ाई की और वह यहाँ से बहुत सा लूट का माल ले गया।

८—इसके समय में वि० सं० १२७२ में चंगेजखाँ मुगल ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की और उसने गुलामवंश के बादशाहों के राज्य का कुछ उत्तरीय भाग ले भी लिया। अलतमश ने वि० सं० १२८८ में ग्वालियर पर चढ़ाई की। इस समय यहाँ पर सारंगदेव पड़िहार राजा राज्य करता था। हिंदुओं ने जी-जान से युद्ध किया पर हार गए। राजा सारंगदेव बड़ी बहादुरी से लड़कर खेत रहा। इसकी रानियाँ पहले ही से जलती हुई चिता में भस्म हो गई थीं। यहाँ से वह मालवा की ओर गया। भिलसा लेने के पश्चात् उसने उज्जैन को लूटा। सारंगदेव का नाम मुसलमान इतिहासकारों ने देवल लिखा है।

९—अलतमश के मरने पर उसका लड़का रुकनुद्दीन फीरोज वि० सं० १२९३ में गद्दी पर बैठा। यह सिर्फ ७ महीने राज्य कर पाया था कि इसकी बहिन रजिया बेगम को इसके सरदारों ने राजगद्दी पर बैठा दिया। पर इसे भी उन लोगों ने वि० सं० १२९७ में मार डाला और मुइज़ुद्दीन बहराम को गद्दी पर बैठाया। यह भी रजिया बेगम का भाई था। इस समय राजगद्दी देना और उससे अलग करना सरदारों के ही हाथ में था। ये लोग जिसे चाहते बात की बात में राजा से रंक कर धूल में मिला देते थे। इन्होंने वि० सं० १२९९ में बहराम को भी गद्दी से उतारकर रुकनुद्दीन के लड़के मसऊद को गद्दी दे दी। इसके समय में मुगलों के हमले हुए। इसने सिर्फ पाँच ही वर्ष राज्य किया। इतने ही में इसने निर्दयता के अनेक काम किए। इससे सरदारों ने इसे भी वि० सं० १३०३ में गद्दी से उतारकर शमसुद्दीन अलतमश के छोटे लड़के नसीरुद्दीन महमूद को बहराइच से बुलाकर गद्दी पर बैठाया। यह एक योग्य शासक निकला। इसके समय में शासन-कार्य इसका बहनोई गयासुद्दीन बलबन किया करता था।

१०—इसने वि० सं० १३०४ (दिसंबर सन् १२४७) में कालिंजर पर चढ़ाई की। इस समय यहाँ पर बघेल राजा दलकेश्वर और मलकेश्वर राज्य करते थे, और चंदेल राजा त्रैलोक्यवर्मन के अधिकार में अजयगढ़ और उसके आस-पास का प्रदेश ही बाकी रह गया था। इन दोनों भाइयों ने नसीरुद्दीन से घोर युद्ध किया, पर हार गए। इससे इसने कालिंजर को मनमाना लूटा। इसके पश्चात् इसने वि० सं० १३०७ में नरवर पर चढ़ाई की। चाहड़देव हार गया। (फरिश्ता में जाहिरदेव लिखा है।) यहाँ से वह चँदेरी होता हुआ मालवा गया। यहाँ के राजा भी इसके अधीन हो गए। इस प्रकार नसीरुद्दीन महमूद ने बुंदेलखंड का बहुत सा भाग अपने अधीन कर लिया। नसीरुद्दीन ने वि० सं० १३०४ में बघेल राजाओं को परास्त कर कालिंजर को मनमाना लूटा था। उसके जाते ही हिंदुओं ने उसे फिर भी मुसलमानों से छीन लिया। इस तरह से यह किला कई बार हिंदुओं से मुसलमानों के हाथ आया और फिर कई बार हिंदुओं के हाथ में चला गया। अंत में इसने वि० सं० १३०८ में एक बड़ी सेना लेकर कालिंजर पर चढ़ाई की। इस समय इसने दिल्ली, ग्वालियर, कन्नौज और मुलतान कोट से भी सेना बुलवाई थी। इस समय तो कालिंजर मुसलमानों के हाथ आ गया, पर फिर भी उनसे निकलकर हिंदुओं के हाथ में चला गया। इस समय से यह किला कोई अढाई सौ वर्षों तक बराबर हिंदू राजाओं के हाथ में रहा आया। अंत में वि० सं० १५५५ में रीवाँ के बघेल राजा शालिवाहन से दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी ने अपनी कन्या का विवाह करने के लिये कहा, परंतु बघेल राजा ने अपनी राजकुमारी का विवाह एक मुसलमान बादशाह के साथ करना अनुचित समझकर इस प्रस्ताव को न माना। इससे बादशाह नाराज हो गया और उसने उस पर चढ़ाई कर दी। राजा

इस युद्ध में हार गया। अंत में बादशाह यहाँ से उसके देश को उजाड़ता हुआ बाँदा से दिल्ली चला गया। दिल्ली के मुसलमान बादशाह का वैमनस्य इसके पिता राजा भोरादेव के समय से चला आ रहा था।

११—इसके पश्चात् वि० सं० १६०२ में शेरशाह ने भी चढ़ाई की। इस समय यह बुंदेलों के अधीन था। राजा भारतीचंद ने इसका मुकाबला करने के लिये अपने भाई मधुकरशाह को भेजा, पर किला बुंदेलों के हाथ से निकल ही गया। यद्यपि शेरशाह बारूद के ढेर में आग लग जाने से झुलसकर मर गया, पर किला उसके मरने के पूर्व ही अधिकार में आ गया था। मुसलमान इतिहासकारों ने राजा का नाम नहीं लिखा, न उसकी जाति ही बतलाई है। इसी से मतभेद हो रहा है। जेनरल ए० कनिंघम इसका नाम कीर्ति-सिंह चंदेल बतलाते हैं और अबुलफजल शालिवाहन कहते हैं। ओड़छा स्टेट गजेटियर में यह भी लिखा है कि कालिंजर का किला निकल जाने पर सलेमनाबाद (शेरशाह के लड़के सलीमशाह के नाम पर बसाया हुआ आधुनिक जतारा का प्राचीन नाम) पर आक्रमण कर उसे सलीमशाह से छीन लिया।

१२—नसीरुद्दीन महमूद ने कालिंजर के सिवा बुंदेलखंड का बहुत सा भाग अपने अधीन कर लिया था। चंदेरी और मालवा भी वि० सं० १३०८ में इसके हाथ आ गए थे। पर अजयगढ़ और उसके आस-पास का प्रदेश अब तक चंदेलों के पास ज्यों का त्यों बना हुआ था। यह बिना संतान के मरा और गयासुद्दीन बलबन इसका मंत्री ही वि० सं० १३२३ में बादशाह हो गया। इस समय मालवा आदि प्रदेशों ने फिर भी स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया, परंतु बलबन ने उन्हें दबा दिया। इसके पश्चात् कोई योग्य शासक इस वंश में न हुआ। अंतिम बादशाह कैकोबाद को इसके

मंत्री जलालुद्दीन खिलजी ने मार डाला और वह स्वयं वि० सं० १३४५ में बादशाह बन बैठा।

१३—जलालुद्दीन खिलजी के समय से खिलजी वंश चला। इसने वि० सं० १३५० में माँड़ो पर चढ़ाई की और इसे लूटकर दिल्ली वापस चला गया। इसके पश्चात् इसके भतीजे अलाउद्दीन खिलजी ने इसी वर्ष भिलसा पर चढ़ाई की और वह बहुत सा लूट का माल ले गया। जलालुद्दीन खिलजी को अलाउद्दीन ने वि० सं० १३५२ में मार डाला और वह स्वतः बादशाह हो गया। इसने मालवा पर अपना दृढ़ अधिकार करके दक्षिण पर भी चढ़ाई की और महाराष्ट्र देश के यादव वंश के राजा रामदेव से एलिचपुर ले लिया। इसने वि० सं० १३६० में चित्तौड़ पर चढ़ाई की। यद्यपि राजपूतों ने बड़ी वीरता से अपना बचाव किया परंतु हार गए। इस समय भी भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशों के शासकों ने मिलकर मुसलमानों का सामना करने का कभी निश्चय न किया। यादव राजा रामचंद्र को अलाउद्दीन की सेना ने दूसरी बार के आक्रमण में हरा दिया और उसे कैद कर लिया। अलाउद्दीन के बुढ़ापे में मंत्रियों में झगड़ा हो गया। इसी समय चित्तौड़ के राजपूतों को हम्मीर ने स्वतंत्र कर दिया और दक्षिण के यादवों ने मुसलमानों को मार भगाया। ऐसे ही गुजरात भी स्वतंत्र हो गया। अलाउद्दीन को उसके मंत्री मलिक काफूर ने संवत् १३७३ में मरवा डाला और उसके लड़के खिजरखाँ और शादी खाँ की आँखें निकलवा डालीं। यह मुबारक को भी मारना चाहता था, इससे सिपाहियों ने इसी को मार डाला और मुबारक को बादशाह बना दिया। इसे वजीर खुशरू ने वि० सं० १३७७ में मार डाला और वह स्वतः बादशाह हो गया। यह सिर्फ चार ही महीने राज्य कर पाया था कि इसे गाजी मलिक तुगलक ने मार डाला। फिर यही गाजी मलिक तुगलक

गयासुद्दीन तुगलक का नाम धारण कर वि० सं० १३७८ में बादशाह हो गया।

१४—दमोह जिले के बटियागढ़ नामक स्थान के किले के महल में एक शिलालेख मिला है। यह वि० सं० १३८१ का है। इसमें गयासुद्दीन का नाम आया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी तरफ से यहाँ पर कोई सूबेदार रहा होगा और उसी ने यह महल बनवाया होगा। वि० सं० १३८२ में जौनखाँ ने अपने पिता गयासुद्दीन को मार डाला और मुहम्मद तुगलक नाम धारण कर बादशाह हो गया। किसी किसी ने इसका नाम महमूद भी लिखा है।

१५—मुहम्मद तुगलक एक पागल बादशाह था। इसके मन में जो आता था वही कर डालता था। यह अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि और देवगिरि से दिल्ली ले गया। इस राजधानी-परिवर्तन का कारण ऐसा बतलाते हैं कि इसका एक सरदार बागी होकर सागर के राजा के पास भाग आया। जब इसकी फौज ने सागर पर आक्रमण किया तब राजा देवगिरि भाग गया। इसे सर करने के लिये देवगिरि पर बादशाह ने स्वतः चढ़ाई की और इसकी प्राकृतिक शोभा देख इसे राजधानी बनाया और उसका नाम दौलताबाद रखा। यह बड़ा निर्दय भी था। इसी के समय में दक्षिण में विजयनगरम् और बहमनी नाम के दो नये राज्य स्थापित हो गए।

१६—दमोह जिले के बटियागढ़ नामक स्थान में वि० सं० १३८५ का एक शिलालेख मिला है। इसमें मुहम्मद तुगलक का जिक्र है। इस समय इसकी ओर से जुल्चीखाँ नाम का सूबेदार चंदेरी में रहता था और इस सूबेदार का नायक बटियागढ़ में रहता था। उस समय इसे बटिहापुर (बटिहाडिम) भी कहते थे और दिल्ली जोगनीपुर कहाती थी। मुहम्मद तुगलक के

बाप गयासुद्दीन के समय का भी एक लेख यहीं पर मिला है। ऐसे ही सुरोर नामक ग्राम में, जो जुकोही स्टेशन से १४ मील है, मुइज़ुद्दीन महमूद के समय का एक शिलालेख वि० सं० १३८५ जेठ सुदी ११ का मिला है। यह भी एक सतीचौरा है।

१७—मुहम्मद तुगलक के पश्चात् वि० सं० १४०७ में फीरोज तुगलक बादशाह हुआ। वि० सं० १४१३ में सागर जिले के दुलचीपुर ग्राम में एक सती हो गई थी। उसी के स्मारक पत्थर पर सुल्तान फीरोजशाह के राज्य का उल्लेख है। यह ९० वर्ष का होकर वि० सं० १४४५ में परलोक को सिधारा। इसके मरने पर इसके नाती फतेहखाँ का लड़का गयासुद्दीन, और जफरखाँ का लड़का अबूबकर क्रमानुसार बादशाह हुए, किंतु मार डाले गए। इनके पश्चात् नसीरुद्दीन महमूद वि० सं० १४४७ में बादशाह हुआ। इसके राज्य में अराजकता सी फैल गई। कहीं पर मुसलमान सूबेदार और कहीं हिंदू राजा स्वतंत्र बन बैठे। मालवा का सूबेदार दिलावरखाँ गोरी स्वतंत्र हो गया। इसने चंदेरी पर चढ़ाई की और बुंदेलखंड का दक्षिणी और पश्चिमी भाग भी अपने अधीन कर लिया। इससे बुंदेलखंड के अधिकांश भाग पर से दिल्ली का आधिपत्य फिर भी उठ गया। ग्वालियर में नरसिंहराय राजा बन बैठा। यह कटेहर का राजा था।

१८—तुगलक घराने के शासकों के समय में बुंदेलखंड के पश्चिम का भाग, जो धसान नदी के पश्चिम में है, पहले दिल्ली के शासकों के हाथ में चला गया था। इसके पश्चात् सागर और दमोह के जिले भी इन्हीं के अधीन हो गए। परंतु अजयगढ़ और कालिंजर तथा इनके आस-पास का प्रदेश चंदेलों के ही हाथ में रहा। जब मालवा का शासक दिलावरखाँ गोरी तुगलक वंश के बादशाह नसीरुद्दीन मुहम्मद के राजत्व-काल में दिल्ली के बादशाह

से स्वतंत्र हो गया तब जो प्रदेश दिल्ली के अधिकार में था वह सब मालवा के अधिकार में चला गया।

१९—कालपी और महोबे का प्रांत पहले मालवा प्रांत में न था। यहाँ पर दिल्ली की ओर से मुहम्मदखाँ नाम का सूबेदार था। जब तुगलक वंश की शक्ति क्षीण हो गई तब यह मुहम्मदखाँ स्वतंत्र बन बैठा। जौनपुर का शासक ख्वाजाजहाँ उर्फ शाह शर्की भी इसी प्रकार स्वतंत्र हो गया। इसके मरने पर मालिक वासिल मुबारिकशाह और इसके पश्चात् इबराहिमशाह राजा हुए। पर मालवा के शासक हुशंगशाह गोरी के सामने इसकी (मुहम्मदखाँ) एक भी न चली और हुशंगशाह ने कालपी पर आक्रमण कर उसे ले लिया। इससे कालपी और इसके निकट का प्रांत भी मालवा के अधिकार में चला गया।

२०—इसी गड़बड़ के समय वि० सं० १४५५ में भारतवर्ष पर तैमूर का आक्रमण हुआ। इस आक्रमण से गड़बड़ी और भी बढ़ गई। फिरोजशाह तुगलक के पश्चात् का बादशाह महमूद (दूसरा) दक्षिण की ओर भाग गया और तैमूर लूट मार करके वापस चला गया। इस समय सारे देश में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत ही सिद्ध हो रही थी। राज्य-व्यवस्था के नियमों को हिंदू लोग भूल गए थे और मुसलमान लोग उन्हें जानते ही न थे। एक के बाद दूसरी मुसलमानी सेना उत्तर भारतवर्ष में लूट-मार करने आती थी। पहले हिंदू शासक थे, इससे उनका राज्य लूटा जाता था। अब मुसलमानों का लूटा जाने लगा। चंगेजखाँ और तैमूर इन दोनों ने तो मुसलमानी राज्य ही लूटे थे, क्योंकि इस समय यहाँ कोई बड़ा हिंदू राज्य रह ही न गया था। अलबत्ता कालिंजर और अजयगढ़ में अब तक चंदेलों का ही राज्य चला आ रहा था। इसके सिवाय ग्वालियर में १४५८ में नरसिंहराव का लड़का [illegible]

राज्य करता था। इसके पूर्व नरसिंहराय कटेहर का राजा था। इसने भी तैमूर की चढ़ाई के समय ग्वालियर अपने अधिकार में कर लिया था, परंतु ग्वालियर में प्राप्त शिलालेखों में वि० सं० १४५९ में वीरमदेव का नाम मिलता है। वीरमदेव के पश्चात् उधरनदेव और धौलसाप के नाम मिलते हैं। वीरमदेव संभवतः वीरसिंहदेव का लड़का हो। इस पर मुल्लयकबालखाँ ने चढ़ाई की। तैमूर के जाने के बाद यह दिल्ली का बादशाह हो गया था और महमूद दूसरे के नाम से बादशाहत करता था। ग्वालियर का किला बहुत ही मजबूत था। इससे वह आसपास के इलाके को लूट-पाटकर दिल्ली चला गया और वहाँ से फिर भी सेना लेकर आया, पर अंत में हारकर वापस चला गया।

२१—वि० सं० १४६१ में ग्वालियर, झलवार और श्रीनगर के राजाओं की सम्मिलित सेना ने मुल्लयकबालखाँ पर चढ़ाई की। पर ये लोग इटावा के पास हार गए और एक बड़ी सी रकम देकर इन्होंने अपना पिंड छुड़ाया। महमूद वि० सं० १४६९ में मरा। इसके मरने पर दौलतखाँ लोधी बादशाह बन गया। इसने कटेहर के राजा नरसिंह पर चढ़ाई की। इस समय नरसिंहराय आदि जमींदारों ने इसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इसी समय इबराहिमशाह शर्की ने कालपी के नवाब कादरखाँ पर चढ़ाई की। यह मुहम्मदखाँ का लड़का था। पर दौलतखाँ के पास अधिक सेना न थी, इससे यह सेना लाने के लिये दिल्ली चला गया। इस बीच खिजरखाँ सैयद ने अपनी पूर्ण तैयारी कर ली थी। इससे यह भी दिल्ली की ओर आया और इसने दौलतखाँ को वि० सं० १४७३ में (४ जून सन् १४१६) कैद कर लिया। यह मुलतान का सूबेदार था। खिजरखाँ सैयद ने वि० सं० १४७८ में कोटले पर चढ़ाई की। यहाँ से वह ग्वालियर की ओर आया। यहाँ के राजा गनपतदेव से कर

वसूल कर दिल्ली चला गया। वहाँ जाकर वह परलोक को सिधारा। इस वंश में सैयद मुबारिक, सैयद महमूद और सैयद अलाउद्दीन नाम के बादशाह हुए हैं। अंतिम बादशाह अलाउद्दीन को लाहौर के सूबेदार बहलूल लोधी ने वि० सं० १५०८ में गद्दी से उतार दिया और उससे बादशाहत छीन ली।

२२—बहलूल लोधी ने जौनपुर के शासक से संधि कर ली, पर पीछे से उसने इसके इलाके पर धावा कर दिया। इस प्रकार कभी तो जौनपुर का शासक दिल्ली पर चढ़ाई करता था और कभी बहलूल उसके राज्य पर आक्रमण कर बैठता था। अंत में वि० सं० १५३५ में हुसेनशाह शर्की ग्वालियर के राजा कीर्तिसिंह के पास आया। इसने जौनपुर के राजा की अच्छी सहायता की। इसने उसे कई लाख रुपए, हाथी, घोड़े और लड़ाई के सामान दिए तथा वह कालपी तक पहुँचाने के वास्ते भी आया। इधर बहलूल लोधी भी हुसेनशाह शर्की के भाई इबराहिम शर्की से इटावा लेकर कालपी की ओर आया। यहाँ पर कटेहर के राजा राय त्रिलोकचंद ने बहलूल को नदी के एक ऐसे घाट से उतार दिया कि शाह शर्की को इसकी खबर तक न लगी। इससे बहलूल ने जौनपुर के शासक को बात की बात में हरा दिया। इस समय कालपी के समीप का बुंदेलखंड का भाग मालवा के अधिकार में न था, वरन् जौनपुर के अधिकार में चला गया था। यही भाग अब बहलूल के अधिकार में चला आया।

२३—मालवा का अधिकांश भाग हुशंगशाह के अधिकार में था। वह दिलावरखाँ का लड़का था। दिलावरखाँ पहले दिल्ली का सूबेदार था, पर वि० सं० १४५८ में दिल्ली से स्वतंत्र हो गया। हुशंग-शाह ने कालपी पर अधिकार कर लिया था, पर यह पीछे से जौनपुर के अधिकार में और जौनपुर से वि० सं० १५३५ में बहलूल के

अधिकार में चला गया। हुशंगशाह वि० सं० १४९३ में मरा। इसके दो वर्ष बाद मालवा खिलजियों के अधिकार में चला गया। इस वंश का पहला राजा महमूदशाह था। फरिश्ता से ऐसा पता लगता है कि महमूदशाह ने चंदेरी को अपने अधिकार में कर लिया था। इसके लड़के का नाम गयासशाह (गयासुद्दीन) खिलजी था। इसके राजत्व-काल का एक फारसी शिलालेख दमोह जिले के बटियागढ़ ग्राम में मिला है। उसमें लिखा है कि गयासशाह ने दमोह के किले की दीवार हिजरी सन् ८८५, अर्थात् वि० सं० १५३७, में बनवाई। यह वि० सं० १५३२ में तख्त पर बैठा और सं० १५५७ तक राज्य करता रहा। उस समय के कई सतीचौरों में इसका नाम उत्कीर्ण है। गयासशाह के लड़के का नाम नासिरशाह (नसी-रुद्दीन) था और उसका लड़का महमूदशाह (दूसरा) था। इसके समय का भी एक शिलालेख दमोह में मिला है। इसके मुसल-मान सरदारों ने जब इसे तख्त से उतारना चाहा तब मेदिनीराय ने इसकी बड़ी सहायता की, पर पीछे से इसने उन्हीं सरदारों के कहने से मेदिनीराय पर घात लगाया। इससे वह साथ छोड़कर चला गया। पीछे से गुजरात के बहादुरशाह ने इसे तख्त से उतारकर मरवा डाला और मालवा को गुजरात में मिला लिया। इस तरह वि० सं० १५८१ में खिलजी घराने से मालवा प्रदेश निकल गया।

२४—फीरोज तुगलक ने फर्हतुल्मुल्क को गुजरात का सूबेदार बनाया था, पर वह नसीरुद्दीन महमूद तुगलक के समय बागी हो गया। इससे मुजफ्फरखाँ सूबेदार नियत किया गया, परंतु यह तैमूर-लंग की चढ़ाई के समय स्वतंत्र हो गया। इसके १३० वर्ष बाद बहादुरशाह तख्त पर बैठा। इसने वि० सं० १५९१ में मालवा पर चढ़ाई की और उसे अपने राज्य में मिला लिया। इस समय राय-सिन में लोकमानसिंह राज्य करता था। इसके भाई का नाम

सिलहदी (शिलादित्य) और भतीजे का नाम भूपत था। जिस समय बहादुरशाह ने रायसिन पर चढ़ाई की उस समय शिलादित्य की रानी दुर्गावती (यह चित्तौर के राना साँगा की कन्या थी) सात सौ स्त्रियों सहित चिता में जल मरी और राजा लोकमानसिंह भी अपने अन्य राजपूतों के साथ खेत रहे। बहादुरशाह ने कालपी के सूबेदार आलमखाँ को रायसेन, भिलसा और चंदेरी का भी सूबेदार बना दिया। यह बहादुरशाह के साथ आया था।

२५—सैयद अलाउद्दीन के समय बहलूल लोधी सरहिंद का सूबेदार था। जब राज्य-व्यवस्था बिगड़ गई और बादशाहत की अवनति होने लगी तब हमीदखाँ वजीर ने बहलूल को सरहिंद से बुलाया। यह आते ही गद्दी पर बैठा। इसके ९ लड़के थे। अपनी वृद्धावस्था के समय इसने अपनी रियासत अपने पुत्रों में बाँट दी। बारबिक को जौनपुर, कड़ा और मानिकपुर, आलमखाँ को बहराइच, अपने भतीजे शेखजादा मुहम्मद को लखनऊ और कालपी, आजम हुमायूँ (बयाजीद का लड़का) और शाहजादा निजामखाँ को दुआब के कई जिले दे दिए और इसी को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

२६—बहलूल ने अपने लड़के बारबिक को जौनपुर दिया था। पर उस समय वहाँ पर हुसेनशाह शर्की राजा था। इसकी परवरिश के वास्ते सिर्फ ५ लाख रुपए सालाना आमदनी का इलाका हमेशा के वास्ते दे दिया गया। यहाँ से बहलूल कालपी की ओर आया। इसे अपने अधिकार में करके अजीम हुमायूँ को दे दिया। पीछे से इसने ग्वालियर पर भी चढ़ाई की पर राजा से बहुत सा रुपया नजराना लेकर वह चला गया। इस समय राजा मानसिंह तोमर ग्वालियर में राज्य करता था।

२७—बहलूल के मरने पर सिकंदर बादशाह हुआ। इसने अपने भतीजे आजम हुमायूँ से कालपी ले ली और उसे मुहम्मदखाँ

लोधी को दे दिया। यहाँ से यह ग्वालियर की ओर वि० सं० १५४७ में आया। इस समय भी मानसिंह तोमर का राज्य था। इसने वि० सं० १५५८ में धौलपुर के विनायकदेव पर चढ़ाई की, पर राजा भागकर ग्वालियर चला आया। इससे सिकंदर ने ग्वालियर पर दुबारा चढ़ाई की। अंत में राजा ने संधि कर ली और राजा विनायक-देव को धौलपुर दे दिया गया। इसके पाँच लड़के थे। इबराहीम और जलालखाँ में इसके मरने पर गद्दी के लिये झगड़े हुए। इस समय अजीम हुमायूँ कालिंजर जीतने में लगा हुआ था। जलालखाँ ने अपने लड़के-बच्चों को कालपी के किले में रख दिया और आप जौनपुर का राजा हो गया। वि० सं० १५७५ में इबराहीम ने इसे परास्त करने के लिये सेना भेजी, पर यह ग्वालियर की ओर भाग गया। इस समय यहाँ पर मानसिंह का लड़का विक्रमाजीत राज्य करता था। शाही सेना से सामना होने पर राजा की हार हो गई। जलालखाँ गढ़ाकोटा जा रहा था, पर रास्ते में गोंड़ों ने पकड़कर इसे बादशाह के पास भेज दिया। वहाँ यह मरवा डाला गया। इसके पश्चात् इसने अजीम हुमायूँ शेरवानी को, जो ग्वालि-यर की चढ़ाई में भेजा गया था, वापस बुलाकर मरवा डाला। इस प्रकार उसने अफसरों को तंग कर डाला। अंत में दौलतखाँ ने बाबर बादशाह को इससे लड़ने को बुलवाया।

२८—बाबर ने वि० सं० १५८३ में इबराहीम लोधी को पानीपत के मैदान में हराकर दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया, परंतु चित्तौड़ के राजा राना साँगा को दिल्ली की बादशाहत पर बाबर का अधिकार हो जाना अच्छा न लगा। इससे इसने एक बड़ी राजपूत सेना साथ लेकर बाबर पर चढ़ाई कर दी। पर राजपूत हार गए। यह युद्ध भी इसी साल हुआ। इस युद्ध में ग्वालियर के राजा विक्रमाजीत, रायसेन के शिलादित्य, चंदेरी के मेदिनीराय

और गागरौन तथा कालपी के राजा भी गए थे। कहते हैं कि शिलादित्य राणा से विश्वासघात कर बाबर से मिल गया था। यह राना की सेना का हरावल था। (टॉड-राजस्थान)

२९—बाबर ने वि० सं० १५८७ में चंदेरी के राजा मेदिनी-राय पर चढ़ाई की। राजा ने जौहर व्रत किया। इससे सूना किला और टूटी-फूटी मसजिदें ही बाबर के हाथ लगीं। यही हाल रायसेन, सारंगपुर और भिलसे का भी हुआ। अंत में यह मालवा का राज्य अहमदशाह को देकर ग्वालियर चला आया। यहाँ पर उसने किला, मानसिंह के बनवाए महल और बगीचा देखा। इसके बाद उसने शमसुद्दीन अलतमश की बनवाई, पर बे-मरम्मत टूटी-फूटी, मसजिदें देखीं और यहीं पर नमाज पढ़ी।

३०—मुसलमान शासकों ने हिंदुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाना आरंभ कर दिया था, परंतु बुंदेलखंड में इसका अधिक जोर न रहा। ब्राह्मणों ने हिंदू समाज को मुसलमानों के संसर्ग से बचाने के लिये बड़े बड़े नियम बनाए। कबीर, रामानंद, नानक और चैतन्य इत्यादि धर्मगुरु इसी समय हुए। कविवर विद्यापति ठाकुर और चंडीदास भी इसी काल के हैं। पठानों का सब शासन बादशाह के ही हाथ में रहता था। उसके सामने किसी भी मंत्री की कुछ न चलती थी। वह सदा अपने इच्छानुसार ही कार्य किया करता था।

अध्याय १०

मुगलों का राज्य

१—पानीपत और सिकरी के युद्ध के अनंतर बाबर दिल्ली का बादशाह हो गया। परंतु वह अधिक दिन तक राज्य न कर सका और विक्रम संवत् १५८७ में उसकी मृत्यु हो गई। बाबर के पश्चात्

उसका बड़ा लड़का हुमायूँ दिल्ली के तख्त पर बैठा। हुमायूँ के कामराँ, हिंदाल और अस्करी—ये तीन भाई थे। इन्हें बाबर के मरने पर हुमायूँ ने अपने राज्य का भाग दिया। परंतु इनमें झगड़े हो गए और प्रांतीय शासक इस समय में स्वतंत्र बनने लगे। इस समय गुजरात का शासक बहादुरशाह था। यह स्वतंत्र हो गया था और इसने मालवा अपने अधिकार में कर लिया था, पर हुमायूँ ने इसे हराकर मालवा अपने अधिकार में कर लिया। इसके साथ बुंदेलखंड का पश्चिमी भाग भी, जो बहादुरशाह के अधिकार में था, अब हुमायूँ के अधिकार में आ गया। इसने कालिंजर पर भी चढ़ाई की थी, किंतु किला फतह करने के पूर्व ही इसे चला आना पड़ा। हुमायूँ को फिर बिहार की ओर अपनी सेना लेकर जाना पड़ा, क्योंकि बिहार का शासक शेरखाँ (जिसे शेरशाह भी कहते हैं) वहाँ पर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर चुका था। इसकी राजधानी बिहार के सहसराम नामक स्थान में थी। जब हुमायूँ अपनी सेना लेकर बिहार की तरफ गया तब गुजरात के बहादुरशाह ने फिर अपना पुराना राज्य हुमायूँ के हाथ से ले लिया और वह स्वतंत्र बन गया। शेरशाह ने संवत् १५९६ में बक्सर की लड़ाई में हुमायूँ को हरा दिया। इससे उसे वहाँ से भागना पड़ा। शेरशाह ने भी अपनी फौज लेकर हुमायूँ का पीछा किया और उसे कन्नौज की लड़ाई में फिर भी हराया। फिर दिल्ली आकर वह तख्त पर बैठा। यह सूर जाति का था। इससे इसे शेरशाह सूर भी कहते हैं।

२—हुमायूँ ने कालिंजर पर आक्रमण किया था। उस समय कालिंजर के चंदेल राजा ने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार कर ली थी, इससे हुमायूँ ने फिर किले को नहीं घेरा।

३—संवत् १५९९ में शेरशाह ने मालवा पर अधिकार कर लिया। इससे वह सब प्रदेश, जो गुजरात के शासक के पास था,

शेरशाह के अधिकार में आ गया। इसके बाद संवत् १६०० में उसने राजसीन (रायसेन) पर भी चढ़ाई की। यह इसके अधिकार में तो आ गया पर इसने किले के भीतर के सिपाहियों को मरवा डाला। मालवा लेने के पश्चात् शेरशाह ने चित्तौड़गढ़ को अपने अधिकार में किया। फिर विक्रम संवत् १६०० में शेरशाह ने कालिंजर पर धावा किया। राजसीन (रायसेन) का किला तो शेरशाह के अधिकार में आसानी से आ गया था, क्योंकि किले के अधिपति ने शेरशाह की बड़ी फौज से सामना करना ठीक न समझ उसे किले का अधिकार दे दिया और शेरशाह ने किले के सिपाहियों के साथ अच्छा व्यवहार करने का वचन दिया। परंतु जब शेरशाह किले के भीतर घुसा तब उसने अपना वचन न निबाहा और विश्वासघात करके सब सिपाहियों को अचानक मरवा डाला था। इसी कारण बुंदेलों ने कालिंजर के आक्रमण के समय शेरशाह से शक्ति भर लड़ने का निश्चय कर लिया। मुसलमानी इतिहासकार अहमद यादगार लिखता है कि शेरशाह ने कालिंजर पर आक्रमण इसलिये किया था कि कालिंजर में वीरसिंह नामक बुंदेला छिपा था। वह शेरशाह का दुश्मन था। कालिंजर के लिये बुंदेलों ने खूब लड़ाई की, परंतु शेरशाह ने कालिंजर ले ही लिया और मधुकरशाह हार गया। अहमद यादगार का लिखना असत्य है, क्योंकि वीरसिंहदेव राजा मधुकरशाह के पुत्र थे। ये वि० सं० १६६२ में अपने पिता के बाद गद्दी पर बैठे थे। यह भी लिखा मिलता है कि कालिंजर में इस समय कीर्तिसिंह चंदेले का राज्य था; पर यह ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि अबुलफजल ने लिखा है कि रानी दुर्गावती गढ़ के राजा शालिवाहन की लड़की थी। कालिंजर का किला शेरशाह के मरने के पूर्व ही मुसलमानों के अधिकार में आ गया। बारूद के ढेरों में आग लग जाने से शेरशाह और उसके कई सरदार झुलस गए थे।

४—शेरशाह के मरने पर उसका लड़का इस्लामशाह बादशाह हुआ। कालिंजर के युद्ध में यह भी अपने पिता के साथ था। वि० सं० १६०२ में यह अपने पिता का धन चुनार से ग्वालियर लाया और कुतुब आदि लोगों को, राजविद्रोह के अपराध में, पकड़कर इसने इसी किले में कैद किया। वि० सं० १६०२ में यह फिर यहाँ आया था। इसी के सामने आटेमसखाँ (?) ने अपने पिता का वैर निकालने के लिये मालवा के शुजाअतखाँ को कटार मार दी थी। यह वि० सं० १६१० में मरा। इस समय उसका पुत्र बहुत छोटा था। इसे मुहम्मद आदिलशाह ने मार डाला। यह इस्लामशाह का भाई था। पश्चात् मुहम्मद आदिलशाह बादशाह हो गया। इसके समय में बादशाहत का सब काम हेमचंद्र सरदार करता था। यह जाति का भार्गव था। परंतु राजघराने में इस समय झगड़े हो गए और इब्राहीम सूर बादशाह बन गया। इब्राहीम सूर को सिकंदर सूर ने गद्दी से उतार दिया। इसी समय हुमायूँ फारस के बादशाह से सहायता लेकर भारतवर्ष में आया और सिकंदर सूर को सरहिंद की लड़ाई में हराकर फिर दिल्ली का बादशाह विक्रम संवत् १६१२ में बन गया। हुमायूँ के मरने पर उसका लड़का अकबर बादशाह हुआ। इस समय यह १४ वर्ष का था।

५—मुहम्मद आदिलशाह के दीवान हेमचंद्र के पास बहुत सी सेना थी। उसी के सहारे इसने बंगाल और बिहार पर अधिकार कर लिया और हुमायूँ के मरने पर उसने दिल्ली पर भी चढ़ाई की।

६—इस समय दिल्ली में हुमायूँ का लड़का अकबर बादशाह बना दिया गया था। अकबर का एक बड़ा मददगार बहराम नाम का सरदार था। अकबर ने बहराम को साथ लेकर पानीपत में हेमचंद्र का सामना किया। पानीपत का युद्ध विक्रम संवत् १६०२

में हुआ। अचानक हेमचंद्र की आँख में एक तीर लग गया जिससे उसको बड़ी चोट आई और उसकी सेना तितर-बितर हो गई। इस युद्ध में हेमचंद्र कैद कर लिया गया।

७—पानीपत के युद्ध के पश्चात् अकबर मुगल बादशाहत का मालिक हो गया। बहराम राज-काज में बहुत हस्तक्षेप करता था। इससे अकबर ने उसके हाथ से राज्य का सब काम ले लिया और जब बहराम ने बलवा किया तब उसे हरा दिया। आदिलशाह का लड़का शेरशाह (दूसरा) जौनपुर पर अधिकार किए बैठा था। अकबर ने उसे हराकर जौनपुर पर भी कब्जा कर लिया। मालवा में उस समय बाजबहादुर नाम का एक मुसलमान शासक था। वह स्वतंत्र होने का प्रयत्न कर रहा था। परंतु अकबर ने उसे वि० सं० १६१८ में हराकर मालवा भी अपने अधिकार में कर लिया। ऊपर कहा जा चुका है कि इस समय मालवा में बुंदेलखंड का पश्चिमी भाग भी सम्मिलित समझा जाता था। इससे यह भी मालवा के साथ अकबर के राज्य में चला गया।

८—वि० सं० १६२४ में अकबर गागरौन आया। इसके आने का हाल सुनते ही सुलतान मुहम्मद मिरज़ा के लड़के, जो माँडो के किले में रहते थे, डरकर भाग गए। इससे अकबर शहाबुद्दीन अहमद निशापुरी को सूबेदारी पर रख चित्तौड़ चला गया।

९—इस समय बुंदेलखंड के पूर्व में बघेलों का राज्य बढ़ रहा था। इनके इतिहास से जाना जाता है कि ये लोग वि० सं० १२९० के लगभग कालिंजर के समीप मड़फा नामक ग्राम में पश्चिम से आकर बसे थे। यह ग्राम कालिंजर के ईशान में १८ मील पर है। कालिंजर के निकट बघेलवाड़ी और बघेलन नाम के दो ग्राम हैं। ये दोनों नाम संभवतः बघेलों के नाम पर से ही पड़े हैं। [illegible]

जाता है कि ये लोग गुजरात से आए थे और इनके आदि-पुरुष का नाम व्याघ्रदेव[१] था।

---

(१) बघेल शब्द की व्युत्पत्ति व्याघ्रदेव से ही हुई है ऐसा लोगों का कथन है, पर रीवाँ स्टेट गजेटियर और टॉड-राजस्थान में लिखा है कि ये लोग अनहिलवाड़ा पाटन के चालुक्य या सोलंकी क्षत्रिय राजाओं की एक शाखा हैं। इनकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई जाती है कि उत्तरीय गुजरात में चावड़ क्षत्रिय राज्य करते थे। इन्हें कल्यान के भुवाड़ राजा ने वि० सं० ७६६ के लगभग मार भगाया। इससे राजा की गर्भवती रानी भी, अपने भाई के साथ, जंगल की ओर भाग गई। वहाँ उसे पुत्र हुआ। रानी ने इसका नाम वनराज रखा। इसी वनराज ने अनहिलवाड़ा बसाया और इसी से चावड़ वंश चला। इस वंश में वि० सं० ९९८ तक राज्य रहा। पीछे से चालुक्य लोगों ने इन्हें मार भगाया।

चावड़ वंश के अंतिम राजा का नाम सामंतसिंह था। इसकी बहिन चालुक्यराज को ब्याही थी। इसके लड़के का नाम मूलराज था। इसने अपने चचा को मारकर स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। इस वंश में वि० सं० १२९९ तक राज्य रहा। चालुक्य राजा कुमारपाल के राजत्व-काल में इसकी मौसी का पुत्र अरुनोराज हुआ। इसे राजा कुमारपाल ने सामंत की पदवी से विभूषित किया और व्याघ्रपल्ली या बघेला जागीर में दिया। इसी ग्राम में बसने के कारण अरुनोराज का वंश बघेल कहलाया। इसके पिता का नाम धवल था।

अरुनोराज के लड़के का नाम लवनप्रसाद था। यह गुजरात के राजा अजयपाल के समय भेलसा और उदयपुर का सूबेदार था। यह वि० सं० १२२९ से १२३३ तक इस पद पर रहा। पर पीछे से यह भीम दूसरे का मंत्री हो गया इसे धवलगढ़ जागीर में मिला था। यह ग्राम बघेल से ३० मील नैऋ॔त्य में है।

लवनप्रसाद का विवाह मदनरजनी से हुआ था। इससे वीर धवल नाम का पुत्र हुआ। इसने सुलतान मुइज्जुद्दीन मुहम्मद गोरी से युद्ध किया था। इसके वीरम, वीसलदेव और प्रतापमल्ल नाम के तीन पुत्र हुए। यह वि० सं० १२७६ से १२९५ तक रहा। इसके मरने पर इन लड़कों में वि० सं० १२९५ में युद्ध हो गया। इसमें वीसलदेव की जीत हुई। किंतु इससे

१०—व्याघ्रदेव[1] वि० सं० १२९० में कालिंजर के पास मड़फा में आया। इसका विवाह मकुंददेव चंद्रावत की कन्या सिंधुरमती से हुआ था। इससे इसके ५ लड़के हुए। ज्येष्ठ पुत्र कर्णदेव ने टोंस (तमसा) नदी के आस-पास का प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इसका विवाह रतनपुर के राजा सोमदत्त की कन्या पद्म-कुँवरि से हुआ था। इसे बाँधोगढ़ दहेज में मिला था।

११—बघेल राजा वीरसिंहदेव का विवाह मोहनसिंह कछवाहे की कन्या के साथ हुआ था। इससे और सिकंदर लोधी से बहुत बनती थी। यह प्रायः उसके दरबार में जाया करता था। इसने राजगोंड़ राजा अमानदास उर्फ संग्रामशाह को अपने यहाँ आश्रय दिया था। वीरसिंहदेव इसे बहुत चाहता था।

१२—बघेल राजा वीरभानदेव हुमायूँ का समकालीन है। इसका विवाह गोपालपुर के राव सुल्तानसिंह कछवाहे की कन्या के साथ हुआ था। जब शेरशाह ने हुमायूँ को भगाया तब बघेल राजा वीरभानदेव ने हुमायूँ की स्त्री आदि को अपने यहाँ रखा था,

---

और भीम दूसरे के उत्तराधिकारी त्रिभुवनपाल से वैमनस्य हो गया। इससे वीसलदेव उसे गद्दी से उतार स्वयं राजा हो गया। इसके पश्चात् अर्जुनदेव, सारंगदेव और कर्णदेव राजा हुए। कर्णदेव ने वि० सं० १३५४ तक नाम मात्र के लिये राज्य किया। इसे वि० सं० १३५५ में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के भाई उलगखाँ ने युद्ध में हरा दिया। इससे कर्णदेव देवगिरि के राजा रामदेव के यहाँ चला गया और वहीं रहने लगा। यह वि० सं० १३६१ में परलोक को सिधारा।

(१) बघेलों का कथन है कि वीरधवल के लड़के का नाम व्याघ्रदेव था, पर इतिहास में वीरम मिलता है। यह वीरधवल का ज्येष्ठ पुत्र है। यह वीसलदेव से युद्ध में हारकर भागा होगा।

टॉड साहब का कथन है कि व्याघ्रदेव वि० सं० १२०० में आया था। इससे यह कलचुरि राजा नरसिंहदेव का समकालीन होता है, पर यह इतिहासों से सिद्ध नहीं होता।

पर किसी भी मुसलमान इतिहासकार ने यह बात नहीं लिखी। जब शेरशाह मरा तब रीवाँ, जो बघेलखंड की राजधानी है, जलालखाँ नाम के एक शासक के अधीन था। किंतु कालिंजर और बाँधोगढ़ दोनों बघेल राजा रामचंद्र के ही अधिकार में थे। कालिंजर को राजा रामचंद्र ने शेरशाह के दामाद अलीखाँ से लिया था। कोई कोई इसे बिजलीखाँ भी कहते हैं। अलीखाँ कालिंजर का सूबेदार था। बघेल राजा रामचंद्र वीरभान का पुत्र है। यह वि० सं० १६१२ में गद्दी पर बैठा था। इसके गद्दी पर बैठते ही इबराहीम सूर ने चढ़ाई की, पर वह युद्ध में हार गया। किंतु बघेल राजा रामचंद्र ने इसके साथ बहुत ही अच्छा व्यवहार किया और इसे अतिथि के समान अपने यहाँ रखा। इसने वि० सं० १६२६ में कालिंजर और उसके आस-पास का बहुत सा प्रदेश अकबर को दे दिया। यह किला इसके वंशजों में लगभग १२० वर्ष तक रहा।

१३—जब दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के राजत्व-काल में वि० सं० १६९१ में ओड़छे के राजा जुझारसिंह ने विद्रोह किया उस समय उसे दबाने के लिये खानेदौरान के साथ औरंगजेब भी भेजा गया था। इस समय शाही फौज को मदद देने के लिये चंदेरी का राजा देवीसिंह और रीवाँ का राजा अमरसिंह भी आया था। यह वि० सं० १६८१ में गद्दी पर बैठा था। इसे रतनपुर के राजा प्रतापसिंह की कन्या ब्याही थी। अमरसिंह वि० सं० १६९७ में मरा और अनूपसिंह राजा हुआ। इसका विवाह मिरजापुर के पास अंगोरी में मोहनसिंह चंदेल राजा की कन्या के साथ हुआ था। इस पर ओड़छे के राजा पहाड़सिंह ने वि० सं० १७०७ में चढ़ाई की, पर राजा अपनी निर्बलता के कारण युद्ध न कर भाग गया और एक पहाड़ी में जा छिपा। इससे पहाड़सिंह ने राजधानी को मनमाना लूटा। इस लूट में से इसने वि० सं० १७०९ में एक

हाथी और ३ हथिनियाँ दिल्ली के तत्कालीन बादशाह शाहजहाँ को भेंट कीं। ऊपर लिखा जा चुका है कि कालिंजर का किला लगभग १२० वर्षों तक मुगलों के हाथ में रहा। अंत में इसे राजा छत्र-साल ने औरंगजेब से छीन लिया। इस समय कालिंजर में औरंग-जेब की तरफ से तहौवरखाँ रहता था। यह युद्ध में हार गया। बीरगढ़वालों ने भी तहौवरखाँ की मदद की थी, पर छत्रसाल को ही विजय-लक्ष्मी प्राप्त हुई।

१४—रामचंद्र से कालिंजर का किला लेने पर बुंदेलखंड का अधि-कांश भाग अकबर के अधिकार में चला गया। इस समय मुगलों के पास पूर्व में कालिंजर, पश्चिम में धसान नदी के पश्चिम का भाग और उत्तर की ओर कालपी के आस-पास का बहुत सा प्रदेश था। ओड़छा इस समय बुंदेलों के हाथ में था, परंतु विक्रम संवत् १६५९ में वीरसिंहदेव ने अबुलफजल को मार डाला इससे ओड़छा भी मुगलों ने अपने अधिकार में कर लिया।

१५—मुगलों ने गोंडवाना और बुंदेलखंड के कुछ भाग को लेने का अधिक प्रयत्न नहीं किया। इन सब प्रदेशों को, जिन पर मुगलों का अधिकार न था, मुगल लोग गोंडवाना कहते थे। गोंडवाने का विस्तार आईन अकबरी के अनुसार इस प्रकार है;—पूर्व में रतनपुर का राज्य, पश्चिम में मालवा, उत्तर में पन्ना और दक्षिण में दक्खन। इसमें दमोह और शेष बुंदेलखंड का कुछ भाग शामिल था। अकबर ने गोंडवाने की रानी दुर्गावती के युद्ध के पश्चात् इस ओर अधिक लक्ष्य न किया। रानी दुर्गावती का हाल आगे के अध्याय में लिखा जायगा।

१६—अकबर ने राजपूताने के राजपूतों को भी अपने अधिकार में कर लिया था, परंतु चित्तौड़ के राणा ने अकबर की अधीनता स्वीकार न की। तब अकबर ने चित्तौड़ से [illegible] की [illegible]

राना ने परतंत्रता स्वीकार न की और वह चित्तौड़ छोड़कर उदयपुर नामक स्थान बसाकर वहाँ रहने लगा। इस राना का नाम उदयसिंह था। उदयसिंह के पुत्र प्रतापसिंह ने अंत में मुगलों के हाथ से चित्तौड़गढ़ ले लिया। ये जेठ सुदी ३ रविवार वि० संवत् १५९७ तदनुसार ता० ९-५-१५४० को पैदा हुए थे।

१७—अकबर के पहले के बादशाहों ने हिंदुओं पर जजिया नाम का कर लगाया था। उन लोगों ने हिंदुओं को हर प्रकार से तंग किया और जबरदस्ती उन्हें मुसलमान बनाने की चेष्टाएँ की थीं। इसी कारण हिंदू लोग सदा उनसे नाराज रहे और उनका राज्य न जमने पाया। अकबर ने हिंदू और मुसलमानों से बराबरी का बर्ताव किया और उसी सबब से मुगल राज्य की नींव भारतवर्ष में जम गई। अकबर के समय में राज्य का प्रबंध बहुत अच्छा रहा था।

१८—अकबर के मरने पर उसका लड़का जहाँगीर संवत् १६६२ में तख्त पर बैठा। इसने शेर अफगन को मरवाकर उसकी स्त्री नूरजहाँ के साथ संवत् १६६८ में ब्याह किया। नूरजहाँ ने जहाँगीर के लड़कों में लड़ाई करा दी। इसमें शाहजहाँ सफल हुआ और वह जहाँगीर के पश्चात् संवत् १६८४ में बादशाह हुआ। जहाँगीर के समय में अँगरेज, डच, पुर्तगाली और फरासीसी व्यापारी भारतवर्ष में आए। इन लोगों ने अपने व्यापार के स्थान नियत किए और यहाँ पर किले बनवाने के लिये बादशाहों से समय समय पर सनदें लीं।

१९—शाहजहाँ ने दक्षिण के राज्यों पर अधिकार दृढ़ कर लिया था, परंतु उसकी बादशाहत के अंत के समय फिर उसके लड़कों में झगड़े आरंभ हुए। शाहजहाँ के समय में ओड़छे में जुझारसिंह बुंदेले का राज्य था। इसने स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया, परंतु शाहजहाँ ने उसे हरा दिया। शाहजहाँ के लड़कों के युद्ध

में औरंगजेब सफल हुआ। इसी गड़बड़ के समय मराठों ने अपनी शक्ति बढ़ाई और नर्मदा नदी के उत्तर के कई स्थानों पर आक्रमण किया। औरंगजेब के ही समय में बुंदेलखंड में बुंदेले और महाराष्ट्र में मराठे बढ़े। इन्होंने किस प्रकार धीरे-धीरे मुसलमानों से राज्य ले लिया, यह आगे के अध्यायों में लिखा जायगा।

अध्याय ११

गोंड़ (राजगोंड़) लोगों का राज्य (रानी दुर्गावती तक)

१—गोंड़ (राजगोंड़) लोगों का राज्य मुगलों के राज्य से बहुत पुराना है। मुसलमानों ने इनके प्रदेश का गोंड़वाना नाम लिखा है। इनके मतानुसार उड़ीसा और खानदेश के बीच का सब प्रदेश गोंड़वाना कहलाता था, किंतु आजकल जिस देश को गोंड़वाना कहते हैं वह नर्मदा के दक्षिण और ताप्ती तथा वर्धा नाम की नदियों के उत्तर में है। पूर्व-काल में गोंड़ लोगों का राज्य उत्तर में देवगढ़[1] और दुदाही तक पहुँच गया था। कविवर चंद के पृथ्वीराजरायसे में गौड़ (गोंड़) लोगों का नाम आया है। कन्नौज में जगनायक ने आल्हा से कहा था कि मैंने देवगढ़[2], चांदा

---

(१) देवगढ़ और दुदाही झांसी ज़िले की ललितपुर तहसील में है।

(२) यह मध्य प्रदेश के वर्तमान छिंदवाड़ा ज़िले में है। यह सूबे बरार में था। इसका खिराज यहाँ के राजा से वसूल होकर औरंगाबाद भेजा जाता था। किंतु सूबे बरार में जाने के पूर्व यह मालवा सूबे में शामिल था (राजगोंड़ महाराजा सफा १३८ पाराग्राफ १०८)। मुहम्मद तुगलक ने जिस शहर का नाम दौलताबाद रक्खा था उसी का नाम फरिश्ता की पुस्तक के पहले भाग के सफा ४११–४२० में देवगिरि के बदले देवगढ़ लिखा है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज पृथ्वीराज रायसे के लेखक ने उसे देवगढ़ मानकर ही उसके टूटने पर महाराज जयसिंह के [illegible]

और सब गौड़ (गोंड़) देश को अपने अधिकार में कर लिया है। आल्हा के समय परमाल चंदेल राजा था, और परमाल के समय देवगढ़ चंदेल राज्य में था। फिर पृथ्वीराज ने परमाल का बहुत सा राज्य ले लिया। संभवत: कीर्तिवर्मा चंदेल की मृत्यु के पश्चात् गोंड़ लोगों ने यहाँ अधिकार किया हो, पर पीछे से जगनायक ने देवगढ़ फिर से वापिस ले लिया हो। पृथ्वीराज के मंत्री ने परमाल के गढ़ पर चढ़ाई करने का हाल पृथ्वीराज से कहा था। पृथ्वीराजरायसे में जो गौड़ देश लिखा है उसका अर्थ इसी राजगोंड़ राज्य से है।

२—गोंड़ लोगों का प्रसिद्ध स्थान गढ़ा (मंडला) था। यहाँ के मोतीमहल में एक शिलालेख मिला है जिसमें गोंड़ राजाओं की वंशावली दी है। इस वंशावली और प्रचलित कथाओं से गोंड़ राजाओं के नाम और उनके राज्यकाल का पता लग गया है। रामनगर के महल में भी एक वंशावली दी है। यह वंशावली पं० जयगोविंद वाजपेयी राजमंत्री और पुरोहित के संग्रह पर से तैयार की गई थी। इन राजाओं ने सबसे पहले अपना राज्य गढ़ा नामक स्थान में जमाया था। प्राचीन गोंड़ राज्य की यही राजधानी थी। गढ़ा के पहले गोंड़ राजा की लड़की का नाम रत्नावली था। इसका व्याह यादवराय क्षत्रिय के साथ हुआ था। यही यादवराय

छत्रसाल से नीचे लिखे वाक्य कहलवाए हैं। "(छत्रसाल ने उद्वेग से कहा।) विजय प्राप्त हो किसी दूसरे को और आनंद मनावे कोई और ? आज तो दिल्लीपति की जीत हुई है। मैं उसके लिये क्यों आनंद मनाने लगा ? मैंने तो केवल अपना कटु कर्तव्य समझकर युद्ध किया था। देवगढ़ पहले भी पराधीन था और अब भी पराधीन है। उस पर आदिलशाही अधिकार रहा तो क्या और औरंगजेब का अधिकार हुआ तो क्या ? उस पर शिया मुसलमानों का झंडा फहराया तो क्या और सुन्नी मुसलमानों का निशान गड़ा तो क्या ? छत्रसाल के लिये दोनों बराबर हैं।" (छत्रसाल सफा २१६)

अपने ससुर के मरने पर गढ़ा राज्य का मालिक हुआ। कहा जाता है कि यादवराय विक्रम संवत् ४१५ में सिंहासन पर बैठा। परंतु कई विद्वानों का कथन है कि ४१५ विक्रम संवत् नहीं, चेदि संवत् है। इस दृष्टि से यादवराय का राज्यकाल विक्रम संवत् ७२१ से आरंभ होता है। यादवराय के पश्चात् जिन राजाओं ने राज्य किया उनके नाम उपर्युक्त वंशावली से प्राप्त हुए हैं। ये यादवराय पड़िहार, लांजी के कलचुरी राजा के यहाँ नौकर थे।

३—यादवराय के पश्चात् लगातार एक राजा के बाद उसका पुत्र राजगद्दी पर बैठता आया। इन राजाओं[1] के नामों के सिवाय उनके राज्य-समय की उल्लेखनीय घटनाओं का कुछ पता नहीं चलता और न राज्य के विस्तार का ही पूरा पता मिलता है। इन राजाओं में राजा संग्रामशाह विशेष प्रतापी हो गया है।

४—संग्रामशाह को अमानदास भी कहते थे। बाल्यकाल में यह बड़ा ही अन्यायी और क्रूर था। कहते हैं कि अपनी क्रूरता के कारण इसने अपने बाप को भी मार डाला। इस अत्याचार का बदला लेने के लिये रीवाँ के बघेल राजा रामचंद्र ने इस पर चढ़ाई की। यह वि० सं० १५७२ से १५८५ के मध्य गद्दी पर बैठा था[2]। राज्य प्राप्त करने पर यह बड़ा ही प्रतापी और शूर

(१) माधवसिंह, जगन्नाथ, रघुनाथ, रुद्रदेव, बिहारीसिंह, नरसिंहदेव, सूरजभान, वासुदेव, गोपालशाह, भूपालशाह, गोपीनाथ, रामचंद्र, सुरतानसिंह, हरिहरदेव, कृष्णदेव, जगतसिंह, महासिंह, दुर्जनमल, यशकर्ण, प्रतापादित्य, यशश्चंद्र, मनोहरसिंह, गोविंदसिंह, रामचंद्र, कर्ण, रत्नसिंह, कमलनयन, वीरसिंह, नरसिंह, त्रिभुवनराय, पृथ्वीराज, भारतीचंद्र, मदनसिंह, उग्रसेन, रामसिंह, ताराचंद, उदयसिंह, भानुमित्र, (भानुसिंह) भवानीदास, शिवसिंह, हरिनारायण, सबलसिंह, राजसिंह, दादीराय, गोरखदास, अर्जुनदास और संग्रामशाह।

(२) दमोह जिले के [illegible] ग्राम में मिले हुए [illegible]

निकला। इसने गुजरात के बादशाह बहादुरशाह को रायसेन की चढ़ाई के समय बड़ी सहायता पहुँचाई थी। कहा जाता है कि इसी ने इसका नाम संग्रामशाह रखा था। संग्रामशाह के पिता के समय राजगोंड़ राजाओं के पास बहुत थोड़े किले थे। परंतु इसने अपने बाहुबल से आसपास के राजाओं को जीतकर उनका राज्य अपने राज्य में मिला लिया। इस तरह से इसके पास ५२ किले (गढ़)[1] हो गए और इसका राज्य भी जबलपुर से भोपाल तक फैल गया। इसके राज्य में सागर, दमोह, भोपाल और जबलपुर जिले भी शामिल थे। संग्रामशाह ने यह विस्तृत राज्य किस प्रकार बढ़ाया, इसका पूर्ण इतिहास नहीं मिलता। इसने ५० वर्ष राज्य किया और अपने नाम के सोने और चाँदी के सिक्के भी ढलवाए। दमोह जिले का संग्रामपुर नामक ग्राम भी इसी का बसाया हुआ है।

हुए वि० सं० १५७० के आधार पर संग्रामशाह का राज्यारोहण-काल वि० सं० १५७० से १५८५ के मध्य माना है। (राजगोंड़ महाराजा सफा ४१ पाराग्राफ ४३) पर इसी पुस्तक के सफा ११२ में इसका मृत्यु-संवत् १५८७ और राज्यकाल ५० वर्ष लिखा है, किंतु सही मृत्यु-संवत् १५९८ है। इस हिसाब से राज्यारोहण-काल १५४८ सिद्ध होता है। इसकी मुहर और सती चौरे पर जो संवत् दिए हुए हैं वे राज्यारोहण-काल के पश्चात् के भी हो सकते हैं।

(१) संग्रामशाह के गढ़ों के ग्रामों की संख्या कोष्ठक में लिखी है। १ गढ़ा (७५०), २ मारूगढ़ (७५०) मंडला के आस-पास था, ३ पचेल गढ़ जबलपुर जिले में कुंभी के आस-पास था (७५०), ४ सिंगोरगढ़ दमोह जिले में (३५०), ५ आमोदा, जबलपुर या सिवनी जिले का आमोदा हो (७६०),६ कनोजा-बिल्हरी के आस-पास था (७५०), ७ बगमार वीरान है (७५०), ८ टीपागढ़ (७५०), ९ रामगढ़ वीरान (७५०), १० परताप-गढ़ (७५०), ११ अमरगढ़ (७५०), १२ देवहार (३५०) ये तीनों राम-गढ़ के राजा के राज्य में थे, १३ पाटनगढ़ जबलपुर के पश्चिम (३६०),

५—संग्रामशाह का देहांत विक्रम संवत् १५८७ (सं० १५९८ में) के लगभग हुआ। उसके पश्चात् उसका लड़का दलपतिशाह गद्दी पर बैठा। संग्रामशाह जबलपुर के पास के मदनमहल में रहता था और गढ़ा से राज्य करता था। परंतु उसके पुत्र दलपतिशाह ने दमोह जिले के सिंगोरगढ़ में रहना पसंद किया। इसने सिंगोरगढ़ के किले को बढ़ाया और उसे और भी मजबूत किया। दलपतिशाह का विवाह राठ (हमीरपुर जिले) के चंदेल राजा की रूपवती कन्या दुर्गावती से हुआ था। इससे जान पड़ता

---

१४ फतेहपुर हुशंगाबाद जिले के पूर्व में (७५०), १५ निमुवांगढ़-नरसिंहपुर जिले के पश्चिम में (७५०), १६ भँवरगढ़ गाड़रवाड़ा के वायव्य नरसिंहपुर जिले में (३६०), १७ बरगी जबलपुर के दक्षिण में (७५०), १८ घुनसौर सिवनी जिले में (७५०), १९ चौराई छिंदवाड़े में (३६०), २० डोंगरताल नागपुर में (७५०), २१ करवागढ़ (७५०), २२ झंझनगढ़ (७५०), २३ लांकागढ़ (७५०), २४ सांतागढ़ (३५०), २५ दियागढ़ (३५०), २६ वंकागढ़ (७५०) नं० २१ से २६ तक के गढ़ों का ठीक ठीक पता नहीं लगता; लांका संभवतः बिलासपुर जिले का लांका हो। २७ पवई करही वीरान (७५०), २८ शाहनगर बुंदेलखंड की सीमा पर (७५०), २९ धामोनी—सागर में (७५०), ३० हटा (७५०), ३१ मड़ियादो (३६०), दोनों दमोह जिले में हैं। ३२ गढ़ाकोटा (३६०), ३३ शाहगढ़ (७५०), ३४ गड़पहरा (३६०), ये तीनों सागर जिले में हैं। ३५ दमोह (७५०), ३६ रेहली (३६०), ३७ इटावा (३६०), ३८ खिमलासा (७५०), ये तीनों सागर जिले में हैं, ३९ गनोर (७५०), ४० घाड़ी (७५०), ४१ चौकीगढ़ (३६०), ये तीनों भोपाल रियासत में हैं, ४२ राहतगढ़ सागर में (३६०), ४३ मकरही (७५०), ४४ कारोबाग (७५०), दोनों वीरान हैं, ४५ कुरवाई (७५०), ४६ रायसेन (३६०), ४७ भँवरसो—वीरान (७५०), ४८ भोपाल (३६०), ४९ इपदगढ़ (३५०), ५० पनागढ़ (७५०), दोनों वीरान हैं, ५१ देवरी (७५०), ५२ गौरझामर (७५०), ये दोनों सागर जिले में हैं। यह नामावली ज० ए० सो० बंगाल सन् १८३७ के नक्शा ६४४ से ६४६ तक दी है। (देखो—राजगोंड़ महाराजा नामक पुस्तक)

है कि ये गोंड़ लोग राजपूतों की एक शाखा थे। ब्याह के चार वर्ष पश्चात् दलपतिशाह का देहांत हो गया। इसने ७ वर्ष राज्य किया था। जब दलपतिशाह का देहांत हुआ तब उसके पुत्र वीरनारायण की अवस्था तीन वर्ष की थी। इस कारण अपने अल्प-वयस्क पुत्र की ओर से राज्य का काम रानी दुर्गावती सँभालने लगी। दलपतिशाह की मृत्यु के पश्चात् चौदह वर्ष तक रानी दुर्गावती ने अपने पुत्र की ओर से राज-कार्य बुद्धिमानी से चलाया। इसने राज्य-प्रबंध बहुत अच्छा किया और राजकोष की खूब वृद्धि की। इसकी प्रजा इससे बहुत प्रसन्न रहती थी। इसका राज्य-विस्तार भी बहुत था। इस समय राज्य का प्रधान नगर चौरागढ़ था। यहाँ का किला संग्रामशाह ने बनवाया था। अकबरनामा का लेखक कहता है कि रानी दुर्गावती के राज्य में असंख्य धन और सत्तर हजार समृद्धिशाली गाँव थे। इस राज्य की संपत्ति और विभूति मुगलों से न देखी गई और उन्होंने गोंड़वाने पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

६—इस समय दिल्ली में मुगल बादशाह अकबर राज्य करता था। कालिंजर, कड़ा मानिकपुर और बुंदेलखंड का कुछ उत्त-रीयतथा कुछ पश्चिमी भाग भी मुगलों के अधिकार में था। कड़ा मानिकपुर और उसके आस-पास के शासन का कार्य मुगलों की ओर से ख्वाजा अब्दुल मजीद नाम का एक सूबेदार करता था। अब्दुल मजीद के कार्य से मुगल बादशाह अकबर बहुत प्रसन्न हो गया था, इससे उसे आसफ खाँ की पदवी मिली थी। विक्रम संवत् १६१० में आसफ खाँ ने गोंड़वाने की अतुल संपत्ति लूटने के उद्देश्य से उस पर चढ़ाई की। उस समय रानी दुर्गावती की फ़ौज सिंगोरगढ़ नामक किले में थी। अपनी फ़ौज लेकर रानी लड़ने आई। इसकी और आसफ खाँ की फौजों का सामना संग्रामपुर

नामक स्थान में हुआ। संग्रामपुर सिंगोरगढ़ से दो कोस की दूरी पर है। युद्ध बहुत देर तक होता रहा। अंत में रानी की फौज को हटना पड़ा और वह गढ़े की ओर चली। रानी ने अपनी फौज गढ़ा से १२ मील की दूरी पर मंडला की तरफ की एक पहाड़ी के पास एकत्र की। यहाँ पर आसफ खाँ की फौज को हार खानी पड़ी। परंतु इसी समय आसफ खाँ की सहायता के लिये उसकी और भी फौज आ पहुँची और दूसरे दिन फिर युद्ध हुआ। इस समय भी रानी दुर्गावती वीरता से लड़ती रही। दुर्भाग्यवश एक तीर उसकी आँख में ऐसा लगा, जिसे वह निकाल न सकी और निकालते ही तीर टूटकर आँख में रह गया। उसकी यह हालत देखकर उसकी फौज ने हिम्मत छोड़ दी और रानी दुर्गावती को मंडला की ओर भागना पड़ा। इसी समय रानी दुर्गावती के गले पर दूसरा तीर लगा जिससे उसके जीने की आशा करना कठिन हो गया। अपने जीने की आशा छोड़ और अपने शरीर को मुसलमानों के हाथ से बचाने के उद्देश्य से रानी दुर्गावती अपने हाथ से अपने पेट में कटार मारकर मर गई। जहाँ पर वह मरी वहाँ पर अभी तक उसका स्मारक बना हुआ है।

७—जब रानी दुर्गावती को विवश होकर भागना पड़ा तब सैनिक लोग उसके पुत्र वीरनारायण को रणभूमि से अलग ले गए और उसे चौरागढ़ में रखा। यहाँ पर उस समय राज्य का खजाना रहता था। आसफ खाँ को यह बात मालूम थी और वह रानी दुर्गावती को हराने के पश्चात् चौरागढ़ गया और उस को उसने घेर लिया। गढ़ में सेना बहुत न थी। सैनिक लोग लड़े और उन्होंने युद्ध में प्राण दिए। । वीरनारायण भी इसी युद्ध में मारा गया। गढ़ की रानियाँ, अपने शरीरों को यवनों के हाथ से बचाने के लिये, आग में जल गईं।

८—इस किले से आसफ खाँ को इतना धन मिला कि वह उसके दसवें भाग का भी हिसाब न लगा सका कि वह कितना था। उसे बहुमूल्य रत्न, सोने और चाँदी के गहने, मूर्तियाँ और घड़े मिले थे। इस किले में उसे बहुत से पुराने सिक्के भी मिले। एक हजार हाथी भी आसफ खाँ के अधिकार में आए। इस धन-दौलत में से आसफ खाँ ने केवल तीन सौ हाथी बादशाह को दिए और बाकी सब अपने पास रख लिया।

९—इस युद्ध के विषय में कुछ दंतकथाएँ भी प्रचलित हैं। कहते हैं कि अकबर ने रानी दुर्गावती को सोने का रँहटा इस अर्थ से नजर किया था कि स्त्रियों का काम रँहटा कातने का है, राज्य करने का नहीं। इसके उत्तर में रानी ने एक सोने का पींजन बनवाकर भेजा, मानो यह कहला भेजा कि यदि मेरा काम रँहटा कातने का है तो तुम्हारा काम पींजन से रुई धुनकने का है। इस पर बादशाह अकबर बहुत नाराज हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि रानी दुर्गावती के पास एक श्वेत हाथी था। अकबर बादशाह ने उसे अपने लिये माँगा। रानी ने इनकार किया। इस बात पर अकबर नाराज हो गया और उसने आसफ खाँ को चढ़ाई का हुक्म दिया, परंतु ये कथाएँ बनावटी जान पड़ती हैं और चढ़ाई का मूल कारण तो गोंड़वाने के खजाने का लूट लेना ही था।

१०—गढ़ा-मंडला के शिलालेख में रानी दुर्गावती की बड़ी प्रशंसा की गई है जो सब उचित जान पड़ती है। रानी दुर्गावती के उत्तम राज्य के कारण सारी भूमि हीरों और जवाहिरों से भर गई थी और उसमें बहुत सुंदर और मस्त हाथी थे। वह गज, भूमि और धन का दान सदा ही किया करती थी और उसके राज्य में किसी को कुछ कमी न थी। अपनी प्रजा की रक्षा के लिये वह स्वयं अपने हाथी पर सवार होकर तलवार हाथ में

लेकर लड़ने जाया करती थी। गढ़ा के निकट रानीताल इसी ने बनवाया है।

११—आसफ खाँ असंख्य धन पाकर और इस विशाल राज्य को जीतकर स्वतंत्र बनने की इच्छा करने लगा। इसके लिये वह गढ़ा में कुछ दिन रहा, परंतु उसका कुछ सिलसिला ठीक न जमा। फिर इस अपराध की क्षमा उसने अकबर से माँग ली और अकबर ने उसे क्षमा कर दिया। इसके बाद यहाँ और भी कई सूबेदार आए। इनमें से राय सुजनसिंह हाड़ा की विशेष ख्याति है। यह बाड़ी में रहता था। इसके प्रबंध से प्रसन्न हो अकबर ने इसकी जागीर चुनार में और भी जिले बढ़ा दिए। यह यहाँ २५ वर्ष रहा और वि० सं० १६३२ में चुनार चला गया। इसके पश्चात् सादिक खाँ सूबेदार नियत किया गया। इसने वि० सं० १६३४ में अबुलफजल के घातक वीरसिंहदेव बुंदेला पर चढ़ाई की थी। इसके पश्चात् बाकी खाँ और अजीज खाँ के नाम मिलते हैं। अंत में उसने राज्य के उत्तराधिकारी से मुगल राज्य के अधीन रहना मंजूर करा लिया। दलपतिशाह का पुत्र वीरनारायण चौरागढ़ के युद्ध में मारा गया था। इस कारण गोंड़ सेनापतियों ने चंद्रशाह को राजा बनाया और अकबर ने भी चंद्रशाह से १० गढ़ लेकर उसे राजा मान लिया[१]। ये गढ़ भोपाल की ओर थे जिनमें सागर जिले का राहतगढ़ भी शामिल था। इस प्रकार भोपाल के निकट का भाग तो मुगलों के हाथ में गया और सागर, दमोह और जबलपुर जिले गोंड़ों के अधिकार में रह गए।

---

(१) इस समय चूड़ामन वाजपेयी मंत्री थे। ये बादशाह अकबर के पास गए थे।

अध्याय १२

गोंड़ों का राज्य (रानी दुर्गावती के पश्चात्)

१—रानी दुर्गावती के पश्चात् राजा चंद्रशाह ने भी अच्छा राज्य-प्रबंध किया। इसके समय में राज्य-संपत्ति फिर से बढ़ने लगी। चंद्रशाह का राज्य बहुत दिन नहीं रहा। चंद्रशाह के पश्चात् उसका लड़का मधुकरशाह गद्दी पर बैठा। मधुकरशाह चंद्रशाह का बड़ा लड़का न था। इसने धोखा देकर अपने बड़े भाई को मरवा डाला और खुद गद्दी पर बैठा। परंतु मधुकरशाह को इस पाप का इतना पश्चात्ताप हुआ कि उसने एक खोखले पीपल के पेड़ में अपने को बंद करके आग लगवाकर अपने प्राण दे दिए। यह घटना वि० सं० १६४७ की प्रतीत होती है क्योंकि यह इसी साल मरा था। जहाँगीर बादशाह से मिलने के लिये यह स्वतः दिल्ली गया था। इसके लड़के का नाम प्रेमशाह या प्रेमनारायण था।

२—मधुकरशाह की मृत्यु के समय प्रेमनारायण दिल्ली में था। दिल्ली से वापस आने पर प्रेमशाह गद्दी पर बैठाया गया। जहाँगीरनामा से पता चलता है कि जहाँगीर की १२ वीं वर्ष-गाँठ के समय इसने ७ हाथी और १ हथिनी भी भेंट की थी। इससे बादशाह ने खुश होकर इसे एक हजार का मनसब और कुछ जागीर दी थी, पर यह मालवा के अधिकार में ही बना रहा। अमोदा के शिलालेख से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मालवा की सूबेदारी से अलग कर दिया गया था। इससे अब यह राजा हो गया था और इसे महाराजा कहते थे।

३—पिता की मृत्यु का हाल सुनकर प्रेमनारायण दिल्ली से वापस चला आया। इसके आने के समय वीरसिंहदेव बुंदेला

दिल्ली ही में थे। यह उनसे न मिल सका। इसे वीरसिंहदेव ने अपना अपमान समझा और वह मरने के समय जुझारसिंह से इसका बदला लेने के लिये चढ़ाई करने की वसीयत कर गया। इसी कारण जुझारसिंह ने गोंड़वाने पर चढ़ाई कर दी। पर चढ़ाई करने का यह कोई कारण न था। अलबत्ता गोंड़वाने में उस समय गाय और बैल दोनों हल में जोते जाते थे। जुझारसिंह ने लड़ने का यही बहाना सोचकर लड़ाई ठानी और संवत् १६९१ में प्रेमनारायण के राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में प्रेमनारायण मारा गया और जुझारसिंह ने चौरागढ़ का किला ले लिया। जिस समय यह युद्ध हुआ उस समय प्रेमनारायण का पुत्र हृदयशाह दिल्ली में था। उसे इस युद्ध की खबर और अपने पिता की मृत्यु का हाल वहीं मिला। हृदयशाह ने बादशाह शाहजहाँ से इस बात की शिकायत की। उसने इसे सहायता देने का वचन दिया।

४—शाहजहाँ ने इस आशय का एक पत्र जुझारसिंह के पास भेजा कि वह चौरागढ़ का किला राजा हृदयशाह को वापस दे दे और इस अनधिकार-चेष्टा के बदले १० लाख रुपए जुर्माने के देवे। जुझारसिंह ने ऐसा करने से इनकार किया और लड़ने की तैयारी की। तब बादशाह ने औरंगजेब के सेनापतित्व में २० हजार सिपाही जुझारसिंह को पकड़ने के लिये भेजे। इनके साथ में अब्दुल्लाखाँ बहादुर, फीरोजजंग और खानदौरान भी गए थे। इनके सिवाय रीवाँ का बघेल राजा अमरसिंह और चंदेरी का देवीसिंह भी था। जुझारसिंह ने भी ५०० सवार और १०००० पैदल सिपाहियों की सेना तैयार कर रखी थी। इन्होंने शाही फौज को रोकना चाहा, पर वह बढ़ती ही आई। इसने अपनी हार देखकर अपने खजाने और परिवार के मनुष्यों को धामौनी भेज दिया। पीछे से थोड़ी सी सेना ओड़छे की रक्षा के लिये रखकर खुद भी धामौनी

चला आया। शाही फौज ने ओड़छे का किला तोड़ डाला और उसे देवीसिंह चंदेरीवाले के अधिकार में कर दिया। फिर इसने जुझारसिंह का पीछा किया। जब यह धामौनी के निकट आई तब वह यहाँ से चौरागढ़ की ओर भाग गया। शाही फौज ने धामौनी पहुँचते ही गोले बरसाना शुरू कर दिया। किले के तोप-खाने में चिनगारी गिरने से आग भभक उठी और सब बारूद जल गई, जिससे किले की ८० गज लंबी दीवार उड़ गई। इस अग्नि से ३०० मनुष्य और २०० घोड़े जल गए। धामौनी का खजाना कुओं में फेंक दिया गया था। इसे ढूँढ़ने पर मुगल सेना को केवल दो लाख रुपए का माल मिला। इसकी देख-रेख करने के लिये सर-दार खाँ यहाँ रखा गया और यह इलाका रानगिर में मिला दिया गया।

५—यहाँ से शाही फौज चौरागढ़ की ओर बढ़ी। जुझार-सिंह ने फौज को आते देख किले की तोपें तुड़वा दीं और आप प्रेम-नारायण का खजाना ले दक्षिण की ओर रवाना हुआ, परंतु बाद-शाही फौज ने उसका पीछा न छोड़ा। यह गढ़ा और लांजी होती हुई चाँदा की ओर बढ़ी। चाँदा में जुझारसिंह और बादशाही सेना से घनघोर युद्ध हुआ। उसके पास तो अधिक सेना थी नहीं, इससे वह हार गया और जंगल की ओर भाग गया। यहाँ पर गोंड़ों ने राजा जुझारसिंह और उसके लड़के विक्रमाजीत को पकड़कर मार डाला। पीछे से खानेदौरान ने इनका सिर काटकर दिल्ली भेज दिया। यह घटना वि० सं० १६९० में हुई।

६—जुझारसिंह के मरने पर हृदयशाह को अपने बाप का राज्य मिल तो गया पर पीछे से शाहजहाँ ने इससे "वायाँवाँ" की सरकार बदले में माँगी और इनकार करने पर अपने मनसबदार ओड़छे के राजा पहाड़सिंह को वि० सं० १७०८ में आक्रमण करने को भेजा। पहाड़सिंह ने हृदयशाह से चौरागढ़ का किला ले लिया।

इस तरह १८ वर्ष राज्य करने के वाद यह अपनी प्राचीन राजधानी चैारागढ़ से अलग कर दिया गया। अब यह मंडला (रामनगर) चला आया। यह घटना वि० सं० १७२४ की है। इस बीच में यह कहाँ-कहाँ रहा, इसका पूरा पूरा इतिहास नहीं मिलता। ऐसा पता चलता है कि यह चैारागढ़ से भागकर बांधोगढ़ के राजा अनूपसिंह के पास चला गया था, पर पहाड़सिंह ने यहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा। इससे राजा अनूपसिंह को भी हानि उठानी पड़ी।

७—हृदयशाह ने रामनगर की प्राकृतिक शोभा पर मोहित हो यहाँ पर एक किला और कई महल वनवाए थे। इसकी स्त्री का नाम सुंदरी था। इस रानी ने भी कई मंदिर वनवाए थे। इसी राज-वंश के लेखों से ऐसा भी पता चलता है कि इसका विवाह वघेल राजकन्या के साथ हुआ था। इसके छत्रशाह और हरीसिंह नाम के दो लड़के थे। हृदयशाह ७० वर्ष राज्य कर वि० सं० १७३५ में परलोक को सिधारा।

८—छत्रशाह अपने पिता के मरने पर गद्दी पर वैठा। इस समय हरीसिंह ने भी गद्दी के लिये दावा किया, पर सफल न हुआ। अंत में उसने अपनी जागीर पर ही संतोष किया। छत्रशाह ७ वर्ष राज्य कर मर गया। इसके वाद केसरीसिंह राजा हुआ, यह छत्रशाह का लड़का था। इसके समय में घर में फूट उत्पन्न हो गई जिससे आपस में कलह होने लगी। इसके चचा हरीसिंह ने इसे मार भगाया। अंत में औरंगजेब ने हरीसिंह को भी अन्यान्य जागीर-दारों के समान वि० सं० १६४१ में अधिकार दे दिए। पर इससे प्रजा खुश न थी, इससे यह अधिक दिन राज्य न कर सका। लोगों ने इसे ७ वर्ष के पश्चात् मार डाला। तब केसरीसिंह राजा हुआ और इसके वाद नरिंदसिंह ने गद्दी पाई। पर हरीसिंह के लड़के

पहाड़सिंह ने औरंगजेब से सहायता माँगी। औरंगजेब ने पहाड़सिंह की सहायता को अपनी सेना दी और पहाड़सिंह ने नरिंदशाह को हरा दिया, परंतु प्रजा ने पहाड़सिंह को न चाहा और उसे वापस जाना पड़ा। इसी समय दिल्ली के बादशाह ने पहाड़सिंह को और भी सहायता दी। पहाड़सिंह इसी युद्ध में मारा गया। उसके दो लड़के थे। वे औरंगजेब को प्रसन्न करने के लिये मुसलमान हो गए। ये दोनों लड़के भी युद्ध में मारे गए और नरिंदशाह अब निश्चिंत हो गया।

९—इन सब लड़ाई-झगड़ों से नरिंदशाह का राज्य क्षीण हो गया। मुगल सेना से युद्ध करने के लिये उसे कई राजाओं से मदद लेनी पड़ी थी। इस सहायता के बदले में उन राजाओं को देश का बहुत सा भाग देना पड़ा। पाँच गढ़ बुंदेलखंड के राजा छत्रसाल को देने पड़े। इन पाँच गढ़ों में चार गढ़ सागर जिले के थे और एक दमोह जिले का था। उसे मुगलों से सुलह कर लेनी पड़ी। इस सुलह के अनुसार मुगलों ने नरिंदशाह को गद्दी पर कायम रखना स्वीकार किया और पाँच गढ़ गोंड़वाने के इससे ले लिए। इन पाँच गढ़ों में से तीन गढ़ तो सागर जिले के थे और शेष दो गढ़ हटा और मड़ियादो नाम के दमोह जिले के। इस प्रकार सागर और दमोह जिले गोंड़ राज्य से निकल गए। इसके पूर्व १० गढ़ अकबर ने चंद्रशाह से और चौरागढ़ आदि शाहजहाँ ने हृदयशाह से ले लिए थे।

१०—नरिंदशाह ३७ वर्ष राज्य कर के वि० सं० १७८९ में परलोक को सिधारा। इसके पश्चात् इसका लड़का महाराजसिंह[1]

---

(१) संवत् १९८२ आश्विन कृष्ण के पूर के समय मंडला में अनेक घाट निकले हैं। उनमें से एक पर मोटे मोटे अक्षरों में "महाराजशाह" लिखा है। संभवतः यह इसी का बनवाया हो। ऐसे ही यदि इसने महाराजपुर भी बसाया हो तो आश्चर्य्य नहीं।

गद्दी पर बैठा। इस समय इस राजवंश में सिर्फ २९ ही गढ़ बाकी रह गए थे। ये सब जबलपुर और मंडला के ही आस-पास रहे होंगे। महाराजशाह मुगल बादशाह के अधीन था। पर महाराष्ट्र के पेशवा इस समय मुसलमानों से स्वतंत्र थे और ये लोग अन्य हिंदू राजाओं को भी स्वतंत्र होने के लिये मदद देते थे। पेशवाओं ने गढ़ा मंडला के राजा महाराजशाह से मुगल बादशाहत से संबंध तोड़कर पेशवाओं की अधीनता स्वीकार करने के लिये कहा। महाराजशाह ने यह स्वीकार न किया। इस पर पेशवा ने संवत् १८०० में मंडला पर चढ़ाई कर दी। महाराजशाह युद्ध में मारा गया। इसके शिवराजशाह और निजामशाह नाम के दो लड़के थे। शिवराजशाह ने मराठों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इससे गोंड़ राज्य से प्रतिवर्ष चार लाख रुपए महाराष्ट्र को चौथ के रूप में जाने लगे। नागपुर के भोंसले यहाँ की चौथ उगाहा करते थे। इसी बहाने से जब गोंड़वाने से चौथ शर्तों के अनुसार न पट सकी, तब गोंड़ राज्य से चौथ के बदले में ६ किले भोंसलों को दिए गए।

११—शिवराजशाह ७ वर्ष राज्य कर विक्रम संवत् १८०७ में मरा। उसके बाद उसका लड़का दुर्जनशाह गद्दी पर बैठा। यह बड़ा क्रूर था और प्रजा इससे बहुत असंतुष्ट थी। राज्य-प्रबंध भी इसके समय में बहुत खराब रहा। यह सिर्फ छः महीने ही राज्य कर पाया था कि इसके चाचा निजामशाह ने दुर्जनशाह को मरवा डाला और वि० सं० १८०६ में वह स्वयं गद्दी पर बैठा। यह योग्य शासक था। निजामशाह ने राज्य की उन्नति का बहुत प्रयत्न किया, परंतु राज्य की दशा बहुत ही बुरी हो गई थी। इससे यह उसकी यथोचित उन्नति न कर सका। यह २७ वर्ष राज्य कर परलोक को सिधारा। इसके मरने पर राज्य में गद्दी के लिये फिर झगड़े आरंभ हुए और मराठों ने हस्तक्षेप किया। लोगों ने

निजामशाह के भतीजे नरहरशाह को सहायता दी। इससे इसी को राज्य-गद्दी मिली। परंतु इससे मराठे प्रसन्न न रहे। तीन वर्ष बाद मराठों ने नरहरशाह को राज्यगद्दी से उतार दिया और सुमेरशाह को राजा बनाया। यह काम सागरवालों का था। पीछे से इन्होंने सुमेरशाह को पकड़कर गोरझामर के किले में कैद कर दिया। यह सिर्फ ९ महीने ही राज्य कर पाया था। पीछे से इन लोगों ने नरहरशाह को गद्दी पर बैठा दिया। इससे यह सागर-वालों के अधीन हो गया, पर ये उसके हर एक कार्य में हस्तक्षेप करने लगे। जब नरहरशाह ने मोराजी की सेना का वि० सं० १८३७ में विरोध किया तब वह भी खुरई में कैद कर दिया गया और गढ़ा राज्य पर मराठों ने अपना अधिकार कर लिया। नरहरशाह वि० सं० १८४६ में परलोक को सिधारा।

१२—सुमेरशाह पहले से ही कैद था। वह भी वि० सं० १८६१ में मर गया। यहीं से गोंड़ राज्य का अंत हो गया, परंतु मराठों ने सुमेरशाह के लड़के शंकरशाह को नाम मात्र के लिये राज्य दे दिया। इसने वि० सं० १९१३ तक राज्य किया। पर संवत् १९१४ में यह और इसका भाई रघुनाथशाह दोनों राज-विद्रोहियों से मिल गए। अंत में पकड़कर इन्हें गोली मार दी गई। अब इस राजवंश की संतति दमोह जिले के सिलापरी ग्राम में रहती है और उसे ब्रिटिश राज्य की ओर से सिर्फ ५०) माहवार मिलते हैं।

१३—ऊपर कह चुके हैं कि गोंड़ राज्य भूपाल (भोपाल), सागर, दमोह और जबलपुर में फैल गया था। यह राज्य धीरे-धीरे चंदेलों के शक्तिहीन होने से और मालवा में से मुसलमानों का अधिकार निकल जाने से बढ़ा। जबलपुर के उत्तर में गोंड़ लोगों के पहले पड़िहार (या परिहार) लोग राज्य करते थे। कहा जाता है कि बिलहरी में पहले लक्ष्मणसेन पड़िहार का राज्य था। लक्ष्मणसेन

की लड़की का व्याह एक गोंड़ राजा के साथ हुआ और इसी गोंड़ राजा को बिलहरी और उसके आस-पास का भाग मिल गया। इस ओर पड़िहार लोगों का राज्य बहुत प्राचीन काल में था। चंदेलों ने पड़िहारों से राज्य लिया था। उचेहरा पहले तो पड़िहारों के हाथ में था, पश्चात् वह चंदेलों के हाथ में आया। पड़िहारों का राज्य चंदेलों और गोंड़ लोगों के अधिकार में आने के पश्चात् पड़िहार लोग चंदेलों और गोंड़ लोगों के राज्य के कहीं कहीं सूबेदार रहे। चंदेलों के राज्य का आरंभ और गोंड़ों के राज्य की नींव संभवत: समकालीन ही हो, पर प्रमाणाभाव के कारण निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। चंदेले पहले बढ़े और पहले ही गिरे। गोंड़ लोगों का राज्य रानी दुर्गावती के राज्यकाल में उन्नति के शिखर पर पहुँचा। परंतु रानी दुर्गावती के मरने के बाद अवनति आरंभ हुई। अकबर ने रानी दुर्गावती को हराने के पश्चात् भोपाल का प्रदेश ले लिया। सागर और दमोह के जिले नरिंदशाह के हाथ से निकल गए और उनका भाग कुछ मुगलों के और कुछ बुंदेलों के अधिकार में चला गया। जो कुछ शेष बचा वह मराठों ने नष्ट कर दिया।

१४—गोंड़ राजा हिंदू और जाति के संभवत: क्षत्रिय होंगे। ऐसा कहते हैं कि एक गोंड़ राजा का विवाह लक्ष्मणसेन पड़िहार की कन्या के साथ हुआ था। रानी दुर्गावती भी चंदेल राजा की कन्या थी। ऐसे ही हृदयशाह का विवाह भी बघेल राजवंश में हुआ था। ये ही उपर्युक्त कथन के प्रमाण हैं।

अध्याय १३

बुंदेलों की उत्पत्ति

१—जिस प्रदेश का इतिहास लिखा जा रहा है उसे आजकल बुंदेलखंड कहते हैं, परंतु पूर्व में इसे जेजाभुक्ति और ज़झोती कहते थे। इसका "बुंदेलखंड" नाम पड़ने का यही कारण है कि यहाँ पर बहुत काल से बुंदेले ठाकुरों का राज्य रह आया है। इनकी उत्पत्ति के विषय में भी कई दंतकथाएँ[1] प्रचलित हैं। परंतु उनकी

---

(१) कुछ बुंदेले अपनी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाते हैं कि महाराज रामचंद्र के ज्येष्ठ पुत्र लव के वंश में कुछ समय के उपरांत गगनसेन और कनकसेन राजा हुए। कनकसेन ने वि० सं० २०१ में गुजरात में बल्लभीपुरा बसाया और वहीं रहने लगे, किंतु गगनसेन वि० सं० २३६ में पूर्व की ओर चले आए। कर्तृराज के पूर्व गगनसेन के वंशजों का सिर्फ इतना ही पता लगता है कि गंगा ऋषि ने गयाजी में एक मंदिर बनवाया था और प्रद्युम्न ऋषि ने प्रयागराज में अक्षयवट लगवाया था। ऐसे ही इंद्रद्युम्न ने पुरी में जगन्नाथजी का मंदिर और इंद्रदमन नामक तालाब खुदवाया था। इनके सिवाय ओड़छे के भाटों से यह भी पता लगता है कि कर्तृराज के पूर्व छठा राजा काशी में रहने लगा था। इसका नाम अनिरुद्ध था। यह और इसके वंशज शनि राजपूत राजाओं के अधीन राज्य करते थे।

कर्तृराज संवत् ७२१ में काशी गया। वहाँ पहुँचते ही इसने दिवोदास नामक शनि राजपूत राजा को गद्दी से उतारने का प्रयत्न किया। पश्चात् वहाँ के राजा माघ की कन्या "वरा" का पाणिग्रहण किया। इस समय इस राज्य की दशा अच्छी न थी। इससे कर्तृराज ने पंडितों की सलाह से अशुभ ग्रहों की शांति करवाई जिससे ये ग्रहनिवार कहाए। इसका अपभ्रंश गहरवार हो गया। कर्तृराज (सं० ७२१) से लेकर सं० ११०९ तक बीस राजा (कर्तृराज, महिराज, मूर्धराज, उदयराज, गरुड़सेन, समरसेन, आनंदसेन, करनसेन, कुमारसेन, मोहनसेन, रबजसेन, काशीराज, श्यामदेव, प्रहलाददेव, हमीरदेव, आसकरन, अभयकरन, जैतकरन, सोहनपाल और करनपाल)

प्रामाणिकता में संदेह है। अलबत्ता ऐसा हो सकता है कि इनके पूर्व-पुरुषों ने विंध्यवासिनी देवी की उपासना की हो। इसी से "बुंदेला" नाम विंध्य से बहुत कुछ संबंध रखता है। अब इस नामकरण की दंतकथाओं की उलझन में न पड़ ऐतिहासिक बातों का उल्लेख करना ठीक होगा।

२—चंदेल राजा परमर्दिदेव के समय गढ़ कुंडार एक किला था। यहाँ पर राजा परमर्दिदेव की ओर से शिवा नाम का एक पर-मार क्षत्रिय किलेदार था और वही यहाँ की सेना का अधिनायक भी था। इसकी अधीनस्थ सेना में खूबसिंह नाम का एक खंगार था। यह सदा स्वतंत्रता का स्वप्न देखा करता था। जब वि० सं० १२३९ में पृथ्वीराज चौहान से परमर्दिदेव हार गया और शिवा भी लड़ाई में मारा गया तब खूबसिंह स्वतंत्र हो गया और इसी युद्ध से गोंड़ लोग भी पूर्वी-पश्चिमी भाग के मालिक बन बैठे। राजा पृथ्वीराज चौहान वि० सं० १२४९ में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी से युद्ध में हारा और कैद किया गया। तब उसके सरदार लोग भी, जो धसान नदी के पश्चिमी भाग में सूबेदार थे, स्वतंत्र हो गए; किंतु कुतुबुद्दीन ऐबक की चढ़ाई के पश्चात् ये सब उसके अधीन हो गए और जगमनपुर में एक अफगान सूबेदार नियत किया गया।

३—इसी समय बुंदेले भी अपना राज्य स्थापित करने लगे। झाँसी के आस-पास खंगारों का राज्य बहुत दिनों तक बना रहा, वरन् मुसलमानों के आने के पश्चात् भी ये लोग कुछ भाग पर राज्य करते रहे। इससे बुंदेलों ने राज्य के लिये पहले खंगारों से ही

हुए हैं। पर सिवाय नामावली के उनके राजत्वकाल की घटनाओं का कुछ भी पता नहीं लगता। करनपाल को कन्हपाल भी कहते थे। इनके वीर, हेमकरन, अरिब्रह्म (अरिवर्म्मा) नाम के तीन पुत्र हुए थे।

मुठभेड़ की। इनसे लड़कर राज्य लेनेवाले बुंदेल राजा का नाम सोहनपाल है।

४—इसमें संदेह नहीं है कि बुंदेलों की उत्पत्ति काशी के गहरवार राजघराने से है। पूर्वकाल में इनका राज्य बुंदेलखंड की पश्चिमी सीमा तक फैला हुआ था। परंतु यह कब और कैसे निकल गया इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। जिस भाग पर गहरवारों का राज्य था उसे अब भी गहोरा कहते हैं। इसके अधिकांश भाग पर फिर चेदि देश के राजाओं ने अधिकार कर लिया था। इसी प्राचीन गहरवार राजवंश से बुंदेलों की उत्पत्ति हुई है।

५—ऊपर लिखा जा चुका है कि करनपाल के वीर, हेमकरन और अरिब्रह्म नाम के तीन लड़के थे। हेमकरन था तो छोटा पर बड़ा बुद्धिमान् था। इससे पिता का इस पर विशेष प्रेम था, जिससे पिता ने इसे राजगद्दी और दूसरों को जागीरें दीं। पिता के मरते ही वीर और अरिवर्म्मा ने हेमकरन से राज्य छीन लिया। इससे उदास होकर इसने काशी के शनि राजा के पुरोहित गजाधर पंडित की सम्मति से विंध्यवासिनी देवी की आराधना की और वैशाख सुदी १४ संवत् ११०५ को वरदान[1] पाया। परंतु युद्ध में यह भाइयों से हार गया। इसलिये इसने फिर भगवती की पूजा की जिससे भगवती ने इसे श्रावण सुदी ५ गुरुवार[2] सं० १११२ को प्रसन्न होकर "विजयी हो" ऐसा वरदान दिया।

६—इस समय बुंदेलखंड में चंदेलों के राज्य का ह्रास होना आरंभ हो चुका था। बुंदेलखंड का पश्चिमी भाग मुसलमानों के

---

(१) सं० ११०५ की वैशाख सुदी १४ को ता० २९-४-१०४८ शुक्रवार था।

(२) सं० १११२ की श्रावण सुदी ५ को ता० ३१-७-१०५५ सोमवार था। इस वर्ष श्रावण अधिक मास था।

हाथ में था और उत्तरीय भाग का अधिकांश भी मुसलमानों के अधिकार में आ गया था। दक्षिणी भाग में गोंड़ लोग अपना राज्य जमाने के प्रयत्न में लगे हुए थे। जो राज्य इस समय थे वे सब शक्ति के सहारे ही चल रहे थे। जो शक्तिमान् होता था वही अपनी सेना के जोर से स्वतंत्र शासक बन सकता था। दिल्ली के मुसलमान शासक अपने राज्य में सूबेदार नियत कर दूरस्थ प्रदेशों का शासन करते थे। पर ये ही लोग केंद्रस्थ राज्य की शक्ति-हीनता से लाभ उठाकर स्वतंत्र बन जाते थे। बुंदेलखंड में मुसल-मानों का राज्य पक्की तौर से बिलकुल ही न जम पाया। थोड़े दिनों तक इनका राज्य यदि कहीं रहा भी तो बुंदेले इनकी ओर से सूबेदार रहे, और वे ही फिर स्वतंत्र बन बैठे। अल-बत्ता अकबर के समय में बुंदेलखंड में मुसलमानों का जोर रहा, पर वह भी बहुत दिनों तक न ठहर सका। बुंदेले इसे और इसके वंशजों को भी सदा तंग करते रहे।

७—देश की ऐसी अनिश्चित दशा में हेमकरन को अपने पराक्रम द्वारा राज्य स्थापित करने का अच्छा मौका हाथ लगा। यह पराक्रमी और शूर तो था ही, थोड़ी-बहुत सेना इकट्ठी कर इसने अपना स्वतंत्र राज्य कायम कर लिया। परंतु इसने कितना देश जीता था, इसका पता लगना कठिन है। अलबत्ता ऐसा मालूम होता है कि इसने मिरजापुर के पास गहरवारपुरा (गौर) नाम का एक गाँव बसाया था। इसे पंचम भी कहते थे। यह लगभग १६ वर्ष राज्य कर वि० सं० ११२८ में परलोक को सिधारा। इसके लड़के का नाम वीरभद्र था। छत्रप्रकाश में इसे वीर लिखा है।[1]

---

(१) वैवस्वत मन्वन्तर के आदि में नारायण की नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा, इनसे मरीचि, मरीचि से कश्यप, कश्यप की अदिति नाम्नी भार्या से सूर्य और सूर्य के वंश में रघु हुए। इस वंश में राजा दशरथ,

८—वीर (वीरभद्र) अपने पिता के मरने पर, वि० सं० ११२८ में, गद्दी का अधिकारी हुआ। इसके ५ विवाह हुए थे। पहला विवाह डौंडियाखेरे के बैस क्षत्रिय रामसिंह की कन्या से हुआ। दूसरा रामपुर के बघेल राजा की पुत्री से, तीसरा छिनपरसोंदा के बैस राजा प्रेमचंद की कन्या से, चौथा मानपुर के चौहान राजा छत्रसाल की पुत्री से और पाँचवाँ विवाह पाटन के प्रतापपाल तोमर की कन्या से हुआ था। वीर भी अपने पिता के समान उद्योगी और पराक्रमी था। इसने सारे बुंदेलखंड से मुसलमानों को निकाल देने का निश्चय किया। सबसे पहले इसने भदौरिया राजपूतों से युद्ध कर अंटेर ले लिया। फिर अफगान सरदार तातार खाँ के साथ जगमनपुर में युद्ध किया। इस युद्ध में तातार खाँ और उसके सब साथी सरदार हार गए, जिससे उसके अधिकार का वह सब प्रदेश जो काल्पी के आस-पास था वीर ने ले लिया। ऐसा कहते हैं कि इस समय तातार खाँ के अधीन छोटे-बड़े ७२ सरदार थे। किसी किसी का ऐसा भी मत है कि वीर ने कलचुरियों से कालिंजर का किला भी ले लिया था।

९—इस प्रकार इसने बुंदेलखंड के अधिकांश पर अपनी राज-सत्ता स्थापित कर ली और महोनी अपनी राजधानी बनाई। वीर ने

दशरथ के राम और रामचंद्र के लव और कुश ये दो लड़के पैदा हुए। पश्चात् कुश के हरिब्रह्म, इनके महिपाल, भुवनपाल, कमलचंद्र, चित्रपाल, बुद्धिपाल, और विहंगराज। ये सातों अयोध्या ही में रहे पर विहंगराज का लड़का काशीराज काशी चला आया। इससे इस वंश में क्रमानुसार गहिरदेव, विमलचंद, नानकचंद, गोपचंद्र, गोविंदचंद्र, टिहनपाल, विंध्यराज, शौनकदेव, वीमलदेव और अर्जुनदेव हुए। इसके लड़के का नाम वीरभद्र था। इसके लड़के का नाम पंचम या हेमकरन था।) ओड़छा स्टेट गजेटियर और छत्रप्रकाश की वंशावली में भिन्नता है। गजेटियर में हेमकरन पिता और वीरभद्र पुत्र लिखा है, पर छत्रप्रकाश में वीरभद्र पिता और हेमकरन पुत्र लिखा है।)

अपनी तलवार के जोर से बहुत सा प्रदेश हस्तगत कर लिया, इससे इसका नाम लोहधार पड़ गया। इसकी दूसरी रानी से रणधीर, तीसरी से करनपाल और पाँचवीं से हीराशाह, हंसराज और कल्यानशाह नाम के पुत्र हुए। यह १६ वर्ष राज्य कर वि० सं० ११४४ में परलोक को सिधारा। इसका ज्येष्ठ पुत्र रणधीर छोटी ही उम्र में मर गया था इससे करनपाल राजगद्दी पर बैठा। यह भी अपने पिता के समान पराक्रमी था। इसके चार विवाह हुए थे। पहला विवाह हिरदेशाह पड़िहार की कन्या से हुआ था। इसके कन्नरशाह, उदयशाह और जामशाह नाम के तीन लड़के हुए थे। दूसरा विवाह मोरी के अमरशाह चौहान की कन्या से हुआ था। इससे शौनकदेव और नौनकदेव नाम के दो लड़के हुए थे। तीसरा विवाह जसवंतसिंह राठौर की कन्या से और चौथा कान्हपुर के राठौर खुमानसिंह की कन्या से हुआ था। इससे वीरसिंह नाम का पुत्र हुआ था। इन्होंने बनारस के मानसिंह घाट का जीर्णोद्धार करवाया था। इसे अब मणिकर्णिका घाट कहते हैं। ये बड़े ही दानी थे।

१०—करनपाल की मृत्यु के पश्चात् वि० सं० ११६९ में कन्नरशाह राजा हुआ। यह १८ वर्ष राज्य कर निस्संतान मर गया। इसके पीछे इसका भाई शौनकदेव वि० सं० ११८७ में गद्दी पर बैठा। इसका विवाह पृथ्वीपुर के मजबूतसिंह राठौर की कन्या से हुआ था, पर कोई संतान नहीं हुई। यह २२ वर्ष राज्य कर स्वर्गवासी हुआ। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका भाई नौनकदेव वि० सं० १२०९ में गद्दी पर बैठा। इसका विवाह इंदुरखा के बल्लारशाह गौड़ की कन्या से हुआ था, पर कोई संतान नहीं हुई। यह वि० सं० १२२६ में परलोक को सिधारा, परंतु इसने अपनी मृत्यु के पूर्व ही अपने भतीजे वीरसिंह के पुत्र मोहनपति को

वि० सं० १२१६ में गोद लेकर उत्तराधिकारी नियत कर दिया था। इससे यही गद्दी पर बैठा। पर इसके भी कोई संतान न हुई इससे यह उदास हो राजगद्दी अपने भाई अभय भूपति को दे तप करने चला गया। अभय भूपति वि० सं० १२५४ में राजा हुआ था, और इसने १८ वर्ष राज्य किया था। इसके समय में राज्य की वृद्धि नहीं हुई। इसके दो विवाह हुए थे। पहला विवाह नीमरान के जगशाह चौहान की कन्या से और दूसरा अंटेर के गौड़ राजपूत तेजसिंह की कन्या से हुआ था। ज्येष्ठ राजमहिषी से अर्जुनपाल और महेशपाल नाम के दो पुत्र हुए थे। यह वि० सं० १२७२ में अपने पुत्र अर्जुनपाल को राज्य दे काशीवास के लिये चला गया।

११—अर्जुनपाल महोनी से ही राज्य करते रहे। इनके तीन विवाह हुए थे। पहला शाहाबाद के मुकुटमणि चौहान की कन्या से और दूसरा हीरासिंह तोमर की कन्या से हुआ था। इसके सोहनपाल नाम का पुत्र हुआ था। इसका तीसरा विवाह वीरम के धंधेरे ठाकुर ईश्वरीसिंह की कन्या से हुआ था। इससे वीरपाल और दयापाल नाम के दो लड़के हुए थे। वीरपाल के वंशज आज-कल कोंच के पास बीओना, विरोदा, कुरार और देवगाँव में रहते हैं। अर्जुनपाल वि० संवत् १२८८ में स्वर्गवासी हुए। इनके मरने पर क्या-क्या हुआ यह तो पूर्ण रूप से नहीं मालूम होता, पर ऐसा पता लगता है कि वीरपाल अपने भाई सोहनपाल को गद्दी से उतार स्वयं राजा हो गया। इसने सोहनपाल के भरण-पोषण के लिये कुछ जागीर दे दी पर यह बात उसे बहुत ही बुरी लगी। इससे वह जागीर छोड़ उदास हो घर से निकल गया। वह कुछ दिनों तक इधर-उधर घूमता रहा पर अंत में गढ़ कुंडार आया। यहाँ पर खूबसिंह खंगार का वंशज हुरमतसिंह राज्य करता था। सोहन-

पाल ने इससे महौनी निकालने के लिये सहायता माँगी। परंतु हुरमतसिंह ने सहायता देना स्वीकार न किया। सोहनपाल हिम्मत न हारा और अपने उद्योग में लगा रहा। इस समय राजपूत लोग मुसलमानों के आक्रमणों से बहुत ही निर्बल हो रहे थे। इससे मुसलमानों ने इनके साथ वैवाहिक संबंध करने का उद्योग किया; पर राजपूतों ने इसे स्वीकार न किया, यद्यपि ये लोग इसे रोक भी न सके।

१२—सोहनपाल बड़ा ही साहसी और दृढ़प्रतिज्ञ था। इसने अपना स्वतंत्र राज्य कायम करने की ठान ली थी। इससे यह धीरे धीरे लोगों को अपनी ओर मिलाने लगा और राजपूत भी दिल से सहायता देने लगे। अंत में इसके पास एक बड़ी सेना हो गई। इसने पहले हुरमतसिंह से सहायता माँगी थी पर उसने न दी थी, इससे सोहनपाल ने उससे बदला लेना चाहा और अपनी सेना लेकर बेतवा के किनारे डेरा डाल दिया। यहाँ से इसने अपने पुत्र सहजेंद्र को, अपने पुरोहित और धरि नामक प्रधान के साथ, गढ़ कुंडार के राजा हुरमतसिंह के पास दुबारा भेजा। इस समय इसने अपने साहूकार विष्णु पाँड़े के कहने पर सहायता देना तो स्वीकार कर लिया, परंतु अपनी लड़की का विवाह राजकुमार के साथ करने का वचन लेना चाहा। इसे सुन सोहनपाल बहुत दुःखित हुआ और उसने वि० सं० १३१४ में इस पर चढ़ाई कर दी। इस समय इसे सिर्फ परमार और धंधेरों ने ही सहायता दी और चौहान, कछवाहे, शिलिंगा तथा तोमरों ने सहायता देने से मुँह मोड़ लिया। हुरमतसिंह लड़ाई में हार गया। इससे सोहनपाल ने गढ़ कुंडार पर अधिकार कर लिया।

१३—इस समय कछवाहे आदि क्षत्रियों ने सोहनपाल को मदद न दी थी इससे इसने इन सब क्षत्रियों के साथ वैवाहिक संबंध बंद करा दिया। इसका विवाह भवानी के रघुनाथसिंह धंधेरे की

कन्या से हुआ था। उससे इसके सहजेंद्र और रामसिंह नाम के दो पुत्र हुए थे। इसकी धर्मकुँवरि नाम की कन्या का विवाह पवायाँ (ग्वालियर) के परमार राजा पुण्यपाल के साथ हुआ था, जो ग्वालियर के तोमर राजा वीरपाल का भांजा था और दूसरी मुकुटमणि धंधेरे को ब्याही थी। इन संबंधों से परमारों और धंधेरों के साथ इसकी घनिष्ठ मित्रता हो गई, परंतु कई बुंदेले इससे नाराज हो गए। अन्य कई लोगों ने इससे खान-पान भी बंद कर दिया। इस समय सोहनपाल ने गढ़ कुंडार अपनी राजधानी बनाई। पीछे से उसने जैतपुर भी जीत लिया। यह ८ वर्ष राज्य कर वि० सं० १३१६ में परलोक को सिधारा।

१४—अपने पिता के पश्चात् सहजेंद्र राजगद्दी पर बैठा। इसने अपना राज्य काल्पी और चौरागढ़ तक बढ़ा लिया था। यह २३ वर्ष राज्य कर वि० सं० १३४० में मरा। इसके पश्चात् इसका पुत्र नौनकदेव गद्दी पर बैठा। इसका विवाह देवपुर के धंधेरे ठाकुर मकुंदसिंह की कन्या से हुआ था। इसके पृथ्वीराज और इंद्रराज नाम के दो लड़के हुए थे। नौनकदेव २४ वर्ष राज्य कर वि० सं० १२६४ में स्वर्गवासी हुआ। इसकी मृत्यु के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज राजा हुआ। यह बड़ा ही योग्य शासक था। यह हिंदूधर्म की रक्षा करना अपना धर्म मानता था। इस समय मुसलमान लोग हिंदुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाना और हिंदू मंदिरों को अपवित्र करना ही अपना धर्म मानते थे। इस कारण इनसे और हिंदुओं से सदा वैमनस्य रहा आता था। बुंदेले शासक लोग हिंदुओं की सदा सहायता किया करते थे। पृथ्वीराज जैसा प्रतापी और प्रजापालक था वैसा ही वह धर्म-रक्षक भी था। इसे यज्ञ-यागादि कर्मों से बड़ा प्रेम था। इसके समय में धर्म-संबंधी कामों में बड़ी उन्नति हुई। इससे और चंदेल राजा शशांक भूप से

युद्ध हुआ था। यह उसी युद्ध में घायल होकर वि० सं० १३९६ में परलोक को सिधारा।

१५—रामसिंह वि० सं० १३९६ में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् राजा हुआ। यह ३६ वर्ष राज्य कर वि० सं० १४३२ में परलोकवासी हुआ। इसका विवाह हरपुरा (टीकमगढ़ के पास) के मकुंदसिंह धंधेरे की कन्या से हुआ था। इससे रामचंद्र और मेदनीमल नाम के दो लड़के हुए थे। इसकी मृत्यु के पश्चात् रामचंद्र राजा हुआ। यह १९ वर्ष राज्य कर निस्संतान मरा। इसके पश्चात् मेदनीमल वि० सं० १४५१ में गद्दी पर बैठा। कोई कोई इसे मदनपाल भी कहते थे। इसने सिंहुड़ा और महोबा भी अपने राज्य में मिला लिए थे। इसका विवाह करैया के धंधेरे ठाकुर राजसिंह की कन्या से हुआ था। इससे अर्जुनदेव नाम का पुत्र हुआ। यह ४३ वर्ष राज्य कर वि० सं० १४९४ में परलोक सिधारा। अब अर्जुनदेव राजा हुआ।

१६—अर्जुनदेव का विवाह वरेछा (बेरछा) के नवलसिंह परमार की कन्या से हुआ था। इसके मलखानसिंह नाम का पुत्र हुआ था। यह ३१ वर्ष राज्य कर अपने पुत्र कुँवर मलखानसिंह को राज्य दे वि० सं० १५२५ में काशीवास के लिये चला गया। इसके दो विवाह हुए थे। पहला शाहाबाद के दीवान प्रेमचंद्र की कन्या से और दूसरा वरेछा (बेरछा) के परमारों के यहाँ हुआ था। वि० संवत् १५३५ में बहलूल ने ग्वालियर के राजा कीरतसिंह तोमर पर चढ़ाई की और उससे ८० लाख रुपए दंड के लेकर इसलिये चला गया कि राजा कीरतसिंह ने जौनपुर के हुसेनशाह शर्की की सहायता की थी। इसी समय राजा मलखानसिंह ने भी राजा कीरतसिंह की मदद की, इससे इन्हें भी बहलूल के साथ युद्ध करना पड़ा। यह युद्ध वि० सं० १५३५ में हुआ था[1]। यहाँ से बहलूल

(१) फरिश्ता में इस युद्ध का हाल नहीं लिखा है।

इटावा होते हुए दिल्ली गया था। रास्ते में इसने राजा संगतसिंह को हराया था।

१७—अब तक राजधानी गढ़कुंडार ही में थी, पर किसी किसी का मत है कि ये ही राजधानी गढ़कुंडार से ओड़छा लाए थे। इनके छः पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र रुद्रप्रताप गद्दी पर बैठा था। शेष खड्गसिंह, जोगजीतसिंह, सिंघजैतसिंह (जैतसिंह), शाह दीवान, (मित्रसैन) और देवीसिंह थे। इन सब को अलग अलग जागीरें दी गई थीं। इससे जो जहाँ रहे उनकी संतति अब उसी नाम से पुकारी जाती है। खड्गसिंह को बरेठी मिली। जोगजीतसिंह खाली में बसे। जैतसिंह ने तलेहटा पाया। शाह दीवान को असाटी मिली और देवीसिंह ने नेवारी पाई। मलखानसिंह ३३ वर्ष राज्य कर परलोक को सिधारा।

१८—महाराज मलखानसिंह के पश्चात् ज्येष्ठ कुमार रुद्रप्रताप राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने ओड़छे की बहुत उन्नति की। ऐसा कहते हैं कि पूर्व-काल में यहाँ पड़िहारों का राज्य था और ओड़छा उनकी राजधानी थी। चंदेलों से परास्त होने पर पड़िहारों का राज्य तो नष्ट ही हो गया था पर राजधानी ओड़छा उनकी स्मृति दिलाता हुआ बच रहा था। किंतु मुसलमानों और खंगारों के राजत्व-काल में यह भी श्रीहीन हो गया था। इसे महाराज रुद्रप्रताप ने एक वैभवशाली नगर बनाया। इसी से ये इसके बसानेवाले[1] माने जाते हैं। महाराज रुद्रप्रताप ने ओड़छे का किला बनवाने की नींव डाली थी और यह वि० सं० १५९६ में बनकर तैयार हुआ था। यदि शहर की नींव के साथ ही साथ किले का भी आरंभ हुआ हो तो इसके बनने में ८ वर्ष लग गए थे।

---

(१) महाराज रुद्रप्रताप ने वि० सं० १५८८ वैशाख सुदी पूर्णिमा सोमवार, ता० ३ अप्रैल सन् १५३१ ई०, को ओड़छा बसाया था।

१९—महाराज रुद्रप्रताप के दो विवाह हुए थे। प्रथम विवाह करेरावाले परमार गंगादास की कन्या से और दूसरा सहरावाले दीवान मानसिंह धंधेरे की कन्या से हुआ था। करेरावाली महारानी के गर्भ से ३ और छोटी रानी से ९ पुत्र हुए थे। इनमें से भारतीचंद और मधुकरशाह को राजगद्दी दी गई थी। राव उदयाजीत आदि ७ लड़कों को जागीरें दी गई थीं और तीन बाल्यकाल ही में मर गए थे[1]। ये सब बड़े ही पराक्रमी, वीर और विद्वान् भी थे। महाराज रुद्रप्रताप के राजत्व-काल के समय बाबर की चढ़ाइयों का जोर था। इससे इन्होंने अपने बाहुबल से बहुत सा इलाका जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इन्हें अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने को सिकंदर और इब्राहीम लोदी से समय समय पर युद्ध करने पड़े थे। ये बड़े ही धार्मिक थे। गो-रक्षा करना तो इन्होंने अपना मुख्य धर्म मान रखा था।

२०—ऐसा कहते हैं कि ये एक समय अपने पुत्र भारतीचंद को राज्यभार सौंप गढ़ कुंडार की ओर जा रहे थे। इतने में इन्हें जंगल से एक कराहती हुई गाय की आवाज सुनाई दी। फिर क्या था, इन्होंने आन की आन में गाय के पास पहुँच शेर को मार डाला। परंतु क्रोध में आ शेर ने भी महाराजा को घायल कर दिया। ऐसा कहना अनुचित न होगा कि पूर्वकाल में क्षत्रिय लोग गो-रक्षा करना अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते थे। महाराज

---

(१) भारतीचंद, मधुकरशाह, उदयाजीत, कीरतशाह, भूपतशाह, अमानदास, चंदनदास, दुर्गादास, घनश्यामदास, प्रयागदास, भैरोदास और खाँड़ेराय। उदयाजीत को महेवा, अमानदास को पँड़रा, प्रयागदास को हरसापुर। दुर्गादास को दुर्गापुर, चंदनदास (चंद्रदास) को करेरा, घनश्यामदास को मैगवाँ और भूपतशाह को कुंहुरा दिया गया था।

रुद्रप्रताप गो-रक्षा करने के समय शेर से घायल हो गए थे। वे इसी घाव से वि० सं० १५८८ में परलोक को सिधारे।

२१—महाराज रुद्रप्रताप का देहावसान होने पर भारतीचंद्र राजा हुआ। इसके समय में, वि० सं० १६०२ में, शेरशाह सूर ने कालिंजर पर चढ़ाई की थी। उस समय उसका आक्रमण रोकने के लिये राजा भारतीचंद्र ने अपने भाई मधुकरशाह को भेजा था, पर कुछ भी लाभ न हुआ। किला मुसलमानों के हाथ में चला ही गया। शेरशाह के मरने पर भारतीचंद्र ने इस्लामाबाद (जतारा) पर चढ़ाई की। इसके समय में ओड़छे के महल और किला वि० सं० १५९६ में बनकर तैयार हुए। इसी साल राजधानी भी गढ़ कुंडार से पूर्ण रूप से ओड़छे में लाई गई। यह २३ वर्ष राज्य कर वि० सं० १६११ में परलोक को सिधारा, और इसका छोटा भाई मधुकरशाह गद्दी पर बैठा।

२२—जिस समय मधुकरशाह गद्दी पर बैठा उस समय मुसलमानों का जोर था। ये लोग हर तरह से हिंदुओं को सताया करते थे। ये कभी उन पर आक्रमण करते और कभी उनके धार्मिक चिह्नों को नष्ट-भ्रष्ट करते। ऐसे कठिन समय में महाराज मधुकरशाह के सदृश धार्मिक राजा का स्वतंत्रतापूर्वक राज्य करना अकबर को बहुत खटकता था। कहते हैं कि अकबर ने एक बार हुक्म दिया कि कोई सरदार शाही दरबार में तिलक लगाकर और माला पहनकर न आए, पर मधुकरशाह बड़े ही कट्टर धार्मिक राजा थे। ये ऐसी बातों को कब माननेवाले थे। उस दिन और भी अधिक तिलक-मुद्रा लगाकर ये शाही दरबार में गए। यह देख अकबर जाहिर में तो बहुत खुश हुआ पर दिल में बहुत कुढ़ा। उसे मधुकरशाह की यह चाल बहुत बुरी लगी। मधुकरशाह नृसिंह के उपासक थे। एक दिन अकबर ने इन्हें भी आखेट में चलने के लिये कहा, पर महाराज

मधुकरशाह ने निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया कि मैं अपने इष्ट को मारने नहीं जा सकता। यह सुन बादशाह चुप रह गया। इस तरह धीरे धीरे इन दोनों में वैमनस्य बढ़ता गया। अंत में अकबर ने इसे वश में लाने के लिये दो बार सेना भेजी। पहली बार न्यामतकुली खाँ और अलीकुली खाँ आए और दूसरी बार जामकुली खाँ और सैयदकुली खाँ आए थे, पर दोनों बार शाही फौज को ही नीचा देखना पड़ा। अंत में अकबर ने वि० सं० १६३४ में मुहम्मद सादिक खाँ के सेनापतित्व में सेना भेजी। ग्वालियर के राजा आसकरन तोमर भी साथ आए थे। इन्होंने संधि करने की बहुत कुछ कोशिश की, पर राजा ने सुलह करना मंजूर न किया। इससे युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में राजकुमार होरलदेव खेत रहे और रामशाह जख्मी हो रणक्षेत्र से चले आए। इसलिये दोनों में सुलह हो गई पर यह बहुत दिन न चली। वि० सं० १६४५ में फिर अकबर ने आसकरन और अब्दुल्ला खाँ को ओड़छे पर आक्रमण करने को भेजा। इस बार ओड़छे का बहुत सा भाग मुगलों के हाथ लगा। किंतु राजा मधुकरशाह ने न माना। इससे अकबर ने मुराद के सेनापतित्व में वि० सं० १६४८ में सेना भेजी। राजा हार गया। इस समय ओड़छे पर अकबर का अधिकार हो गया। इसके कुछ दिनों के पीछे वि० सं० १६४९ में राजा मधुकरशाह का देहांत हो गया। इनके छः विवाह हुए थे। इन सब में महारानी गणेशकुँवरि प्रथम थीं। ये भी राजा मधुकरशाह के समान भगवद्भक्ति-परायणा थीं। इन्हें श्रीरामजी का इष्ट था। श्रीरामराजा की मूर्ति अयोध्या से ये ही लाई थीं। इनके आठ लड़के थे।

२३—ज्येष्ठ कुमार रामसिंह (रामशाह) अपने पिता के पश्चात् राजा हुआ। शेष सात पुत्रों में से होरलदेव वि० सं० १६३४ के युद्ध में मारे गए थे। इन्हें पिछोर की जागीर मिली थी। तीसरे

पुत्र इंद्रजीत को कच्छौवा की जागीर मिली थी। यहाँ पर अब तक इनके महल के ध्वंसावशेष वर्तमान हैं। वीरसिंहदेव ने बड़ौनी पाई थी। ये बड़े ही रणकुशल, पराक्रमी और शूर थे। इन्होंने ही अकबर ऐसे प्रबल शत्रु पर अपना आतंक जमाया था। ऐसे ही हरिसिंहदेव को भासनेह (झाँसी जिले में), प्रतापराव को कुच-पहरिया, रतनसिंह को गौरझामर और रनसिंहदेव को शिवपुर (ग्वालियर की सिपरी) जागीर में दिए गए थे। इस प्रकार अब ओड़छा रियासत के आठ भाग हो गए। यद्यपि ये सब ओड़छा के अधीन कहाते थे पर यथार्थ में स्वतंत्र थे। रामशाह अपने अधीनस्थ जागीरदारों को दबा न सका। इससे एक के बाद दूसरे का हौसला बढ़ा और वे स्वतंत्र होते गए। अंत में ओड़छा रियासत में २२ जागीरें हो गईं। इनमें से ७ में तो इन्हीं के भाई-बंध थे; शेष १५ में परमार, कछवाहे और गोंड़ लोग थे। अकबर के मरने पर जब सलीम जहाँगीर के नाम से तख्त पर बैठा तब उसने वीरसिंह को ओड़छे की गद्दी दे दी और रामशाह को चंदेरी और बानपुर की जागीर दी। इस समय इसकी आमदनी १० लाख रुपए थी। यह वि० सं० १६६९ में मरा।

२४—महाराज रुद्रप्रताप के तीसरे पुत्र उदयाजीत थे। इन्हें महेबा ग्राम जागीर में मिला था। उदयाजीत के प्रेमचंद, हृदयनारायण, भारतीचंद, गंगादास, काशीदास और राघोदास ये ६ पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र प्रेमचंद बड़ा ही पराक्रमी और गुणवान् था। इसने कई स्थानों में मुसलमानों से लड़ाइयाँ लड़ीं और विजय प्राप्त की। प्रेमचंद के तीन बेटे थे। उनके नाम कुँवरसिंह, मानशाह और भगवानदास थे। समरोहा नामक ग्राम कुँवरसिंह का बसाया हुआ है। मानशाह ने अपना निवास शाहपुर में किया। भगवानदास इनमें बड़ा विद्वान् और पराक्रमी समझा जाता था। भगवानदास

के पुत्र का नाम कुलनंदन था। यह भी अपने पिता की भाँति बड़ा दयाशील, धार्मिक और सद्गुणी था। कुलनंदन के चार लड़के थे जिनके नाम खड़गराय, चंद, सुभानराय और चंपतराय थे। नियमानुसार जागीर के हिस्से सब पुत्रों में बाँटे जाते थे और इस प्रकार चंपतराय को जो जागीर मिली उसकी वार्षिक आय केवल ३५०) थी।

२५—सब राजवंशजों को जागीरें मिलीं, परंतु राज्य पहले भारतीचंद्र और फिर मधुकरशाह के पास रहा। राजा भारतीचंद्र ने २३ वर्ष और राजा मधुकरशाह ने ३६ वर्ष राज्य किया। राजा भारतीचंद्र की मृत्यु विक्रम संवत् १६११ में हुई। जिस समय मधुकरशाह राजगद्दी पर बैठे उस समय दिल्ली में अकबर बादशाह का राज्य था। अकबर बादशाह ने दूर दूर तक के प्रांत अपने वश में कर लिए थे। मालवा, भोपाल और दक्षिण बुंदेलखंड का कुछ भाग अकबर के राज्य में था। कड़ा मानिकपुर और उसके आस-पास का देश भी अकबर के अधिकार में था। दमोह और सागर जिले का कुछ भाग गोंड़ राज्य में था, पर ये गोंड़ लोग भी रानी दुर्गावती की मृत्यु के पश्चात् अकबर के अधीन हो गए थे।

अध्याय १४

वीरसिंहदेव और चंपतराय

१—राजा मधुकरशाह के पश्चात् रामशाह गद्दी पर बैठा। शेष भाइयों को जागीरें दी गई थीं। रामशाह राजा तो हो गया, पर वह अपने अधीनस्थ जागीरदारों को अपने वश में न रख सका। इससे इसके राज्य की दशा बहुत ही बिगड़ गई और केवल

इसी रियासत की छोटी-बड़ी २२ जागीरें हो गईं। महाराज मधुकरशाह ने वीरसिंहदेव को बड़ौन (बड़ौनी) की जागीर दी थी। इससे वे वहाँ गए। पर वहाँ के पुराने मनचहे लोगों से न पटी। अंत में महाराज ने इन्हें मार भगाया। पश्चात् पवायाँ सेना भेजी और इसे अपने अधीन कर लिया। तदनंतर तोमरु (तोमरगढ़) भी इनके हाथ लग गया। अब इनकी धाक चारों ओर जमने लगी। लोग इनसे भय खाने लगे। नरवर (नलपुरा) और केलारस के निवासियों ने भी इनसे भय खाया। पश्चात् इन्होंने मैना और जाटों को हराया, फिर वेरछा और करहरा ले हथनौरा पर आक्रमण किया और यहाँ के अधिकारी बाघजंग जाँगड़ा को रणक्षेत्र में मार डाला। यह हाल देख भांडेर का मुगल सरदार हसनखाँ भाग गया और भांडेर बिना प्रयास ही इनके हाथ लग गया। पीछे से इन्होंने ईचीखाँ से एरछ भी छीन लिया। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में इन्होंने सूबा ग्वालियर को हिला दिया। यह देख अकबर ने, ओड़छे के राजा रामशाह और ग्वालियर के आसकरन के साथ सेना देकर, वीरसिंहदेव पर चढ़ाई कर दी। ये अपनी चतुरंगिणी सेना ले चाँदपुर आए। यहाँ पर जगमन भी शाही सेना के साथ मिल गया। इनके सिवाय हसनखाँ पठान, हरधौर पँवार और राजाराम पँवार भी साथ में थे। आसकरन ने मुगलसेना के पूर्व में राजाराम पँवार और हसनखाँ को रखा। उत्तर की ओर आसकरन और जगमन रहे। इस समय महाराज वीरसिंहदेव के पास इतनी सेना न थी कि वे खुले मैदान युद्ध करते। इससे वे आरंभ में इंद्रजीत और प्रतापराव को साथ ले दोनों ओर की सेनाओं पर छापे मार मारकर उसे तंग करने लगे। अंत में युद्ध ठन गया। इसमें रामशाह के पुरोहित मयाराम और उसका भाई खेत रहे। इससे रामशाह और आसकरन वापस आ गए।

२—वि० सं० १६५१ में आसकरन के वापस आने पर अकबर ने बहरामखाँ के पुत्र अबुलफ़जल को दक्षिण से वापस बुलाया था और इसके साथ में पंडित जगन्नाथ और दुर्गादास[1] को भेजा। रामशाह[2] भी शाही सेना के साथ आया। इनके सिवाय अकबर ने अब्दुल्लाखाँ को भी साथ भेजा। अबुलफ़जल ने इन सब सरदारों के साथ एक बड़ी फौज लेकर वीरसिंहदेव पर चढ़ाई की। अबुलफ़जल ने पवायाँ में डेरा डाला। यहाँ से रामशाह ने पंडित गोविंददास को वीरसिंहदेव के पास भेजा। इसने महाराज वीरसिंहदेव को बड़ौनी छोड़ देने की सलाह दी। परंतु महाराज ने नगर-निवासियों को तो अलग कर दिया और स्वयं युद्ध करने को तैयार हो गए। तब इन सबों ने मिलकर बड़ौनी घेर ली, पर ये निकल गए और शाही फौज पर छापा मारने लगे। इनसे तंग आकर खानखाना ने इन्हें बुलवाया। ये अब्दुल्लाखाँ से मिले। इसने इन्हें बादशाही मनसब दिलवाया और अपने साथ दक्षिण ले गया। उनके जाने पर बड़ौनी में शाही थाने बैठ गए। इस बात से वीरसिंहदेव को बहुत दुःख हुआ। इससे इन्होंने बरार के नजदीक पहुँचने पर अब्दुल्लाखाँ से बड़ौनी की जागीर वापस माँगी परंतु अब्दुल्लाखाँ ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए दक्षिण में जागीर देने का वचन दिया। इस समय यह दक्षिण में सूबेदारी पर जा रहा था। महाराज वीरसिंहदेव रामशाह के लड़के संग्रामशाह की सलाह से आखेट का बहाना कर वापस चले आए। इनके आते ही शाही थाने के लोग बड़ौनी से भाग गए। इधर संग्रामशाह ने भी मौका पाकर अब्दुल्लाखाँ से बड़ौनी माँग ली। यह घटना वि० सं० १६५१ की है।

---

(१) यह रामशाह का चाचा और मधुकरशाह का भाई था।

(२) फिरिश्ता में रामशाह को रामचंद्र लिखा है।

३—वि० सं० १६५६ में अकबर के पुत्र शाह मुराद का दक्षिण में देहांत हो गया। इस पर अकबर को बड़ा ही दुःख हुआ। इससे इसने दक्षिण जाने की तैयारी की। यह आगरे से धौलपुर होता हुआ ग्वालियर आया। यहाँ से इसने राजाराम कछवाहे को महाराज वीरसिंहदेव के पास बड़ौनी भेजा। इन्होंने इसका अच्छा आतिथ्य किया और सम्मति भी ली। अकबर भी राजाराम के जाने के पश्चात् माँड़ो जाने के लिये नरवर (नलपुरा) चला आया। यहाँ पर इसे राजाराम (रामशाह) बुंदेला मिला और राजाराम कछवाहा भी बड़ौनी से वापस आ गया। वि० सं० १६५७ में रामशाह के पुत्र संग्रामशाह को अब्दुल्लाखाँ ने बड़ौनी जागीर में दे दी थी, पर उस पर अधिकार करना तो दूर रहा, ये लोग उस ओर देख भी न सके। इससे इन्होंने यह मौका हाथ से न जाने दिया और बड़ौनी पर चढ़ाई करने के लिये अकबर से सहायता माँगी। अकबर तो यह चाहता ही था। इसने रामशाह के साथ राजसिंह को भी एक बड़ी सेना के साथ भेज दिया। यह सुन महाराज वीरसिंहदेव की सहायता के लिये राव प्रताप तो स्वयं आए और रतनशाह[१] (रतनसेन) के लड़के इंद्रजीत ने सेना भेजी। इस समय महाराज वीरसिंहदेव की भी अच्छी तैयारी हो गई थी। इससे राजसिंह ने संधि करने की सलाह की, पर महाराज ने संधि करना स्वीकार न किया। अंत में भाई हरवंश, अनंदी पुरोहित, देवा पायक इत्यादि के समझाने पर ईश्वर को बीच दे संधि कर ली और बड़ौनी छोड़ दी। परंतु राजसिंह ने अपना प्रण न निवाहा और इनके आते ही उस गाँव में आग लगवा दी। यह बात वीरसिंहदेव को बहुत बुरी लगी। उन्होंने अपने कुछ चुने हुए सामंत बकसराय

(१) यह अकबर की सेना के साथ गौड़ (बंगाले) की चढ़ाई में गया था। वहीं मारा गया।

प्रधान, केशोराय, चंपतराय, मुकुटगौड़, कृपाराम और बलवंत यादव को ले रातों-रात धावा कर दिया। इधर एक मैना ने इनके आने की खबर राजसिंह को दे दी। राजसिंह ने अपने लड़के के साथ एक बड़ी फौज भेजी और दामोदर को भी उसके साथ कर दिया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। महाराज के चुने हुए सिपाहियों और सामंतों ने इनकी खूब खबर ली। यदि राजसिंह ग्वालियर न भाग आता तो मारा जाता।

४—अकबर के सलीम, मुराद और दानियाल—ये तीन लड़के थे। इनमें से मुराद की मृत्यु हो गई थी और सलीम को यह चाहता भी न था। इससे दोनों में वैमनस्य हो गया। इस पर सलीम वि० सं० १६५६ में आगरे से निकल भागा और इसने अवध और कड़ा मानिकपुर अपने अधिकार में कर लिए। इधर महाराज वीरसिंहदेव भी अकबर से लड़ते लड़ते तंग आ गए थे, इससे इन्होंने यादव गौड़ सेनापति की सलाह से भावी बादशाह से भेंट करने का विचार किया। ये प्रयाग को रवाना हुए। पहला मुकाम शहजादपुर में किया। दूसरे दिन यहाँ से रवाना हो कई मुकाम करने पर प्रयाग पहुँचे। ये जैसे शूर-वीर थे वैसे ही धार्मिक भी थे। इससे इन्होंने पहले गंगा-स्नान किया फिर शाहजादा सलीम से भेंट की। सलीम तो यह चाहता ही था। महाराज का यथोचित सत्कार कर उसने उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। महाराज ने भी अपनी भावी उन्नति के विचार से अबुलफज़ल को मारने का वचन दे दिया। सलीम के राजविद्रोह करने पर अकबर ने इसे परास्त करने की इच्छा से अबुलफजल को वि० सं० १६५९ में दक्षिण से बुला भेजा। महाराज वीरसिंहदेव भी सैयद मुजफ्फर के साथ प्रयाग से बड़ौनी आ गए। यहाँ आने पर इन्हें अबुलफजल के आने और नरवर पहुँचने का हाल मालूम हुआ। अबुलफजल ने सिंधु पारकर

आँतरी के पास पराइछे नामक ग्राम में डेरा किया। दूसरे दिन प्रातःकाल कूच करते ही महाराज वीरसिंहदेव ने इसे आ घेरा। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। महाराज की बहुत सी सेना हताहत हुई, पर महाराज ने अबुलफजल का सिर काट लिया और उसे वे अपने साथ बड़ौनी ले आए। यहाँ से उसे चंपतराय की संरक्षकता में शाहजादा सलीम के पास प्रयाग भेज दिया। इसे देख वह फूला न समाया। इसके बाद उसने महाराज वीरसिंहदेव का राजतिलक करने के लिये चंपतराय के साथ अपना ब्राह्मण भेजा और साथ में एक रत्नजटित तलवार, छत्र, चँवर तथा डंका निशान भी भेजे। यह राजतिलक बड़ौनी में हुआ।

५—वि० सं० १६५९ में राजा वीरसिंहदेव ने अबुलफजल को मार डाला। जब इसकी खबर अकबर को मिली तब उसे इस बात का बहुत ही दुःख हुआ। उसने दो दिन तक भोजन न किया। उसे सांत्वना देने और सहानुभूति दिखाने के लिये खानआजम, राजा-राम कछवाहा, शेख फरीद, राजा भोजराय, दुर्गादास, जगन्नाथ इत्यादि दरबारी और उमराव गए। इन सब लोगों ने इसे बहुत धीरज बँधाया पर अकबर को धैर्य न हुआ। अंत में उसने वीर-सिंहदेव को पकड़ने के लिये सेना भेजी। इसके साथ राजसिंह, राजाराम और रामशाह भी साथ आए। ग्वालियर में इन्हें ओरछा के सुजानराय पँवार, प्रतापराय और सुजानशाह भी अपनी अपनी सेना के साथ आ मिले। यहाँ से ये सब आँतरी आए। यह देख शाहजादा सलीम ने राजा वीरसिंहदेव को युद्ध न करने की सलाह दी। इससे ये बड़ौनी छोड़ दतिया चले आए। यहाँ पर राजाराम, रामशाह और राजसिंह एक हो गए। इससे वीरसिंहदेव दतिया छोड़कर एरछ चले आए। पर शाही फौज ने इनका पीछा न छोड़ा और एरछ आते ही उन्हें घेर लिया। यहाँ पर

महाराज वीरसिंहदेव के लघु भ्राता हरसिंहदेव से विकट संग्राम हुआ। इस युद्ध में कई बड़े बड़े योद्धा खेत रहे और जमानखाँ का पुत्र जमालखाँ भी मारा गया। इसी बीच महाराज दूनी नाम के गाँव में चले गए। जब इस बात की खबर शाही फौज को लगी तब वह भी उनको पकड़ने के लिये दूनी पहुँची। इस तरह शाही फौज को तंग करते हुए ये दतिया चले आए। यहाँ पर सलीम शाहजादे से भेंट हुई। महाराज वीरसिंहदेव को देख यह बहुत ही खुश हुआ। इसके पश्चात् तरड़ी बेग इंद्रजीत को एरछ का किला दे कछोवा चला गया। अंत में अकबर हैरान हो गया और उसने शाहजादे सलीम को आगरे बुला भेजा। यह महाराज वीरसिंहदेव को दतिया में छोड़कर आगरे चला गया।

६—महाराज वीरसिंहदेव के इधर-उधर भागते रहने पर उन सब स्थानों पर शाही झंडा फहराने लगा था, पर शाहजादा सलीम के जाते ही शाही सेना वापस चली गई। फिर क्या था, महाराज वीरसिंहदेव ने इन्हें भेड़-बकरी की तरह काट डाला और उन सब स्थानों पर अपना अधिकार जमा लिया। सबसे पहले संग्रामशाह ने भाँड़ेर पर अपना अधिकार जमाया, पीछे से हरिसिंहदेव ने भसनेह को अधीन करना चाहा। यहाँ खड्गराय से युद्ध हुआ और हरिसिंहदेव वीरतापूर्वक लड़कर खेत रहे। इसका वीरसिंहदेव को बड़ा दुःख हुआ। इसी समय संग्रामशाह और वीरसिंहदेव से मेल हो गया। इससे संग्रामशाह ने वीरसिंहदेव को भाँड़ेर दे दिया। इन्होंने इसके बदले में गढ़ देने की प्रतिज्ञा की। इसके पीछे वीरसिंहदेव इमलोटा गए। यहाँ पर खड्गराय से युद्ध हुआ। यह सपरिवार मारा गया। फिर लहचुरा ले इन्होंने संग्रामशाह को दे दिया। इसके पश्चात् वीरसिंहदेव ने खड्गराय का सिर शाहजादा सलीम के पास आगरे भेज दिया। इससे शाहजादा तो खुश हुआ,

पर अकबर बहुत क्रुद्ध हुआ यद्यपि उसने अपना क्रोध प्रकट न होने दिया। पीछे से उसने रामदास कछवाहे को बुलवाकर शाहजादा सलीम के पास भेजा, परंतु उसने वीरसिंहदेव का साथ छोड़ना स्वीकार न किया। इससे दोनों में फिर वैमनस्य बढ़ गया और शाहजादा सलीम आगरा छोड़ प्रयाग चला आया। खाँडेराय के मरने पर इनके छोटे भाई इंद्रजीत ने बादशाह से फरियाद की। रामदास कछवाहे के समझाने पर बादशाह ने कुछ शर्तों पर इन्हें ओड़छा देना मंजूर किया, पर इन्होंने ओड़छा लेना स्वीकार न किया।

७—वि० सं० १६६१ में सलीम की माता (जोधबाई) का स्वर्गवास हो गया। इस समय अकबर ने इसे बुलवाया। शाहजादा सलीम को अपनी माँ के मरने का बहुत दुःख हुआ। यह इसी रंज से कई दिन तक बाहर न निकला। अंत में लोगों के समझाने और महाराज वीरसिंहदेव के आग्रह करने पर आगरे गया। पर वहाँ पहुँचने पर अकबर ने उसे बहुत कष्ट दिया। इससे वह फिर वहाँ से निकल भागा। अकबर को खाँडेराय के मारे जाने का दुःख बना ही था, इससे उसने फिर भी वीरसिंहदेव को पकड़ने के लिये अब्दुल्लाखाँ के सेनापतित्व में सेना भेजी। परंतु महाराज वीरसिंहदेव सलीम से मिलने के लिये प्रयाग आ गए थे। यहाँ से जाने के बाद उन्होंने ओड़छे पर अधिकार कर लिया। इस समय संग्रामशाह ने इनका साथ दिया था। उधर अब्दुल्लाखाँ भी अपनी सेना के साथ खम्हरौली में आ पहुँचा। फिर क्या था, महाराज वीरसिंहदेव भी इंद्रजीत, संग्रामशाह, राव प्रताप, उग्रसेन, केशवदास इत्यादि सामंतों को साथ लिए हुए युद्ध के लिये निकले। दोनों सेनाओं का ओड़छे से आध कोस पर सामना हो गया और बात की बात में घमासान युद्ध छिड़ गया। इस समय राजा राजसिंह और अब्दुल्लाखाँ को प्राण बचाना कठिन हो गया। मुगल

सेना ने पीठ दिखाई और वीरसिंहदेव ने विजयलक्ष्मी पाई। इन्होंने शाही सेना से माही मरातब[1] छीन लिए। यह देख राजसिंह भी ओड़छा छोड़ कठौली चला गया। इस युद्ध की हार से अकबर को बड़ा दुःख हुआ। अतः उसने फिर सेना भेजने का प्रबंध किया। किंतु जरावस्था के कारण वह कमजोर हो गया था। इस पर भी दानियाल की मृत्यु हो गई। मुराद पहले ही मर चुका था। इन सब कारणों से वह बीमार हो गया और वि० सं० १६६२ में परलोक को सिधारा। अब सलीम जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा।

८—शाहजादे सलीम ने तख्त पर बैठते ही महाराज वीरसिंहदेव को बुला भेजा। ये बड़ी खुशी से आगरे गए और अपने साथ संग्रामशाह के पुत्र भारतशाह को भी लेते गए। एरछ में रामशाह से भी भेंट हो गई। यहाँ से इंद्रजीत को भी इन्होंने साथ ले लिया। आगरा पहुँचते ही सलीम ने महाराज को बड़े आदर से लिया और उत्साहपूर्वक भेंट की। पीछे से महाराज ने शाही दरबार में भारतशाह और इंद्रजीत से भी भेंट करवाई। इसके पश्चात् उसने महाराज को सारे बुंदेलखंड का राज्य दे दिया और बहुमूल्य पारितोषिक दे बिदा किया। इस समय महाराज ने जतारा लेने से इनकार किया। पर जतारा में मुगलों का रहना अच्छा न होगा, यह समझकर उसने जतारा भी दे दिया। आगरे से बिदा हो महाराज एरछ आए। यहाँ पर अन्यान्य कुटुंबियों के साथ रामशाह भी मिलने आए, पर बातों ही बातों में बिगाड़ हो गया। महाराज ने इन्हें बहुतेरा समझाया, पर ये पठारी वापस चले गए, और महाराज वीरसिंहदेव भी पिपरहट आ गए। यहाँ पर अब्दुल्लाखाँ और दरियाखाँ भी मिलने के लिये आए। पीछे से रामशाह ने पठारी को

---

(१) झंडे के ऊपर का निशान।

छोड़ दिया और वे बनगवाँ में रहने लगे। इससे पठारी में वीरसिंहदेव का अधिकार हो गया। इस तरह दोनों राजाओं के बीच में केवल आध कोस का अंतर रह गया।

९—वि० सं० १६८० में शाहजादा खुसरो और जहाँगीर में वैमनस्य हो गया। इससे वह आगरे से निकल भागा। बादशाह ने उसका पीछा किया, पर वह न मिला। इसी समय महाराज वीरसिंहदेव ने इंद्रजीत के साथ अपने पुत्र को राजा रामशाह के पास मिलने के लिये भेजा। इससे दोनों में फिर मेल हो गया। पीछे से राजा रामशाह ने अपने नाती संग्रामशाह के पुत्र भारतशाह को बरेठी भेजा। इस व्यवहार से दोनों में संधि हो गई। इससे रामशाह के मंत्रियों ने भारतशाह को महाराज के पास ही रहने दिया। महाराज वीरसिंहदेव और रामशाह से एका हो ही गया था। भारतशाह महाराज के पास था ही। अब इंद्रजीत के आने पर रामशाह ओड़छे चला आया। यहाँ से इसने अंगद, प्रेमा और केशवदास मिश्र को चिरस्थायी संधि करने के निमित्त भेजा, किंतु प्रेमा और अंगद ने संधि के बदले विग्रह करा दिया। इन दोनों ने राजा रामशाह और रानी कल्याणदेवी के कान भर दिए जिससे इन्होंने भारतशाह को बरेठी से बुला लिया। यहीं से कुल-नाश का अंकुर फूटा।

१०—वीरसिंहदेव भारतशाह के चले आने पर वि० सं० १६६३ में बरेठी से वीरगढ़ चले गए और उन्होंने बवीना पर अधिकार कर लिया। इधर भारतशाह के आ जाने पर रामशाह भी युद्ध की तैयारी करने लगा। यद्यपि केशवदास ने फिर भी समझाया, पर इसके मन में एक भी न भाया। महाराज वीरसिंहदेव भी अपनी सेना तैयार कर ओड़छे पर आक्रमण करने का विचार करने लगे। इतने में जहाँगीर बादशाह ने काल्पी के सूबेदार अब्दुल्ला-

खाँ को ओड़छे पर आक्रमण करने को भेज ही दिया। मुगल सेना के आते ही रामशाह ने इंद्रजीत और राव भूपाल को युद्धस्थल पर भेजा[1]। दोनों सेनाओं में तुमुल युद्ध हुआ। मुगल सेना भागने पर ही थी कि महाराज वीरसिंहदेव आ पहुँचे। इनके डंकों की आवाज सुनते ही राव भूपाल शंकित हो उठे और इंद्रजीत, जो पहले से ही घायल हो गए थे, मूर्च्छित हो गए। इससे इनके साथी इन्हें रणभूमि से उठा ले गए। फिर क्या था, मुगल सेना दूने उत्साह से लड़ने लगी जिससे राव भूपाल के भी पैर उखड़ गए। जब महाराज वीरसिंहदेव ने देखा कि कुल-नाश हुआ ही चाहता है तब इन्होंने अपने सामंत सुंदर प्रधान को संधि करने के लिये राजा रामशाह के पास भेजा। पर ये वीरसिंहदेव से न मिले, वरन् अब्दुल्लाखाँ के पास चले गए। उसने इन्हें आते ही कैद कर लिया और दिल्ली ले चला। इस बात का महाराज को बड़ा दुःख हुआ। अब इन्हें रामशाह की चिंता हुई। इससे इन्होंने हरि को तो ओड़छे के प्रबंध का भार दिया और राव भूपाल को शीहट, इंद्रजीत को गढ़ कुंडार और प्रतापराव को बंधा की जागीर देकर रामशाह को छुड़ाने के लिये आप आगरा चले गए। इनके जाते ही देवराय ने भारतशाह को साथ लेकर पठारी पर अधिकार कर लिया और बेतवा किनारे के कई गाँव जला डाले। इनके जाते ही जहाँगीर ने वीरसिंहदेव को मधुकरशाह का सारा राज्य दे दिया और रामशाह को चँदेरी और बानपुर का राज्य दे दोनों में मेल करा दिया। पीछे से महाराज को जब यहाँ की सब घटनाओं का हाल मालूम हुआ तब वे आगरे से चले आए। यहाँ आते ही शांति हो गई।

११—वि० सं० १६८२ में इन्होंने अपने पुत्र भगवंतराय को महावतखाँ की कैद से जहाँगीर को छुड़ाने के लिये भेजा। यद्यपि

(१) राव भूपाल और इंद्रजीत दोनों रतनशाह के पुत्र थे।

यह कुछ विलंब से पहुँचा तो भी बादशाह इन पर खुश हुआ। महाराज ने अपने बाहुबल से अपनी रियासत की आमदनी २ करोड़ रुपए कर ली थी। इसमें ८१ परगने और १२५००० ग्राम थे। इन्होंने ओड़छे को फिर से बसाया और इसका नाम जहाँगीरपुर रखा। पीछे से एक महल भी बनवाया। इसका नाम जहाँगीर महल रखा। इसके सिवाय एक फूल-बाग लगवाया और चतुर्भुज जी का मंदिर बनवाया। इन्होंने वीरपुर गाँव बसाया और वहाँ पर वीरसागर नाम का तालाब भी खुदवाया। ये जैसे शूर और प्रतापी थे वैसे ही दानी भी थे। कहते हैं कि इन्होंने मथुरा जी में ८१ मन सोने का तुलादान किया था, जिसकी तुला आज तक विश्रामघाट में सुरक्षित है। इनके दान की ऐसी ही ऐसी और भी अनेक कथाएँ हैं। तुलादान वि० सं० १६८१ में किया गया था।

१२—इनके तीन विवाह हुए थे। पहली शादी शाहाबाद के दीवान श्यामसिंह धंधेरे की कन्या अमृत कुँवरि से हुई थी। इससे इनके जुझारसिंह, पहाड़सिंह, नरहरिदास, तुलसीदास और बेनी-दास ये पाँच पुत्र हुए। इनमें से जुझारसिंह और पहाड़सिंह तो राजा हुए और नरहरदास को धामौनी, तुलसीदास को गढ़ तथा बेनीदास को पहारी की जागीर दी गई थी। दूसरा विवाह खैर-वान के प्रमारसिंह की कन्या गुमान कुँवरि के साथ हुआ था। इससे उनके चार पुत्र और एक कन्या हुई। इनमें से दीवान हरदौल को बड़गाँव, भगवंतराय को दतिया, चंद्रभान को जैतपुर और कोंच आदि परगने तथा किसुनसिंह को देवराहा मिला, तथा लड़की कुंज कुँवरि का विवाह वेरछा में हुआ। इनकी तीसरी रानी शहर शाहा-बाद के धंधेरे की कन्या थी। इसका नाम पंचम कुँवरि था। इसके तीन लड़के हुए। बाघराज को ररौली, माधवसिंह को खरगापुर जागीर में दिया गया और परमानंद ओड़छे ही में रहे। किसी भी

राजा की कीर्ति उसके सलाहकारों से ही बढ़ती है। इस समय महाराज के सेनापति यादवराय गौड़ के सुयोग्य पुत्र कृपारामसिंह और कन्हरदास ब्राह्मण मंत्री थे।

१३—चंपतराय को महोबा की जागीर मिली थी। यह जागीर भी ओड़छे के राज्य में थी। परंतु चंपतराय अपनी शूर-वीरता के कारण बहुत विख्यात हो गए। इन्हें वीरसिंहदेव का मुगलों के अधीन रहना अच्छा न लगता था। इससे वीरसिंहदेव ने जहाँगीर के मरते ही शाहजहाँ को इनकी सलाह से कर देना बंद कर दिया और ओड़छे को स्वतंत्र कर लिया। यह बात शाहजहाँ को अच्छी न लगी। इससे उसने बाकीखाँ नामक सरदार को एक बड़ी सेना साथ में देकर बुंदेलों को वश में करने के लिये भेजा। इस समय चंपतराय, वीरसिंहदेव तथा अन्य बुंदेले एक हो गए। इससे बाकीखाँ की इस बड़ी सेना को हार खानी पड़ी। बाकीखाँ हार मानकर वापस चला गया और बुंदेलों की स्वतंत्रता कायम रही।

१४—इसी युद्ध के समय, जब कि बाकीखाँ अपनी फौज लेकर हारकर वापस जा रहा था, चंपतराय का बड़ा लड़का सारवाहन उसे मिला। एक इतिहासकार का कहना है कि वह वहाँ शिकार खेलने गया था। बाकीखाँ ने उस अकेले लड़के को, जिसके पास थोड़ी सी सेना थी, घेर लिया और उसे युद्ध में मार डाला। सारवाहन था तो छोटा, पर उसने समरभूमि में मुगलों के छक्के छुड़ा दिए थे।

१५—शाहजहाँ को जब बाकीखाँ की हार का हाल मालूम हुआ तब उसे बहुत फिक्र हो गई। मुगल लोग भारतवर्ष में अपने बराबर बलवान् किसी को न समझते थे और कोई ऐसा राज्य भारतवर्ष में न था जो मुगलों की सेना को हरा सके। परंतु बुंदेलखंड के राजा ने छोटे छोटे जागीरदारों की सहायता से बड़ी मुगल सेना

को हरा दिया। इसका कारण बुंदेलों की स्वातंत्र्यप्रियता और आत्म-विश्वास था। बुंदेले लोग उस समय भी मुगलों का सामना करने से न चूके जिस समय कि वे (बुंदेले) बहुत ही बलहीन थे। बुंदेलों की यह जीत देख शाहजहाँ से बिलकुल न रहा गया और वह स्वयं अपने बड़े सेनानायकों को साथ ले सारी सेना के साथ वि० सं० १६८५ में ओड़छे पर आक्रमण करने आया। ओड़छे को बचाने के लिये वही पुराने बुंदेले थे। उनमें आत्मविश्वास पूरा था। बादशाह की सेना ने भरपूर प्रयत्न किया, परंतु वह ओड़छे को न ले सकी। इस समय बुंदेलों का नायक चंपतराय था। उसकी विलक्षण बुद्धि और शौर्य ने ही बुंदेलों को विजय दिलाई। बादशाह शाहजहाँ, अपनी साठ हजार मनुष्यों की सेना समेत हारकर, दिल्ली वापस चला गया और बुंदेले अपनी स्वतंत्रता तथा विजय का डंका बजाते हुए बुंदेलखंड का राज्य करते रहे। बादशाह शाहजहाँ ने बुंदेल-खंड को अपने साम्राज्य में फिर से ले लेने का प्रयत्न न छोड़ा। वह चारों ओर से सेना इकट्ठी करने के प्रयत्न में लग गया।

१६—बादशाह शाहजहाँ ने अब भिन्न-भिन्न स्थानों के नामांकित सेनापति बुलवाए। आगरा से मुहब्बतखाँ, दक्षिण से खान-जहान और इलाहाबाद से अब्दुल्लाखाँ आए। सब लोगों ने एका-एकी बुंदेलखंड पर आक्रमण करने का विचार कर लिया। सारे मुगल साम्राज्य की शक्ति फिर से बुंदेलखंड पर आकर्षित हो गई। वीर बुंदेलों ने न तो बादशाह की इस असंख्य सेना का सामना एक खुले मैदान में करना ठीक समझा, न उन्होंने उससे संधि ही की। वरन् वे अपने शौर्य से स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के प्रण पर अड़े रहे। मुसलमान अपनी असंख्य सेना लेकर बुंदेलखंड के बड़े बड़े मैदानों में पड़े पड़े बुंदेलों की बाट देखते रहे और बुंदेले अपनी थोड़ी सेना में से कुछ तो गढ़ों के भीतर और कुछ मुगलों के मार्ग की

घाटियों में रखकर लड़ाई की वाट देखने लगे। कुछ दिन विना युद्ध के ही वीत गए। मुगल लोग सीमा के प्रदेशों की सेना भी वुंदेलखंड में लाए थे। इस सेना को वहुत दिन तक मुगल लोग यहाँ पर न रख सके। मुगलों ने इस वड़ी सेना को तुच्छ वुंदेलों के युद्ध के लिये रखना अनावश्यक समझ सेना के अधिकांश को अपने अपने स्थान को वापस भेजने का हुक्म दे दिया। वुंदेलों से युद्ध के लिये जितनी सेना मुगलों ने काफी समझी उतनी रख ली। इस समय वुंदेलों का सेनापति वही वीर और वुद्धिमान् चंपतराय था। जव मुगल सेना थोड़ी रह गई तव वेतवा के किनारों की दरारों और विंध्य पर्वत के दुर्गम भागों में छिपी हुई वुंदेलों की सेना, चंपतराय के आदेशानुसार, धीरे धीरे वाहर निकली और अचानक चारों ओर से मुगल सेना पर आक्रमण करके उसे तितर-वितर करने लगी। इस युद्ध में मुगलों के प्रसिद्ध सेना-नायक शहवाजखाँ, वाकीखाँ और फतेहखाँ भूतलशायी हुए। इस प्रकार फिर से यवनों का पराभव हुआ और वुंदेलों की विजय हुई। इसी समय वुंदेलों ने सिरोंज के राजा को अपने अधिकार में कर लिया और भिलसा तथा उज्जैन लूटकर वे वहुत सा माल ले आए।

१७—वादशाह शाहजहाँ ने यह सुनकर फिर वुंदेलों पर वि० सं० १६८४ में चढ़ाई करने का निश्चय किया। अव की वार मुहम्मद सुभान, वली वहादुरखाँ, अब्दुल्लाखाँ और नौरोजखाँ सेना-पतियों को यह कार्य सौंपा गया। इन लोगों ने फिर से खूव तैयारी कर वुंदेलखंड पर आक्रमण किया। वुंदेलों ने फिर वीरता से सामना किया। शाहजहाँ ने अव वुंदेलों से लड़ना ठीक न समझा और संधि की वातचीत आरंभ कर दी। इस समय वुंदेलखंड की भी खराव हालत हो गई थी। वुंदेलों के पास इतना धन नहीं था कि वे वहुत दिनों तक लड़ सकते। इसी समय वुंदेलखंड में

एक बड़ा अकाल पड़ा और लोगों को अन्न का कष्ट होने लगा। इस कारण बुंदेलों ने भी सोचा कि संधि कर लेना अच्छा होगा। राजा वीरसिंहदेव का भी इसी समय देहांत हो गया। इस कारण शाहजहाँ ने वीरसिंहदेव के पुत्र जुझारसिंह को ओड़छे का राजा स्वीकार किया। वरन् अपने पक्ष में करने के लिये इसने चँदेरी के राजा भारतशाह, ओड़छे के राजा जुझारसिंह और इसके भाई पहाड़सिंह तथा धामौनी के राजा नरहरदास को चार हजारी मनसब दिए और जुझारसिंह के पुत्र विक्रमाजीत को एक हजारी मनसब दिया। ऐसे ही बुंदेलों की सेना के नेता चंपतराय की वीरता की प्रशंसा कर उसे कोंच का परगना दिया और उसकी गणना शाही दरबार के अमीरों में करना स्वीकार किया। इस प्रकार दिल्ली दरबार ने ओड़छे को स्वतंत्र राज्य माना और चंपतराय के शौर्य की प्रशंसा की।

अध्याय १५

महाराज वीरसिंहदेव के पश्चात् का हाल

१—ओड़छे के राजा वीरसिंहदेव बड़े योग्य शासक थे। प्रजा इनसे बहुत प्रसन्न थी। धामौनी, झाँसी और दतिया के किले इन्हीं के बनवाए हुए हैं। दतिया के किले के बनवाने में ८ वर्ष १० मास २६ दिन लगे थे और बत्तीस लाख नब्बे हजार नौ सौ अस्सी रुपए खर्च हुए थे। इनके पश्चात् इनके उत्तराधिकारी योग्य न निकले। इनके १२ लड़कों में से जुझारसिंह ज्येष्ठ था, यही राजा हुआ। पर यह बड़ा ही घमंडी और शक्की था। वि० सं० १६८५ में यह अपने विमात्र हरदौल से किसी कारण अप्रसन्न हो

गया। इससे इसने अपनी रानी से कहकर उसका नेवता करवाया और उसी से उसको विष दिलवा दिया। रानी हरदौल को पुत्रवत् चाहती थी। इससे उसने सच्ची घटना हरदौल से कह दी तो भी हरदौल ने वह विष-मिश्रित भोजन कर ही लिया और मर गया। यह कथा बुंदेलखंड में बहुत प्रचलित है। हरदौल लाला के नाम के चबूतरे प्रत्येक स्थान में बने हुए हैं।

२—विष देने की खबर जब शाहजहाँ को मालूम हुई तब उसने महाबतखाँ के अधीन वि० सं० १६८५ में अपनी सेना भेजी। उसकी मदद के लिये नरवर का राजा रामदास, दतिया का भगवंत-राय, चंदेरी का भारतशाह, कालपी का सूबेदार अब्दुल्लाखाँ और एरछ के जागीरदार पहाड़सिंह अपनी अपनी सेना लेकर आए। इनके अतिरिक्त खानेजहाँ भी अपनी सेना लेकर आया था। इस सेना को देखते ही जुझारसिंह ने संधि कर ली और महाबतखाँ के कहने पर शाहजहाँ ने भी उसे माफ कर दिया। पर इसके बदले इसका बहुत सा इलाका ले लिया गया और इसे महाबतखाँ के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर भेज दिया गया। इस सहायता के उपलक्ष में पहाड़-सिंह को शाही डंका दिया गया।

३—वि० सं० १६८६ में खानेजहाँ ने बगावत की। तब उसे धौलपुर के सूबेदार अब्दुल्ला हसन ने युद्ध में हरा दिया। इससे यह चंबल पारकर ओड़छे की सीमा में घुस आया। इस समय जुझारसिंह तो दक्षिण में था। पर विक्रमाजीत ने; जो ओड़छे में था, कुछ ध्यान न दिया। इससे शाहजहाँ ने जुझारसिंह को दक्षिण से बुला भेजा और इसे तथा पहाड़सिंह, धामौनी के नरहरदास, जैत-पुर के चंद्रभान और भगवंतराय को उसके पकड़ने के लिये भेजा। राजौरी के पास इनसे भेंट हो गई और खानेजहाँ से युद्ध ठन गया। इसमें नरहरदास खेत रहा। खानेजहाँ का लड़का बहादुरखाँ भी

पहाड़सिंह के सरदार परसराम के हाथ से मारा गया, और खानेजहाँ दक्षिण को चला गया।

४—वि० सं० १६८७ में खानेजहाँ दक्षिण हैदराबाद से भागकर नर्मदा उतर धरमपुरी (मालवा) में ठहरा, परंतु यहाँ के सूबेदार अब्दुल्लाखाँ और मुजफ्फरखाँ ने इसे यहाँ से मार भगाया। विक्रमाजीत ने इसे उत्तर की ओर भागने को बाध्य किया। भांडेर के पास नीमी नाम के गाँव में लड़ाई हुई और यह हार गया, पर निकल भागा। अंत में कालिंजर के पास बरा में मारा गया। इसके बदले शाहजहाँ ने विक्रमाजीत को दो हजारी मनसब और युवराज की पदवी दी।

५—वि० सं० १६८९ में विक्रमाजीत ने दौलताबाद लेने के समय बड़ी शूरता दिखलाई थी। इससे शाहजहाँ ने प्रसन्न होकर इसे और पहाड़सिंह तथा पहाड़ी के बेनीदास और चतुर्भुज को अच्छा पारितोषिक दिया।

६—वि० सं० १६९० में जुझारसिंह ने गोंड़ राजा प्रेमशाह और उसके मंत्री जयदेव वाजपेयी को मार डाला और उसका किला चौरागढ़ अपने राज्य में मिला लिया। इस पर प्रेमशाह के लड़के हृदयशाह का पक्ष लेकर शाहजहाँ ने वि० सं० १६९१ में ओड़छे पर चढ़ाई की। राजा जुझारसिंह यहाँ से धामौनी गया। परंतु शाही फौज ने उसका पीछा किया, जिससे चौरागढ़ होता हुआ यह चाँदा की ओर चला गया। यहाँ पर भी शाही फौज ने इसका पीछा न छोड़ा। अंत में यह अपने कुटुंबियों को दक्षिण की ओर भेजकर जंगल में जा छिपा। यहाँ पर गोंड़ों ने इसे और विक्रमाजीत को पकड़कर बड़ी निर्दयता से मार डाला, और खानेजहाँ ने दोनों के सिर काटकर शाहजहाँ के पास भेज दिए। इसके बाद जुझारसिंह का छोटा लड़का दुर्गभान और विक्रमाजीत का लड़का

दुर्जनसाल मुसलमान बनाए गए और इनके नाम इस्लामकुलीखाँ तथा अलीकुलीखाँ रखे गए। छोटा लड़का भी, जो गोलकुंडे में उदयभान और श्यामदौआ के पास था, मुसलमान बनाया गया और इस्लामकुलीखाँ के साथ पढ़ने को भेजा गया। उदयभान और श्यामदौआ, मुसलमान होने से इनकार करने पर, मारे गए। इस समय सेनापतित्व औरंगजेब को दिया गया था और उसकी मदद के लिये अब्दुल्लाखाँ बहादुर फीरोजजंग और खानदौरान के सिवाय चंदेरी के राजा देवीसिंह, रीवाँ के बघेल राजा अमरसिंह, एरछ के पहाड़सिंह और जैतपुर के चंद्रभान आए थे। जुझारसिंह की मृत्यु के पश्चात् वि० सं० १६९३ में धामौनी में सरदारखाँ किलेदार रखा गया था। पीछे से यह वि० सं० १७०१ में मालवा का सूबेदार बनाया गया। यह वहाँ पर सं० १७१० तक रहा।

७—उर्दू और अँगरेजी इतिहासों में जुझारसिंह की चढ़ाई का कारण नहीं बतलाया गया, पर ऐसी जनश्रुति है कि प्रेमशाह अपने पिता मधुकरशाह की मृत्यु का समाचार सुन वीरसिंहदेव से बिना मिले ही दिल्ली से चला आया था। उसी अपमान का बदला प्रेमशाह से वीरसिंहदेव के पुत्र जुझारसिंह ने लिया था। कुछ लोगों का कहना है कि गोंड़वाने में गाएँ भी जोती जाती थीं। इसकी और बुंदेला राजाओं की सीमा मिली हुई थी। ये लोग गोभक्त थे। इससे गायों का जोतना इन्हें बहुत ही बुरा लगता था, पर विरोध करना न चाहते थे। इतने में एक दिन एक भाट आया। उस समय पहाड़सिंह दातौन कर रहे थे। भाट ने पहाड़सिंह से गौओं का दुःख कहा[1], जिसे सुन वे उठ खड़े हुए और लड़ाई के

(१) पढ़ी हैं विशाचन पंथ जोतत हैं लादो पान,
सुधहू न लेत पापी गृपहू के कान की।

लिये जाने लगे। तब जुझारसिंह ने इन्हें रोककर स्वतः चढ़ाई की। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि पहाड़सिंह के राजत्व-काल ही में यह घटना घटी हो, जिससे पहाड़सिंह ने वि० सं० १७०८ में हिरदेशाह पर चढ़ाई की हो।

८—वि० सं० १६९१ में राजा देवीसिंह ने ओड़छे की चढ़ाई के समय शाही सेना का साथ दिया था। इससे शाहजहाँ ने जुझारसिंह के मारे जाने पर इसे ही ओड़छे का राजा बनाया, पर यह शांति स्थापित न कर सका। इससे दो वर्ष के बाद वि० सं० १६९३ में यह चंदेरी वापस कर दिया गया और जुझारसिंह के छोटे लड़के पृथ्वीराज को गद्दी दी गई, किंतु यह छोटा था। इससे ऐसे कठिन समय में—जब कि चंपतराय के समान योद्धा, ज़िसके आक्रमणों को मुगल सेना भी न रोक सकती थी, मुँह बाए ओड़छे को निगलना चाहता था—ऐसे छोटे बालक से प्रबंध होना कठिन था। और भी अराजकता छा गई। इससे यह वि० सं० १६९४ में कैद कर ग्वालियर भेज दिया गया। इसके कैद होते ही चंपतराय ओड़छे की गद्दी पर आ बैठा और बादशाही सेना पर छापे मारने लगा। अंत में शाहजहाँ ने हार मानकर चंपतराय को दबाने के लिये शहबाजखाँ के सेनापतित्व में एक बड़ी सेना भेजी और उसकी सहायता के लिये फत्तेखाँ और बाकीखाँ भी आए, किंतु ऐसी बड़ी सेना भी चंपतराय के सामने न ठहर

कान्ह जू की कामधेनु करती हैं विलाप रोय,
कपिला की जात कहूँ भाग नहीं जाने की॥
रोज उठ करत अरज भोर भए भानु जू सों,
फौज चढ़ आवै केशोराव के घराने की।
वीरसिंह जू के वंश प्रबल पहाड़सिंह,
तेरी बाट हेरती हैं गौएँ गोंड़वाने की॥

सकी और हार मानकर वापस चली गई। इसके जाते ही चंपतराय सिरौंज, भेलसा, धार, उज्जैन लूटते हुए धामौनी आए। इस समय यहाँ पर सरदारखाँ रहता था। इसे भी अपना प्राण बचाना कठिन हो गया। अंत में इन्होंने धामौनी को लूट लिया और ग्वालियर पर छापा मारा। इस तरह से इन्होंने नर्मदा से लेकर चंबल के हाते तक के देश लूट लिए। जब इनके आक्रमणों की खबर शाहजहाँ को मिली तब उसने खानेजहाँ के नेतृत्व में एक बड़ी सेना फिर भी चंपतराय को दबाने के लिये भेजी। इसकी मदद के लिये सैयद मुहम्मद बहादुरखाँ और अब्दुल्लाखाँ भी आए थे। पर चंपतराय का कुछ न कर सके और हार मानकर वापस चले गए। इस तरह लगातार चार वर्ष तक तंग होने के पश्चात् शाहजहाँ ने वि० सं० १६९८ में पहाड़सिंह को ओड़छे की गद्दी दे दी।

९—शाहजहाँ ने वि० सं० १६९८ में पहाड़सिंह को ओड़छे की गद्दी दे दी थी। पश्चात् उसने इसे ५००० हजारी मनसब दिया और २००० सवार रखने की आज्ञा दे दी। इस समय चंपतराय उससे मिलने के लिये इस्लामाबाद (जतारा) आए। पहाड़सिंह ने उनका बड़ा स्वागत किया। इनका (पहाड़सिंह) एक बड़ा विश्वासी मंत्री नसीमुद्दौला नाम का मुसलमान था। बुंदेलों का यवनों के विरुद्ध आंदोलन इसे पसंद न था और चंदेरीवाले पहले ही से ओड़छे से असंतुष्ट थे। इतना ही नहीं किंतु इन्होंने मुसलमानों और गोंड़ लोगों को ओड़छे के विरुद्ध सहायता भी दी थी। परंतु ओड़छे के राजा और चंपतराय का मेल ही इस समय बुंदेलखंड की रक्षा कर रहा था। ओड़छे के मंत्री नसीमुद्दौला ने इसे भी नष्ट कर देना चाहा। चंपतराय पहाड़सिंह का बहुत मान करते थे और उनके नेतृत्व में रहना स्वीकार करते थे, परंतु चंपतराय की बहादुरी किसी से छिपी न थी। राज्य भर में जितना मान चंपत-

राय का था उतना किसी और का न था। इससे पहाड़सिंह को ईर्ष्या उत्पन्न हुई और वजीर नसीमुद्दौला भी समय समय पर उनके कान भरा करता था। एक दिन उसने चंपतराय के मारने की सलाह दी। पहाड़सिंह उसके कहने में आ गया और निमंत्रण के बहाने चंपतराय को बुलाकर उसने भोजन में विष देने का विचार किया। चंपतराय को निमंत्रण भेजा गया। वे ओड़छे आए। इस समय पहाड़सिंह ने बड़ी खातिर की, परंतु भोजन के समय किसी कारण से इनके भाई भीम को संदेह हो गया। इससे उसने अपने पराक्रमी और वीर भाई चंपतराय की रक्षा के लिये जो थाल चंपतराय को दिया गया था उसे स्वयं ले लिया और अपना चंपतराय को दे दिया। इस विष-मिश्रित भोजन के करने के कुछ देर पश्चात् ही भीम के प्राण-पखेरू तो उड़ गए, पर पहाड़सिंह का अभीष्ट सिद्ध न हो पाया। जिस जगह चंपतराय आदि को भोजन करवाया गया था उस जगह ऐसा प्रबंध किया गया था कि यदि भीम चंपतराय से साफ साफ कहते तो दोनों की जान जाती, इससे भीम वहाँ कुछ न बोले और उन्होंने चंपतराय की बला अपने ऊपर ले बंधु-प्रेम की वेदी पर अपना बलिदान कर दिया। पहाड़सिंह के इस कुकृत्य से ओड़छा राज्य और चंपतराय में अनबन हो गई। अब पहाड़सिंह चंपतराय को हानि पहुँचाने के लिये तरह तरह के जघन्य उपाय करने लगे।

१०—वि० सं० १६९७ में कंदहार के अलीमर्दा ने ईरान के बादशाह से तंग आकर अपना इलाका शाहजहाँ बादशाह को दे दिया और उससे मदद लेकर ईरान पर चढ़ाई की, पर कुछ लाभ न हुआ। पहाड़सिंह को शाहजहाँ ने ओड़छे की गद्दी और पंच-हजारी मनसब दिया था और इसने उसकी फरमाबरदारी कबूल कर ली थी। पर जब राजा जगतसिंह (कोटा का राजा) और मुराद

के सेनापतित्व में भेजी हुई सेनाएँ भी कंदहार से निष्फल फिरीं और वहाँ शांति स्थापित न कर सकीं तब शाहजहाँ ने औरंगजेब के सेनापतित्व में वि० सं० १७०२ में फिर भी फौज भेजी और इसकी सहायता के लिये ओड़छे के राजा पहाड़सिंह को भी साथ में भेज दिया। इसके पश्चात् वि० सं० १७०५ में फिर भी यह कंदहार भेजा गया।

११—जुझारसिंह की मृत्यु के पश्चात् सरदारखाँ धामौनी में रखा गया था। पीछे से यह मालवे का सूबेदार और चौरागढ़ का तमूलदार (खिराज वसूल करनेवाला) बनाया गया, पर इससे चौरागढ़ का प्रबंध न हो सका। इससे वि० सं० १७०८ में चौरागढ़ की जागीर पहाड़सिंह को दे दी गई। साथ ही उसका एकहजारी मनसब भी बढ़ाया गया। इससे पहाड़सिंह ने हृदयशाह पर चढ़ाई की पर वह भयभीत हो रीवाँ के बघेल राजा अनूपसिंह के पास चला आया। गोंड़वाने में गायें भी जोती जाती थीं। यह बात पहाड़सिंह को बहुत बुरी लगी। इससे ये दौलताबाद तक बढ़ते गए। यहाँ पर इन्होंने पहाड़सिंहपुरा नाम का एक गाँव बसाया जिसकी आमदनी अब भी ओड़छा राज्य को मिलती है। यहाँ से वापस आने पर पहाड़सिंह ने रीवाँ पर चढ़ाई की। राजा अनूपसिंह और हृदयशाह दोनों जंगल की ओर भाग गए। पहाड़सिंह ने रीवाँ को मनमाना लूटा। इतने में औरंगजेब के साथ जाने के लिये शाहजहाँ ने इसे बुलाया। यह लूट में से १ हाथी और ३ हथिनियाँ लेकर शाहजहाँ से मिला और वि० सं० १७०९ में फिर भी कंदहार की चढ़ाई पर गया।

१२—पहाड़सिंह विक्रम संवत् १७२० में परलोक को सिधारा। इसके सुजानसिंह और इंद्रमणि नाम के दो लड़के थे। इनकी रानी का नाम हीरादेवी था। पहाड़सिंह के मरने पर इन्होंने भी

चंपतराय और छत्रसाल को हानि पहुँचाने में अपने पति से कुछ कम प्रयत्न न किए।

१३—भीम की मृत्यु के पश्चात् राजा पहाड़सिंह और चंपतराय में अनबन हो गई थी। इससे पहाड़सिंह हर समय चंपतराय को हानि पहुँचाने के षड्यंत्रों में लगा रहता था। अंत में इन्होंने शाहजहाँ से संधि करना ही उचित समझा। शाहजहाँ भी इनसे तंग आ गया था। इससे उसने भी इनके बुलवाने में विलंब न किया। ज्योंही महाराज चंपतराय शाही दरबार में पहुँचे, शाहजहाँ ने इनका बड़ा सत्कार किया और ५ हजारी मनसब दे संधि कर ली। उस समय शाहजहाँ कंदहार में शांति स्थापित करने में लगा हुआ था, पर कई बार सेना भेजने पर भी शांति स्थापित न कर सका था। इस समय वह अपने ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को कंदहार भेजने के प्रबंध में लगा था। शाहजहाँ को चंपतराय के पराक्रम और शूरता का पूर्ण परिचय था। इससे वि० सं० १७१० में उसने अपने पुत्र दाराशिकोह के साथ महाराज चंपतराय को भी कंदहार की चढ़ाई पर भेज दिया। वहाँ पहुँचते ही महाराज ने बड़ी शूरता दिखलाई और प्राणों की बाजी लगाकर विजय प्राप्त की। वहाँ से वापस आते ही शाहजहाँ ने इन्हें कोंच की जागीर दी और १२ हजारी मनसब दे इनकी वीरता की भूरि भूरि प्रशंसा की। इसे सुन दाराशिकोह मन ही मन कुढ़ उठा और उन्हें हानि पहुँचाने की चेष्टा करने लगा। ऐसा कहते हैं कि इस षड्यंत्र में पहाड़सिंह भी मिल गया और दोनों ने सलाह कर कोंच की जागीर निकाल लेने का मनसूबा बाँधा। इस समय राज्य-प्रबंध का बहुत सा काम दाराशिकोह ही किया करता था, इससे इसे मनमानी करने का मौका हाथ लगा। महाराज चंपतराय कोंच की जागीर से बादशाह को सिर्फ एक लाख रुपया देते थे।

१४—पहाड़सिंह के मरने पर इसका ज्येष्ठ पुत्र सुजानसिंह गद्दी पर बैठा। यह वि० सं० १७१४ में औरंगजेब के साथ बीजा-पुर की चढ़ाई पर गया था, किंतु वहाँ घायल हो गया और वापस चला आया था। जब शाहजहाँ की बीमारी के समय इसके बेटों में लड़ाई हुई तब इसने किसी का भी पक्ष न लिया वरन् उदासीन बना रहा। इसने अड़जार[1] नामक ग्राम में सुजानसागर नाम का एक बड़ा तालाब बँधवाया और इसकी माँ ने मऊ के पास रानीपुरा[2] नाम का गाँव बसाया। यह वि० सं० १७२६ में निस्संतान मरा और इसका छोटा भाई इंद्रमणि गद्दी पर बैठा। इसके समय में सुजानसिंह सेंगर ने ओड़छे पर चढ़ाई की, पर पीछे से वह वापस चला गया। इसने सिर्फ तीन वर्ष राज्य किया। वि० सं० १७२१ में जब राजा चंपतराय अपनी रुग्णावस्था के कारण बेरछा से जटवारा होते हुए अपने पूर्व-परिचित सहरा के राजा इंद्रमणि धंधेरे के यहाँ जा रहे थे, तब रानी हीरादेवी ने दलेलदौआ के साथ १६००० सवार और अपने पुत्र इंद्रमणि को भी चंपतराय का पीछा करने के लिये भेजा था। ये एक नाला फाँदते समय घोड़े से गिरकर सख्त घायल हो गए थे।

१५—इंद्रमणि के मरने पर उसका लड़का जसवंतसिंह वि० सं० १७३२ में राजा हुआ। इसके समय में मराठे लोग उत्तर की ओर अपना राज्य जमाने में लगे हुए थे और चंपतराय के मरने पर इनके पुत्र छत्रसाल भी लूट-मार करने में लगे थे। ये वि० सं० १७२८ तक पन्ना रियासत स्थापित करने में लगे रहे। इन्होंने १७३२ में पन्ना रियासत की राजधानी पन्ना नियत की। दतिया के राजा

(१–२) ये दोनों ग्राम जी० आई० पी० रेलवे की झाँसी-मानिकपुर शाखा के स्टेशन हैं।

शुभकरन भी महाराज छत्रसाल के समकालीन हैं। जसवंतसिंह ९ वर्ष राज्य कर वि० सं० १७४७ में मरा।

१६—भगवंतसिंह अपने पिता जसवंतसिंह के मरने पर गद्दी पर बैठा, पर यह बहुत ही छोटा था। इससे राजप्रबंध इसकी माँ करती रही, किंतु यह बाल्यकाल ही में मर गया। इससे रानी अमरकुँवरि ने हरदौल के प्रपौत्र उदोतसिंह[1] को गोद लेकर गद्दी पर बैठाया। यह बहुत ही कमजोर शासक था। इसके समय में उत्तर की ओर मरहठों का दौरदौरा रहा तो भी महारानी ने अपने जीते जी रियासत को किसी प्रकार क्षति न पहुँचने दी। उदोतसिंह की शासन-पद्धति अच्छी न थी, पर वह निर्भीक और शूर था। औरंगजेब के मरने पर बहादुरशाह गद्दी पर बैठा। ऐसा कहते हैं कि एक दिन उदोतसिंह बहादुरशाह के साथ आखेट को निःशस्त्र गया था। इतने में इसके पास से एक शेर निकला। यद्यपि उस समय इसके पास कोई शस्त्र न था तो भी इसने उसे मार डाला। तब बादशाह ने एक तलवार पारितोषिक में दी। वह अब तक रखी हुई है।

१७—इसके समय में औरंगजेब, बहादुरशाह, जहाँदारशाह, फर्रुखसियर और मुहम्मदशाह ये ५ मुगल बादशाह हुए। बहादुरशाह ने इसे वि० सं० १७६६ में पहाड़सिंहपुरा की सनद दी और सं० १७७१ में सिक्खों की बगावत दबाने के लिये पंजाब भेजा था। यह गुरुदासपुर के किले में कई महीने तक युद्ध करता रहा। अंत में सिक्ख सरदार वीर बंदा पकड़ा गया और बड़ी बेरहमी से मारा गया। फर्रुखसियर के पश्चात् मुहम्मदशाह बादशाह हुआ। इसने इसे १३ महलों की सनद दी। ओड़छे की रियासत घटते घटते इस समय बहुत ही छोटी हो गई थी, पर उसका मान पूर्ववत् ही था। जब कभी चंदेरी, दतिया इत्यादि

(१) हरदौल, विजयसिंह, प्रतापसिंह और उदोतसिंह।

बुंदेलों की रियासतों में गद्दी के हक के झगड़े होते थे तब ओड़छे के राजा की सम्मति से ही झगड़ों का निर्णय होता था। उदोतसिंह वि० सं० १७६३ में महोबे में मरा।

१८—उद्दोतसिंह के मरने पर उसके नाती अमरसिंह का लड़का पृथ्वीसिंह राजा हुआ। इसके समय वि० सं० १७९९ में मराठों ने झाँसी, (मऊ—रानीपुरा) और बरुआसागर के परगने निकाल लिए। इसके समय अहमदशाह अब्दाली की चढ़ाई, मुहम्मदशाह की मृत्यु और अहमदशाह का राज्यारोहण ये ही मुख्य घटनाएँ दिल्ली में हुई थीं। यह वि० सं० १८०९ में मरा। इसके लड़के गंधर्वसिंह का तो पहले ही देहांत हो गया था, इसलिये इसका पुत्र सामंतसिंह गद्दी पर बैठा। इसने वि० सं० १८१५ में बादशाह अलीगौहर (शाहआलम) का रीवाँ से दिल्ली वापस जाने के समय अच्छा सत्कार किया। इससे बादशाह ने खुश होकर इसे महेंद्र की पदवी से विभूषित किया। यह वि० सं० १८२२ में परलोक को सिधारा। इसके पश्चात् हेतसिंह, मानसिंह और भारतीचंद क्रमानुसार राजा हुए। इन तीनों ने मिलकर केवल ग्यारह वर्ष राज्य किया था।

अध्याय १६

औरंगजेब और चंपतराय

१—पहाड़सिंह ने चंपतराय के मारने का प्रयत्न किया, परंतु वह निष्फल हुआ। ऐसे समय में बुंदेलखंड को भाइयों की लड़ाई से बहुत हानि पहुँची। पहाड़सिंह ने चंपतराय को हानि पहुँचाने का एक प्रयत्न और भी किया। शाहजहाँ ने जब बुंदेलों से संधि

की तब कोंच की जागीर चंपतराय को दी थी। चंपतराय की महोबा की जागीर बहुत छोटी थी। कोंच की जागीर मिल जाने से उनके खर्च का प्रबंध अच्छा होने लगा था। पहाड़सिंह ने अब यह जागीर चंपतराय से ले लेने का प्रयत्न किया। उस समय शाहजहाँ के दरबार में दारा की बहुत चला करती थी। दारा शाहजहाँ बादशाह का बड़ा लड़का था और उसने राज्य का सब कार्यभार उसी के सुपुर्द कर दिया था। ओड़छे के राजा पहाड़-सिंह ने दारा से बहुत नम्रता के साथ यह बिनती की कि चंपतराय की जागीर मुझे दे दी जाय। मैं तीन लाख रुपए जागीर से मुगल दरबार को दूँगा और चंपतराय से अच्छा प्रबंध करूँगा। इस समय चंपतराय केवल एक लाख रुपए उस जागीर से बादशाह को दिया करते थे। पहाड़सिंह ने तीन लाख देने का वचन देकर जागीर माँगी। दारा ने लालच में आकर पहाड़सिंह को यह जागीर दे दी। इस बात पर चंपतराय को बहुत बुरा लगा और उन्होंने मुगल दरबार में ही दारा के काम की निंदा की और मुगलों की अधीनता में न रहने का निश्चय कर लिया।

२—इस प्रकार चंपतराय से जागीर तो ले ली गई, परंतु जिस वीरता के लिये चंपतराय को यह जागीर मिली[1] थी वह गुण चंपत-राय से कोई न ले सका। उन्हें भी दारा से बदला लेने का मौका मिल गया। औरंगजेब दारा से वैमनस्य रखता था। दरबार में दारा ही सब काम करता था और यह बात औरंगजेब को बहुत बुरी लगती थी। औरंगजेब चाहता था कि शाहजहाँ के पश्चात्

---

(१) वि० सं० १७१० में चंपतराय दाराशिकोह के साथ कंदहार फतह करने के लिये गए थे। वहाँ पर इन्होंने प्राणपण से युद्ध किया। अंत में विजय हो गई। इसी कारण उन्हें यह जागीर मिली थी।

मुझे बादशाहत मिले, परंतु शाहजहाँ अपने बड़े लड़के दारा को ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था और उसके कई सरदार भी दारा की मदद करते थे। इस कारण औरंगजेब ने दारा के प्रभाव को घटाने का निश्चय किया। उस समय औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार था। उसने दारा के विरुद्ध चंपतराय से सहायता माँगी। चंपतराय दारा से बदला लेना ही चाहते थे, इसलिये उन्होंने औरंगजेब की सहायता करना स्वीकार कर लिया।

३—वि० सं० १७१४ में शाहजहाँ के लड़कों में यह खबर फैल गई कि बादशाह बीमार हो गया है। यही कारण था कि उसके लड़कों ने इस आशा से कि उनका पिता शीघ्र ही मर जायगा राज्य के लिये लड़ना आरंभ कर दिया। चंपतराय का उद्देश्य औरंगजेब की सहायता करने में केवल इतना ही था कि वे दारा से बदला ले सकें और बुंदेलखंड को मुगलों से स्वतंत्र कर सकें। दारा के पास बादशाह की बहुत सी सेना थी। इसने अपने लड़के सुलेमान शिकोह को भेजकर बंगाल से आनेवाले शुजा को सबसे पहले हराया। फिर दारा ने औरंगजेब की सेना का सामना करने के लिये धौलपुर के पास चंबल नदी का घाट रोक लिया। मुराद शाहजहाँ का सबसे छोटा लड़का था। वह इस समय गुजरात में था। औरंगजेब बड़ा ही स्वार्थी, दगाबाज और चालबाज था। इसने मुराद से फकीर बनने का ढोंग किया और कह दिया कि मैं तुम्हीं को बादशाहत दूँगा। मुराद उसकी चिकनी चुपड़ी बातों में आगया और अपनी सारी सेना लेकर औरंगजेब के साथ मिल गया। औरंगजेब तो यह चाहता ही था, उसने सारी फौज लेकर अवंती (उज्जैन) पर चढ़ाई कर दी। यहाँ पर मुकुंदसिंह हाड़ा सूबेदार था। इसने भरसक रोकने का प्रयत्न किया, पर वह युद्ध में हारा और मारा गया

४—औरंगजेब उज्जैन होकर नरवर आया। यहाँ से उसने चंपतराय को बुलाने के लिये अब्दुल्लाखां को भेजा। वे भी अपने प्रतिज्ञानुसार औरंगजेब को सहायता देकर अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिये आ गये। दारा ने चंबल का मुख्य घाट तो रोक ही लिया था इससे इन्होंने दूसरे घाट से नदी पार की और सेना लेकर दारा की सेना का सामना आगरे के पास सामोगढ़ में वि० सं० १७१५ में किया। इस समय दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। दारा की सेना के सेनापति बूँदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा थे। ये भी बड़े बुद्धिमान् और शूर थे, पर चंपतराय की बुद्धिमत्ता के सामने उनकी एक भी न चली। वे युद्ध में हार ही गए। युद्ध के पश्चात् औरंगजेब ने मुराद को शराब पिलाकर कैद कर लिया और उसे ग्वालियर के किले में बंदी कर दिया तथा वह स्वयं बादशाह हो गया*। दारा और अपने पूज्य पिता को भी औरंगजेब ने कैद कर लिया।

५—औरंगजेब विक्रम संवत् १७१५ में बादशाह हुआ। उसकी विजय का कारण चंपतराय की सहायता ही थी। इसलिये औरंगजेब ने बुंदेला वीर चंपतराय को ओड़छे से यमुना तक का देश

---

* औरंगजेब ने जिस प्रकार बादशाही पाई उसका वर्णन भूषण कवि ने इस प्रकार किया है—

किबले के ठौर बाप बादसाह साहिजहाँ
ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।
बड़ो भाई दारा वाको पकरि कै कैद कियो
मेहरहु नाहि वाको जायो सगो भाई है॥
बंधु तौ मुरादबक्स वादि चूक करिबे को
बीच लै कुरान खुदा की कसम खाई है।
भूषन सुकवि कहै सुनौ नवरंगजेब
एते काम कीन्हे फेरि पादसाही पाई है॥

जागीर में दिया श्रौर चंपतराय को दिल्ली-दरबार का उमराव समझा। वे १२००० सवारों के मनसबदार भी कहलाए।

६—चंपतराय को दिल्ली दरबार से बहुत मान मिला। परंतु कुछ दिन के पश्चात् श्रौरंगजेब श्रौर चंपतराय में फिर अनबन हो गई। इस अनबन के कई कारण हैं। दारा की लड़ाई के समय चंपतराय ने एक बहुत अच्छा घोड़ा पकड़ लिया था। यह घोड़ा बहादुरखाँ का था। उसे श्रौरंगजेब ने चंपतराय से माँगा। चंपतराय ने देने से इनकार किया, क्योंकि वह उन्हें युद्ध के समय मिला था। श्रौरंगजेब को यह बात बहुत बुरी लगी। इसी समय श्रौरंगजेब का भाई शुजा फिर बड़ी फौज लेकर इलाहाबाद लड़ने आया। श्रौरंगजेब ने चंपतराय को हुक्म दिया कि तुम इलाहाबाद शुजा से लड़ने जाओ। यह हुक्म चंपतराय को बहुत बुरा लगा श्रौर उन्होंने जाने से इनकार कर दिया। इन कारणों के सिवाय चंपतराय का श्रौरंगजेब के साथ बिगाड़ होने का असली कारण चंपतराय की स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की इच्छा थी। उस समय श्रौरंगजेब श्रौर शुजा का युद्ध खतम न हुआ था। चंपतराय ने यही मौका श्रौरंगजेब से स्वतंत्र होकर अपना राज्य स्थापित करने का सोचा।

७—श्रौरंगजेब सदा ही चंपतराय को तंग करने का प्रयत्न किया करता था, पर उसे एक हिंदू वीर का सम्मान विवश हो करना पड़ता था श्रौर वह भी अपने स्वार्थ के लिये। परंतु वह सदैव किसी बहाने से चंपतराय की जागीर वापस ले लेने के प्रयत्न में था। चंपतराय को श्रौरंगजेब की यह नीयत अच्छी तरह से मालूम हो गई थी। इसी कारण चंपतराय ने श्रौरंगजेब की दी हुई सनदें श्रौर अस्त्र वापस कर दिए श्रौर साफ तौर से श्रौरंगजेब से उसकी अधीनता में रहने से इनकार कर दिया।

८—परतंत्रता को त्याग स्वतंत्रता का डंका बजाते हुए चंपतराय बुंदेलखंड आए। चंपतराय की वीरता का डंका सारे देश में बज चुका था। इनके वापस आते ही सेना सरलता से मिल गई। इस सेना के सहारे और अपनी अतुल वीरता के बल से राजा चंपतराय ने एक के पश्चात् दूसरा किला जीतना आरंभ कर दिया। औरंगजेब चंपतराय की चतुरता को जानता था। उसे मालूम था कि चंपतराय के सामने कोई मुसलमान सेनापति न टिक सकेगा। इस कारण औरंगजेब ने दतिया के राजा शुभकरण को, जो कि सूबे बुंदेलखंड का दिल्ली की बादशाहत की ओर से सूबेदार भी नियत किया गया था, सेना के सेनापतित्व के लिये चुना। शुभकरण बुंदेलखंड के प्रत्येक भाग से परिचित था और वह बुंदेलखंड में पहले लूट-मार भी किया करता था। बादशाह औरंगजेब ने एक बड़ी भारी सेना शुभकरण के सुपुर्द की और उसे चंपतराय का नाश करने का हुक्म दिया।

९—औरंगजेब के पास से आने के पश्चात् चंपतराय ने पहले तो भांडेर को लूटा, फिर एरछ का किला ले लिया और यहीं पर अपने ठहरने का स्थान बनाया। फिर इसी स्थान से बुंदेलखंड के स्वतंत्र करने का प्रयत्न आरंभ किया। इसी समय मुगलों का नौकर बनकर शुभकरण, अपने बुंदेलखंडी वीर के स्वतंत्र होने के प्रयत्न को निष्फल करने के लिये, बहुत सी मुगल सेना लेकर आ पहुँचा। शुभकरण की सेना और चंपतराय की सेना से कई युद्ध हुए। चंपतराय के नेतृत्व में सेना को विशेष सुख होता था। शुभ-करण चंपतराय को हरा न सका। औरंगजेब ने जब देखा कि शुभकरण से कुछ न बन सका तब वह स्वयं अपनी बड़ी सेना लेकर बुंदेलखंड पर चढ़ आया और चंपतराय को घेर लेने का प्रयत्न करने लगा। चंपतराय ने धैर्य्य न छोड़ा। वे लड़ने को

तैयार बने रहे। बुंदेलखंड में श्रौरंगजेब की सेना बिना बुंदेलों की सहायता के कुछ भी न कर सकती थी। इसलिये श्रौरंगजेब ने अपनी सेना में बहुत से बुंदेले भरती किए। इनकी श्रौर शुभकरण की सहायता से चंपतराय के ठहरने के सब मार्ग श्रौरंगजेब को मालूम होते गए। श्रौरंगजेब को चंपतराय से युद्ध करते समय इनकी ही सहायता ने बहुत काम दिया। श्रौरंगजेब की बड़ी सेना होने पर भी चंपतराय श्रौर उनकी सेना ने धीरता श्रौर वीरता से लड़ाइयाँ लड़ीं। परंतु धीरे धीरे चंपतराय की सेना कम होती गई। इसी समय चंपतराय श्रौर पहाड़सिंह के पुराने बैर ने विघ्न डाला। पहाड़सिंह का देहांत हो गया था, परंतु पहाड़सिंह की पत्नी ने अपने पति के वैरी चंपतराय को हराने के हेतु चंपतराय के मित्र श्रौर सरदार सुजानराय को वेदपुर में धोखे से मरवा डाला। सुजानराय की मृत्यु से चंपतराय को बहुत दुःख हुआ श्रौर उनकी कार्यसिद्धि में एक बड़ी बाधा हुई। इस युद्ध में चंपतराय के पुत्रों ने भी उन्हें बहुत सहायता दी। चंपतराय की फौज कम हो जाने के कारण वे सहरा के जागीरदार इंद्रमणि के पास गए। इंद्रमणि चंपतराय के पुराने मित्र थे। पर ये घर पर न थे। तो भी साहिब-सिंह धंधेरे ने चंपतराय का स्वागत किया। इसके पश्चात् राजा चंपतराय ने छत्रसाल को थानसिंह के पास भेजा। ये छत्रसाल के बह-नोई थे, परंतु ऐसे अवसर पर छत्रसाल का स्वागत करना तो दूर रहा बहिन ने बात तक न पूछी। थानसिंह घर में नहीं थे। वे रात्रि को आए।

१०—सहरा में भी रहना चंपतराय ने उचित न समझा। इसलिये वे बीमारी की हालत में ही अपनी रानी "महारानी लालकुँवरि" को साथ ले मोरनगाँव जाने के लिये निकल पड़े। सहरा के साहिब-सिंह धंधेरे ने अपने दो सौ सिपाही महाराज के साथ रक्षा के लिये कर दिये थे। सहरा से ये कोई ७ कोस आए थे कि सिपाहियों ने

इनके साथ विश्वासघात कर मारना चाहा। किंतु महारानी लाल-कुँवरि और महाराज चंपतराय ने सिपाहियों के हाथ से मरने की अपेक्षा आत्महत्या करना ही उचित समझा। दोनों ने अपने अपने पेट में कटारें मार लीं। यह घटना वि० सं० १७२१ में हुई।

अध्याय १७

महाराज छत्रसाल (बाल्यकाल)

१—चंपतराय औरंगजेब से लड़ते हुए स्वर्ग को सिधारे। उनके जीवन का अधिकांश लड़ाई ही में बीता। वे मुगलों की अधीनता स्वीकार करने को कभी तैयार न हुए परंतु सदा ही स्वतंत्रता के लिये युद्ध करते रहे। चंपतराय धनवान् मनुष्य न थे। जागीर महेवा से उन्हें बहुत ही थोड़ी आमदनी होती थी। रुद्रप्रताप के पुत्र उदयजीत को जो जागीर मिली थी उसकी कुल आमदनी वार्षिक १२०००) रुपए थी। यह महेवा नामक स्थान आजकल छतरपुर राज्य के भीतर है। यह छोटी जागीर उदयाजीत के पुत्र और पौत्रों में बँटती आई और जो चंपतराय को मिली उसकी वार्षिक आय केवल ३५०) थी, परंतु चंपतराय ने अपना नाम अपनी वीरता ही के द्वारा किया। उनमें सेना इकट्ठी करने और उसका सदुपयोग करने की विशेष योग्यता थी। सबसे पहले, जब चंपतराय तरुण भी न हुए थे, उन्होंने कुछ थोड़े से सिपाही एकत्र करके मुगल राज्य के एक गाँव को लूट लिया था। मुगलों के गाँव के मुगल शासकों को लूटकर उन्होंने कुछ धन एकत्र किया था। इसी धन से इन्होंने और सेना तैयार की थी। मुगलों से युद्ध के समय इनके अतुल रण-कौशल का परिचय सारे जगत् को मिल गया था।

२—जिस समय शाहजहाँ के सरदार बाकीखाँ से युद्ध हुआ और बाकीखाँ हारकर वापिस गया उसी समय बाकीखाँ ने अचानक चंपतराय के ज्येष्ठ पुत्र सारवाहन को घेरकर मार डाला था। उस

समय सारवाहन की उमर केवल १४ वर्ष की थी परंतु इस उमर में अपनी वीरता के कारण वे बुंदेलों को बहुत प्रिय हो गए थे। इनके मरने से इनकी माता को असह्य दुःख हुआ। कहा जाता है कि इनकी माता ने स्वप्न में देखा कि सारवाहन उनसे कह रहे हैं कि मैं फिर से गर्भ में आऊँगा। इसी के कुछ दिनों के पश्चात् सारवाहन की माता ने गर्भ धारण किया और सबका यही विश्वास हो गया कि जेठे राजकुमार सारवाहन फिर से रानी के गर्भ में आए हैं।

३—रानी गर्भावस्था में भी अपने पति चंपतराय के साथ रहा करती थीं। वे दिन ऐसे ही थे कि बुंदेले वीरों की रमणियाँ अपने घरों में न रहकर रणभूमि में जाकर अपने पति के साथ रहती थीं और समय समय पर सहायता करती थीं। रानी की गर्भावस्था का समय लड़ाइयों के मैदानों में ही कटा। इसी समय में चंपतराय अपनी रानी के साथ ककरकचनए की पहाड़ों में मुगलों की सेना के द्वारा घेर लिए गए। ऐसी दशा में भी चंपतराय अपनी स्त्री को ले अचानक मुगलों की सेना से बचकर भाग गए। इस कृत्य से मुगल सेना को बड़ा आश्चर्य हुआ[1]।

४—इसके छः महीने बाद मोर पहाड़ी के जंगल में, जो कटेरा नामक ग्राम से तीन कोस है, रानी ने बुंदेलखंड के भावी विख्यात वीर छत्रसाल को जन्म दिया। महाराज छत्रसाल का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल तीज शुक्रवार संवत् १७०५ विक्रमीय विलंबि नामक संवत्सर में हुआ था। यद्यपि इनकी जन्मपत्री में उच्च

(१) कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि चंपतराय अपनी स्त्री को पीठ पर बाँधकर पहाड़ी पर से कूदे और भागकर ऐसे स्थान में चले गए जहाँ मुगलसेना उन्हें न पा सकी। एक ऐसी भी कथा है कि चंपतराय अपने घोड़े पर रानी को बैठाकर एक पहाड़ी से दूसरी पर पहुँचे और फिर घोड़ा ऐसा भागा कि मुगलसेना उसे न पा सकी। ऐसा भी कहा जाता है कि किसी योगी ने इन्हें ऐसा वरदान दिया था कि इनमें अलौकिक शक्ति आ गई थी।

का कोई भी ग्रह नहीं है पर नवांश कुंडली के अनुसार उसमें ५ राजयोग हैं। जिस समय वीर बालक छत्रसाल का जन्म हुआ उस समय मुगल लोगों की चंपतराय से लड़ाई चल रही थी। छत्रसाल

जन्मांग कुंडली (२) नवांश कुंडली

जन्मांग कुंडली:
९
७
१०
८ के
६ गु
११
५ मं
१२
र. रा ३
४
बु १
शु.श. ३च
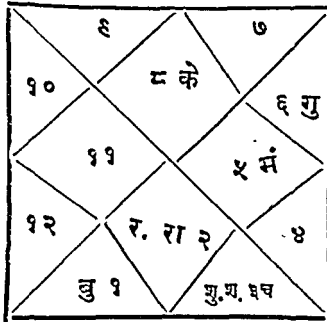
संवत् १७०६
जेठ सुदी ३
शुक्रवार
४८-१७ मृग-
शिरा नक्षत्र
२५-५

नवांश कुंडली:
६
४
श ७
बु ५ मं
३रा
गु ८
२
चं.के
९
११ र
१
१०
१२शु
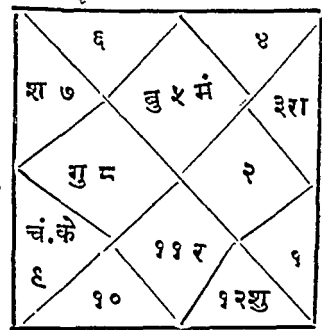
रव्यादि सजवाः स्पष्टाः	
रवि १-५-४०-५६	५७—३४
चन्द्रमा २-६-२५-४	७४२—३५
भौम ४-१३-५८-२१	१६—२६
बुध ०-१३-५६-३०	८६——८
गुरु ५-१४-३-२५	३——४
शुक्र २-१६-५५-२२	५३—४८
शनि २-०-१-२२	७——२७
राहु १-१८-७-३६	३——११
केतु ७-१८-७-३६	३——११
लग्न—७-५-३८-१५	

नवमांश कुण्डली फलम्—

धर्मापत्यपौद्यूनोन केन्द्रे
लग्नपयुतौ वादष्योराजः।
ज्ञारार्क ज्यत्तपु घटेपु
सव राजाधिराजः॥
द्यूनोनकेन्द्रकोणे सुखेशे
भूपजो भूपान्यजो मंत्री।
निवसेतां व्यत्ययेन ता-
वुभौ धर्मकर्मणोः।
एकत्रान्यतरो वापि
वशच्चेद्योगकारकौ॥
यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा
निवसेतां तमौ ग्रहौ।
नाथेनान्यतरेणापि
सम्बन्धाद्योगकारकौ।
विलग्ननाथस्थितराशिनाथस्त-
द्राशिनाथो यदि तुङ्गयुक्तः।
निशाकरात्केन्द्रगतोऽथवा स्या-
द्योगो महाकालसुसौख्ययुक्तः।

का जन्म भी उस जंगल में हुआ था जहाँ पर मुगल लोग चंपतराय को घेर लेने का प्रयत्न कर रहे थे। जन्म से ही बालक छत्रसाल को महलों की सेज सोने को न मिली किंतु प्रकृति देवी की गोद ही इन्हें जन्म से खेलने के लिये मिली। संसार में आते ही वीर छत्रसाल को तोपों और बंदूकों का शब्द और धरो, मारो, पकड़ो का शोर सुनने को मिला। इस दशा में रहते ही छत्रसाल की अवस्था छः मास की हो गई।

५—एक समय, जब छत्रसाल की अवस्था केवल सात मास की थी, राजा चंपतराय उनकी रानी और कुछ सैनिक एक जंगल में अपना भोजन बनाकर खा रहे थे। अचानक मुगल सेना ने इन सबको घेर लिया और इनका भागकर निकल जाना भी कठिन हो गया। सब सैनिक भागे और चंपतराय भी अपनी रानी के साथ भाग गए, पर सात महीने के छत्रसाल को उठा लेने का किसी को ध्यान न रहा। चंपतराय और उनके सैनिकों के भाग जाने के पश्चात् मुगल सेना उस स्थान पर आ पहुँची और चंपतराय को वहाँ पर न देखकर चली गई। छत्रसाल उसी स्थान पर पड़े रहे और सौभाग्य से बच गए। इसके पश्चात् चंपतराय ने जब देखा कि बालक छत्रसाल उनके साथ नहीं हैं तो उन्होंने ढूँढ़ने के लिये अपने सिपाही भेजे और एक सिपाही छत्रसाल को उठा लाया। छत्रसाल को पाकर चंपतराय को असीम आनंद हुआ, परंतु उन्होंने छत्रसाल को ऐसी दशा में अपने पास न रखने का निश्चय कर लिया। इस घटना के दूसरे ही दिन रानी अपने पुत्र छत्रसाल को लेकर अपने नैहर चली गई। वहाँ पर छत्रसाल और उनकी माता चार वर्ष तक रहे।

६—जिस समय छत्रसाल की अवस्था चार वर्ष की हुई उस समय बालक छत्रसाल और उनकी माता नैहर से चंपतराय के पास

वापिस आई। छत्रसाल की वीरता के चिह्न इसी समय से दीखने लगे। लड़ाइयों में से निकली हुई रुधिर की नदियाँ और युद्ध में मरे हुए वीरों के शरीर देखकर इनके मन में डर न उत्पन्न होता था, वरन् वे इन वीभत्स दृश्यों को बड़े चाव से देखा करते थे। बंदूकों और तोपों का शब्द सुनकर वे डरकर भागने का प्रयत्न न करते थे, परंतु जिस ओर से शब्द आता था उसी ओर देखने को दौड़ते थे। छोटी अवस्था से ही छत्रसाल ने तलवार लेकर खेलना आरंभ कर दिया था।

७—छत्रसाल की तेजपूर्ण मुद्रा और बाललीला देखकर सब लोगों को यही मालूम होने लगा था कि यह बालक कोई विक्रमी पुरुष होकर क्षत्रिय-कुल का उद्धार करेगा। इनका नाम "छत्रसाल" इनके गुणों पर से ही पड़ा था। बाल्यकाल से ही छत्रसाल का सरदारों के साथ का व्यवहार भी उत्तम था। जो सरदार चंपत-राय से मिलने आते थे उनसे छत्रसाल, बालक होने पर भी, रीति के अनुसार वंदना करते थे। इनका यह व्यावहारिक चातुर्य देखकर पिता को हर्ष और विस्मय होता था।

८—छत्रसाल को बाल्यकाल में चित्र बनाने का भी शौक था। परंतु वे हाथी, घोड़े, सवार, बंदूक और तोप आदि के ही चित्र बनाते थे। धर्म में भक्ति भी छत्रसाल को बाल्यकाल से ही थी। वे सदा मंदिरों में नियमपूर्वक जाते थे और प्रार्थना करते थे। रामायण और महाभारत की कथाओं के सुनने की उन्हें विशेष इच्छा रहती थी। इन कथाओं के योद्धाओं की वीरता का हाल सुनकर उनके हृदय में बहुत उत्साह उत्पन्न होता था।

९—छत्रसाल का विद्याध्ययन सात वर्ष की आयु से आरंभ हुआ। इस समय वे अपने मामा के यहाँ रहते थे। विद्याध्ययन के साथ इन्होंने सैनिक शिक्षा भी प्राप्त की। सेना-संबंधी कार्य और

विद्याध्ययन दोनों में ही इन्होंने अपनी तीव्र बुद्धि का परिचय दिया। महाराज छत्रसाल एक चतुर सेनापति ही नहीं वरन् विद्वान् और कवि भी थे। दस वर्ष की आयु के पहले से ही वीर छत्रसाल ने बरछी चलाना, तलवार और अन्य शस्त्र से अचूक निशाने मारना और दौड़ते हुए घोड़े पर से शिकार खेलना सीख लिया। जंगल के हिंस्र जंतुओं से युद्ध करते समय उन पर कैसे वार करना चाहिए, यह वे शीघ्र सीख गए। पुस्तकों के पढ़ने में इनका मन बहुत लगता था। ओड़छे के कवि केशवदास-कृत रामचंद्रिका को ये बड़े चाव से पढ़ते थे और उस पुस्तक को सदा अपने पास रखते थे[1]।

१०—छत्रसाल सहरा नामक ग्राम में थे, जब इन्हें इनके माता-पिता की मृत्यु का हाल मालूम हुआ। यह हाल उनको उस सैनिक ने सुनाया था जो चंपतराय और उनकी स्त्री के साथ उस स्थान में था जहाँ चंपतराय घेरे गए थे। वह किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर खबर देने को भाग आया था। जब चंपतराय की मृत्यु हुई तब छत्रसाल के पास न सेना थी और न धन ही था। पिता-माता की मृत्यु सुनने पर शोक होना स्वाभाविक ही है। परंतु ये उत्साही और धैर्य्यवान् युवक थे। इन्होंने अपने रहने इत्यादि का स्थान और सेना संग्रह करने का प्रबंध तुरंत ही सोच लिया। उन्हें चंपतराय का वृद्ध सैनिक मिला। इसने छत्रसाल का आदर किया। फिर छत्रसाल महेवा में अपने काका सुजानराय के पास गए। इनके काका ने छत्रसाल को पहले न देखा था। ये छत्र-साल के बड़े भाइयों को जानते थे। इससे छत्रसाल ने अपना पूरा परिचय सुजानराय को दिया, जिसे सुनकर सुजानराय ने बड़े प्रेम से भेंट की। इसके पश्चात् कुछ दिनों तक छत्रसाल अपने काका

---

(१) कविवर केशवदास का जन्म लगभग विक्रम-संवत् १६१२ में हुआ। ओड़छे के राजदरबार में इनका बड़ा मान था।

के पास रहे, परंतु शीघ्र ही ऐसा प्रसंग आया कि जिसमें छत्रसाल को अपना बाहुबल और रणचातुर्य दिखलाने की आवश्यकता पड़ी।

११—छत्रसाल को काका के यहाँ रहना अच्छा न लगा। वे मुसलमानों से युद्ध करने के लिये उत्सुक हो रहे थे। उन्होंने अपने विचार अपने काका से भी प्रकट किए, परंतु छत्रसाल की बातों को सुनकर काका डरे और उन्होंने छत्रसाल से शांत रहने और मुगलों से विगाड़ न करने के लिये कहा। छत्रसाल को अपने काका की बात अच्छी न लगी और वे अपने भाई अंगदराय[1] के पास चले आए। उस समय अंगदराय देवगढ़ में थे। इन लड़ाइयों के समय में छत्रसाल के सब भाई अलग अलग थे। महेवा की जागीर इतने बड़े कुटुंब के लिये काफी न होती थी। इससे सब अपना निर्वाह जहाँ पर बन पड़ा करते थे। अंगदराय देवगढ़ के किले में नौकर थे। जब छत्रसाल अंगदराय से मिले तब अंगदराय इनको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। छत्रसाल ने यवनों से स्वतंत्रता प्राप्त करने का अपना उद्देश्य अंगदराय से कह सुनाया। अंगदराय ने छत्रसाल के उद्देश्यों को सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की, परंतु छत्रसाल से कहा कि बहुत सावधानी से चलना अच्छा होगा। इस प्रकार दोनों भाई एकमत होकर मुसलमानों से युद्ध करने और देश जीत लेने का प्रयत्न करने लगे।

१२—बुंदेलखंड का कुछ भाग चंपतराय ने अपने अधिकार में कर लिया था, परंतु पीछे से मुसलमानों ने बुंदेलों की ही सहायता से उसे छीन लिया था। अब सेना के बिना छत्रसाल के उद्देश्य की सिद्धि दुस्साध्य थी और धन के बिना सेना इकट्ठी करना कठिन कार्य्य था। इससे दोनों भाइयों ने अपनी माता का जेवर

---

(१) छत्रसाल के बड़े भाइयों का नाम सारवाहन, रतनशाह, अंगदराय और गोपालराय था। इनमें से सारवाहन का देहांत वाकीर्खा के युद्ध में हो गया था।

बेचकर सेना एकत्र करने का निश्चय किया। अब इन दोनों ने देवलवारा नामक ग्राम में, जहाँ इनकी माता के गहने थे, जाकर उन्हें ले लिया और बेच दिया, फिर उस धन के द्वारा एक छोटी सी सेना तैयार की।

१३—वि० सं० १७२७ में देवगढ़ (छिंदवाड़ा) में राजा कूरमकल्ल (कोकशाह) का राज्य था। इस राजा ने राजपूत सेना के सहारे देवगढ़ में मुगलों से युद्ध करने का निश्चय कर लिया। मुगल-राज्य की ओर से जयसिंह[1] कूरमकल्ल (कोकशाह) के हाथ से देवगढ़ का किला ले लेने के लिये जा रहा था। इस समय छत्रसाल और अंगदराय ने अपना पराक्रम दिखाने का अवसर जान राजा जयसिंह को सहायता देने का वचन दिया। इसने इन दोनों का बड़ा आदर किया और उनसे सहायता लेना स्वीकार किया। इसी समय दिल्ली दरबार से हुक्म आया कि जयसिंह अपना काम बहादुरखाँ के सुपुर्द कर दें। पीछे से बहादुर खाँ भी सेनापतित्व का भार लेने के लिये आ पहुँचा। बहादुर खाँ और राजा चंपतराय से मित्रता रही थी। इन दोनों में पागबदलौवल[2] भी हो चुकी थी। इसलिये बहादुर खाँ ने भी छत्रसाल और अंगद-राय से अच्छा बर्ताव किया और उन्हें सहायता देने के लिये धन्य-वाद दिया। छत्रसाल इस युद्ध में बहुत वीरता से लड़े। कूरमकल्ल (कोकशाह) की राजपूत सेना ने मुगल सेना को आगे न बढ़ने दिया, परंतु छत्रसाल ही कुछ वीर सिपाहियों को लेकर आगे बढ़े। छत्रसाल वैरी की सेना को काटते हुए आगे बढ़े और उन्होंने

(१) राजा जयसिंह (जसवंतसिंह प्रथम) वि० सं० १७२३ पौष कृष्ण ६ को औरंगाबाद पहुँचे थे।

(२) जब दो मित्र आपस में गाढ़ी मित्रता करना चाहते थे तब वे अपनी पागें बदल लेते थे। वे फिर सदा एक दूसरे को सहायता देने को तैयार रहते थे।

शीघ्र ही देवगढ़ के किले की ढाल की रस्सी पकड़ ली। इससे मुगल सेना भी उत्साहित हुई और कूरमकल्ल (कोकशाह) की सेना पीछे हटी। अंत में देवगढ़ ले लिया गया, परंतु जिस समय छत्रसाल आगे बढ़े थे उसी समय एक राजपूत सरदार ने छत्रसाल के गले पर एक तलवार जोर से मारी, पर गले पर बिछुआ होने के कारण छत्रसाल की जान बच गई। तिस पर भी ऐसी गहरी चोट आई कि छत्रसाल वहीं रणभूमि में गिर पड़े और उनके विश्वासी घोड़े ने उनके शरीर की रक्षा की।

१४—मुसलमान लोग देवगढ़[1] लेकर खुशी मनाने लगे पर जिसके शौर्य से उन्हें विजय मिली थी उसकी उन्होंने कोई फिकर न की। अंत में छत्रसाल के साथी सैनिक छत्रसाल को उठा लाए और छत्रसाल का घाव कुछ दिनों में अच्छा हो गया। छत्रसाल को मुसलमानों का यह बर्ताव बहुत बुरा लगा। जब मुसलमानी सेना विजय प्राप्त करके दिल्ली पहुँची तो बहादुर खाँ को मनसबदारी मिली, परंतु छत्रसाल का कोई सम्मान न हुआ। दिल्लीपति औरंगजेब हिंदुओं का कट्टर द्वेषी था और वह सदा हिंदुओं को नष्ट करने के प्रयत्न में ही रहता था। उसने हिंदुओं पर जजिया नामक कर लगा दिया था, काशी के ब्राह्मणों का वेदाभ्यास बंद करा दिया, त्योहारों पर हिंदुओं के विमानों का निकालना बंद कर दिया, काशी आदि कई स्थानों के मंदिर गिरवा दिए और उनके स्थानों पर मस्जिदें बनवा दीं। उसने मूर्तियों को पैरों के नीचे कुचलवाया। इन्हीं कारणों से हिंदू प्रजा इससे नाराज थी और जिस प्रकार मध्य भारत में हिंदू धर्म की रक्षा वीर छत्रसाल

(१) वीर छत्रसाल नामक ऐतिहासिक उपन्यास के लेखक ने दौलताबाद (देवगिरि) को देवगढ़ माना है। यह ठीक नहीं, क्योंकि मध्यप्रदेश के देवलगढ़ के गोंड़ (राजगोंड़) राजा पर चढ़ाई हुई थी।

ने की उसी प्रकार दक्षिण में वीर शिवाजी ने हिंदू धर्म द्वेषी मुसलमानों का साम्राज्य नष्ट करने में कोई कसर न की[१]।

---

(१) औरंगजेब के अत्याचार और शिवाजी की वीरता का वर्णन भूषण कवि ने इस प्रकार किया है—

देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे डूबे राव राने सबी गए लबकी।
गौरा गनपति आप औरन को देत ताप,
आपके मकान सब मारि गए दबकी॥
पीरा पयगंबरा दिगंबरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की।
कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती,
सिवाजी न होतो तौ सुनति होति सबकी॥
साँच को न मानै देवी देवता न जानै अरु,
ऐसी उर आनै मैं कहत बात जब की।
और पातसाहन के हुती चाह हिंदुन की,
अकबर साहजहाँ कहैं साखि तब की।
बब्बर के तिब्बर हुमायूँ हद बाँधि गए,
दो में एक करी ना कुरान वेद ढब की।
कासिहु की कला जाती मथुरा मसीद होती,
सिवाजी न होतो तौ सुनति होती सब की॥
कुंभकर्न असुर औतारी अवरंगजेब,
कीन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरी रब की।
खोदि डारे देवी देव सहर मुहल्ला बाँके,
लाखन तुरुक कीन्हे छूटि गई तब की॥
भूषन भनत भाग्यो कासीपति बिस्वनाथ,
और कौन गिनती में भूली गति भव की।
चारौं वर्न धर्म छोड़ि कलमा नेवाज पढ़ि,
सिवाजी न होतो तौ सुनति होति सब की॥

(शिवाबावनी)

अध्याय १८

छत्रसाल और शिवाजी

१—औरंगजेब के अन्यायपूर्ण शासन से प्रजा असंतुष्ट हो गई और मुगल साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों में नए राज्य स्थापित होने लगे। दक्षिण में औरंगजेब के अत्याचारी साम्राज्य के नाश कर देने का बीड़ा मराठों ने उठाया। इस प्रांत में मुसलमानों ने अपना राज्य जमा लिया था, परंतु राजस्व इत्यादि वसूल करने का काम महाराष्ट्र सरदारों के हाथ में था और ये सरदार देशमुख कहलाते थे। इन देशमुखों को वेतन-स्वरूप जागीरें दी गई थीं जिनके द्वारा ये अपना निर्वाह करते थे। दक्षिण की बीजापुर नामक मुसलमानी रियासत में शाहजी भोंसले नामक एक जागीरदार थे। छत्रपति शिवाजी महाराज इन्हीं के पुत्र हैं।

२—शिवाजी का जन्म विक्रम-संवत् १६८४ में हुआ। शाहजी भोंसले जिस समय बीजापुर राज्य की ओर से करनाटक जीतने गए थे उस समय शिवाजी दादाजी कोनदेव के पास रहे। ये दादाजी शाहजी के मित्र थे और शाहजी की ओर से उनकी पूना की पैतृक जागीर की देख-रेख करते थे। शिवाजी ने बाल्यकाल में सैनिक शिक्षा इन्हीं से पाई। बाल्यकाल से ही इनका उद्देश्य यवन-सत्ता का अंत कर स्वतंत्र हिंदू राज्य की स्थापना करने का था। शिवाजी ने इसी उद्देश्य से सेना एकत्र करना आरंभ किया। महाराष्ट्र के मावली लोग शिवाजी को इस कार्य के लिये विशेष करके योग्य जान पड़े और शिवाजी की पहली सेना इन मावलियों की ही थी। ये लोग जंगल के रहनेवाले थे और वचन के बड़े पक्के और सत्यनिष्ठ थे। मावलियों की सहायता से शिवाजी ने बीजापुर राज्य

के किलों का लेना आरंभ कर दिया। इन किलों में अपना प्रधान किला शिवाजी ने राजगढ़ में बनाया। यह कार्य शिवाजी ने इतनी शीघ्रता से किया कि बीजापुर की सेना इनके कार्य में हस्तक्षेप करने न आ सका। इसके पश्चात् शिवाजी ने एक समय बीजापुर राज्य का खजाना मार्ग में लूट लिया। इसमें ३००००० पेगोडा अर्थात् १८ लाख रुपए थे।

३—बीजापुर राज्य में शिवाजी के पिता शाहजी का बहुत मान था, परंतु जब शिवाजी के इन कार्यों की खबर बीजापुर दरबार में पहुँची तब राजा ने शाहजी को इन सबका दोषी समझा। ये वि० सं० १७०६ में कैद कर लिए गए और बीजापुर के राजा ने शिवाजी को खबर दी कि यदि बीजापुर के सब किले बीजापुर राज्य को वापिस न किए जायँगे तो शाहजी मार डाले जायँगे। शिवाजी को इस समय सब काम छोड़कर शाहजी को बचाने का प्रयत्न करना पड़ा। उन्होंने उसकी युक्ति भी शीघ्र ही सोच ली। उस समय दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ और बीजापुर राज्य में अनबन हो गई थी। शिवाजी ने शाहजी के कैद करने का हाल शाहजहाँ को लिखा और उससे सहायता माँगी। शाहजहाँ ने सहायता देने का केवल वचन ही नहीं दिया बल्कि शिवाजी को पाँच हजारी मनसब भी दिया और बीजापुर के शासक को लिखा कि शाहजी को छोड़ दो। शाहजहाँ से युद्ध करने के लिये बीजापुर राज्य तैयार न था इसलिये बीजापुर दरबार ने शाहजी को वि० सं० १७१० में छोड़ दिया और शाहजी की जागीर, जो करनाटक में थी, वह भी शाहजी को दे दी।

४—शिवाजी अपने पिता को इस प्रकार मुक्त कराके थोड़े दिन शांत रहे। जब शिवाजी ने देखा कि शाहजी करनाटक में सुरक्षित हैं और बीजापुर एकाएक उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता तो

शिवाजी ने फिर अपना कार्य आरंभ कर दिया। इसलिये वि० सं० १७१६ में बीजापुर के मुसलमान शासक अलीआदिलशाह ने अपने अफजल खाँ नामक सरदार को, शिवाजी को हराकर उससे सब किले छीन लेने के लिये, भेजा। इस समय ये परतापगढ़ में रहते थे। शिवाजी ने अफजल खाँ की फौज का पहले सामना न किया और किसी बहाने उसे अलग बुलाकर ले गए और मल्लयुद्ध करके उसे मार डाला। फिर उसकी सेना को हराकर उन्होंने भगा दिया। इसके पश्चात् शिवाजी का आतंक सारे देश में फैल गया और बीजापुर के शासक ने 'शिवाजी से युद्ध करना ठीक न समझ उनसे संधि कर ली। इस संधि के अनुसार जो गढ़ शिवाजी ने ले लिए थे वे शिवाजी के पास रह गए[1]।

५—बीजापुर राज्य से संधि होने के पश्चात् शिवाजी के पास बहुत से गढ़ हो गए और उनके पास बहुत सी सेना हो गई। अब उन्होंने समझ लिया कि वे मुगलों से भी सामना कर सकते हैं। यह सोचकर उन्होंने मुगलों के राज्य पर आक्रमण करना और खजानों की संपत्ति लूटना आरंभ कर दिया।

---

(१) भूषण कवि ने शिवाजी और अफजल का युद्ध और सारे देश में शिवाजी के डर का ऐसा वर्णन किया है—

अफजल खान को जिन्होंने मयदान मारा
बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है।
भूषन भनत फरासीस त्यों फिरंगी मारि
हबसी तुरक डारे उलटि जहाज है॥
देखत में ऐसे रुसतम खाँ को जिन खाक किया
साल की सुरति आजु सुनी जो अवाज है।
चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँघा ते यारो
लेत रहौ खबर कहाँ लौं सिवराज है॥

(शिवा-बावनी)

६—वि० सं० १७१६ में शाइस्ताखाँ मुगलों की ओर से दक्षिणी प्रदेश का सूबेदार था। वह शिवाजी को हराने और शिवाजी के कार्य को बंद करने के उद्देश्य से बड़ी सेना लेकर पूने में पहुँचा। जिस स्थान में वह ठहरा था वहाँ, रात्रि के समय, शिवाजी भी कुछ सैनिकों को लेकर पहुँच गए और उन्होंने शाइस्ताखाँ को मार डाला। इसके पश्चात् शाइस्ताखाँ की फौज भगा दी गई। वि० सं० १७२० में शिवाजी ने सूरत को लूटकर बहुत सा धन प्राप्त किया। इसके पश्चात् शिवाजी ने छत्रपति शिवाजी महाराज का विरुद धारण-कर वि० सं० १७३१ में अपना राज्याभिषेक करवाया।

७—शिवाजी महाराज का यश सारे भारतवर्ष में फैल रहा था और उसका वर्णन सुनने से छत्रसाल को बड़ी प्रसन्नता होती थी। शिवाजी महाराज की स्वातंत्र्यप्रियता का वर्णन सुनकर छत्रसाल के हृदय में शिवाजी महाराज के प्रति प्रेम उत्पन्न होता था। देवगढ़ के युद्ध के पश्चात् मुसलमानों का व्यवहार देखकर छत्रसाल मुसल-मानों से बहुत असंतुष्ट हो गए थे। इसलिये चतुर और स्वदेशा-भिमानी छत्रसाल ने धर्मभक्त श्री शिवाजी महाराज की सहायता से मुगलों का साम्राज्य नष्ट करने का विचार किया।

८—छत्रसाल के उद्देश्य में उनके भाई अंगदराय ने भी सहायता दी। ये दोनों पहले देलवारे गए और वहाँ छत्रसाल ने अपना ब्याह परी के प्रमारों की बेटी देवकुँवरि के साथ किया। देवकुँवरि के साथ छत्रसाल की सगाई चंपतराय के समय में ही हो गई थी। इसी कारण ब्याह कर लेना इस समय बहुत आवश्यक समझा गया। ब्याह करने के पश्चात् छत्रसाल अपनी रानी देवकुँवरि और अपने भाई अंगदराय के साथ पूना को रवाना हुए।

९—उन दिनों में दक्षिण का मार्ग बहुत दुर्घट था। मार्ग में भी उत्तर की ओर से आनेवाले सैनिकों की जाँच के लिये शिवाजी महाराज की ओर से चौकियाँ थीं। छत्रसाल इन सबको पार कर और अपना पूरा परिचय किसी को न देते हुए शिवाजी महाराज के राज्य में पहुँचे। शिवाजी महाराज से भेंट भीमा[1] नदी के किनारे जंगल के समीप हुई। हिंदूधर्म की रक्षा और हिंदू स्वातंत्र्य का बीड़ा उठानेवाले ये दोनों वीर एक दूसरे को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। इसके पहले दोनों ने एक दूसरे की कीर्ति सुनी थी और दोनों के हृदयों में परस्पर मिलने की उत्कंठा हो रही थी। इस दिन उनकी वह इच्छा पूर्ण हुई और मिलने में उन दोनों को जो आनंद हुआ उसे कहना असंभव है। इन दोनों में शिवाजी महाराज वय में बहुत अधिक थे और उन्होंने अपना राज्य भी जमा लिया था। वे छत्रसाल की वीरता और चातुर्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। छत्रसाल की स्वातंत्र्यप्रियता, अद्वितीय स्वधर्माभिमान और अप्रतिम साहस देखकर शिवाजी महाराज की छाती गद्गद हो गई। उन्होंने छत्रसाल का प्रेम के साथ आलिंगन किया और बहुमूल्य उपदेश दिया। उस उपदेशामृत का सार छत्रप्रकाश नामक ग्रंथ में है। वह उपदेश इस प्रकार था—"हे पराक्रमी राजा, तुम अपने शत्रुओं का नाश करो और विजय प्राप्त करो। अपने देश पर अधिकार करके फिर उस पर अपना राज्य जमाओ। बादशाही सेना की परवाह मत करो। कपटी तुर्क लोगों का विश्वास न कर मुगलों का नाश करो। जब तुम्हारे ऊपर मुगल लोग आक्रमण करेंगे तब मैं तुम्हारी सहायता करूँगा और तुम्हारा स्वतंत्र होने का प्रण रखूँगा। जब जब मुगलों ने मुझसे युद्ध किया,

---

(१) कुँवर कन्हैया जू के कथनानुसार छत्रसाल ने राजदरबार में शिवाजी से भेंट की; परंतु यह ठीक नहीं जान पड़ता।

देवी भवानी ने मेरी सहायता की। देवी भवानी की कृपा से मैं मुगलों की विशाल शक्ति से बिलकुल नहीं डरता। कपटी मुसलमानों के कई सरदार मेरे सहायक बनकर मेरे पास आए और उन्होंने धोखे से मेरे ऊपर कई वार करने चाहे परंतु मैंने, उन पर अपनी तलवार चलाकर, उनका नाश किया। इसलिये तुम जल्दी अपने देश को वापिस जाओ। सेना तैयार करो और मुसलमानों को बुंदेलखंड से मार भगाओ, सदा अपने हाथ में नंगी तलवार लिए हुए युद्ध के लिये तत्पर रहो। ईश्वर अवश्य ही तुम्हें विजय देगा। गो-ब्राह्मणों का पालन करना, वेदों की रक्षा करना और समरभूमि में शौर्य दिखलाना ही क्षत्रियों का धर्म है। इसमें यदि मृत्यु हुई तो स्वर्ग मिलता है और यदि विजय हुई तो राज्य और अमर कीर्ति मिलती है। इसलिये तुम अपने देश में जाकर विजय प्राप्त करो।"

१०—शिवाजी महाराज का यह उपदेशामृत पान करके छत्रसाल का हृदय उत्साह और हर्ष से भर गया। इसके पश्चात् शिवाजी महाराज ने अपनी तलवार छत्रसाल को भेंट दी और आशीर्वाद देकर विदा किया। छत्रसाल ने बुंदेलखंड में आकर सेना एकत्र करके मुसलमानों को बुंदेलखंड से निकालकर स्वतंत्र हिंदू राज्य स्थापित करने का निश्चय कर लिया।

अध्याय १९

बुंदेलों का मेल

१—इस समय ओड़छे का राज्य राजा जसवंतसिंह के हाथ में था। राजा जसवंतसिंह ओड़छे के पहले राजा पहाड़सिंह के

पौत्र थे। इन्होंने मुगलों के अधिकार में रहना स्वीकार कर लिया था और ओड़छे के राज्य ने छत्रसाल के पिता चंपतराय के विरुद्ध मुसलमानों को सहायता भी दी थी जैसा कि ऊपर कह आए हैं। बुंदेलखंड के अन्य स्थानों की देखरेख के लिये शुभकरण नामक बुंदेला सरदार था। इस शुभकरण ने चंपतराय के साथ युद्ध भी किया था। ऐसी स्थिति में छत्रसाल ने पहले इन लोगों से मिलकर और इन्हें समझाकर अपनी ओर कर लेने का विचार किया। छत्रसाल ने शुभकरण से मिलने का उद्देश्य बतलाया। इस समय छत्रसाल मुगलों के वैरी न थे क्योंकि छत्रसाल ने मुगलों को देवगढ़ के युद्ध में सहायता दी थी। इसी कारण मुगलों के नौकर शुभकरण ने छत्रसाल से मिलने में कोई आपत्ति न की और जब छत्रसाल शुभकरण के पास पहुँचे तब शुभकरण ने उनका स्वागत किया। शुभकरण नाते में छत्रसाल के काका लगते थे। इसी कारण शुभकरण ने चाहा कि छत्रसाल भी औरंगजेब के नौकर हो जायँ और शुभकरण ने औरंगजेब के दरबार में नौकरी स्वीकार करने के लिये उन्हें सलाह दी। परंतु छत्रसाल तो इसके बिलकुल ही विरुद्ध थे। उन्होंने शुभकरण से मुगलों की अधीनता छोड़कर बुंदेलों को स्वतंत्र करने के कार्य में सहायता माँगी। देवगढ़ की विजय के पश्चात् मुगलों ने इनसे जो व्यवहार किया था उसका वर्णन करके छत्रसाल ने शुभकरण को समझाया कि मुसलमान लोग हिंदू लोगों की भलाई कभी न करेंगे; परंतु शुभकरण को छत्रसाल की बात अच्छी न लगी और उन्होंने छत्रसाल को राजविद्रोही समझ तुरंत ही अपने घर से विदा कर दिया[१]।

२—छत्रसाल को शुभकरण की बातों पर बड़ा दुःख हुआ परंतु

---

(१) छत्रप्रकाश में लिखा है कि छत्रसाल शुभकरण के यहाँ एक मास तक रहे थे।

उन्होंने अपना कार्य जारी रखा। छत्रसाल इसके पश्चात् औरंगाबाद गए जहाँ पर छत्रसाल के चचेरे भाई बलदिवान रहते थे। बलदिवान ने छत्रसाल का हृदय से स्वागत किया और तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति पर दोनों भाइयों की बहुत देर तक बातें हुईं। वहाँ पर छत्रसाल ने अपना विचार बुंदेलखंड में स्वतंत्र बुंदेलराज्य स्थापित कर मुसलमानों को मार भगाने का बताया। बलदिवान का हृदय मुसलमानों के अत्याचार से प्रथम ही खिन्न हो रहा था। उन्होंने छत्रसाल की सहायता करने का वचन दिया और छत्रसाल के वीर उद्देश्य की बहुत बड़ाई की। बलदिवान ने छत्रसाल से यह भी कहा कि जब तुम जहाँ मुझे बुलाओगे वहाँ पर मैं तुम से मिलकर जो सहायता बन सकेगी करूँगा[1]।

३—छत्रसाल ने फिर विक्रम संवत् १७२८ में मोर पहाड़ों पर सेना एकत्र करना आरंभ किया[2]। छत्रसाल के इन सब कामों की खबर औरंगजेब को पहुँची। उसने बुंदेलों को दबाने के लिये ग्वालियर के सूबेदार फिदाईखाँ को हुक्म दिया। उस समय ओड़छे की रियासत ग्वालियर के सूबेदार के अधिकार में थी। ग्वालियर के सूबेदार फिदाईखाँ को जो हुक्म औरंगजेब ने दिया उसमें यह भी लिखा था कि मुसलमान लोग बुंदेलखंड के लोगों को जबरदस्ती मुसलमान बनावें, जो न बनें उन्हें जान से मारें, मंदिरों को

---

(१) बलदिवान और छत्रसाल ने मुसलमानों से युद्ध करने के प्रश्न पर सगनौती उठाई थी और उसमें भी यही निकला कि मुसलमानों से युद्ध करना चाहिए।

(२) छत्रसाल का जन्म इन्हीं मोर पहाड़ों के निकट के जंगल में हुआ था। महाराज छत्रसाल ने अपनी दिग्विजय इसी वर्ष प्रारंभ की। इस विषय में तत्कालीन कवि लाल का निम्नलिखित दोहा है—

"संवत सत्रह सै लिखे आगर [illegible]।
लागत बरस [illegible] उमड़ चल्यो अवनीस।"

तोड़ें और मूर्तियों को फोड़ें। औरंगजेब की फौज जब कोई देश जीतने जाती थी तब उसे यही हुक्म दिया जाता था और जो देश औरंगजेब के राज्य में थे वहाँ भी हिंदुओं की अच्छी दशा न थी।

४—ग्वालियर के सूबेदार फिदाईखाँ ने बादशाह औरंगजेब का यह हुक्म पाकर ओड़छे के राजा सुजानसिंह को एक पत्र लिखा। उस पत्र में फिदाईखाँ के पास से ओड़छे के राजा को फौज का प्रबंध करने और मंदिर और मूर्तियाँ तोड़ने में सहायता देने का हुक्म था। राजा मुसलमानों के अधीन थे ही। यह पत्र पाते ही वे सोच में डूब गए। मुसलमानों के अधिकार में वे अवश्य थे परंतु उन्होंने हिंदू धर्म न खोया था। उन्हें बादशाह का हुक्म मानना धर्म के प्रतिकूल मालूम हुआ परंतु हुक्म न मानने से उनके राज्य का भी निकल जाना निश्चित था। इस समय ओड़छा राज्य के पुराने वैरी चंपतराय के पुत्र छत्रसाल का समाचार ओड़छे के राजा सुजानसिंह को मिला। छत्रसाल अपनी सेना लिए मोर पहाड़ी के जंगल में ठहरे थे। दिन प्रति दिन मोर पहाड़ी में छत्रसाल के सैनिकों का जमाव अधिक होता जाता था। राजा सुजानसिंह के मंत्रियों ने छत्रसाल से सहायता लेने की सलाह दी। यद्यपि छत्रसाल ओड़छे के वैरी चंपतराय के पुत्र थे तथापि प्रत्येक बुंदेला इस बात को जानता था कि धर्म की रक्षा और यवनों से युद्ध के लिये छत्रसाल सदा ही तत्पर रहेंगे। ओड़छे के राजा ने छत्रसाल को बुलाने का निश्चय कर लिया और रतिराम नामक एक सभासद, छत्रसाल के पास, ओड़छे का पत्र लेकर पहुँचा। पत्र पाते ही छत्रसाल अपना आपसी वैर भूल गए और उन्होंने ओड़छे की सहायता ऐसे धर्म-संकट पर करने का निश्चय कर लिया। पत्र पाने के दूसरे ही दिन छत्रसाल, अंगदराय और बलदिवान ओड़छे के लिये चले। ओड़छा पहुँचने पर सुजानसिंह की ओर से छत्रसाल का यथोचित

सम्मान हुआ। सुजानसिंह और छत्रसाल की बहुत देर तक सलाह होती रही। अंत में छत्रसाल और राजा सुजानसिंह दोनों ओड़छे के राम राजाजी के मंदिर में गए और यहाँ पर दोनों ने अपना पुराना आपसी वैर भूलकर सदा के लिये एक दूसरे को सहायता देने का वचन दिया। यवनों के दुराचार से वचने का दोनों ने एक उपाय यही सोचा कि बुंदेलखंड को स्वतंत्र कर लें। छत्रसाल ने इस कार्य के करने का वादा किया और ओड़छे के राजा सुजानसिंह ने हर प्रकार छत्रसाल को सहायता देने का वचन दिया। इसके पश्चात् छत्रसाल और सेना एकत्र करने और बुंदेलखंड के वीरों को सहायक बनाने के उद्देश्य से ओड़छे से लौट गए।

५—छत्रसाल उनके पिता के संगी और उनके पुराने मित्रों ने बड़ी सहायता दी। जिन लोगों ने उन्हें विशेष सहायता दी उनमें से प्रधान ये हैं—गोविंदराय जैतपुरवाले, कुँवर नारायणदास, सुंदरमन प्रमार, राममन दौआ, मेघराज पड़िहार, धुरमांगद बख्शी कायस्थ, किशोरीलाल, लच्छे रावत, मानशाह, हरवंश, भानु भाट, चंवल कहार और फत्ते वैश्य। इन सबने सेना तैयार करने में विशेष सहायता दी परंतु इस समय छत्रसाल की सेना बहुत न थी।

६—छत्रसाल के भाई रतनशाह बिजौरी में रहते थे। छत्रसाल ने उनसे भी सहायता लेने का निश्चय किया। इसलिये छत्रसाल उनके पास गए। रतनशाह ने छत्रसाल का स्वागत किया। फिर छत्रसाल ने अपने आने का अभिप्राय रतनशाह से कहा। रतनशाह ने छत्रसाल से बहुत वाद-विवाद किया। अंत में छत्रसाल को अपने कार्य में रतनशाह से अधिक सहायता मिलने की आशा न हुई[1]। छत्रसाल रतनशाह के पास अठारह दिन रहे।

(१) रतनशाह ने पहले छत्रसाल को बहुत निरुत्साहित किया, परंतु छत्रसाल अपने प्रण से न डिगे और हृदय में अपना विश्वास बनाने के लिये उन्होंने अनन्य दृढ़ि का निम्नलिखित कवित्त कहा—

७—रतनशाह के पास से लौटकर राजा छत्रसाल औंड़ेरा नामक ग्राम में आए। यहाँ पर राजा छत्रसाल को सब साथियों ने मिलकर अपना मुखिया बनाया और बलदिवान को उनका मंत्री बनाया। युद्ध में और लूट में जो माल मिले उसमें छत्रसाल का हिस्सा ५५/१०० और बलदिवान का हिस्सा ४५/१०० नियत हो गया। सब वीर बुंदेलों ने यहाँ पर स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रण किया और अपने प्रण के नियम इस प्रकार निश्चित किए—(१) क्षत्रियों का धर्म पालना, (२) देश और जाति की रक्षा का प्रयत्न करते रहना, (३) धर्म के विरुद्ध आचरण करनेवाले, और प्रजा को कष्ट देनेवाले यवनों का नाश करना और (४) उन राजाओं या सूबेदारों को यथोचित दंड देना जो विजातीय यवनों से मेल करके हिंदुओं पर अत्याचार करें।

८—इस प्रकार निश्चय करके और युद्ध की तैयारी करके छत्रसाल ने अपनी दिग्विजय आरंभ कर दी। जहाँ जहाँ छत्रसाल ने विजय की उसका वर्णन छत्र-प्रकाश नामक ग्रंथ में किया गया है। उस समय छत्रसाल के पास केवल ३४७ पैदल सिपाही और ३० सवार थे। इस थोड़ी सी सेना को लेकर छत्रसाल पहले धंधेरखंड की ओर चले। यहाँ पर कुँवरसेन धंधेरा राज्य करता था और वह मुसलमानों के अधीन था। कुँवरसेन ने छत्रसाल का सामना किया परंतु छत्रसाल के सिपाहियों ने उसे हरा दिया। कुँवरसेन फिर सकरहटी के किले में जा छिपा पर छत्रसाल ने उसका वहाँ भी पीछा किया और उसे कैद कर लिया। तब उसने

जेहि असित सरितान सागरान नीर सोखो सोई सरितान सागरान नीर भरिहैं।
जेहि तरुवरन को पत्रन बिहीन कियो सोई तरुवरन माँझ फेरि पत्र करिहैं॥
जेहि राजा वलि को ऊँच आसन से पाताल भेजो सोई राजा वलि को फेरि इंद्र करिहैं।
धरे रहो धीरज वीर अक्षर अनन्य भने जेहि उपजाई पीर सोई पीर हरिहैं॥

वीर छत्रसाल की अधीनता स्वीकार की और अपने भाई हिरदेशाह की लड़की दानकुँवरि का ब्याह छत्रसाल के साथ कर दिया। इतना ही नहीं, वरन् केसरीसिंह नाम का अपना एक सरदार छत्रसाल की सहायता के लिये दिया और २५ पैदल सिपाही भी छत्रसाल को दिए।

९—इसका समाचार मुगल बादशाह को मिला। उस समय छत्रसाल से लड़ने के लिये कोई बड़ी सेना नहीं आई परंतु इन लोगों को डाकू समझ एक थानेदार इन्हें पकड़ने आया। सिरौंज मुगल बादशाह के बड़े नगरों में से था और यहाँ पर एक थानेदार भी रहता था। इस थानेदार का नाम मुहम्मद हाशिमखाँ था। यह अपने तीन सौ सिपाही लेकर छत्रसाल को पकड़ने के लिये आया। छत्रसाल ने इन तीन सौ आदमियों को शीघ्र ही मारकर भगा दिया। सिरौंज के समीप ही तिवरा नाम का ग्राम था। यह ग्राम भी उसी थानेदार के अधीन था। उस गाँव को भी छत्रसाल ने लूट लिया। इन लूटों से उन्हें खूब धन मिला जो उदारता से सिपाहियों में बाँटा गया। इससे छत्रसाल के अनुयायी उनसे बहुत प्रसन्न हुए और प्रतिदिन छत्रसाल के सैनिकों की संख्या बढ़ने लगी। स्वतंत्रता प्राप्त करने के पवित्र कार्य में सहायता देने के लिये दूर दूर से बुंदेले लोग आकर छत्रसाल की सेना में भरती होने लगे। बुंदेलखंड में क्या सारे भारतवर्ष में छत्रसाल की वीरता प्रसिद्ध हो गई[1]।

---

(१) छत्रसाल का डर किस प्रकार हो गया था, इसका वर्णन भूषण ने इस प्रकार किया है—

> चाक चक चमू के अचाक चक चहूँ ओर,
>
> चाक सी फिरति धाक चंपति के लाल की।
>
> भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
>
> काहू उमराव ना करेरी करवाल की॥

१०—धामौनी का जागीरदार मुगलों के अधीन था और इसने चंपतराय पर आक्रमण करते समय मुगलों को सहायता दी थी। छत्रसाल ने अपने पिता के शत्रु को नीचा दिखाने के लिये अपनी सेना लेकर धामौनी पर हमला किया। धामौनी का जागीरदार भी तैयार होकर बैठा था। उसने छत्रसाल से आठ दिन तक युद्ध किया पर अंत में वह हार गया। उसने छत्रसाल की अधीनता स्वीकार कर बहुत सा धन दिया और हमेशा के लिये छत्रसाल को अपनी जागीर की आमदनी का चौथा भाग अर्थात् चौथ देना स्वीकार किया।

११—धामौनी के पश्चात् छत्रसाल ने मैहर पर आक्रमण करने का विचार किया। उस समय मैहर का जागीरदार एक बालक था और उसकी माँ उस बालक की तरफ से देख-रेख करती थी। मैहर की सेना का मालिक माधवसिंह गूजर था। छत्रसाल ने मैहर पर चढ़ाई की और बारह दिन के युद्ध के पश्चात् मैहर का किला ले लिया गया और माधवसिंह बंदी कर लिया गया। तब जागीरदार ने ३०००) सालाना वार्षिक कर देने की प्रतिज्ञा की और माधवसिंह छोड़ दिया गया।

१२—मुसलमानी राज्य के इस विभाग में अशांति होने से जागीरदार लोग भी सेना रखते थे और उन्हें मुगलों की ओर से इस विषय में आज्ञा थी। छत्रसाल के सैनिक इतनी शीघ्रता से देश के इस छोर से उस छोर को चले जाते थे कि मुगल सेना को उन्हें आकर हराना कठिन होता था।

सुनि सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जंग जीतिलेवा ते वै ह्वैकै दामदेवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा-महिपाल की॥

१३—बाँसा के जागीरदार के पास भी एक बड़ी सेना थी और वह जागीरदार अपने बल का बहुत घमंड करता था। इसे छत्रसाल की विजय देखकर बहुत बुरा लगता था। छत्रसाल ने बाँसा के जागीरदार के पास, जिसका नाम केशवराय दुरंगी था, यह संदेश भेजा कि या तो अधीनता स्वीकार करो अथवा युद्ध करो। बाँसा के जागीरदार केशवराय ने अधीनता स्वीकार करना ठीक न समझा और छत्रसाल को परस्पर युद्ध में बल की परीक्षा करने के लिये ललकारा। छत्रसाल के मंत्रियों ने छत्रसाल को बिना सेना के युद्ध करने की सलाह न दी, क्योंकि छत्रसाल की सारी सेना की विजय छत्रसाल के ऊपर ही अवलंबित थी और मंत्रियों ने यह निश्चय किया कि छत्रसाल के प्रधान मंत्री बलदिवान ही अकेले केशवराय से लड़ें। बलदिवान भी बड़े बलवान् पुरुष थे और वे भाला बरछी चलाने में भी निपुण थे। परंतु छत्रसाल ने केशवराय से लड़ना स्वीकार न करना भीरुता समझा और उन्होंने स्वयं केशवराय से युद्ध करने का निश्चय कर लिया। इस समय केशवराय और छत्रसाल दोनों अपने अपने घोड़ों पर सवार होकर अपने बल की परीक्षा करने आए। दोनों को अपने बल पर विश्वास था। केशवराय ने छत्रसाल से पहले वार करने के लिये कहा। परंतु छत्रसाल ने उत्तर दिया कि केशवराय ही अतिथि का सत्कार अपनी बरछी से पहले करें। केशवराय ने पहले बरछी चलाई जो छत्रसाल की छाती में लगी पर छत्रसाल ने उसे निकाल अपनी बरछी केशवराय के हृदय में मारी और जब केशवराय तलवार लेकर मारने को आने लगा तब छत्रसाल ने बरछी मारकर केशवराय को घोड़े पर से गिरा दिया। उस बरछी की चोट बहुत गहरी होने से केशवराय मर गया। इस प्रकार दोनों का धर्म-युद्ध समाप्त हुआ। सारी सेना अलग खड़ी चुपचाप देखती रही। केशवराय के मरने

के पश्चात् उसके पुत्र विक्रमसिंह को छत्रसाल ने आश्वासन दिया और उसे अपनी सैन्य का सेनापति बनाया। विक्रमसिंह ने भी छत्रसाल के अधीन होना स्वीकार कर लिया[1]।

१४—मुगलों के सेनापति हमेशा छत्रसाल को हराने के प्रयत्न में रहते थे। वे कभी कभी छत्रसाल की बड़ी सेना को देखकर भाग जाते और कभी उन्हें पा ही न सकते थे। एक समय एक जंगल में अचानक बहादुरखाँ नामक सेनापति ने छत्रसाल को आ घेरा। यह सेनापति ग्वालियर के सूबेदार के अधीन था। जिस समय बहादुरखाँ ने छत्रसाल को घेरा उस समय छत्रसाल के पास न तो कोई बड़ी सेना थी और न अधिक हथियार ही थे। इस कारण छत्रसाल उससे युद्ध करना ठीक न समझ हिकमत से एक घाटी के समीप से निकल गए और बहादुरखाँ को लौटकर चला जाना पड़ा।

१५—जब छत्रसाल अपने डेरे पर आए तब उन्होंने तुरंत ही ग्वालियर के सूबेदार के प्रांत पर धावा किया। पहले छत्रसाल ने पवाँया नामक ग्राम लूटा और फिर आकर धूमघाट नामक स्थान पर डेरा किया। ग्वालियर का सूबेदार मुनौवर खाँ यह हाल सुनते ही एक बड़ी सेना लेकर वहाँ पहुँचा और वहाँ पर छत्रसाल से और ग्वालियर सूबे की सेना से खूब युद्ध हुआ। मुसलमान सेना को हारकर पीछे हटना पड़ा और छत्रसाल ने उसका पीछा किया। मुसलमानी सेना फिर अपने बचाव के लिये ग्वालियर के किले में घुस गई। यह किला लेना बड़ा कठिन कार्य समझ छत्रसाल ग्वालियर लूटकर लगभग सवा करोड़ रुपए और बहुत से रत्न लेकर वापिस आए।

---

(१) छत्रप्रकाश में लिखा है कि छत्रसाल ने बाँसा को लूट भी लिया।

१६—इस समय सिरौंज का थानेदार मुहम्मद हाशिम भी फौज लेकर ग्वालियर की सहायता को पहुँचा। ग्वालियर से भी कुछ फौज और आई और दूसरी ओर से मुहम्मद हाशिम की फौज पहुँची। तीसरी ओर से आनंदराय चौधरी नामक एक व्यक्ति भी सेना लेकर मुसलमानों की सहायता को पहुँचा। इस समय छत्रसाल का डेरा कटिया नामक जंगल में था। तीनों सेनाओं ने तीन तरफ से छत्रसाल पर आक्रमण किया परंतु वीर बुंदेले जरा भी न डरे और उन्होंने अपने रणकौशल के सहारे सारी सेना छिन्न-भिन्न कर दी। वहाँ से विजय-पताका उड़ाते हुए बुंदेले लोग हनूटेक आए और यहाँ वीर छत्रसाल की तीसरी शादी मोहार के धंधेरे हरिसिंह की बेटी उद्देतकुँवरि से हुई।

१७—हनूटेक से छत्रसाल मऊ के पास आए और यहाँ उन्होंने एक दूसरा गाँव बसाया। यह गाँव भी महेवा कहलाता है। परंतु यह स्थान सुरक्षित न था, इस कारण रनिवास के लिये पन्ना ही ठीक समझा गया। परंतु सेना अधिकतर मऊ में रही।

१८—छत्रसाल की वीरता और उनकी विजय का हाल सुनके प्रत्येक बुंदेले के हृदय में प्रसन्नता होती थी। इस कारण वे सब लोग छत्रसाल को सहायता देने के लिये सदा तैयार रहते थे। जो मुसलमानों के भय के मारे छत्रसाल के दल में सम्मिलित न होते थे वे भी अब छत्रसाल की शक्ति पर विश्वास कर छत्रसाल की सहायता के लिये तत्पर हो गए। इस प्रकार बुंदेले लोग अब सब मिलकर मुसलमानों से युद्ध करने के लिये तत्पर हुए।

अध्याय २०

मुसलमानों से युद्ध

१—जब ग्वालियर का सूबेदार मुनौवरखाँ छत्रसाल से हार

गया तब उसने इसकी खबर औरंगजेब बादशाह को दी। औरंगजेब को यह बात सुनकर बहुत अचंभा हुआ और उसने छत्रसाल को दबाने के लिये बड़ी तैयारियाँ की। इस समय औरंगजेब की बादशाहत को तीनों ओर से आफतें थीं। दक्षिण में शिवाजी महाराज के मारे बादशाहत की रक्षा करना कठिन था। मध्यभारत में छत्रसाल अपना राज्य जमा रहे थे। बूँदी के राजा छत्रसाल ने भी औरंगजेब को बहुत तंग किया था। पर वि० सं० १७१५ में राजा छत्रसाल हाड़ा की मृत्यु होने के पश्चात् उनके पुत्र भी औरंगजेब को भरपूर तंग कर रहे थे[1]। छत्रसाल का पराभव करने के लिये बादशाह औरंगजेब ने दिल्ली दरबार के बाईस वजीरों और आठ सरदारों को सेना तैयार करने का हुक्म दिया। इस सेना का अधिनायक रणदूलहखाँ नाम का एक सेनापति हुआ।

२—छत्रसाल के पास भी एक बड़ी सेना तैयार हो गई थी। इनके पास के भी ७२ सरदार अपनी अपनी सेना लेकर जमा हो गए थे। इन सरदारों में मुख्य ये थे—रतनसाह, अमरदीवान,

---

(१) बूँदी के राजा छत्रसाल रावरतन के नाती थे। रावरतन को शाहजहाँ ने राजा बनाया था और रावरतन के मरने पर छत्रसाल बूँदी के राजा हुए थे। जब औरंगजेब बादशाह होना चाहता था तब बूँदी के छत्रसाल औरंगजेब से लड़े थे। औरंगजेब के बादशाह होने पर भी छत्रसाल बूँदीवाले औरंगजेब से लड़ते रहे। औरंगजेब को बूँदी के छत्रसाल और बुंदेले छत्रसाल दोनों से ही बड़ा डर रहता था। भूषण कवि ने इसी का वर्णन निम्नलिखित दोहों में किया है।

"इक हाड़ा बूँदी धनी मरद महेवा वाल।
सालत नौरँगजेब को ये दोनों छतसाल॥
वै देखौ छत्ता पता वै देखौ छतसाल।
वै दिल्ली की ढाल यै दिल्ली ढाहनवाल॥"

(छत्रसाल-दशक)

सवलसिंह, केशवराय पड़िहार, धारूशाह प्रमार, दीवान दीपचंद बुंदेला, पृथ्वीराज, माधवसिंह, उदयभानु, अमीरसिंह, प्रतापसिंह, राव इंद्रमन, उग्रसेन कछवाहा, जगतसिंह, सकतसिंह, जामशाह, बखतसिंह धंधेरे, देवदीवान, भरतशाह, अजीतराय, जसवंतसिंह (बलदिवान के पुत्र), राजसिंह, जयसिंह, यादवराय, करणसिंह, गाजीशाह, गुमानसिंह दौआ। इन सब की सेना मिलकर एक बड़ी सेना तैयार हो गई थी। ये लोग अब पहाड़ियों में न रहकर शहरों और महलों में रहते थे तथा मुसलमानों की विशाल सेना का सामना करने के लिये अच्छी तरह से तैयार थे।

३—रणदूलहखाँ अपनी बड़ी सेना लेकर दक्षिण-बुंदेलखंड में युद्ध करने को पहुँचा। इसके पास ३०००० सवार और पैदल सिपाहियों की सेना और कई तोपें भी थीं। इसके सिवाय ओड़छा, सिरोंज, कोंच, धामौनी और चंदेरी के भी बुंदेले अपने भाइयों के विरुद्ध मुसलमानों को सहायता देने के लिये तैयार थे।

४—छत्रसाल को मुसलमानों की सेना के आक्रमण का हाल मालूम हो गया। ये सेना के पहुँचने के पहले छत्रमऊ से चलकर गढ़ाकोटा पहुँचे। उस समय गढ़ाकोटा में थोड़ी सी मुसलमानों की सेना थी। छत्रसाल ने वह किला ले लिया और उस किले में अपने मंत्री बलदिवान को कुछ सेना के साथ छोड़ आप खुद शेष सेना को लेकर युद्ध के लिये तैयार हो गए। मुसलमानों की सेना भी बहुत वेग से आ रही थी और जिस समय मुसलमानों की सेना शाहगढ़ के समीप थी उस समय छत्रसाल ने उस सेना पर एक समीपस्थ पहाड़ की घाटी पर से गोली बरसाना आरंभ कर दिया। मुसलमानी सेना का पंचम भाग वहीं पर नष्टप्राय हो गया। फिर मुसलमान सेना ने घाटी पर चढ़ने का प्रयत्न किया, परंतु उसी समय छत्रसाल अपनी सेना लेकर वहाँ से दूर चले गए। मुसल-

मानों की सेना फिर गढ़ाकोटा के पास तक बढ़ती आई और जब सेना गढ़ाकोटा के किले के पास पहुँची तब एक ओर से राजा छत्रसाल ने गोली चलाना शुरू कर दिया और दूसरी ओर से किले के भीतर से बलदिवान गोली चलाने लगे। बादशाह औरंगजेब की सेना इस दुहरी मार को न सह सकी और रणदूलहखाँ को सागर की ओर भागना पड़ा। इस युद्ध में रणदूलहखाँ के दस सरदार और सात सौ सिपाही मारे गए और दस तोपें छत्रसाल के हाथ लगीं[1]।

---

(१) लाल कवि ने अपने छत्र-प्रकाश में गढ़ाकोटा के युद्ध का निम्नलिखित वर्णन किया है—

सुनत साह मन में अनखानै। भेजे रनदूलह मरदानै॥
सँग बाइस उमराव पठाए। आठक लिखे मुहती ठाए॥
बिदा भए मुजरा करि ज्यौंही। बजे निसान कूच करि तबहीं॥
दतिया अरु ओंड़छौ बगैनी। सजी सिरौंज कौंच धामौनी॥
उसड़ि ईँदुरखी चढ़ी चँदेरी। पिलि पाडौर युद्ध की टेरी॥
ये मुहती उमर चढ़ि आए। मनसिबदार तीस ठिक ठाए॥
करथौ गढ़ाकोटा पर पेला। जहाँ सुनै छत्रसाल बुँदेला॥

उमड़्यौ रनदूलह सजे, तीस हजार तुरंग।
बजे नगारे जूझ के, गाजे मत्त मतंग॥

दिन के पहर तीन तब बाजे। लागी लाग मीर गल गाजे॥
त्यौं छत्रसाल चढ़ाई भौंहैं। अड़ै बंब दै भए भिरौहैं॥
उमड़ि रारि तुरकन त्यौं मांडी। छूटे तीर उड़ति ज्यौं टीँडी॥
त्यौं रन उमड़ि बुँदेला हाँके। रंजक धुँवन बामनिधि ढाँके॥
बाजन लगीं बंदूखैं सोई। गिरे तुरक जे लगे अगोई॥
गिरत हरौल गोल के साऊ। कढ़ि कतार तैं ठिले अगाऊ॥
लगे खान गोलिन की चोटैं। नट ज्यौं उछल लाग लै लौटैं॥
समर बिलोकि सुरन भय कीनौ। सूरज सरक अस्तगिरि लीनौ।

जोत जामिनि में जगी, लागे नखत दिखान।
रन असमान समान भौ, रन समान असमान॥

पहर रात भर भई लराई। गोलिन सर सैथिन झर लाई॥

५—रणदूलहखाँ को भगाते हुए छत्रसाल ललितपुर होते हुए नरवर आए। मार्ग में मुसलमानों के गाँव लूट लिए। नरवर पर पता लगा कि दक्षिण से मुगलों का बहुत सा खजाना आ रहा है। छत्रसाल ने तुरंत रास्ता रोककर बादशाही सब खजाना लूट लिया।

६—रणदूलहखाँ की हार का हाल सुनने पर बादशाह औरंगजेब को बहुत रंज हुआ। इसी समय बादशाही खजाने के लूटे जाने की खबर मिली। औरंगजेब ने अब तुर्क लोगों की सेना छत्रसाल से लड़ने के लिये भेजने का निश्चय किया। तुर्क लोग बड़े जवाँमर्द समझे जाते थे और मुगल बादशाह के पास इन लोगों की भी एक विशाल सेना थी। मुगल बादशाह औरंगजेब को पूरा विश्वास था कि यह सेना छत्रसाल को अच्छी तरह से हरा देगी। तुर्क सेना अपनी तैयारी करके रवाना हुई और उसने छत्रसाल को अचानक बसिया नामक स्थान पर आ घेरा। इस समय छत्रसाल के पास फौज ज्यादा न थी इससे उन्होंने तुर्की सेना का सामना न किया और थोड़ी लड़ाई करके वे पीछे हट गए। फिर छत्रसाल के एक विश्वस्त मनुष्य ने जाकर तुर्की सेना के तोपखाने में आग लगा दी। तुर्की सेना का तोपखाना जलने लगा। ऐसी दशा में छत्रसाल की सेना ने मुसलमानी सेना पर आक्रमण करके उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। इस प्रकार इस युद्ध में भी बुंदेलों की विजय प्राप्त हुई।

७—मुगल बादशाह की तुर्की सेना को हराकर छत्रसाल जिगनी आए। यहाँ के जागीरदार सिंहजू पड़िहार ने इनका स्वागत किया और अपनी लड़की भगवान कुँवरि का ब्याह छत्रसाल के साथ कर दिया।

आइ धाइ सब स्थान घपानैं। लोह लागि तजि पीठ परानैं ॥
डेरा कोस द्वैक पर पारे। हिम्मत रही हिये मद हारे ॥
चढ़े बुँदेला टरे न टारे। जीते तुरक पठाइ नगारे ॥
रनदूलह रन ते दिपताए। ह्याँ तैं रनदूलह खाँ धाए ॥

८—जब बसिया के युद्ध का हाल मुगल बादशाह औरंगजेब को मालूम हुआ तब वह बहुत फिक्र में पड़ गया। उसे अब यह डर लगने लगा कि कहीं छत्रसाल आकर दिल्ली भी न लूट लें। उसके सर्दारों में से तहवरखाँ नाम का एक सरदार बड़ा प्रवीण समझा जाता था। बुंदेलों को हराने के लिये अब यह सरदार नियुक्त किया गया। यह सरदार बड़ा युक्तिवान् और कूटनीति में चतुर था। इस कारण इसने छत्रसाल पर खुले मैदान हमला करना ठीक न समझा और छत्रसाल को अचानक किसी स्थान में घेर लेने की युक्ति सोची। इस समय छत्रसाल मऊ से अपनी बारात लेकर सँड़वा-बाजने में अपना ब्याह करने आए थे। जिस समय भाँवरें पड़ रहीं थीं उसी समय तहवरखाँ ने अपनी फौज लेकर छत्रसाल को घेर लिया। भाँवरें पड़ चुकने के बाद छत्रसाल ने अपने थोड़े से सैनिकों को युद्ध करने की आज्ञा दी और आप खुद किसी तरह से निकल भागे तथा दूसरी ओर से उसी फौज पर मार करना आरंभ कर दिया। जिस समय सारी फौज ने अपना ध्यान जिस ओर छत्रसाल थे उस ओर किया उसी समय छत्रसाल की बाकी फौज भी, जो दूसरी ओर से लड़ रही थी, छत्रसाल से आकर मिल गई और छत्रसाल अपनी सारी सेना लेकर मऊ में चले आए। तहवरखाँ भी छत्रसाल का इस प्रकार कुछ न कर सका और वह निरुपाय होकर दिल्ली को वापिस चला गया।

९—छत्रसाल सँड़वा-बाजने से ब्याह करके मऊ में आ गए। यहाँ पर चार मास बरसात में विश्राम करके विजयादशमी को अस्त्र-शस्त्र सजाकर और सेना लेकर इन्होंने कालिंजर के किले पर धावा किया। कालिंजर का किला मुसलमानों के अधिकार में था। मुसलमानों की एक बड़ी सेना इस किले में रहती थी। यहाँ के किलेदार का नाम करम इलाही था। छत्रसाल ने अपनी सेना

लेकर चारों ओर से किला घेर लिया। छत्रसाल की ओर से सेनापति बलदिवान थे। किले के भीतर खूब गोली और बारूद था। किले से लगातार गोलियाँ चलती रहीं जिससे बुंदेला सेना की बहुत हानि हुई। परंतु वीर बुंदेले सब सहते हुए लड़ाई करते रहे और चारों ओर से इस प्रकार घेरा डाले रहे कि किले के भीतर की फौज को खाने पीने का सामान न पहुँच सके। किले के भीतर की फौज १८ दिन तक भीतर से गोले चलाती रही। परंतु इस समय तक उसके खाने पीने का सामान कम हो गया और किले की फौज को लड़ने के लिये बाहर निकलना पड़ा। जिस द्वार से मुसलमान सेना बाहर निकलने लगी उसी द्वार को रोककर बुंदेलों ने भीतर घुसना आरंभ कर दिया। फिर किले में घुसकर बुंदेले उस पर अधिकार कर बैठे। यह युद्ध बड़ा भयंकर हुआ और इसमें बुंदेले भी बहुत मारे गए। नंदन छीपी, कृपाराय चंदेल, बाघराज पड़िहार इत्यादि दस बुंदेलों के सरदार इस युद्ध में काम आए और २७ सरदार घायल हुए। परंतु बुंदेलों ने अपनी वीरता और धैर्य के बल किले को ले ही लिया। गढ़ कालिंजर में छत्रसाल ने अपनी ओर से मानधाता चौबे को नियत किया। यहाँ पर कुछ काल रहकर वे पन्ना होते हुए मऊ आए। इन चौबेजी के वंश के लोग कालिंजर में बहुत दिनों तक रहे और अब भी वे समीप के गाँवों में जागीरदार हैं।

१८—मऊ के समीप एक जंगल में छत्रसाल को बाबा प्राणनाथ मिले। बाबा प्राणनाथ जामनगर के [illegible] के [illegible] थे। उन्होंने [illegible] से एक पहुँचे हुए योगी थे। छत्रसाल ने [illegible] बताया। छत्रसाल को [illegible]

आशीर्वाद दिया और वे सदा छत्रसाल को धर्म और देश-रक्षा के कार्य में सलाह और सहायता देते रहे[1]।

११—छत्रसाल ने विक्रम संवत् १७४२ में सागर को लूटा। सागर इस समय मुगल बादशाह के अधिकार में था। सागर लूटने के बाद दमोह लूटा और फिर बरहटा के राजा को अपने अधिकार में किया। फिर एरच की ओर धावा किया और एरच और जलालपुर को लूटा। इनकी लूटमार में प्रजा को अधिक कष्ट न होता था और जो जागीरदार छत्रसाल की अधीनता स्वीकार कर उन्हें दंड दे देते थे उन जागीरदारों को वे बिल्कुल तंग न करते थे। बेतवा के समीप जलालखाँ नामक मुसलमान सरदार ने छत्रसाल को रोकना चाहा परंतु छत्रसाल ने जलालखाँ को कैद कर लिया। उसकी फौज भागकर सैयद लतीफ नामक मुगल सरदार की फौज में जा मिली।

१२—सैयद लतीफ ग्वालियर के समीप ही था। छत्रसाल ने इस पर भी धावा मारा और लतीफ को जान बचाने के लिये दक्षिण की ओर भागना पड़ा। उसकी फौज के १०० अरबी घोड़े, ७० ऊँट और १३ तोपें छत्रसाल को मिलीं। छत्रसाल वहाँ से बाँदा की ओर गए। बाँदा के निवासियों ने छत्रसाल का स्वागत किया इसलिये छत्रसाल ने उन्हें अभयदान दिया। राजगढ़ के समीप फिर तहवरखाँ की फौज मिली। छत्रसाल ने इस फौज को फिर अच्छी तरह से हराया। मौदहा, मुस्करा इत्यादि अट्ठारह

---

(१) बाबा प्राणनाथ ने छत्रसाल से कहा था—

छत्ता तेरे राज में धक धक धरती होय।
जित जित घोड़ा मुख करे तित तित फत्ते होय॥

कहते हैं कि जिस ओर राजा छत्रसाल का घोड़ा मुख करता था उसी ओर वे दिग्विजय के लिये जाते थे।

गाँवों के जमींदारों ने छत्रसाल को रोकना चाहा परंतु वे दंड के भागी हुए और उनके गाँव लूट लिए गए। छत्रसाल ने महोबा, राठ, पनवाड़ी इत्यादि गाँव लूटे और उन पर अपने पहरे लगा दिए। अजनर पर फिर जमींदारों ने छत्रसाल को रोका पर उन्होंने भी रोकने की सजा पाई।

१३—फिर छत्रसाल कालपी की ओर चले। वहाँ के एक सरदार दुर्जनसिंह पड़िहार ने छत्रसाल की शरण ली और छत्रसाल ने उन्हें अभय दान दिया। जिन लोगों ने छत्रसाल की अधीनता स्वीकार कर ली वे चैन में रहे; पर जिन लोगों ने उनका सामना किया वे सीधे किए गए। कालपी का थाना छत्रसाल ने ले लिया और वहाँ से मुसलमानी खजाना लूटकर थानेदार को भगा दिया। छत्रसाल ने इस थाने पर अपनी ओर से उत्तमसिंह पँवार को नियत कर दिया।

१४—इस समय ओड़छे में राजा भगवंतसिंह राज्य करते थे। राजा यशवंतसिंह का परलोकवास विक्रम संवत् १७४१ में हो गया था। जिस समय भगवंतसिंह राजगद्दी पर बैठे उस समय वे बालक ही थे। इससे राज्य का सब काम मंत्री लोग ही किया करते थे। इनकी माता भी, जो इस समय जीवित थीं, राज्यकार्य में सलाह दिया करती थीं। मंत्रियों ने छत्रसाल से अपना संबंध तोड़कर औरंगजेब की अधीनता स्वीकार कर ली। यह समाचार पाते ही छत्रसाल विक्रम संवत् १७४२ में कालपी से ओड़छे को रवाना हुए। उन्होंने ओड़छे को लूटने का निश्चय कर लिया। यह हाल राजा भगवंतसिंह की माँ अमरकुँवरि ने सुना तो वे धसान नदी पर छत्रसाल से मिलीं। उन्होंने छत्रसाल से ओड़छे पर आक्रमण न करने के लिये विनती की और छत्रसाल को धसान के पूर्व की भूमि का अधिकारी मान लिया।

फिर छत्रसाल को निमंत्रित कर वे ओड़छे में ले गईं। वहाँ छत्रसाल का अच्छा सम्मान किया।

१५—इसके पश्चात् छत्रसाल ने ग्वालियर पर चढ़ाई की। वहाँ का सूबेदार तहवरखाँ पहले ही छत्रसाल से हार चुका था। छत्रसाल को आते देखकर उसे अपनी जान की फिकर पड़ गई। उसने बीस हजार रुपए नकद देकर अपनी रैयत की रक्षा की। तहवरखाँ ने छत्रसाल को चौथ देना भी स्वीकार कर लिया।

१६—फिर छत्रसाल ने भिलसे के किलेदार को बुंदेलों की अधीनता स्वीकार करने और बुंदेलों को चौथ देने की प्रतिज्ञा करने के लिये लिखा। परंतु उसने छत्रसाल को कोई उत्तर न दिया, इसलिये छत्रसाल ने भिलसे के किले पर आक्रमण करके किले को खाली करा लिया और उस पर अपना अधिकार कर लिया।

१७—इसी समय ग्वालियर के सूबेदार ने छत्रसाल के आक्रमण का हाल दिल्ली दरबार में भेजा और बुंदेलों को चौथ देने से इनकार कर दिया। कालपी का किलेदार भी दिल्ली दरबार में पहुँचा। उसने बुंदेलों से कालपी के किले को वापिस ले लेने के लिये बादशाह से सहायता माँगी। यह हाल जब औरंगजेब ने सुना तब उसके क्रोध और आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने छत्रसाल के विरुद्ध अनवरखाँ नामक वीर सरदार को, बहुत बड़ी सेना के साथ, भेजने का निश्चय किया। अनवरखाँ बुंदेलों से युद्ध करने के लिये १२ हजार घोड़े, कई हजार पैदल, बहुत से हाथी, ऊँट और गोला बारूद का पूरा सामान लेकर चला। छत्रसाल उस समय भिलसे से लौट रहे थे। अनवरखाँ ने उन्हें मार्ग में ही रोकने का विचार किया। बादशाह की इतनी बड़ी सेना देखकर बुंदेले लोग तनिक भी न घबराए। उन्होंने अपनी सेना

को कई भागों में बाँटकर युद्ध करने का निश्चय किया। बुंदेलों का छोटा सा झुंड मुसलमान सेना से लड़ने आकर भाग जाता था और मुसलमान उसका पीछा करने लगते थे। इस प्रकार बुंदेले योद्धा मुसलमान सेना को ऐसे स्थान पर ले गए जहाँ चारों ओर ऊँची पहाड़ियाँ थीं जिन पर बुंदेले अपनी सेना लिए हुए उपस्थित थे। यहाँ पर बुंदेलों ने चारों ओर से मुसलमान सेना पर आक्रमण कर उस विशाल सेना का बिलकुल नाश कर दिया और मुगलों के प्रसिद्ध योधा और सेनापति अनवरखाँ को कैद कर लिया। उसने कैद से छुटकारा पाने के लिये सवा लाख रुपये बुंदेलों को दिए। यह हाल सुनने पर औरंगज़ेब को जो विस्मय हुआ उसका वर्णन करना असंभव है। वह क्रोध के मारे लाल हो गया। उसने भरे दरबार में अनवरखाँ की बे-इज्ज़ती की और उससे सरदारी की पदवी छीन ली।

अध्याय २१

मुगलों की हार

१—औरंगज़ेब बादशाह ने अपने सब दरबारियों को बुलाया और बुंदेलों से लड़ने के लिये सबसे अधिक योग्य सेनापति नियत करने का विचार किया। अभी तक जितने लोग बुंदेलों से लड़ने के लिये गए थे वे सब हार गए थे। अब मिरज़ा सदरुद्दीन नामक एक सरदार ने बुंदेलों को हराकर छत्रसाल को गिरफ्तार करने का बीड़ा उठाया। औरंगज़ेब ने इस सरदार का बड़ा सम्मान किया और इसने जितनी सेना माँगी उतनी साथ कर दी। मिरज़ा सदरुद्दीन चतुर और कूटनीतिज्ञ भी था। औरंगज़ेब ने इसे धामौनी का सूबे-

दार भी मुकर्रर कर दिया। धामौनी उस समय मुगलों के सूबों की राजधानी थी। सागर, दमोह और भोपाल का शासन इसी स्थान से होता था।[1]

गोंड लोगों से ओड़छे के राजा वीरसिंहदेव ने ले लिया था। जब जुझारसिंह गोंड राजाओं के साथ युद्ध करता मारा गया तब यह किला मुगलों ने ले लिया। सदरुद्दीन इसी किले का सूबेदार नियत किया गया था। सदरुद्दीन और छत्रसाल के युद्ध का वर्णन छत्रप्रकाश में लाल कवि ने निम्नलिखित किया है—

सदरुद्दीन को लालकवि ने सुतरदीन लिखा है।

"सुतरदीन त्यौं कुरनिस कीनी। तिन्हैं साह धामौनी दीनी॥ × × ×
त्यौं मिरजा धामौनी आए। बँदोबस्त कीनै मन भाए॥
सजी हजार तीस असवारी। दल में निसुदिन रहै तयारी॥ × × ×
इन समान उमराइ न कोई। को रन इन्हैं मुकाबिल होई॥ × + ×
माची मार दुहूँ दिस आरी। जनि जम दई तमकि करतारी॥
गिरे तुरक छत्ता के मारे। जोजन लौं धर पै धर डारे॥ × × ×

सुतरदीन कौ कूटि दल, लीनी चौथ चुकाय।
पहुँचे दल दरकूच ही, चित्रकूट कौ जाय॥ × × × × ×

आग लगाइ देस में दीनी। सुन वहलोल खान रिस कीनी॥
त्यौं दल सजि इलगा रन धायौ। मरद मयानौ जौ जग आयौ॥
नौ हजार बख्तरिया ताजे। देत पाइरै पाइ गराजे॥
धामौनी तै चढ़्यो मयानौ। बांधे सीस जूझ को बानौ॥
तीन द्यौस लौं लरो मयानो। चौथे दिन उठ कियो पयानो॥ × ×

खेत छाँड़ि सूवा चल्यौ, दिल में दहसत खाइ।
छत्रसाल के धाक तै, मच्यौ धमौनी जाइ॥ × × × × ×

छत्रसाल त्यौं करी तयारी। कुटरौ मारि जसोपुर जारी॥ × × ×
मौधा लूट महा मन भाए। उमड़ि कटक सिंहुड़ा पर धाए॥ × × ×

उदभट भीर [मदौंध में, जुरी ठान रन ठान।
उमड़ि दलन तासौं लग्यौ, छत्रसाल बलवान॥ × × × × ×
मारि मदौंध डाँड़ लै छाँड़्यौ। फिर धामौनी विग्रह माँड़्यौ॥"

२—मिरज़ा सदरुद्दीन ने चाहा कि छत्रसाल को दाम देकर मिला लें और औरंगज़ेब के अधीन रहने का वचन ले लें। इस उद्देश्य से मिरज़ा सदरुद्दीन ने छत्रसाल के पास दूत भेजा। इस दूत ने छत्रसाल के सामने मिरज़ा सदरुद्दीन की उदारता की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि मिरज़ा साहब औरंगज़ेब से कहकर आपके सब क़ुसूर माफ़ करा देंगे। इसके उत्तर में छत्रसाल ने दूत से कह दिया कि मिरज़ा सदरुद्दीन मुझसे यवनों की सत्ता स्वीकार कराने का व्यर्थ यत्न न करें; मैं कभी मुगलों के अधीन रहना पसंद न करूँगा। इसके सिवा छत्रसाल ने सदरुद्दीन से चौथ भी माँगी।

३—छत्रसाल ने कई बार मुगलों के प्रसिद्ध सेनापतियों को हरा दिया था, परंतु इस बार सदरुद्दीन से खुले मैदान युद्ध करना कठिन था। छत्रसाल के पास बहुत सा प्रदेश था और उनकी सेना राज्य के भिन्न भिन्न भागों में थी। सब सेना को ऐसे युद्ध के समय वे एक ही स्थान पर न ला सकते थे। इसलिये छत्रसाल ने सारी सेना को एक ही स्थान पर एकत्र कर लेना ठीक न समझा। मिरज़ा सदरुद्दीन ने अपनी असंख्य सेना लेकर छत्रसाल की सेना पर हमला किया परंतु वीर बुंदेलों ने धीरज न छोड़ा। यह युद्ध बहुत बड़ा हुआ और बुंदेलों के कई सरदार मारे गए। फिर भी बुंदेले वीरता से लड़ते रहे।

४—मिरजा सदरुद्दीन के चले जाने के पश्चात् छत्रसाल ने अपने जीते हुए प्रदेश में दौरा किया और सब स्थानों की राज्य-व्यवस्था देखी। जहाँ के जागीरदार छत्रसाल के अधिकार में थे उन जागीरदारों से नजराना इत्यादि वसूल किया। इसके बाद छत्रसाल चित्रकूट के तीर्थस्थान में जाने का विचार कर रहे थे कि खबर मिली कि चित्रकूट के समीप अब्दुल हमीदखाँ नामक एक मुसलमान सरदार हिंदू यात्रियों को कष्ट दे रहा है। यह समाचार पाते ही बलदिवान पाँच सौ सवार लेकर हमीदखाँ के पास पहुँचे। रात को उन्होंने हमीदखाँ को घेर लिया। हमीदखाँ प्राण बचाके भागा। उसका सब साज सामान बुंदेलों के हाथ लगा। फिर छत्रसाल चित्रकूट गए और वहाँ पर चार दिन रहे। यहाँ पर खबर लगी कि भागे हुए हमीदखाँ ने महोबे के जमींदारों को भड़काया है और जमींदार भी छत्रसाल के विरुद्ध हो गए हैं। महोबे के जमींदारों को अधिकार में करने के लिये और उन्हें अपने किए का दंड देने के लिये छत्रसाल अपनी सेना लेकर महोबे की ओर गए। बुंदेलों की फौज के आने का हाल सुनते ही वे जमींदार तो भाग गए परंतु उन जमींदारों को भड़कानेवाला हमीदखाँ, कुछ थोड़े पठानों को लेकर, बरहट्टा में लड़ने को तैयार हुआ। छत्रसाल के आज्ञानुसार कुँअरसेन धंधेरे ने हमीदखाँ और उसके साथियों को मार भगाया।

५—महोबे से छत्रसाल महाराज ने अपनी सेना दक्षिण की ओर भेजी। इस समय सागर जिले का कुछ भाग राजपूतों के अधिकार में था। ये राजपूत निहालसिंह राजपूत के वंश के थे। निहालसिंह ने अपना अधिकार इस ओर संवत् १०८० में जमाया था[१]। इसका पौत्र राजा पृथ्वीपति गढ़पहरा में राज्य करता

(१) इस वंश में उदानशाह राजा हुआ है। उसने वि० सं० १७१७ में

था और वह मुगलों की ओर से जागीरदार की हैसियत से रहता था। महाराज छत्रसाल ने विक्रम संवत् १७४८ में यह इलाका पृथ्वीपति से छीन लिया और गढ़पहरा ऊजड़ हो जाने से यहाँ के निवासी सागर में आकर रहने लगे[1]। फिर छत्रसाल ने देवगढ़ पर आक्रमण करके उसे भी अपने अधिकार में कर लिया। यहीं पर महाराज छत्रसाल को मालूम हुआ कि कालपी के समीप के स्थानों के जमींदार फिर से उठ खड़े हुए हैं, इससे कालपी की ओर फौज भेजी गई। छत्रसाल ने फौज लेकर कोंच कालपी आदि स्थान अपने अधिकार में कर लिए और फिर कोटरे पर आक्रमण किया। कोटरे में मुसलमानों की ओर से सैयद लतीफ नाम का किलेदार था। बुंदेलों का इससे खूब युद्ध हुआ और जब मुसलमानों के पास गोला बारूद न रहा तब उन्होंने छत्रसाल की अधीनता स्वीकार कर ली। एक लाख रुपए भी नजराने में दिए। औरंगजेब की सेना हर बार छत्रसाल से हारती थी परंतु औरंगजेब छत्रसाल को हराने का प्रयत्न न छोड़ता था। अब की बार खास दिल्ली के सूबेदार अब्दुल समद को छत्रसाल से लड़ने का हुक्म मिला। बादशाह औरंगजेब की आज्ञा पाते ही अब्दुल समद ने तीस हजार सवार और कई सौ पैदल सिपाहियों की सेना तैयार की, और वह बुंदेलखंड की ओर चला। इस विशाल सेना

सागर शहर बसाया था और सागर शहर के पास का परकोटा ग्राम भी इन्हीं का बसाया हुआ बताते हैं।

(१) गढ़पहरा वि० सं० १७२४ में जयपुर के राजा जयसिंह ने बुंदेलों से ले लिया और फिर से पृथ्वीपति को उसका राज्य दे दिया। पर थोड़े दिनों के बाद फुरवाई के नवाब दिलीरखाँ ने पृथ्वीपति को निकालकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। उनसे मराठों ने छीन लिया और मराठों ने राजा बिसाहरा को वहाँ का जागीरदार बनाया। इनके वंशज अब भी हैं। इन्हें बिसाहरा के सिवा और भी चार ग्राम माफी में लगे हैं।

का मुकाम मौदहा पर हुआ। छत्रसाल भी अपनी सेना लेकर लगभग दो कोस की दूरी पर पहुँचे। उन्होंने अपनी सेना के विभाग कर दिए। एक पर स्वयं छत्रसाल, दूसरे पर बलदिवान, तीसरे पर कुँवरसेन धंधेरे और चौथे पर अंगदराय नियत हुए। इस समय युद्ध खुले मैदान में हुआ। दोनों ओर से सेना बढ़ी और युद्ध के लिये आ जुटी। इस युद्ध में बादशाही फौज की सारी नजर छत्रसाल के ऊपर ही थी। एक समय देवकरण नामक बादशाही सरदार ने छत्रसाल को घेर लिया और छत्रसाल का घोड़ा भी घायल हो गया। परंतु छत्रसाल वीरता से लड़ते रहे। यह खबर पाकर अंगदराय अचानक अपनी सेना लेकर आ पहुँचे और मुगल सेना को भगा दिया। युद्ध एक ही दिन हुआ और उसी दिन युद्ध का फैसला भी हो गयो। मुगल सेना अच्छी तरह से हार गई। अंगदराय ने मुसलमानों का तोपखाना ले लिया। उसमें २१ तोपें बुंदेलों को मिलीं। अब्दुल समद हार मानकर पीछे हट गया और छत्रसाल कालिंजर होते हुए पन्ना आए।

६—इस महायुद्ध में छत्रसाल घायल भी हो गए थे। इस कारण जब तक छत्रसाल के घाव अच्छे न हुए तब तक वे अपनी सेना को लिए पन्ना में रहे, और कहीं पर आक्रमण न किया। दो मास के बाद कोठी सुहावल के जागीरदार हरिलाल गजसिंह ने बुंदेलों के विरुद्ध तैयारियाँ की थीं इस कारण छत्रसाल की सेना ने उस पर धावा किया और हरिलाल ने छत्रसाल के अधीन रहना स्वीकार कर लिया तथा चौथ देने का वचन दिया।

७—भिलसे के किले को छत्रसाल ने ले लिया था परंतु छत्रसाल के वापिस आने पर भिलसे में फिर मुगलों का अधिकार हो गया था। इसलिये छत्रसाल अपनी सेना लेकर भिलसे पर अपना अधिकार करने के लिये चले। ज्योंही छत्रसाल अपनी सेना लेकर

भिलसे की ओर चले त्योंही इस बात की खबर धामौनी के सरदार बहलूलखाँ को लग गई। वह ९००० काबुली फौज लेकर भिलसे की ओर छत्रसाल से लड़ने के लिये चला। छत्रसाल से बहलूल के साथ गहरा युद्ध हुआ। इस युद्ध में बहलूल की सहायता करनेवाला जगतसिंह नाम का एक जागीरदार भी मारा गया। बहलूल फिर पीछे हट गया परंतु छत्रसाल की सेना ने उसका पीछा न छोड़ा। छत्रसाल बहलूलखाँ का पीछा करते चले आए और शाहगढ़ का किला ले लिया। शाहगढ़ का किला ले लेने के पश्चात् उस किले में छत्रसाल ने अपना थानेदार नियत कर दिया और फिर धामौनी पर आक्रमण किया। इस समय बहलूलखाँ खूब लड़ा, पर उसे हारना पड़ा। वह युद्ध में मारा गया। छत्रसाल ने धामौनी पर भी अधिकार कर लिया।

८—धामौनी से वीर छत्रसाल मऊ को चले और बलदिवान ने कोटरे पर अपना अधिकार कर लिया। फिर वे महोबे पहुँचे। महोबे और बाँदे में अपना प्रबंध देखते हुए वे सेहुँड़ा पहुँचे। उस समय सेहुँड़ा दलेलखाँ के सूबे में था और दलेलखाँ की ओर से उसका नायब मुरादखाँ इस प्रांत का प्रबंध देखता था। छत्रसाल ने मुरादखाँ की सेना से युद्ध किया। सेना हार गई और मुरादखाँ मारा गया। इस बात का पता लगने पर दलेलखाँ को बहुत फिकर हुई। वह चंपतराय का मित्र था और चंपतराय और दलेलखाँ के बीच पागबदलौअल भी हुई थी। इसी नाते से दलेलखाँ चंपतराय के भाई होने का और छत्रसाल के काका होने का दावा करता था। दलेलखाँ ने छत्रसाल से लड़ने में कोई लाभ न देख छत्रसाल को बड़ी नम्रता से, अपना पुराना नाता बताते हुए, पत्र लिखा और सेहुँड़ा का प्रांत छत्रसाल से खाली

माँगा। छत्रसाल ने उसकी नम्रता देखकर उदारता से वह प्रांत वापिस कर दिया।

९—बलदिवान छत्रसाल के आज्ञानुसार सेहुँड़े को खाली करके वापिस आ रहे थे कि रास्ते में रात को कई जागीरदारों ने अपनी सेना लेकर उनकी सेना पर छापा मारा। छापा मारने के बाद ये जागीरदार मरौंद के किले में जा छिपे। बलदिवान ने इस किले पर आक्रमण कर दिया और उन सब जागीरदारों को मारकर उनकी सेना का नाश कर दिया। इस युद्ध में बलदिवान का एक प्रिय सरदार राममन दौआ मारा गया।

१०—औरंगजेब ने बुंदेलखंड जीतने के लिये फिर दूसरा सेनापति शाहकुली नाम का भेजा। शाहकुली बहुत बड़ी सेना लेकर बुंदेलखंड में घुसा और थुरहट, कोटरा, जलालपुर इत्यादि छत्रसाल के फतेह किए हुए स्थान लेता हुआ नौली के मुकाम पर ठहरा। यह खबर पाते ही छत्रसाल मऊ से बलदिवान और अपनी सारी सेना को साथ लेकर शाहकुली से युद्ध करने के लिये पहुँचे। इसी समय असमदखाँ नामक एक दूसरा मुसलमान सरदार भी, शाहकुली की सहायता के लिये, पहुँच गया और इन दोनों की सेना ने छत्रसाल और उनकी सेना को घेर लिया। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ और छत्रसाल की सारी सेना छिन्न-भिन्न हो गई। छत्रसाल को इस समय पीछे भी हटना पड़ा। परंतु उन्होंने सब बुंदेलों को अपने वीररसपूरित शब्दों से उत्तेजना दी और उन योद्धाओं में फिर से युद्ध करने का उत्साह आ गया। बुंदेले लोग फिर हिम्मत बाँधकर लड़े और घनघोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में बुंदेलों की विजय हुई। असमदखाँ कैद कर लिया गया। छत्रसाल ने दंड लेकर उसे छोड़ दिया। शाहकुली इस समय अपनी सेना लेकर अलग रह गया था। उसने दिल्ली दरबार से

और सेना अपनी सहायता के लिये मँगाई। दिल्ली से बादशाह के आज्ञानुसार नंदराम नाम का एक सरदार ८०० सवार और सेना लेकर पहुँचा। शाहकुली ने इस सेना की सहायता से फिर मऊ पर आक्रमण किया। यह युद्ध उसी स्थान पर हुआ जहाँ आजकल नवगाँव की छावनी है। यहाँ पर फिर छत्रसाल ने शाहकुली की सेना को अच्छी तरह से हरा दिया। शाहकुली यहाँ से भागकर अलीपुर के निकट ठहरा था। वहाँ पर छत्रसाल ने इसे घेरकर कैद कर लिया और जब इसने बहुत सा दंड दिया तब छोड़ा।

११—शाहकुली के पराभव के पश्चात् दिल्ली दरबार में कुछ ऐसे फेरफार हुए जिससे छत्रसाल को मुगलों की ओर से कोई कष्ट न हुआ और दिल्ली दरबार छत्रसाल से प्रसन्न हो गया। औरंगजेब अहमदनगर में विक्रम संवत् १७६४ में मरा। उसके तीन लड़के थे जिनके नाम मुअज्जम, आजमशाह और कामबख्श थे। इनमें से बड़ा लड़का मुअज्जम काबुल में था इस कारण दूसरा लड़का आजमशाह बादशाह बन गया और उसने कामबख्श को, दक्षिण का राज्य देने का वचन देके, मिला लिया। परंतु राजगद्दी का असली मालिक औरंगजेब का बड़ा लड़का मुअज्जम था, इस कारण वह काबुल से बहुत बड़ी सेना लेकर भारतवर्ष में पहुँचा। औरंगजेब के स्वभाव से कई मुसलमान सरदार नाराज थे और औरंगजेब हिंदुओं को कष्ट देता था इससे हिंदू लोग भी नाराज हो गए थे। औरंगजेब के मरते ही राज्य-शासन शिथिल हो गया और सूबेदार लोग स्वतंत्र बनने का प्रयत्न करने लगे। ऐसे समय में मुअज्जम ने देशी राजाओं को मिलाकर उनसे सहायता लेने में ही अपना भला समझा। उसने शाहू महाराज को कैद से छुटकारा दे दिया। शाहू महाराज शिवाजी महाराज के नाती थे। इन्हें औरंगजेब ने दिल्ली में कैद कर

लिया था। यही शाहू महाराज महाराष्ट्र राज्य के अधिकारी थे। शाहू महाराज को छोड़ देने के पश्चात् मुअज्जम ने अपने वजीर खानखाना को, छत्रसाल से मित्रता कर लेने के लिये, भेजा। खानखाना ने छत्रसाल की वीरता की तारीफ की और छत्रसाल से लोहगढ़ फतेह करने के लिये सहायता माँगी। छत्रसाल ने सहायता दी और वि० सं० १७६८ में लोहगढ़ का किला जीतकर दे दिया। इस पर मुअज्जम बहुत प्रसन्न हुआ। वह छत्रसाल की स्वतंत्रता स्वीकार करके उनके साथ बराबरी का बर्ताव करने लगा। मुअज्जम ने छत्रसाल को मनसबदारी देने का वचन दिया परंतु छत्रसाल ने मुगलों का मनसबदार बनना स्वीकार न किया और स्वाभिमान के साथ कह दिया कि हम स्वतंत्र हैं और हमारे पास बहुत सा देश है, हम किसी दूसरे शासक के अधीन मनसबदार बनना पसंद नहीं करते। मुअज्जम ने अपना नाम अब बहादुरशाह रख लिया था। बुंदेलखंड को इस प्रकार स्वतंत्र करने के पश्चात् छत्रसाल पन्ना में आकर राज्य करने लगे।

अध्याय २२

मराठों से सहायता

१—औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली दरबार में जो कलह हुई उससे बादशाहत दिन पर दिन कमजोर होती गई। बहादुरशाह, जो औरंगजेब के पश्चात् बादशाह हुआ, योग्य शासक न था। उसने अपनी दशा सुरक्षित करने के लिये महाराज शाहू से मित्रता की और बुंदेलखंड की स्वतंत्रता स्वीकार की। इससे बुंदेले और मराठे दोनों ही स्वतंत्र हो गए। जिस प्रकार छत्रसाल की राज-

धानी पन्ना में थी उसी प्रकार शाहू की राजधानी सतारा में थी। इन दोनों का राज्य प्रजा के लिये सुखकर था और ये दोनों हिंदूधर्म के रक्षक थे। इसलिये इन दोनों की कीर्ति सारे हिंदू संसार में फैल गई थी[१]। जिस प्रकार बुंदेलखंड में छत्रसाल ने हिंदुओं की भलाई का प्रयत्न किया उसी प्रकार दक्षिण में शाहू ने किया।

२—बहादुरशाह विक्रम संवत् १७४६ में मरा। उसके पश्चात् फर्रुखसियर दिल्ली की बादशाहत का अधिकारी हुआ। यह नाम मात्र के लिये ही बादशाह था, राज्य का सब कारबार अब्दुल्ला और हुसैनअली चलाते थे। ये दोनों भाई भाई थे और जाति के सैयद थे। दिल्ली की बादशाहत का सब कार्य करनेवाले ये ही दो मनुष्य थे। इन दोनों ने दक्षिण के सूबेदार दाऊदखाँ को वहाँ से हटाकर उस स्थान पर कमरुद्दीन (उर्फ चिनकुलीचखाँ) को नियुक्त किया। इस सूबेदार ने स्वतंत्र होने का प्रयत्न करना आरंभ कर दिया। दिल्ली दरबार में फर्रुखसियर से सैयद भाइयों की बढ़ती हुई शक्ति न देखी गई। इसलिये बादशाह ने इनकी शक्ति को कम करने के लिये इन्हें दिल्ली दरबार से हटा देना ही ठीक समझा। सैयद हुसैनअली को दक्षिण का

---

(१) भूषण कवि ने इन दोनों ही की कीर्ति का वर्णन निम्न-लिखित कवित्त में किया है—

"राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो
गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताप होत
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को॥
साज सजि गज तुरी पैदरि कतार दीन्हें
भूषन भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को।
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥"

सूबेदार नियत किया और कमरुद्दीन को दक्षिण से अलग करके मुरादाबाद का सूबेदार बनाया। गुजरात में दाऊदखाँ सूबेदार था। यह सैयद भाइयों के हुक्म से दक्षिण के सूबे से हटाया गया था और इसी की जगह कमरुद्दीन की नियुक्ति हुई थी। इस कारण दाऊदखाँ सैयद भाइयों का शत्रु हो गया था। बादशाह ने दाऊदखाँ को यह हुक्म भेजा कि अगर तुम मराठों से मेल करके सैयद हुसैनअली का नाश कर दो तो तुम्हें फिर से दक्षिण की सूबेदारी दे दी जावे। यह हुसैनअली से बदला लेना ही चाहता था, अतः वि० सं० १७७३ में इसने हुसैनअली पर आक्रमण किया। इस युद्ध में दाऊदखाँ हार गया और वह मारा गया। मुसलमानों के सूबेदारों में इस प्रकार का झगड़ा देख मराठों ने मुसलमानों के अधिकार में से देश जीत लेने का उत्तम अवसर देखा। इस समय मराठों में अनेक वीर सेनापति थे। खंडेराव दाभाड़े, कंठाजी कदम और परसोजी भोंसले इत्यादि मराठे सरदारों ने मुगल राज्य पर धावा मारकर देश जीतना आरंभ कर दिया। मराठों की सहायता के बिना अपना राज्य कायम रखना कठिन देख मुसलमान सूबेदारों ने मराठों से मित्रता करने का प्रयत्न करना आरंभ किया। इस उद्देश्य से दक्षिण के सूबेदार सैयद हुसैनअली ने मराठों से वि० सं० १७७३ ही में संधि कर ली और उसने दक्षिण के छः जिले और तंजोर, त्रिचनापल्ली और मैसूर इन राज्यों की चौथ मराठों को देना स्वीकार किया और मराठों ने बादशाह को १० लाख रुपए वार्षिक देना स्वीकार किया। फर्रुखसियर बादशाह सैयद भाइयों के विरुद्ध था, इस कारण उसने सैयद हुसैनअली की की हुई शर्तें मंजूर न कीं। बादशाह ने कमरुद्दीन[1] (मुरादाबाद के सूबेदार), सादत खाँ और जयसिंह के

(१) यही कमरुद्दीन बाद में निजामुल्मुल्क कहलाया।

पास इन शर्तों को नामंजूर करने का हुक्म भेज दिया। सैयद हुसैनअली ने इस समय मराठों की सहायता और सेना लेकर इस सेना के जोर से दिल्लीपति से शर्तें कबूल कराने और दिल्ली में अपना प्रभाव जमाने का विचार बाँधा और मराठों ने उसकी सहायता के लिये बालाजी विश्वनाथ को एक विशाल सेना के साथ भेजा। बालाजी विश्वनाथ सैयद हुसैनअली के साथ दिल्ली गए। मराठों के साथ फर्रुखसियर ने वि० सं० १७७६ में युद्ध किया और कैद होकर दो मास के पश्चात् वह मारा गया और सैयद हुसैनअली ने दिल्ली के तख्त पर रफीउद्दाराजात और रफीउद्दौला नामक बालकों को बैठाया परंतु ये दोनों ६ मास के भीतर मर गए इससे मुअज्जिम का नाती रोशनअख्तर नाम का बादशाह बनाया गया। रोशन-अख्तर ने अपना नाम मुहम्मदशाह रखा। मुहम्मदशाह के समय में फिर सब कारबार सैयद भाइयों के हाथ में आ गया। दिल्ली के इस युद्ध में मराठों की बहुत सी सेना मारी गई परंतु सैयद भाइयों ने मराठों का उपकार मानकर वि० सं० १७७७ में उन्हें चौथ और सरदेशमुखी देने की सनद बादशाह से दिलवाई और देवराव हिंगणे नाम का एक होशियार वकील मराठों की ओर से दिल्ली दरबार में रखा। इस प्रकार अपना काम साधकर बालाजी विश्वनाथ दक्षिण में आए परंतु कुछ दिनों के पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई। बालाजी विश्वनाथ के पश्चात् उनके पुत्र बाजीराव को शाहू महाराज ने पेशवा नियत किया।

३—बाजीराव पेशवा अपने पिता से अधिक पराक्रमी हुआ। इसने सेंधिया, होलकर, पँवार, गायकवाड़, जाधव इत्यादि मराठे सरदारों की सहायता से गुजरात, खानदेश और मालवा प्रांतों पर चढ़ाई करके वहाँ से मुसलमानी सत्ता उखाड़ना आरंभ कर दिया।

४—सैयद भाइयों को मुहम्मदखाँ बंगश नाम के एक मुसलमान सरदार ने बहुत सहायता दी थी। इसलिये सैयद भाइयों ने प्रसन्न

होकर उसे नवाब की पदवी देकर बुंदेलखंड के एरछ, कौंच, कालपी, सेहुँड़ा, मौदहा, सीपरी और जालौन इन परगनों का सूबेदार बनाया था। इन परगनों पर मुहम्मदखाँ बंगश की ओर से दलेलखाँ, अहमदखाँ, पीरखाँ और सुजानखाँ नियुक्त किए गए थे। फर्रुख-सियर के समय में दिल्ली दरबार में जो झगड़े हुए उनमें मुहम्मदखाँ बंगश ने भी स्वतंत्र हो जाने की बात सोची। दिल्ली में सैयद भाइयों में और बादशाह मुहम्मदशाह में अनबन हो गई थी। मुहम्मदखाँ बंगश ने बादशाह मुहम्मदशाह को सहायता दी थी इस कारण बादशाह ने मुहम्मदखाँ बंगश को ७००० सवारों का मनसबदार बनाया और उसे सात लाख रुपए इनाम में दिए थे। विक्रम संवत् १७७८ में मुहम्मदखाँ बंगश इलाहाबाद का सूबेदार नियत किया गया। मुहम्मदखाँ बंगश ने आसपास के कई राजाओं को अपने अधिकार में कर लिया था। वह बड़ा योग्य सेनापति था। पीरखाँ मुहम्मदखाँ बंगश की ओर से कालपी का सरदार था। राजा छत्रसाल ने पीरखाँ को कालपी से निकाल दिया और उसकी बनवाई मसजिदें तुड़वा दीं। यह बात मुहम्मदखाँ बंगश से न सही गई। वह जिन परगनों का सूबेदार बनाया गया था उनमें से कई छत्रसाल महाराज के अधिकार में थे। इस कारण मुहम्मदखाँ बंगश ने कई बार उन्हें बुंदेलों से ले लेने के प्रयत्न किए, परंतु वे सब निष्फल हुए। जब बंगश को कालपी का हाल मालूम हुआ तब उससे न रहा गया। उसने अपने सब नायब सूबेदारों को फौज इकट्ठी करने और बुंदेलखंड पर आक्रमण करने का हुक्म दिया। मुहम्मदखाँ बंगश की सहायता के लिये दलेलखाँ नामक एक शूर सरदार था। दलेलखाँ जाति का हिंदू राठौर वंश का क्षत्रिय था। इसको मुहम्मदखाँ बंगश ने मुसलमान बना लिया था। इस बात पर महाराज छत्रसाल को खेद हुआ था और वे चाहते थे कि दलेल-

खाँ से न लड़ना पड़े। इसलिये राजा छत्रसाल ने दलेलखाँ को एक पत्र भी लिखा परंतु दलेलखाँ ने मुसलमानों का पक्ष छोड़कर राजा छत्रसाल का पक्ष लेना स्वीकार न किया[1]। मुहम्मदखाँ बंगश ने

---

(१) बाँदा जिले में एक कहावत है कि राजा छत्रसाल ने निम्न-लिखित पद्य दलेलखाँ को लिख भेजे थे—

हिरदेसाह से नहिं छली, कीरत से न कपूत।
बेटा कहिए दलेल से बंगशवंत सपूत॥
भाई मुहम्मदखान ने डारो मोरी गोद।
तब से तुम बेटा मेरे जगत समान सुबोध॥
मोहन ठारी दे गए हिरदे रहे लुकाय।
तुमहुँ बँनावा देहु तो मैं जगते लेहुँ समझाय॥

इसका उत्तर, कहा जाता है कि, दलेलखाँ ने यह दिया—

तुम राजा महाराज हो सब राजन में छाज।
अब दलेल कैसे हटै दुहूँ दीन की लाज॥

राजा छत्रसाल के पत्र में उनके पुत्रों की बुराइयाँ लिखी हैं, परंतु इनका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। इस कारण ये पद्य विश्वास के योग्य नहीं। परंतु दलेलखाँ की वीरता प्रसिद्ध है। उसके विषय में बुंदेलखंड में निम्न-लिखित पद्य प्रचलित हैं—

गज भर छाती दलेल की बीस बिसे को ज्वान।
जोत में जोत समा गई पायो पद निर्वान॥
सारी सरन सकेल के मरन कियो इक ठौर।
दिल्ली से दलेलखाँ चलो खड्ग गह बाँहि॥
जगतराज महराज को मार मौदहा बीच।
× × × × × × × × × ×
भयो युद्ध पट्टान को दही रक्त की कीच॥
तीन दिवस पट्टान ने कियो बड़ा घमसान।
जगतराज कंपित भयो पीठ भगो मैदान॥
चौथे दिन के पहर को घेर बुँदेलन लीन।
तब दलेल मुरछा गिरे खड्ग न छाँड़े दीन॥

युद्ध की बड़ी तैयारी की। उसने दिल्ली दरबार से सहायता माँगी। दिल्ली के अमीर-उल-उमरा खाँ दौरान ने बहुत सी सेना बंगश की सहायता के लिये भेजी। इस सब सेना को एकत्र करके बंगश ने बुंदेलखंड पर आक्रमण करना आरंभ कर दिया। बाँदा और सेहुँड़ा पर उसने कई धावे किए। परंतु इसी समय मराठों ने ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया जिससे मुहम्मदखाँ बंगश को ग्वालियर की ओर जाना पड़ा। जब बंगश ग्वालियर की ओर गया तब राजा छत्रसाल ने बंगश के प्रदेशों पर आक्रमण कर दिए। इसलिये बंगश फिर इलाहाबाद को लौट आया। उसे सेना के बंदोबस्त के लिये दिल्ली दरबार से दो लाख रुपए माहवार भी मिला करते थे। इस धन की सहायता से बंगश ने सैनिकों की तनखाहें भी बढ़ा दीं[1]। फिर अपने पुत्र आबादखाँ के साथ एक बड़ी सेना देकर उसे यमुना के दक्षिण में भेजा।

५—इस समय मुहम्मदखाँ बंगश को कई बुंदेलों ने भी सहायता दी। इस समय ओड़छे में हरदौल के प्रपौत्र उदोतसिंह का राज्य था। यह वि० सं० १७४६ में गोद आकर गद्दी पर बैठा था। इसने मुगलों के अधीन रहना स्वीकार कर लिया था और इस समय वह छत्रसाल के विरुद्ध मुसलमानों को सहायता दे रहा था। सेहुँड़ा[2] में इस समय पृथ्वीसिंह नाम के जागीरदार थे। ये भी बुंदेले थे और मुगलों के अधीन थे। इन्होंने भी मुसलमानों को

---

(१) उस समय बंगश की सेना में सिपाहियों को १७) रुपए माहवार और जमादारों को २०) माहवार मिलते थे। उस समय अनाज सस्ता था, इसलिये वही तनखाह आजकल के कई गुने अधिक रुपयों के बराबर होगी।

(२) यह बहुत प्राचीन स्थान है। दतिया से ३६ मील काली सिंध के किनारे पर बसा है।

इस समय सहायता दी। दतिया वास्तव में ओड़छे राज्य की एक बड़ी जागीर थी। परंतु जब से ओड़छे के राजा मुगलों के अधीन हुए तब से यह जागीर भी मुगल राज्य की जागीर हो गई। इस समय दतिया के जागीरदार राय रामचंद्र थे। इन्होंने भी बुंदेलों के विरुद्ध मुसलमानों को सहायता दी। चंदेरी के जागीरदार दुर्जन-सिंह भी मुसलमानों की सहायता कर रहे थे। मौदहा के जागीर-दार जयसिंह ने भी छत्रसाल के विरुद्ध लड़ना स्वीकार कर लिया था। खेद की बात है कि ऐसे समय में इन सबने अपने जाति और धर्म-बंधुओं का साथ न देकर मुहम्मदखाँ बंगश को सहायता देना उचित समझा। इन हिंदू राजाओं के सिवाय इस समय दिल्ली की बादशाहत की सारी शक्ति मुहम्मदखाँ बंगश की सहायता के लिये लगा दी गई थी। दिल्ली के बादशाह के प्रसिद्ध सरदार सैयद नजीमुद्दीन अलीखाँ, साबितखाँ, जाँनिसारखाँ, वजारतअलीखाँ इत्यादि अपनी अपनी सेना लेकर मुहम्मदखाँ बंगश की सहायता को तत्पर थे[1]।

---

(१) इस समय मालवे के सूबेदार ने छत्रसाल को मुगलों के अधीन रहना स्वीकार करने का संदेशा भेजा था। उसका उत्तर छत्रसाल ने बहुत उत्तम दिया। इस उत्तर का वर्णन एक कवि ने इस प्रकार किया है—

"देवगढ़ देश नाहीं दक्खिन नरेश नाहीं,
 चाँदाबाद नहीं जहाँ घने महल पाइहौ।
सौदागर खान नाहीं देवन को थान नाहीं,
 जहाँ तुम पाहुने लैं बहुतक टट धाइहौ॥
मैं तो तुम चंपत को युद्ध बीच लैहौं हाथ,
 यहीं जिय जान उलटी चाँप दे पठाइयौ।
लिखके परवाना महाराजा छत्रसाल जू ने,
 भौरन के धोके यहाँ कबहूँ न आइयो॥"

महाराज छत्रसाल की उन्नति देखकर कई बुंदेले प्रसन्न न होकर और रहटे

६—यह समय बुंदेलखंड के लिये सचमुच बड़े ही संकट का था। बुंदेलों के विरुद्ध केवल सारा यवन दल ही नहीं किंतु कई बुंदेले भी अपनी सेनाएँ लेकर तैयार थे। छत्रसाल महाराज की वय अधिक हो गई थी परंतु उनकी धीरता और वीरता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। इन मुगलों की प्रचंड सेना और बुंदेलों का छत्रसाल के विरुद्ध हो जाना छत्रसाल के संकल्प को और दृढ़ करने में सहायक हुआ। राजा छत्रसाल के पुत्र भी वीर और पराक्रमी थे। वे अपने पिता के अनुसार यवनों से बुंदेलखंड को मुक्त करने का प्रण कर चुके थे। अपने पुत्रों की सहायता से छत्रसाल महाराज ने मुगलों से युद्ध करने की तैयारी कर ली।

७—मुहम्मदखाँ बंगश ने अपनी असंख्य सेना लेकर बुंदेलखंड पर आक्रमण कर दिया। बुंदेलों और मुसलमानों की सेना से कई लड़ाइयाँ हुईं। राजा छत्रसाल के पुत्रों ने युद्ध में वीरता दिखलाई। परंतु कई बार बुंदेलों की सेना को पीछे भी हटना पड़ा। पर बुंदेलों ने कभी भी हिम्मत न हारी और लगातार मुसलमानों से एक वर्ष तक लड़ते रहे। मुहम्मदखाँ बंगश के पास बहुत सा धन था। युद्ध के समय में सेना के लिये वह सैनिकों को भरती करता जाता था और मुगल राज्य के अन्य प्रांतों से खाने-पीने का सामान मँगवाता जाता था। बुंदेलों ने इस समय गोंडवाने के जागीरदारों से सहायता माँगी और उन लोगों ने कुछ सहायता भी

हृदय में डाह करते थे। ओड़छेवालों ने ताना देकर छत्रसाल को लिखा था कि "ओड़छे का अधिराज्य दतिया की राई, अपने मुँह छत्रसाल बने धना वाई।"

छत्रसाल महाराज स्वयं कवि थे। उन्होंने इसका उत्तर निम्नलिखित दिया—
"सुदामा तन हेरे तब रंक हू तें राव कीनो, विदुर तन हेरे तब राव कियो चेरे तें।
कुबजा तन हेरे तब सुंदर सरूप दियो, द्रौपदी तन हेरे तब चीर बाढ़ो टेरे तें॥
कहत छत्रसाल प्रहलाद की प्रतिज्ञा राखी, हिरनाकुश मारो नेक नजरहु के फेरे तें।
एरे गुर ज्ञानी अभिमानी भए होत कहा, नामी नर होत गरुड़गामी के हेरे तें॥"

दी। इनसे कुछ सहायता लेकर और बुंदेलों की सारी सेना एकत्र करके बुंदेलों ने जैतपुर के दक्षिण में मुगलों से एक बड़ी लड़ाई की। इस युद्ध में बुंदेलों ने अपनी वीरता का पूरा परिचय दिया और कई बुंदेले इस युद्ध में लड़ते हुए मारे गए। इस युद्ध के समय राजा छत्रसाल औ मुहम्मदखाँ वंगश के हाथियों का सामना हो गया और मुहम्मदखाँ ने अचानक अपनी बरछी फेंककर छत्रसाल को मारी। उस बरछी के घाव से राजा छत्रसाल मूर्च्छित हो गए। राजा छत्रसाल के मूर्च्छित होते ही बुंदेले लोग हताश हो गए और महावत राजा छत्रसाल को सुरक्षित स्थान में ले गया। इस युद्ध में इस प्रकार बुंदेलों को पीछे हटना पड़ा।

८—राजा छत्रसाल मूर्च्छा से जागते ही अपने महावत से समरभूमि से अलग लाने के कारण क्रुद्ध हुए और उन्होंने उसे तुरंत समरभूमि में ले चलने का हुक्म दिया। परंतु राजा छत्रसाल के घाव गहरे होने से उनके मंत्रियों ने समझाया और राजा छत्रसाल को मानना पड़ा।

९—इस प्रकार कई युद्ध बुंदेलों ने यवनों से किए। मुसलमानों का जोर बढ़ता गया और बुंदेलों को भय लगने लगा। महाराज छत्रसाल का उद्देश्य हिंदूधर्म की रक्षा करना और भारतवर्ष को यवन-सत्ता से मुक्त करना था। इस कार्य के लिये वे किसी भी स्वधर्माभिमानी हिंदू से सहायता लेने को तत्पर थे। जिस प्रकार बुंदेलखंड में हिंदूधर्म के रक्षक वीर छत्रसाल थे उसी प्रकार दक्षिण में मराठे भी यवन सत्ता को दक्षिण से उठा देने का प्रयत्न कर रहे थे। इस संकट के समय महाराज छत्रसाल ने मराठों की ही सहायता लेने का निश्चय किया। उस समय मराठों में बाजीराव पेशवा ही नायक थे। इनसे इनको ही छत्रसाल ने एक पत्र

लिखा। बाजीराव पेशवा ने बुंदेलखंड को ऐसे धर्म-संकट के समय सहायता देना स्वीकार कर लिया[1]।

१०—बाजीराव पेशवा शाहू महाराज से अनुमति लेकर अपनी सेना के साथ बुंदेलखंड में छत्रसाल महाराज की सहायता को पहुँचे। मराठों ने विक्रम संवत् १७८६ में मालवे में प्रवेश किया। मालवे के सूबेदार को हराते हुए बाजीराव पेशवा बाईस दिनों में बुंदेलखंड पहुँचे। मुहम्मदखाँ बंगश ने कई लड़ाइयों में बुंदेलों को हरा दिया था, इससे उसे बहुत अभिमान हो गया था। उसने अपनी कुछ फौज इलाहाबाद भेज दी थी और कुछ फौज को लेकर वह बुंदेलखंड के कुछ भाग पर अधिकार किए बैठा था। उसे मराठों के आक्रमण का हाल मालूम हो गया परंतु तिस पर भी उसने उसकी कुछ बड़ी फिकर न की। मराठों के आने का हाल सुनते ही कई हिंदू राजा लोग मुसलमानों का साथ छोड़कर अलग हो गए। परंतु ओड़छे के राजा का छोटा भाई लक्ष्मणसिंह और मौदहा का जागीरदार जयसिंह मुसलमानों की सहायता करते ही रहे। मुहम्मदखाँ बंगश के पास बहुत सेना न थी, इसलिये उसने सेना और सामान मँगवाया परंतु वह समय पर न पहुँच सका। मराठों ने अपनी सेना की बहुत उत्तम व्यवस्था की थी। मराठों के सरदार विट्ठल शिवदेव चिंचूरकर और मल्हारराव होल्कर अपनी अपनी सेना का विभाग लिए भिन्न भिन्न स्थानों पर नियत थे। यह युद्ध वि० सं० १७८७ में जैतपुर के समीप ही हुआ।

---

(१) महाराजा छत्रसाल ने बाजीराव को पत्र दोहों में लिखा था। उन दोहों में से निम्न-लिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

जो गति भई गजेंद्र की, सो गति पहुँची आज।
बाजी जात बुँदेल की, राखो बाजी लाज॥

बाजीराव का हृदय इस पत्र को पढ़ने से द्रवित हो गया और उन्होंने राजा छत्रसाल को अपनी बड़ी सेना लेकर इस समय उचित सहायता दी।

जैतपुर का किला बंगश ने अपने अधिकार में कर लिया था। मराठों से युद्ध इसी स्थान के निकट हुआ। बुंदेलों को मराठों की सहायता से बहुत उत्तेजना मिली और ये लोग बड़ी वीरता से लड़े। इसमें छत्रसाल के पुत्रों ने भी बड़ी वीरता दिखाई। मराठों ने अपनी सेना के कई विभाग करके कई ओर से मुसलमानों पर आक्रमण किया और मुसलमानों की सेना को बहुत हानि पहुँचाई। चौथे दिन मुहम्मदखाँ बंगश ने अचानक मराठों की सेना पर आक्रमण किया परंतु मराठे लोग इस समय एक पहाड़ी के निकट छिप गए और ज्योंही मुसलमान सेना वापिस हुई त्योंही मराठों ने उस पर आक्रमण करके उस सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। इस प्रकार कई दिनों तक युद्ध होता रहा। मराठों ने किला घेरकर मुसलमानों की रसद बंद कर दी। यह दशा होते हुए भी मुसलमान दो मास तक किले में रहे आए और मराठों से बराबर लड़ते रहे। प्रत्येक बार मुसलमान सेना बलहीन होती गई। मुहम्मदखाँ बंगश का पुत्र कायमखाँ अपनी सेना लेकर सहायता के लिये आ पहुँचा। इस समय बुंदेले अजनर के समीप पहुँचे और उस ओर मुहम्मदखाँ बंगश की जो सेना बढ़ी थी उसे हराकर जैतपुर के किले की ओर भगा दिया। मराठों ने जाकर कायमखाँ से युद्ध किया और उसे वहाँ पर हराकर भगा दिया। फिर मराठे और बुंदेले दोनों ही जैतपुर के किले को मुसलमानों से ले लेने के लिये तत्पर हो गए और दोनों ने किले के ऊपर आक्रमण करना आरंभ कर दिया। मुसलमान लोग जैतपुर के किले के भीतर से ही गोली चला रहे थे। जब किले के भीतर का अनाज-पानी खर्च हो गया तब किले के भीतर के मुसलमानों ने सेना के गाय, बैल और ऊँट मार मारकर खाना आरंभ कर दिया। अपनी जान बचाने के लिये जिन मुसलमानों ने अपने हथियार छोड़कर मराठों से अभयदान माँगा उन्हें बाजीराव

पेशवा ने क्षमा प्रदान करके छोड़ दिया। इसी समय कुछ थोड़े से पठानों की सहायता से मुहम्मदखाँ बंगश जैतपुर का किला छोड़कर भाग गया और मराठों और बुंदेलों ने उस किले पर अधिकार कर लिया। फिर वह किला छत्रसाल महाराज के अधिकार में रहा[1]। इस प्रकार इस बड़े युद्ध में भी मराठों की सहायता से बुंदेलों को विजय-श्री प्राप्त हुई। इस किले के लेने में छः मास लगे थे।

अध्याय २३

छत्रसाल महाराज का राज्य

१—राजा छत्रसाल बाजीराव पेशवा पर बहुत प्रसन्न हुए। बाजीराव पेशवा का अद्भुत पराक्रम देख वीर छत्रसाल को बहुत हर्ष हुआ। राजा छत्रसाल ने बाजीराव को पन्ना में बुलाया और यहाँ उनका हर प्रकार से सम्मान किया। इस समय राजा छत्रसाल वृद्ध हो गए थे। उन्होंने बाजीराव पेशवा को हृदय से लगा लिया और उनकी आँखों से आनंदाश्रु बहने लगे। राजा छत्रसाल का हार्दिक प्रेम देखकर बाजीराव पेशवा को भी बड़ा हर्ष हुआ। भरे दरबार में राजा छत्रसाल ने बाजीराव को अपना पुत्र माना।

२—जिस समय राजा छत्रसाल ने पेशवा को सहायता के लिये बुलाया था उस समय राजा छत्रसाल ने पेशवा को वचन दिया था कि वे पेशवा को भी अपना एक पुत्र समझेंगे और पेशवा को अपने राज्य का एक भाग देंगे। जब पेशवा युद्ध जीतकर पन्ना पहुँचे तब पेशवा को अपने भाग की फ़िकर पड़ गई। राजा छत्रसाल के कई पुत्र

---

(१) कहा जाता है कि मुहम्मदखाँ बंगश स्त्री का वेश धारण करके किले से भागा था।

थे। उस समय राजाओं में कई रानियों के साथ व्याह करने की अनुचित प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार राजा छत्रसाल के भी कई व्याह हुए थे। परंतु समय को देखकर राजा छत्रसाल को इस बात में दोषी मान लेना ठीक नहीं। कई भले लोग अपनी पुत्रियों का, उनकी रक्षा के निमित्त, किसी प्रसिद्ध वीर के साथ व्याह कर देते थे और वीर का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह उस विवाह संबंध को स्वीकार करे। इस प्रकार राजा छत्रसाल के कई विवाह हुए थे और इनकी १७ रानियाँ थीं। मराठे शासकों और सरदारों में भी यही प्रथा थी। इन रानियों से छत्रसाल के ६९ पुत्र थे। बाजीराव पेशवा को मालूम हुआ था कि राजा छत्रसाल के ५६ पुत्र हैं। संभव है कि उन्हें शेष पुत्रों का हाल मालूम न हुआ हो। पुत्रों की संख्या का हाल जानकर बाजीराव ने सोचा कि यदि राज्य का सत्तावनवाँ हिस्सा मिला तो बहुत ही कम हुआ। इस कारण बाजीराव चाहते थे कि ऐसे हर्ष के प्रसंग पर राजा छत्रसाल कोई बड़ा हिस्सा देने का वचन दे दें। जब राजा छत्रसाल ने बाजीराव को अपना पुत्र कहा और बाजीराव को पुत्रों में बैठने की आज्ञा दी तब बाजीराव पेशवा को संतोष न हुआ। उन्होंने चातुर्य से भरे वाक्यों में कहा कि "महाराज आप के ५६ पुत्र हैं इनमें मैं कहाँ बैठूँ"। राजा छत्रसाल बाजीराव के वाक्यों का अर्थ समझ गए। वे स्वयं बहुत उदार थे। उन्हें अधिक राज्य का लालच न था और वे चाहते थे कि उनके पुत्र भी लालची न होवें। जो कुछ राज्य उन्होंने लिया था वह स्वार्थ-बुद्धि से नहीं किंतु हिंदू जनता की रक्षा के हेतु परमार्थ-बुद्धि से लिया था। वे जानते थे कि महाराष्ट्र लोग हिंदू धर्म की रक्षा उसी प्रकार कर सकेंगे जिस प्रकार कि बुंदेले करते हैं। बाजीराव पेशवा की योग्यता के विषय में भी उन्हें कोई संदेह न था। उन्होंने तुरंत बाजीराव पेशवा को उत्तर दे दिया

कि "मेरे पहले पुत्र हृदयशाह, दूसरे जगतराज और तीसरे आप हैं। आप इनके ही समीप बैठिए।" बाजीराव राजा छत्रसाल का अर्थ समझ गए और राजा छत्रसाल से राज्य का तीसरा भाग देने की प्रतिज्ञा लेकर बहुत प्रसन्न हुए। इनके पश्चात् वृद्ध छत्रसाल महाराज ने स्वयं उठकर बाजीराव पेशवा को अपने पुत्र जगतराज के पास बैठाया। उन्हें उत्तम वस्त्र और नजराने दिए और उनका बड़ा मान किया। फिर हृदयशाह ने और जगतराज ने पेशवा को अपना भाई मानकर उनसे पाग बदली। इसके पश्चात् महाराज छत्रसाल का दरबार बरखास्त हुआ। बाजीराव पेशवा फिर थोड़े दिन पन्ना में रहे और महाराज छत्रसाल की आज्ञा लेकर दक्षिण की ओर चले गए।

३—अब महाराज छत्रसाल को यवनों से कोई डर न रहा और वे स्वतंत्रतापूर्वक राज्य करने लगे। महाराज छत्रसाल पृथ्वी के उन थोड़े से वीर पुरुषों में से हैं जिन्होंने अपनी आत्मशक्ति के भरोसे पर ही असंभव दिखनेवाले कार्य कर डाले हैं। जिस समय महाराज छत्रसाल के पिता मरे उस समय महेबा जागीर की आमदनी के सिवाय कुछ न था। महाराज छत्रसाल के पिता चंपतराय ने अपने बाहुबल से काल्पी की जागीर ले ली थी, परंतु ओड़छेवालों ने यह जागीर भी चंपतराय के हाथ में न रहने दी। चंपतराय को उनके मरते समय वही महेबा की जागीर के हिस्से की आय मिलती थी। जो आय चंपतराय के हिस्से में पड़ती थी वह ३५०) वार्षिक थी। चंपतराय के मरने पर यह इनके पुत्रों में बाँटी गई और छत्रसाल के हिस्से में तीन आने रोज की आमदनी पड़ी होगी। इतनी आमदनीवाले पुरुष का छत्रपति राजा हो जाना पृथ्वी पर आश्चर्यजनक बात है। महाराज छत्रसाल ने संसार को दिखला दिया कि मनुष्य के लिये कोई बात असंभव नहीं। महाराज

छत्रसाल को उनके कुटुंबियों ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध न करने की सलाह दी। परंतु महाराज छत्रसाल को अपनी आत्मा पर विश्वास था और जो कार्य उन्होंने हाथ में लिया था वह पवित्र था। इस कार्य के लिये महाराज छत्रसाल ने जो संकल्प किया वह भी दृढ़ रहा और अंत में ईश्वर ने उन्हें विजय दी।

४—इस समय भारतवर्ष को यवनों के दुराचारी शासन से मुक्त करने के कार्य में जो वीर पुरुष सफल हुए उनमें महाराज छत्रसाल और महाराज शिवाजी अग्रगण्य हैं। दोनों का जीवन भी अधिकतर समान ही रहा। जिस प्रकार शिवाजी एक मराठे जागीरदार के पुत्र थे उसी प्रकार छत्रसाल भी एक बुंदेले जागीरदार के पुत्र थे। यवनों के दुराचार से प्रजा विचलित हो गई थी। दोनों ही वीरों ने प्रजा को इस दुराचार से मुक्त करने का प्रण बाल्यकाल में ही कर लिया था। दोनों वीर बालकपन में रामायण और महाभारत की कथाओं को बड़े चाव से पढ़ते थे। उन महाकाव्यों में योद्धाओं के पराक्रम का वर्णन सुनकर दोनों के ही हृदय में उत्साह भर आता था। दोनों वीरों ने अपने पराक्रम का परिचय बाल्यावस्था से ही दिया। शिवाजी ने मावले लोगों को एकत्र किया और छत्रसाल ने बुंदेलों को लेकर अपने पिता को छोटी उमर में ही सहायता दी। जिस प्रकार महाराज शिवाजी ने मुसलमानों की सत्ता का नाश कर दक्षिण में स्वतंत्र महाराष्ट्र राज्य की स्थापना की उसी प्रकार महाराज छत्रसाल ने बुंदेलखंड को यवनों के आधिपत्य से छुड़ाकर बुंदेलों का स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। दोनों वीरों के हृदय में दया, उदारता, धैर्य्य और स्वधर्माभिमान था तथा दोनों वीरों ने अपने शरीर को देश, जाति और धर्म की वेदी पर अर्पण कर दिया।

५—दोनों वीरों को, ईश्वर की कृपा से, धर्मगुरु भी समान ही मिल गए थे। महाराज छत्रसाल के धर्मगुरु प्राणनाथजी महाराज थे।

ये जामनगर के क्षेमजी नामक एक धनी सेठ के लड़के थे और इनका पहला नाम मेहराज ठाकुर था। एक धनी सेठ के पुत्र होने पर भी ये सदा ईश्वर की आराधना में लगे रहते थे। पीछे से इन्होंने वैराग्य ले लिया। वैराग्य ले लेने के पश्चात् इनका नाम प्राणनाथ हुआ। प्राणनाथजी के गुरु का नाम देवचंद था। प्राणनाथजी सदा छत्रसाल की सहायता करते रहते और उनके पवित्र कार्य में उत्तेजना देते रहते थे। प्राणनाथजी आजकल बुंदेलखंड में जूदेव के नाम से प्रख्यात हैं। इनकी समाधि पन्ना के निकट बनी है। इसी प्रकार महाराज शिवाजी के गुरु रामदास समर्थ थे। इन्होंने भी शिवाजी को देश स्वतंत्र करने के पवित्र कार्य में सदा सहायता दी। महाराज छत्रसाल और बाबा प्राणनाथ का बुंदेलखंड में उसी प्रकार का आदर है जिस प्रकार कि देवताओं का होता है। इसी प्रकार महाराष्ट्र में शिवाजी और रामदासजी का आदर है[1]।

६—महाराज छत्रसाल का राज्य चंबल नदी तक था। कालपी, जालौन, कौंच और एरछ इसी राज्य में थे। झाँसी पहले ओड़छे के राज्य में थी परंतु जब बहादुरशाह ने छत्रसाल महाराज से संधि की तब झाँसी छत्रसाल महाराज के पास आ गई थी। दक्षिण में महाराज छत्रसाल का राज्य नर्मदा तट तक पहुँचा था। सिरौंज, गुना, धामौनी, गढ़ाकोटा, सागर, बाँसा, दमोह, मैहर—ये सब छत्रसाल महाराज के राज्य में थे। पूर्व में राज्य की सीमा तोंस नदी थी। कालिंजर और चित्रकूट ये सब महाराज छत्रसाल के राज्य में थे।

---

(१) महाराज छत्रसाल के विषय में निम्न-लिखित कहावतें प्रचलित हैं—

कृष्ण, मुहम्मद, देवचंद, प्राणनाथ, छत्रसाल।
इन पंचन को जो भजे दुःख हरे तत्काल॥

और

छत्रसाल महाबली। रहे सदा भली भली॥

उत्तरीय सीमा यमुना नदी थी। महाराज छत्रसाल का राज्य कीर्ति-वर्मा चंदेल के राज्य से बड़ा था। महाराज छत्रसाल प्रजा का पालन बड़े प्रेम से करते थे। प्रजा उनसे बहुत संतुष्ट थी। यवनों के संसर्ग के कारण बुंदेलखंड में भी पर्दा की प्रथा बढ़ रही थी, परंतु महाराज छत्रसाल ने इसे रोकने का प्रयत्न किया और स्त्रियों को बिना पर्दा के निकलने का हुक्म दिया और स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार करनेवालों के लिये कठिन दंड की व्यवस्था की।

७—महाराज छत्रसाल के राज्य में प्रत्येक कार्य महाराज की ही अनुमति से होता था। सारे भारतवर्ष में इस समय शासक के कहने के ही अनुसार शासन होता था। मंत्रिमंडल को कोई विशेष अधिकार न थे। तात्त्विक दृष्टि से यही हाल बुंदेलखंड और महाराष्ट्र का भी था। परंतु छत्रसाल महाराज के समान उदार और प्रजापालन में तत्पर शासक इस संसार में थोड़े ही रहे होंगे। छोटे से छोटा मनुष्य भी महाराज के पास जाकर अपनी फर्याद सुना सकता था। यह कितना कठिन कार्य था, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

८—राजदरबार में मंत्रिमंडल रहता था। राजा अपने इच्छानुसार मंत्रिमंडल से सहायता लिया करते थे। इस मंत्रिमंडल में प्रत्येक जाति के दो प्रतिष्ठित पुरुष रहते थे। तहसीलों में भी जाति की सभाएँ थीं और इन जातियों की सभाओं को अपनी जाति के मनुष्यों को दंड देने के अधिकार थे। इन जातियों की सभाएँ बुंदेलखंड के कई स्थानों में अब भी वर्तमान हैं और इन सभाओं का निर्णय राजदरबार में भी माना जाता है।

९—महाराज छत्रसाल के समय में बुंदेलखंड में कई प्रसिद्ध कवि हो गए हैं जिन्होंने हिंदी के साहित्य को उत्तम कविताओं से विभूषित कर दिया है। इन कवियों की भाषा बुंदेलखंडी ही थी, परंतु किसी

किसी कवि की भाषा में ब्रजभाषा का मिश्रण है। कवि केशवदास महाराज छत्रसाल के समय के पहले के थे। इनका मान ओड़छे में था। इनकी बनाई रामचंद्रिका नामक पुस्तक छत्रसाल महाराज को बहुत प्रिय थी। केशवदास का जन्म विक्रम संवत् १६१२ में हुआ और उनका देहांत १६७४ में हुआ। केशवदास के बड़े भाई बलभद्र मिश्र भी बुंदेलखंड के कवियों में हैं। ये छत्रसाल महाराज के दरबार में कुछ दिन रहे हैं[1]।

१०—चिंतामणि कवि प्रसिद्ध कवि भूषण के बड़े भाई थे। इनका जन्म विक्रम संवत् १६६६ में हुआ था। ये बुंदेलखंड में कम रहे और बाहर अधिक रहे। नागपुर के भोंसला मकरंदशाह के यहाँ भी ये कवि रहे हैं।

११—कविराज भूषण कानपुर के समीप तिकवाँपुर नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे। इनका जन्म विक्रम संवत् १६७० में हुआ होगा। ये महाराज छत्रसाल के यहाँ और महाराज शिवाजी के दरबार में रहा करते थे। इनकी कविता में बुंदेलखंडी और ब्रजभाषा का मिश्रण है, परंतु भाषा अधिकतर बुंदेलखंडी ही है। इनकी कविताओं में शिवाबावनी और छत्रसालदशक नामक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। शिवाबावनी महाराज शिवाजी के यश के वर्णन में लिखी गई है और छत्रसाल-दशक में महाराज छत्रसाल के यश का वर्णन है। भूषण की कविताओं में वीररस की ही प्रधानता है[2]। भूषण की मृत्यु संवत् १७७२ में हुई।

---

(१) बलभद्र मिश्र ने छत्रसाल की प्रशंसा में निम्न-लिखित पद्य बनाया था—

नहिं तात न भ्रात न साथ कोऊ नहिं द्रव्यहु रंचक पास हती।
नहिं सेनहु साज समाज हती नहिं कौनऊ और सहाय हती॥
कर हिम्मत किस्मत आपनी सों लई धरती और बढ़ाई रती।
बलभद्र भने लख पाठक-वृंद हिए में गुनो छत्रसाल गती॥

(२) भूषण की कविताओं के उदाहरण दिए जा चुके हैं।

१२—मतिराम भूषण कवि के सगे भाई थे। इनका जन्म संवत् १६७४ का है और इनकी मृत्यु विक्रम संवत् १७७३ में हुई। ये बूँदी के महाराज भावसिंह के यहाँ रहा करते थे। इनकी कविताओं में शृंगार रस ही अधिक है। ये बुंदेलखंड में भी रहे हैं और महाराज शाहू के ऊपर भी इन्होंने कविताएँ की हैं। महाराज शाहू के ऊपर जो कविताएँ इन्होंने की हैं वे वीररस की हैं[1]। बूँदी के महाराज भावसिंह के ऊपर इनकी कई कविताएँ हैं। इनकी कविताओं की भाषा भी बुंदेलखंडी है।

१३—गोरेलाल पुरोहित (उपनाम लाल कवि) वीररस के ही कवि थे। इनका जन्म-काल विक्रम संवत् १७१४ के लगभग माना जाता है। ये महाराज छत्रसाल के दरबार में रहते थे और इनकी मृत्यु महाराज छत्रसाल के एक युद्ध में हुई। इन्होंने छत्रप्रकाश नामक पुस्तक दोहे चौपाइयों में लिखी है[2]। इनकी भाषा भी बुंदेलखंडी है।

१४—नेवाज कवि महाराज छत्रसाल के समय में हुए थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनका जन्म अंतर्वेद के किसी स्थान में,

---

(१) शाहू के यश-वर्णन में मतिराम कवि का निम्न-लिखित कवित्त प्रसिद्ध है—

राखी हिंदवानी औ हिंदुन को तिलक राखो,
स्मृति औ पुरान राखे वेद विधि सुनी में।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राखो राखो गुन गुनी में॥
कहै मतिराम जीत हद मरहट्टन की,
देश देश कीरत बखानी पुन पुनी में।
साहु से सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाब के दिवाल राखी दुनी में॥

(२) छत्रप्रकाश के पद्य लिखे जा चुके हैं।

संवत् १७३९ के लगभग, हुआ। ये रसिक कवि थे। इनके ग्रंथों में शकुंतला नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है।

१५—महाराज छत्रसाल के दरबार में कुछ बाहर के कवि भी आए थे। कवियों का महाराज छत्रसाल के दरबार में बहुत आदर होता था, इसलिये अनेक कवि आया करते थे और पुरस्कृत तथा प्रसन्न होकर जाया करते थे। जो कवि इस दरबार में आए उनमें पुरुषोत्तम, पंचम और लालमणि के बनाए कवित्त महाराज छत्रसाल की प्रशंसा में मिलते हैं।

१६—महाराज छत्रसाल में समकालीन अनन्य नाम के एक प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। अनन्य दतिया राज्य के अंतर्गत सेंहुड़ा के निवासी और जाति के कायस्थ थे। दतिया के राजा दलपतराय के पुत्र और सेहुँड़ा के जागीरदार पृथ्वीचंद के ये गुरु थे। इनका दूसरा नाम अक्षर अनन्य भी है। इनका जन्म संवत् १७१० के लगभग हुआ। महाराज छत्रसाल इनकी कविताओं को पसंद करते थे और एक बार इनको महाराज ने दरबार में भी बुलाया था। पर सुनते हैं कि अनन्य कवि न आए। अनन्य कवि की कविता में तत्त्वज्ञान और धर्मोपदेश भरा रहता था। दुर्गासप्तशती का हिंदी-अनुवाद सबसे पहले अनन्य कवि ने ही किया था। दतिया राज्य से अनन्य कवि को एक जागीर मिली थी। इस जागीर पर अब भी अनन्य कवि के वंशजों का अधिकार है। अनन्य कवि की पुस्तकों में ज्ञानपचासा, राजयोग और विज्ञानयोग प्रसिद्ध हैं[1]। इनसे और महाराज छत्रसाल से भी इसी विषय पर

---

(१) अनन्य कवि की कविताएँ उत्तम होने से उनके उदाहरण आगे दिए जाते हैं—

प्रश्नोत्तर[1] हुए थे।

राग न द्वेष न हर्ष न सोक न बंध न मोक्ष की श्रास रही है।
बैर न प्रीति न हार न जीत न गारि न गीत सुरीति गही है॥
रक्त विरक्त न मान कछू शिवशक्ति निरंतर जोति लही है।
पूरन ज्ञान श्रनन्य भने अवधूत श्रतीत की रीति यही है॥
मूरख के प्रतिमा परमेसुर बालक रीति गही सु लही है।
उत्तम जोति सुरूप विचार सु श्रातम ध्यान में बुद्धि दई है॥
एक वेतत्त्व की मांड़ सबै कह केवल ब्रह्म बसे सु वही है।
पूरन ज्ञान श्रनन्य भने सरवज्ञनि को शिवशक्ति मई है॥
कोउ कहैं बैकुंठ बसैं प्रभु कोउ कहैं निज धामहु लीचे।
कोउ कहैं ब्रह्मांड परे परब्रह्म सबै कहे सो अवधीचे॥
वस्तु प्रत्यक्ष श्रनन्य भने जिमि श्रापुहि गोप्य करे दृग मीचे।
व्योम समान अखंडित ईश्वर जैसोई ऊपर तैसोई नीचे॥
हरि में हरि सों सुर में सुर सों हर में हर सों सुखदायक है।
नर में नर सों तरु में तरु सों घर में घर सों घर घायक है॥
वट में वट सों है श्रनन्य भने घट में घट सों घट नायक है।
हममें हमसो तुममें तुम सो सब में सबसो सब लायक है॥
इक निर्गुन रूप निरूपत हैं इक सगुन रूप ही देखत हैं।
इक जोति सुरूप बखान करें इक सून्य सुरूपहिं लेखत हैं॥
इक मानत हैं अवतारन को करता विधि एक विसेखत हैं।
सरवज्ञ सो धन्य श्रनन्य भने प्रभु में सबको सब देखत हैं॥
जनि वेद पुरानन में भरमो जनि संत असंतन सों टरको।
जनि इंद्रिन के वश भूल रहो जनि राजस तामस में गुरको॥
लहि श्रातम ब्रह्म प्रमोद रहे जनि जीव दसा गहि के टरको।
करि तत्त्व विचार श्रनन्य भने क्रम ते इन कर्मन तें सुरको॥
हरि में हर में सुर में नर में गिरि में तरु में घर मंडित है।
तन में मन में धन में जन में बन में घर में सुमखंडित है॥
हम में सब में सु श्रनन्य भने परिपूरन ब्रह्म अखंडित है।
सब अंगन में सरवज्ञ वई सरवज्ञ वई सोइ पंडित है॥

(१) श्रनन्य के प्रश्न—
धर्म की टेक तुम्हारे बँधी नृप दूसरि पान कहैं तुम पावत।
टेक न राखत हैं हम काहु की लैसे को गैसे प्रमान बतावत॥

१७—महाराज छत्रसाल स्वयं कवि थे। इन्होंने कृष्णचरित्र

मानै कोऊ (जु) भली या बुरी नहिं आसरो काहु को चित्त में ल्यावत।
टेक विवेक तें बीच बड़ो हमको किहि कारण राज बुलावत ॥ १ ॥
जो धरिए हठ टेक उपासन तौ चरचा में (पुनि) चित्त न दीजे।
जो चरचा में राखिए चित्त तौ ज्ञान विषे हठ टेक न कीजे ॥
जो भरिए उर ज्ञान विचार तौ अक्षर सार क्रिया गुन लीजे।
अक्षर में क्षर है क्षर है क्षर अक्षर अक्षरातीत कहीजे ॥ २ ॥
प्राणी सबै क्षर रूप कहावत अक्षर ब्रह्म को नाम प्रमानी।
निंद्रत स्वप्न सुषुप्ती जागृति ब्रह्म तुरीय दशा ठहरानी ॥
क्यों तिहि में सुपनो ब्रह्म भासति छत्र नरेश विचक्षण ज्ञानी।
अक्षर है कि अनक्षर है हम को लिखि भेजवी एक जबानी ॥ ३ ॥
छत्र नरेश विचित्र महा अरु संगति धामी बड़े बड़े ज्ञानी।
आन अखंड स्वरूप की राखत भाषत पूरण ब्रह्म अमानी ॥
क्यों शिशुपाल की ज्योति गई उततें फिर कान्ह में आय समानी।
खंडित है कि अखंडित है हमकों लिखि भेजवी एक जबानी ॥ ४ ॥
नारि तें हेत नहीं नर रूप नहीं नर तें पुन नारि बखानी।
जाति नहीं पलटै सुपनै मरेहू तें भूत चुरैल बखानी ॥
क्यों सखियाँ निज धाम की राजि भई नर रूप सों जाति हिरानी।
वेद सही किधों वाद सही हमको लिखि भेजवी एक जबानी ॥ ५ ॥
जाति नहीं पलटै नर नारि की क्यों सखियाँ नर रूप वखानी।
जो नर रूप भयो तौ भयो पुरुषोत्तम सो ऋतु कैसे के मानी ॥
जो पुरुषोत्तम सों ऋतु होय तौ इतै कित नारिन के रस सानी।
यह द्विविधा में प्रमाण नहीं हमको लिख भेजवी एक जबानी ॥ ६ ॥

महाराज छत्रसाल के उत्तर—

दूर करहु द्विविधा दिल सों अरु ब्रह्म स्वरूप को रूप बखानो।
जागृति सुप्ति सुषुप्ति हु के तजि को तुरिया उनको पहिचानो ॥
तीनहू श्रेष्ठ कहे सब वेद सो पूर्व ऋषी हमहू ठहरानो।
कारण ज्यों भस्मासुर तारण कामिनि सो प्रभु आप दिखानो ॥ १ ॥
वाद भयो पुरुषोत्तम सों अरु नेह वढ़ावन कों उर आनी।
ब्रह्म प्रताप तें यों पलटै तनु ज्यों पलटै सब रंग में पानी ॥

नाम का एक काव्य ग्रंथ लिखा है। इनके लिखे कई राजनीति से भरे पत्र भी हैं जो कविता में लिखे गए हैं[1]।

जो नर नारि कहैं हमको अजहूँ तिनकी मति जाति हिरानी।
भूत चुरैल अहैं सब झूठ महा हमसों सुन लीजिए एक जबानी ॥ २ ॥
एक समय पतिनी पति सों हठ पूछी यही निज धाम की बानी।
कही नहीं करि देन कही भए सोरहु अंश कला के निधानी ॥
इत तें शिशुपाल की ज्योति गई उत तें फिर कृष्ण में आनि समानी।
खंडित ऐसे अखंडित हैं हम सों सुनि लीजिए एक जबानी ॥ ३ ॥
राखत हैं हम टेक उपासन बात यथारथ वेद बखानी।
पीवत हैं चरचा करि अमृत बात विलासन के रस सानी ॥

(१) महाराज की कविता के समयानुकूल उदाहरण तो दिए जा चुके हैं तथापि यहाँ पर भी कुछ लिखना अनुचित न होगा।

तुम घनश्याम जन याचक मयूरगण तुम पयोद स्वाती हम चातक तुम्हारे हैं।
तुम हौ कृष्णचंद्र मेरे लोचन-चकोर तुम जग तारे हम छतारे कहि उबारे हैं ॥
मीत मित्र जाके तुम चक्रवाक राखे कर ब्रजवसुधा के गोप गोपी जीवधारे हैं।
तुम गिरिधारी हम तुम्हारे व्रतधारी तुम दनुज प्रहारे हम यवन प्रहारे हैं ॥
कहैं छत्रसाल मेरो छत्रपन राखो इन अत्रि प्रण राखो सर्वत्र प्रण राखो है।
जंग जुरे यवन जमातन सों राखो हाल इन पदिहारन सों राखो बांधि नाको है ॥
विरद बिलंद गज गीध प्रहलाद राखो द्रुपदसुता को राखो बांधि के पताको है।
कौशपति राखौ राखो शरण विभीषण को अमित अखंड जागे जुगन जुग साको है ॥

माली के सम नृप हता सो संपति सुख लेय।
उत खांदे रोपहिं धलहिं लघुहिं बड़ो करि देय ॥
लघुहिं बड़ो कर देय लेय फूले फल पाके।
फूटे देय निकारि मिलें फूटे बसुधा के ॥
नत उन्नत करि देहिं करहिं उन्नत कहँ खाली।
कंटक छुद्र निकासि और सब सींचहिं माली ॥
अपनो मनभायो कियो गहि गोरी सुल्तान।
सात बार छोड़ो नृपति कुमति करी चहुवान ॥
कुमति करी चहुवान ताहि निंदहिं सब कोऊ।
असुर बैर इक बार धरि १ काढ़े दृग दोऊ ॥
दोऊ दीन को बैर बादि अंतहिं चलि आयो।
कहि नृप पुना विचार कियो अपनो मनभायो ॥

१८—महाराज छत्रसाल की राजधानी कुछ दिनों तक मऊ के निकट महेवा में रही, तत्पश्चात् पन्ना में हुई। छतरपुर नामक नगर महाराज छत्रसाल का बसाया हुआ है। यह नगर बाबा लालदास नाम के एक संत के आज्ञानुसार महाराज छत्रसाल ने बसाया था।

विधि करतव्यता की करामात जेती तेती सब ब्रजराज जू के हाथ सुनियतु हैं।
हाथ ब्रजराज जू कौ भक्ति के अधीन सुन्यौ भक्ति नित सत्य के अधीन गुनियतु हैं॥
धर्म के अधीन सत्य धर्म कर्म के अधीन कर्म वस छत्रसाल बयो लुनियतु हैं।
सुनत सुनावल में लोक कहनावत में जैसो रचवार तैसो साँचो चुनियतु हैं॥
ग्राह ने गजब करि गज को ज्यों ग्रस्यौ आय छूटत छुड़ायौ नाहिं गयो हारि बल तें।
लोप भयो कोप को कलाप ओप चोप गयौ करिहैं पयान प्रान आजु याही पल में॥
कहैं छत्रसाल करी कर लै कमल धायौ कंजनैन कृष्ण किधौं कढ़्यो केलि जलतें।
करही के कमल तें कै कर के कमल तें कमल के नल तें कै कमल के दल तें॥
चाहैा धनधाम भूमि भूषन भलाई भूरि सुजस सहूर जुत रैयत को लालियो।
तोड़ादार घोड़ादार बीरन सों प्रीति करि साहस सों जीत जंग खेत तैं न चालियो॥
सालियो उदंडिन को दंडिन को दीजैा दंड करिकै घमंड घाव दीन पै न घालियो।
विनती छत्रसाल करै होय जो नरेश देश रैहै न कलेस लेस मेरो कह्यो पालियो॥
सुजससो न भूषन विचारसो न मंत्री त्यों साहस सो शूर कहूँ ज्योतिपीन पैनसो।
संयमसी औषधी न विद्यासो अटूटधन नेहसो न बंधु औदयासो पुन्य कौनसो॥
कहैं छत्रसाल कहूँ सीलसों न जीतवान आलससो बैरी नाहिं मीठो कछु नैनसो।
सोकसी न चोट है न भक्ति ऐसी ओट कहूँ रामसो न जाप और तपहै न मौनसो॥
जाके वीर एकएक कालतें करालहते जानेगहि काल आनि पाटीतें बँधायो है।
कुंभकर्न भ्रात जाकी धाकतें सकात लोक पूत इंद्रजीत इंद्रजीति कै कहायो है॥
कहैं छत्रसाल इंद्र, वरुन, कुवेर, भानु जोरि जोरि पानि आनि हुकुम मनायो है।
जैान पाप रावनके भैानामें न छैाना रह्यो तौन,पाप लोगनु खिलैाना करिपायो है॥
राधाके सनेहहित गेह तजि आयो इतै और कहा कहौं गाय विपिन चरायो मैं।
जायो जैान जनक तौन तनिक न मान्यो मैं,राधा के सनेह नंदलालहू वहायो मैं॥
राधाके सनेह मेहनायकको जीत्यो जाय कहैं कृष्ण छत्रसाल गिरि को उठायो मैं।
मोकों कहै लाखबार भाखि,भाखि साखि दैदै राधाबिनुताहि नैकभूलिहू न भायो मैं॥

अध्याय २४

महाराज छत्रसाल के पश्चात् राज्य के विभाग

१—महाराज छत्रसाल का परलोक-वास विक्रम संवत् १७८८ में, जेठ वदी ३ बुधवार ता० १२ मई सन् १७३१ को, हुआ था। महाराज छत्रसाल के बहुत से पुत्र थे, परंतु महाराज के आदेशानुसार सब राज्य के अधिकारी न हुए[1]। महाराज छत्रसाल की मृत्यु के समय बाजीराव पेशवा भी पन्ना पहुँच गए थे। इनको महाराज छत्रसाल ने अपने राज्य का तीसरा भाग देने का वचन दिया था। शेष दो भाग हृदयशाह और जगतराज को मिले।

---

(१) महाराज छत्रसाल के पुत्रों के नाम ये हैं—(१) हृदयशाह (हिरदेसाह), (२) जगतराज, (३) पदमसिंह, (४) भारतीचंद, (५) हमीर, (६) माधोसिंह, (७) देवीसिंह, (८) खानजू, (९) भगवंतराय, (१०) मरजादसिंह, (११) तेजसिंह, (१२) शंभुसिंह, (१३) दुरजनसिंह, (१४) गोविंदसिंह, (१५) केशवराय, (१६) धीरजमल, (१७) सालमसिंह, (१८) अर्जुनसिंह, (१९) करनजू, (२०) चतुर्भुज, (२१) नोनेदिवान, (२२) कुँअर, (२३) अनूपसिंह, (२४) दलपतराय, (२५) किसनसिंह, (२६) मानसिंह, (२७) राजाराम, (२८) अनुरुद्धसिंह, (२९) शिवसिंह, (३०) खानजहान, (३१) नवलसिंह, (३२) अनंतसिंह, (३३) केसरीसिंह, (३४) उदेतसिंह, (३५) हिम्मतसिंह, (३६) मानशाह, (३७) पूरनमल, (३८) दरयावसिंह, (३९) गंधर्वसिंह, (४०) श्यामसिंह, (४१) बरजोरसिंह, (४२) भूपसिंह, (४३) [illegible], (४४) विशंभरसिंह, (४५) पहलवानसिंह, (४६) बलवंतसिंह, (४७) हनुमतसिंह, (४८) मुकुंदसिंह, (४९) नाहरशेर बहादुर, (५०) रानासिंह, (५१) उमरावसिंह, (५२) प्रमोदसिंह, (५३) दिनदूला, (५४) गाजीसिंह, (५५) मोहनसिंह, (५६) भीमसिंह, (५७) कुलसिंह, (५८) देवीसिंह, (५९) सावंतसिंह, (६०) [illegible], (६१) [illegible], (६२) दुरावनसिंह, (६३) फूलसिंह, (६४) [illegible], (६५) [illegible], (६६) पर्वतसिंह, (६७) महारसिंह और (६८) मिर्जा राजा।

हृदयशाह को पन्ना, मऊ, गढ़ाकोटा, कालिंजर, शाहगढ़ और इनके आसपास का इलाका मिला। हृदयशाह के राज्य की आमदनी उस समय ४२ लाख रुपए की थी। जगतराज को राज्य का दूसरा भाग मिला जिसकी वार्षिक आय उस समय ३६ लाख रुपए थी। जगतराज के हिस्से में जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, सरीला, भूरागढ़ और बाँदा आए। राज्य का तीसरा भाग बाजीराव पेशवा को मिला। पेशवा के हिस्से की वार्षिक आय उस समय ३३ लाख थी। पेशवा के हिस्से में काल्पी, हटा, हृदयनगर, जालौन, गुरसराय, झाँसी, सिरौंज, गुना, गढ़ाकोटा और सागर आए। इनके सिवाय छोटी छोटी जागीरें भी दी गई थीं।

(इंपीरियल गजेटियर में तीनों हिस्से क्रमानुसार ३८, ३१ और ३२ लाख के बतलाए गए हैं।)

इस समय बाजीराव पेशवा और महाराज छत्रसाल के पुत्रों के बीच ये ठहराव हुए थे।

(१) दोनों भाई जगतराज और हृदयशाह, चंबल और यमुना के उस पार का प्रांत छोड़कर सब स्थानों में युद्ध के लिये बाजीराव के साथ जावेंगे और जो लूट में मिलेगा उसे बराबर बाँटेंगे।

(२) यदि बाजीराव दक्षिण के किसी युद्ध में लगे हों तो दोनों बुंदेले भाइयों को बुंदेलखंड भर की दो माह तक रक्षा करनी होगी।

(३) छत्रसाल महाराज ने बाजीराव को पुत्र के समान माना। इसलिये बाजीराव भी हृदयशाह और जगतराज को भाई के समान मानेंगे।

ओड़छे का राज्य छत्रसाल महाराज के अधिकार में न था। ओड़छे के राज्य को प्राचीन बुंदेलावंश के शासक से निकाल लेना छत्रसाल महाराज ने ठीक न समझा। ओड़छे के शासक कभी

तो छत्रसाल महाराज के मित्र रहे और कभी वे भी मुसलमानों से मिल जाते थे।

महाराज हृदयशाह महाराज छत्रसाल की राजधानी के नगर के शासक थे। इन्होंने महाराज छत्रसाल की सेज के निकट एक समाधि बनवाई। यहाँ पर एक पुजारी भी नियत किया और उसके खर्च के लिये सिंगरावन नाम का एक गाँव लगा दिया। यह गाँव अब छतरपुर राज्य में है। हृदयशाह गढ़ाकोटा को बहुत चाहते थे। जब महाराज छत्रसाल राज्य करते थे तब हृदयशाह गढ़ाकोटा के किले पर नियत थे। गढ़ाकोटा के निकट का ग्राम हृदयनगर महाराज हृदयशाह का ही बसाया हुआ है। इन्होंने रीवाँ के बघेल राजा अनिरुद्धसिंह के पुत्र अवधूतसिंह पर वि० सं० १७६८ में चढ़ाई की थी किंतु राजा बहुत छोटा था इससे अपने मामा के पास परतापगढ़ (अवध) भाग गया। अंत में बहादुरशाह से फरियाद की गई। उसने हृदयशाह को लिखा। इस पर हृदयशाह ने रीवाँ तो छोड़ दिया, पर वीरसिंहपुर ले ही लिया। यह आजकल पन्ना राज्य में है।

२—महाराज हृदयशाह का देहांत विक्रम संवत १७९६ में हुआ। इनके ९ पुत्र थे। सबसे बड़े पुत्र का नाम सभासिंह था। सभासिंह ही हृदयशाह के पश्चात् राज्य के अधिकारी हुए। परंतु सभासिंह के छोटे भाई पृथ्वीराज, बाजीराव पेशवा के पास गए और उन्होंने राज्य का भाग लेने के लिये पेशवा से सहायता माँगी। पेशवा ने पृथ्वीराज को सहायता दी और सभासिंह ने विवश होकर शाहगढ़ का इलाका और गढ़ाकोटा पृथ्वीराज को दे दिया। पृथ्वीराज ने बाजीराव पेशवा को सहायता देने के बदले में चौथ देने का वचन दे दिया। इस प्रकार राजघरानों में अब लड़ाइयाँ होने लगीं और राजकुमार राज्य को अपनी संपत्ति समझकर

उसमें अपना हिस्सा लेने और उसके लिये भाइयों से युद्ध करने को उद्यत हो गए। हिंदू राज्य स्थापित करने के जो आदर्श महाराज छत्रसाल के समान पुरुषों के थे उसे भूलकर बुंदेले और मराठे दोनों ही अपने स्वार्थ के लिये लड़ने लगे। मुसलमानों की शक्ति बहुत कमजोर होने पर वे फिर प्रबल न हो सके, परंतु इस आपसी झगड़ों का फायदा अँगरेजों ने उठा लिया। सभासिंह वि० सं० १८०९ में मरे। इनके समय में हीरे की खानें खोदी जाने लगी थीं।

३—सभासिंह के अमानसिंह, हिंदूपत और खेतसिंह ये तीन पुत्र थे। अमानसिंह बड़े पुत्र न थे, परंतु सभासिंह इनसे बहुत प्रसन्न रहते थे क्योंकि ये बहुत योग्य थे। प्रजा भी अमानसिंह से बहुत प्रसन्न थी। इनकी उदारता बुंदेलखंड में विख्यात है[1]।

४—विक्रम संवत् १८१५ में हिंदूपत ने राज्य के लोभ से अमानसिंह को मरवा डाला और वह आप राजगद्दी पर बैठ गया। हिंदूपत इमारतों और महलों के बड़े शौकीन थे। राजगढ़ तथा छतरपुर के महल इनके ही बनवाए हुए हैं।

५—हिंदूपत के तीन पुत्र थे जिनके नाम अनिरुद्धसिंह, धौकलसिंह और सरमेदसिंह[2] थे। सरमेदसिंह बड़े थे और गद्दी के हकदार थे, परंतु हिंदूपत सरमेदसिंह को गद्दी का हकदार बनाना

---

(१) अमानसिंह की प्रशंसा पराग कवि ने इस प्रकार की है—
रजत पहार घनसार मालती के हार छीर पारावार गंगधार सो धराधर सो।
सत्य सो सतोगुण सो शारदा सो शंकर सो संख सुक्रन सो सुधा सो सुरतरु सो॥
भनत पराग कामधेनु सो कमोदिनि सो कंजकुंद फूल सो पुनीति पुष्प फर सो।
कलि में अमानसिंह करण अवतार जानो जाको जस छाजत छबीलो छपाकर सो॥

(२) सरमेदसिंह का नाम कहीं कहीं पर सरनेतसिंह भी लिखा मिलता है।

नहीं चाहते थे। अनिरुद्धसिंह से वे प्रसन्न थे। इस कारण हिंदूपत ने अनिरुद्धसिंह को युवराज, बेनी हजूरी को दीवान और कायमजी चौबे को कालिंजर का शासक नियत कर दिया। हिंदूपत का देहांत विक्रम संवत् १८३४ में हुआ। बेनी हजूरी को मैहर की जागीर दी गई थी।

६—हिंदूपत के पश्चात् अनिरुद्धसिंह राजा हुए। इनके समय में राज्य का सब कार्य बेनी हजूरी और कायमजी चौबे ही करते थे। कायमजी चौबे का दूसरा नाम खेमराज चौबे भी है। कुछ दिनों के पश्चात् कायमजी चौबे और बेनी हजूरी से तकरार हो गई। अनिरुद्धसिंह बेनी हजूरी को बहुत मानते थे, इसलिये कायमजी चौबे ने सरमेदसिंह को उसकाया। बेनी हजूरी ने भी यह मौका हाथ से जाने न दिया और वह मैहर की जागीर स्वतः दबा बैठा। अनिरुद्धसिंह वि० सं० १८३६ में मरे।

७—सरमेदसिंह ने कायमजी चौबे के कथनानुसार जैतपुर जाकर खुमानसिंह से सहायता मांगी और खुमानसिंह के सेनापति अर्जुनसिंह पँवार ने छतरपुर के निकट गठेवरा के मैदान में अनिरुद्धसिंह को हराया। इस युद्ध में बेनी हजूरी मारा गया। इधर अनिरुद्धसिंह का भी देहांत हो गया था। इससे वि० सं० १८३७ में सरमेदसिंह नाम मात्र के लिये राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने ४ वर्ष तक राज्य की बागडोर अपने हाथ में रखी। पश्चात् वि० सं० १८४२ में धौकलसिंह राजा हुए। इन्होंने १३ वर्ष राज्य किया। ऐसे ही ऐसे आपसी झगड़ों के कारण बुंदेलखंड में राज्य-व्यवस्था बिगड़ती गई और डाकू लोग जहाँ-तहाँ लूट मार करने लगे। कायमजी चौबे के पश्चात् कालिंजर का किला उनके लड़के रामकिसुन चौबे के अधिकार में आया।

८—इधर तो बुंदेला राजाओं में गृह-युद्ध चल रहा था उधर

हिम्मतबहादुर ने अलीबहादुर को साथ लेकर वि० सं० १८४६ में बुंदेलखंड पर आक्रमण कर दिया और वह राजाओं को अपने अधीन कर सनदें देने लगा।

९—धौकलसिंह के मरने पर वि० सं० १८५५ में उनके पुत्र किशोरसिंह राजा हुए। इनके समय में पन्ना रियासत के कई जागीरदार स्वतंत्र राजा बन बैठे। राजा किशोरसिंह को जानवर पालने और शिकार का बड़ा शौक़ था। अँगरेजों की कंपनी के शासक लार्ड डलहौजी जब इनसे मिलने आए तब ये अपने साथ दो शेर लेकर उनसे मिलने गए थे। इनको देखकर लार्ड डलहौजी डरकर चले गए और इनसे न मिले। किशोरसिंह ने इंद्रदमन नामक तालाब बनवाया और चित्रकूट में नवलकिशोरजी की स्थापना की। इनको अँगरेज सरकार ने वि० सं० १८६४ और १८६८ में राज्य की अलग अलग दो सनदें दीं।

१०—किशोरसिंह के पश्चात् हरिवंशराय राजगद्दी पर बैठे। इनका राज्य-काल वि० सं० १८९७ से आरंभ होता है। हरिवंश-राय ने राज्य बहुत बुद्धिमत्ता से किया। इनके समय में राज्य की आमदनी खूब बढ़ी। इनका राज्य ९ वर्ष तक रहा।

११—हरिवंशराय के कोई पुत्र न था। इस कारण इनके पश्चात् इनके छोटे भाई नृपतिसिंह राजगद्दी पर बैठे। इनका राज्यकाल वि० सं० १९०६ से आरंभ होता है। इनके समय में सिपाही-विद्रोह हुआ जिसका हाल आगे लिखा जायगा।

१२—छतरपुर पहले पन्ना राज्य के अधीन था। परंतु जब सरमेदसिंह और उनके भाई के झगड़े चल रहे थे उसी समय छतरपुर एक अलग स्वतंत्र राज्य बन गया। कुँवर सोनेसाह पँवार सरमेदसिंह के सेनापति थे। ये पवायाँ (ग्वालियर रियासत) के पुण्यपाल पँवार के वंशज हैं। कुँवर सोनेसाह के पिता का नाम

जैतसिंह था। सरमेदसिंह ने इन्हें चार लाख की जागीर दी थी जिसमें छतरपुर भी था। सोनेसाह वि० सं० १८४० में सरमेदसिंह के सेनापति हुए थे। इनके मरने पर इनके जेठे पुत्र प्रतापसिंहजू देव ने वि० सं० १८८३ में अपना राज्याभिषेक छतरपुर में कराया और वे स्वतंत्र राजा बन गए। प्रतापसिंह का देहांत वि० सं० १९११ में हुआ। इनके पश्चात् इनके दत्तक पुत्र जगतराज राजगद्दी पर बैठे। सन् सत्तावन का गदर इनके समय में ही हुआ।

१३—महाराज छत्रसाल के दूसरे पुत्र जगतराज को बाँदा, भूरागढ़, चरखारी, अजयगढ़, बिजावर और सरीला के परगने मिले थे। इनके समय में मुहम्मदखाँ बंगश ने फिर से जैतपुर पर आक्रमण किया। दलेलखाँ नामक सूर सरदार बंगश की सेना के साथ था। जगतराज को मराठों ने सहायता दी और जगतराज ने दलेलखाँ को युद्ध में हरा दिया। वह युद्ध में मारा गया। दलेलखाँ की वीरता बुंदेलखंड में आज तक प्रसिद्ध है। उसकी हार के बाद बंगश भी हार मानकर लौट गया।

१४—जगतराज के १७ पुत्र थे। सबसे बड़े पुत्र का नाम दिवान सेनापति था[1]। इनसे महाराज जगतराज प्रसन्न न थे। इसलिये कीरतराज को जगतराज ने युवराज बनाया। परंतु जिस समय जगतराज की मृत्यु हुई उस समय इनके तीसरे पुत्र पहाड़सिंह ही इनके पास थे। जगतराज की मृत्यु मऊ में संवत् १८१५ में पूस वदी ७ गुरुवार ता० १४-१२-१८७२ को हुई। पहाड़सिंह ने स्वयं राजा बनना चाहा। इसलिये पहाड़सिंह जगतराज की मृत देह को पालकी में रखकर जैतपुर लाए और सब लोगों से यह कह दिया कि जगतराज बीमार हैं, मरे नहीं हैं। पहाड़सिंह ने ऐसा प्रबंध किया कि जगतराज की मृत देह के पास कोई न जाने पावे

(१) दलीपुर के ठाकुर दिवान सेनापति के वंश के हैं।

धीरे धीरे पहाड़सिंह ने सब राज-कर्मचारियों को अपनी ओर मिला लिया और जब देखा कि जैतपुर पर उनका पूरा अधिकार हो गया है तब जगतराज के मरने का हाल सबको सुनाया। कीरतसिंह की मृत्यु इसके पहले ही हो चुकी थी। कीरतसिंह के दो लड़के थे। उनके नाम गुमानसिंह और खुमानसिंह थे। इन्होंने जगतराज की मृत्यु का समाचार अजयगढ़ में पाया। इनके पिता कीरतसिंह को जगतराज ने युवराज बनाया था, इसलिये खुमानसिंह और गुमानसिंह ने राज्य पर दावा किया। इनके पास लालदिवान नाम का एक चतुर सेनापति था। लालदिवान को पहाड़सिंह ने हरा दिया। परंतु फिर भी खुमानसिंह और गुमानसिंह ने लड़ने का प्रयत्न न छोड़ा और वे दोनों सदा पहाड़सिंह को तंग करते रहे। बुंदेलों की वही विशाल शक्ति, जो पहले मुगलों के प्रबल राज्य को नाश करने में लगी थी, अब आपसी युद्धों में स्वयं उन्हीं के नाश के लिये खर्च होने लगी।

१५—विक्रम संवत् १८२२ में पहाड़सिंह महोबे में बीमार हो गए। इनकी बीमारी कठिन थी और बीमारी की ही दशा में पहाड़सिंह महोबे से कुलपहाड़ गए। उन्होंने अपने वंशजों के भावी युद्ध को बचाने के लिये गुमानसिंह और खुमानसिंह को समझा लेना उचित समझा। इस उद्देश्य से उन्होंने गुमानसिंह और खुमानसिंह को अपने पास बुला लिया। फिर इन्होंने एक लाख बासठ हजार की आमदनी की रियासत खुमानसिंह को और तेरह लाख पचास हजार की रियासत अपने पुत्र गजसिंह को दी। पहाड़सिंह के पुत्र गजसिंह को जैतपुर की रियासत और खुमानसिंह को चरखारी का राज्य मिला। गुमानसिंह को भी पहाड़सिंह ने सवा नौ लाख आय की रियासत दी। इस भाग में बाँदा और अजयगढ़ के परगने आए।

१६—जैतपुर के राजा जगतराज के तीसरे पुत्र का नाम वीरसिंह था। गुमानसिंह ने अपने काका वीरसिंह को अपने राज्य में बुला लिया और उन्हें मवई के पास ८० हजार की जागीर दी। परंतु वीरसिंहदेव ने और भी राज्य माँगा। गुमानसिंह ने अपने काका की प्रार्थना स्वीकार करके वि० सं० १८२६ में बिजावर का परगना और भी जागीर में दिया। यहाँ पर वीरसिंह ने अपनी एक अलग रियासत कायम कर ली। जब अलीबहादुर ने इस पर चढ़ाई की तब वीरसिंह ने इसका आधिपत्य न माना। इससे दोनों में युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में वीरसिंह चरखारी के पास मारा गया। पीछे से राजा हिम्मतबहादुर ने मध्यस्थ हो दोनों में सुलह करवा दी। वीरसिंह के पश्चात वि० सं० १८५० में इनके पुत्र केसरीसिंह राजा हुए। इन्हें वि० सं० १८५९ में अलीबहादुर ने सनद दी। परंतु अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने के समय राजा केसरीसिंह और चरखारी के राजा विजयबहादुर तथा छतरपुर के राजा कुँवर सोनेशाह के बीच सरहदी झगड़े लगे हुए थे। इससे अँगरेज सरकार ने इन्हें झगड़ों के अंतिम निर्णय तक सनद न दी। इसके मरने पर इसका पुत्र रतनसिंह वि० सं० १८६७ में राजा हुआ। इस समय सरहदी झगड़ों का निपटारा हो चुका था। इसलिये सरकार (अँगरेज) ने इसे वि० सं० १८६८ (१८११) को सनद दी।

१७—रतनसिंह वि० सं० १८८० (१७-१२-१८२३) में मरे। उनके कोई संतान न थी। इनकी रानी ने खेतसिंह के लड़के लक्ष्मणसिंह को गोद लिया। यह वि० सं० १९०४ में मरा और इसका लड़का भानुप्रतापसिंह राजगद्दी पर बैठा।

अध्याय २५

मराठों का राज्य

१—मराठों को छत्रसाल महाराज के राज्य का वह अंश मिला था जो दक्षिण में सिरौंज से लेकर उत्तर की ओर यमुना नदी तक चला गया है। इससे मराठों का राज्य यमुना नदी के पार तक पहुँच गया। इनके पास इस समय बहुत बड़ी सेना थी। उसके डर से मुसलमान लोग भी काँपने लगते थे। मल्हारराव होल्कर बाजीराव पेशवा के एक सरदार थे। विक्रम संवत् १७९२ में मल्हारराव ने बुंदेलखंड से आगरे तक धावा मारा और मुजफ्फरखाँ और खान दौरान को हराकर उनके अधिकार का बहुत सा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। छत्रसाल महाराज के पुत्र जगतराज और हृदयशाहजी, जो जैतपुर और पन्ना राज्य के अधिकारी हुए थे, मराठों को सदा सहायता देते रहे। इनकी सहायता से मराठों ने संवत् १७९३ में मथुरा, इलाहाबाद, इटावा इत्यादि स्थानों पर धावे किए। इस कार्य में छत्रसाल महाराज के द्वितीय पुत्र जगतराज, जो जैतपुर राज्य के अधिकारी थे, विशेष सहायक हुए। जब दिल्ली दरबार में यह खबर पहुँची तब बादशाह ने जगतराज से युद्ध करने का हुक्म दिया। अभी तक जितने मुसलमान सरदारों ने बुंदेलों से युद्ध किया था उनमें सबसे योग्य मुहम्मदखाँ बंगश ही निकला था। इसलिये दिल्ली दरबार की ओर से इसी मुहम्मदखाँ को बुंदेलों से लड़ने का हुक्म दिया गया। मुहम्मदखाँ बंगश दिल्ली दरबार की आज्ञा पाते ही बड़ी भारी सेना तैयार करके बुंदेलखंड पर आक्रमण करने को उद्यत हुआ। इसकी खबर जगतराज महाराज को लग गई और उन्होंने भी अपनी सेना तैयार की। बाजीराज पेशवा का भी संधि के नियमों के अनुसार कर्तव्य था कि वे जगतराज

महाराज की सहायता करें। इस कारण बाजीराव पेशवा भी अपनी बड़ी सेना लेकर बुंदेलों की सहायता के लिये आए। बुंदेलों से और मुहम्मदखाँ बंगश से विक्रम संवत् १७९३ में जैतपुर के समीप फिर से युद्ध हुआ। इस युद्ध में बुंदेलों और मराठों ने मिलकर मुहम्मदखाँ बंगश को अच्छी तरह से हरा दिया। जगतराज महाराज पेशवा की सहायता से बहुत प्रसन्न हुए। इन्होंने पेशवा को कई लाख रुपए दिए और उन्हें अपने राज्य की चौथ देना स्वीकार किया।

२—पेशवा के साथ मुसलमानों से युद्ध करने के लिये कई सर्दार आए थे। इनको उचित पुरस्कार देना पेशवा का कर्तव्य था। पेशवा को इस बार बुंदेलों की सहायता करने के बदले में बहुत सा धन और बहुत से इलाके की चौथ मिलने लगी थी। इसलिये पेशवा ने अपने सरदारों को बुंदेलखंड के मिले हुए सूबे शासन करने के लिये बाँट दिए। गोविंद बल्लाल खेर बड़ा ही शूर और पराक्रमी सरदार था। इसको पेशवा ने सागर और जालौन का प्रबंध, वि० सं० १७९२ में, अपने भतीजे की ओर से सौंपा। हृदयशाह ने हीरे की खदान में काम करने की अनुमति पेशवा को दे दी थी। खेर के सुपुर्द इस काम की देख-रेख भी की गई। हरी विट्ठल डिंगणकर को कालपी और हमीरपुर के कुछ परगने और कृष्णाजी अनंत तांबे को बाँदा और हमीरपुर का शेष भाग तथा जगतराज के राज्य की चौथ वसूल करने का अधिकार दिया गया।

३—इस प्रकार मराठों का प्रभाव बुंदेलखंड में और भी बढ़ गया। इन दिनों में बुंदेलों की शक्ति आपसी झगड़ों के कारण कम हो गई थी, इनसे मराठों ने इनका लाभ उठाकर अपना अधिकार बढ़ाया। परंतु मुसलमानों के विरुद्ध बुंदेले और मराठे दोनों मिले

रहे जिससे उत्तर की ओर से मुसलमानों का आक्रमण होना असंभव हो गया।

४—हरी विट्ठल डिंगणकर और कृष्णाजी अनंत तांबे ने कुछ दिन बुंदेलखंड के प्रांतों का शासन किया, परंतु फिर इनमें कुछ आपसी झगड़ा होने से सब प्रांत गोविंद बल्लाल खेर के अधिकार में आ गया। ये रत्नागिरी जिले के नेवरे नामक ग्राम के रहनेवाले कराड़े ब्राह्मण थे।

५—बाजीराव पेशवा के मरने के पश्चात् उनके पुत्र नाना साहब उर्फ बालाजी बाजीराव पेशवा हुए। इनके पेशवा होने के समय महाराज छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह की मृत्यु हो गई थी और उनके दो पुत्र सभासिंह और पृथ्वीराज राज्य के लिये लड़ रहे थे। सभासिंह को पन्नावालों ने राज्य दे दिया। इस पर पृथ्वीराज को बहुत बुरा लगा। पृथ्वीराज ने मराठों से सहायता माँगी। मराठों की ओर से गोविंद पंत अपनी फौज लेकर पृथ्वीराज की सहायता करने आए। पृथ्वीराज और सभासिंह दोनों भाइयों में युद्ध हुआ और पन्ना के समीप सभासिंह को पृथ्वीराज और मराठों ने हरा दिया। हारने पर विवश हो सभासिंह ने शाहगढ़ और गढ़ाकोटा पृथ्वीराज को दे दिया तथा अपने राज्य की चौथ देने का भी वादा किया। पृथ्वीराज के अधिकार में जो प्रांत आया था उसकी चौथ भी पृथ्वीराज मराठों को देने लगे। सभासिंह ने पन्ने के हीरों का तीसरा भाग भी मराठों को देने का वचन दिया। इस युद्ध के पश्चात् सारे बुंदेलखंड से मराठों को चौथ मिलने लगी और बुंदेले अपने आपसी झगड़ों के कारण बिलकुल बलहीन हो गए।

६—जैतपुर के राजा जगतराज ने सभासिंह की सहायता की थी। इस कारण मराठों ने जगतसिंह से भी उसके प्रदेश का कुछ भाग माँगा। बुंदेलों में ऐक्य न होने से प्रबल मराठे जो कुछ

उनसे कहते थे उन्हें मानना पड़ता था। इसलिये जगतराज ने अपने राज्य में से महोबा, हमीरपुर और काल्पी के परगने मराठों को दे दिए।

७—गोविंदराव पंत की सहायता से मराठों का अधिकार बुंदेलखंड में बढ़ता ही गया। यह सब गोविंदराव पंत के प्रयत्नों का ही फल था। इसलिये मराठा दरबार में गोविंदराव पंत का बड़ा मान होने लगा।

८—बुंदेलखंड मिल जाने से मराठों को बहुत सहायता मिली। उत्तर में दिल्ली की ओर और पश्चिम में राजपूताने की ओर आक्रमण करने की सब तैयारियाँ बुंदेलखंड में ही होने लगीं। बुंदेलखंड के सब बुंदेले राजा लोग मराठों को चौथ देते थे। ओड़छे के राजा ने भी मराठों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अब मराठों ने बड़ी भारी सेना तैयार कर ली थी। इस समय गोपालराव बर्वे, अन्नाजी माणकेश्वर, विट्ठल शिवदेव विंचूरकर, मल्हारराव होल्कर, गंगाधर यशवंत और नारोशंकर ये मराठों के प्रसिद्ध सरदार थे।

९—गोविंदराव पंत ने सागर और उसके आसपास का प्रांत अपने लड़के बालाजी गोविंद के अधिकार में कर दिया। सागर में बालाजी की सहायता के लिये रामराव गोविंद, केशव शंकर कान्हेरे, भीकाजीराम करकरे, रामचंद्र गोविंद चांदोरकर इत्यादि कर्मचारी थे। सागर की देखरेख इनके सुपुर्द करके गोविंदराव पंत अपने छोटे लड़के गंगाधर गोविंद को साथ लेकर काल्पी के समीप यमुना पार कर अंतर्वेद में एक बड़ी सेना के साथ पहुँचे। उस समय अंतर्वेद में रोहिल्ला लोगों का राज्य था। गोविंदराव पंत ने रोहलों को हराया और मानिकपुर तथा खुरजा अपने अधिकार में कर लिए। कोड़ा, जहानाबाद और इलाहाबाद पर भी मराठे अपना

अधिकार जमाना चाहते थे, परंतु यहाँ पर मुसलमानों ने मराठों को रोका। दिल्ली की एक बड़ी मुसलमान सेना ने यहाँ पर मराठों का सामना किया, परंतु मराठों ने उस सेना को हराकर भगा दिया। इस समय जो प्रांत मराठों के अधिकार में थे वे सब गोविंदराव पंत के प्रयत्न से ही आए थे। मराठों के अन्य प्रसिद्ध सरदार सेंधिया और होल्कर की इसमें कुछ भी सहायता न थी।

१०—दूसरे वर्ष गोविंदराव पंत ने सेंधिया और होल्कर से सहायता ली। सेंधिया और होल्कर से सहायता लेकर गोविंद-राव पंत ने इटावा, फफूँद और शकूराबाद जीत लिए। इसमें सेंधिया और होल्कर की सहायता होने के कारण जीते हुए प्रदेश में से फफूँद सेंधिया को और शकूराबाद होल्कर को मिला। शेष भाग गोविंदराव पंत के अधिकार में रहा। इटावा पर गोविंदराव पंत की ओर से मोरोपंत (या मोरो विश्वनाथ डिंगणकर) शासक नियत हुए। मोरोपंत के सहायक कृष्णाजी रामलघाटे नियत हुए।

मोरोपंत बाजीराव साहब के पुराने मुत्सद्दी, स्वामिभक्त और रणशूर कर्मचारी थे। सागर की सेना के ये ही अधिपति थे। गोंड़ राजाओं को इन्होंने अपने अधिकार में रखा था और गोंड़ राजा के हाथी पर की बहुमूल्य रेशमी झूल ले ली थी। अब यह झूल इंदौर में रहनेवाले गवर्नर-जनरल के एजेंट की कोठी में है।

११—नाना साहब पेशवा गोविंदराव पंत को बहुत चाहते थे। एक समय जब नाना साहब ने कर्नाटक पर आक्रमण करने का निश्चय किया तब उन्होंने द्रव्य रूप में कुछ सहायता गोविंदराव पंत से माँगी। गोविंदराव पंत ने तुरंत ही छियानबे लाख रुपए नाना साहब को दिए। नाना साहब इस पर बहुत प्रसन्न हुए।

१२—गोविंदराव पंत और पृथ्वीसिंह से बड़ी मित्रता थी। इन्होंने अपने स्वार्थ के लिये गोविंदराव पंत को मित्र बनाया था।

पीछे से सभासिंह को हरा उससे राज्य का भाग ले लेने में सफल हुए थे। महाराष्ट्र इतिहासकारों ने पृथ्वीसिंह की बड़ाई और सभासिंह की निंदा की है। परंतु पन्ना राज्य में जहाँ सभासिंह का राज्य था वहाँ पर सभासिंह से लोग असंतुष्ट न थे। पृथ्वीराज ने मराठों को चौथ देने और उनके अधीन रहने का वादा किया। इसी लालच के वश में होकर मराठों ने छत्रसाल महाराज का उपकार भूलकर अपनी सेना की सहायता से सभासिंह को हराकर सभासिंह के राज्य का आधा भाग पृथ्वीराज को दिलाया। पृथ्वीराज भी कभी कभी पेशवा के दरबार में जाया करते थे। वे एक समय तीन वर्ष तक लगातार पेशवा के दरबार में रहे थे। वे बड़े वीर थे। ऐसे कई प्रसंग आए जब पृथ्वीराज ने पेशवा को अपने बल और वीरता का परिचय दिया। जब नाना साहब ने कर्नाटक पर चढ़ाई की थी तब पृथ्वीराज भी युद्ध में गए थे और वहाँ पर बहुत वीरता से लड़े थे। वे ही महाराष्ट्र सेना के एक बड़े भाग के नायक थे और उन्होंने विजय प्राप्त करने में बहुत सहायता दी थी।

१३—गोविंदराव पंत मराठों के एक बड़े वीर, पराक्रमी और राजनीतिज्ञ सरदार गिने जाते थे। जब पूना के शासकों को कोई सहायता की आवश्यकता होती थी तब ये सहायता देते थे। झाँसी, काल्पी इत्यादि स्थानों में बड़े बड़े धनी साहूकार थे, जिनके पास से गोविंदराव पंत रुपए लेकर पूना भेजा करते थे। इन साहूकारों में रायराव, रतनसिंह और विशंभरदास का नाम प्रसिद्ध है। सारे बुंदेलखंड में गोविंदराव पंत का मान था। इस समय सारे भारतवर्ष में अराजकता सी फैल गई। दिल्ली के मुसलमान शासकों के बुरे प्रबंध के कारण उत्तर में रोहिले, राजपूताने में राजपूत और भरतपुर में जाट स्वतंत्र होने का प्रयत्न कर रहे थे। इस समय सब आपस में एक दूसरे से लड़ रहे थे और सारे भारतवर्ष में

मराठों के बराबर शक्तिशाली कोई दूसरा न था। बुंदेले लोग आपस की कलह के कारण हीन हो गए थे और सिक्खों का राज्य जम न पाया था। राजपूतों में भी ऐक्य न था। इसी कारण मराठों का डर सारे भारतवर्ष में बैठ गया। मराठों की इस वृद्धि का मूल कारण बुंदेलखंड का राज्य था। बुंदेलखंड मध्यभारत में होने के कारण मराठे यहाँ से जिस ओर जाना चाहते थे जा सकते थे। बुंदेले लोग आपस में लड़ते थे परंतु मराठों को जब सहायता की आवश्यकता पड़ती थी तब वे उन्हें बराबर सहायता देते थे। बुंदेलों की वीरता अतुलनीय थी। ये लोग जिस युद्ध में गए वहाँ बड़ी वीरता से लड़े। बुंदेलखंड मराठों को छत्रसाल महाराज ने दिया था परंतु अब ये महाराज छत्रसाल के वंशजों के ऊपर ही अधिकार किए बैठे थे। मराठों को इसका दोष देना ठीक नहीं। बुंदेलों की आपसी कलह ही इसका मूल कारण है।

१४—मराठों का राज्य बहुत विस्तीर्ण था। इसलिये भिन्न भिन्न स्थानों के लिये अलग सरदार नियत थे। बरार के लिये मराठों की ओर से राघोजी भोंसला और मालवे में रानाजी सेंधिया तथा मल्हारराव होल्कर थे।

अध्याय २६

भारतवर्ष में झगड़े

१—औरंगजेब के मरने पर दिल्ली में जो झगड़े शुरू हुए उनका अंत तभी हुआ जब कि मुगल सत्ता का अंत हुआ। मुहम्मदशाह के समय में सैयद भाइयों की ही चला करती थी। सैयद भाइयों से निजामुल्मुल्क नाराज था, क्योंकि सैयदों ने इसे दक्षिण की सूबेदारी से निकाल दिया था। निजामुल्मुल्क ने एक बड़ी सेना

तैयार करके सैयद भाइयों से वि० सं० १७७७ में युद्ध किया और सैयद भाइयों को उस युद्ध में हराकर जबरदस्ती दक्षिण के सूबे पर अधिकार कर लिया। हुसैनअली ने चाहा कि फिर से निजामुल्मुल्क से युद्ध करें परंतु इसी समय मुहम्मदशाह ने उसे धोके से मरवा डाला क्योंकि मुहम्मदशाह से और सैयद भाइयों से भी तकरार हो गई थी। जब हुसैनअली मारा गया तब उसका भाई सैयद अब्दुल्ला भी बादशाह मुहम्मदशाह के विरुद्ध हो गया। उसने बादशाह मुहम्मदशाह को तख्त से उतारने का प्रयत्न किया परंतु मुहम्मदशाह ने उसे भी मरवा डाला। ऐसे समय में बाजीराव पेशवा ने मुसलमानों के प्रांतों पर आक्रमण किया। मुहम्मदशाह ने निजामुल्मुल्क से सहायता ली। परंतु बाजीराव पेशवा ने वि० सं० १७९४ में निजामुल्मुल्क और बादशाह दोनों को हरा दिया और निजामुल्मुल्क से मालवे का सूबा ले लिया।

२—विक्रम संवत् १७९५ में भारतवर्ष पर नादिरशाह का आक्रमण हुआ। नादिरशाह पहले एक बड़ा लुटेरा था परंतु फिर अपनी सेना की सहायता से वह फारस और अफगानिस्तान का बादशाह बन गया था। मध्य एशिया की स्थिति भी उस समय भारतवर्ष के समान ही थी। व्यवस्थित राज्य न होने के कारण शासन सेना के बल से ही होता था और जो मनुष्य बड़ी सेना अपने अधिकार में कर सकता था वही राजा बन जाता था। नादिरशाह ने फारस और अफगानिस्तान का राज्य अपने अधिकार में करने के पश्चात् पाँचवें महीने में—मार्च सन् १७३९ में—दिल्ली पर आक्रमण किया। दिल्ली की बादशाही फौज को नादिरशाह ने आसानी से हरा दिया और बादशाह के महल पर नादिरशाह का अधिकार हो गया। दूसरे दिन दिल्ली में यह खबर फैल गई कि नादिरशाह मर गया है और इस खबर के फैलते ही दिल्ली-निवासी

नादिरशाह की फौज को दिल्ली से भगाने की चेष्टा करने लगे। परंतु यह हाल देखते ही नादिरशाह ने अपनी फौज को लूट-मार का हुक्म दे दिया। दिल्ली-निवासी, उनकी स्त्रियाँ और बच्चे निर्दयता से मारे गए और उनका सब माल लूट लिया गया। बादशाही खजाना भी नादिरशाह ने लूट लिया। नादिरशाह को करोड़ों रुपए और बहुत से हीरे मिले। कोहेनूर नाम का हीरा भी वह ले गया। दिल्ली से वापिस जाते समय उसने दिल्ली का राज्य फिर से मुहम्मदशाह को दे दिया। नादिरशाह की ओर से पंजाब प्रांत का शासक अहमदशाह अबदाली नियत किया गया था। नादिरशाह के मरने पर यही अहमदशाह अबदाली वि० सं० १८०५ में स्वतंत्र बन गया। इसने भी दिल्ली पर आक्रमण किया परंतु पहली बार मुहम्मदशाह ने इसे हरा दिया।

३—दिल्ली के बादशाह की स्थिति दिन पर दिन कमजोर होती गई। दिल्ली की बादशाहत के सब सूबेदार स्वतंत्र हो गए। दिल्ली की बादशाहत दिल्ली में ही रह गई। आगरा और भरतपुर में जाट लोगों ने अधिकार कर लिया। पंजाब में सिक्ख लोगों का स्वतंत्र राज्य स्थापित होने लगा। मैसूर में यादव लोगों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। परंतु फिर यादवों के मंत्री हैदरअली ने राजा के मरने पर राज्य पर अधिकार कर लिया। उत्तर में रोहिले लोग भी स्वतंत्र हो गए। अवध का सूबेदार सादतअलीखाँ भी स्वतंत्र हो गया। बंगाल का नवाब अलीवर्दीखाँ भी स्वतंत्र हो गया।

४—यूरोप के कई देशों के सौदागरों ने भारतवर्ष में आकर मुगल बादशाहों से सनदें ले लेकर समुद्र के किनारे के कई नगरों में कारखाने खोले। यहाँ से वे लोग यूरोप को भारतवर्ष से जाने-वाली वस्तुओं का व्यापार भी करते थे। धीरे धीरे भारतवर्ष के

सब समुद्रीय व्यापार को इन लोगों ने अपने अधिकार में कर लिया। जो नगर समुद्र के किनारे इनके पास थे उन पर इन लोगों ने अपने किले भी बनवाए। मद्रास, बंबई और कलकत्ता इन नगरों पर अँगरेजों का अधिकार हो गया था। फरासीसी लोगों ने भी पांडचेरी में अपना किला बनवा लिया था।

५—भारतवर्ष में मुसलमानों का राज्य कमजोर हो जाने पर मराठे ही सबसे प्रबल थे। बरार प्रांत के मराठे शासक राघोजी भोंसले ने बंगाल पर चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई में भोंसले ने अलीवर्दीखाँ को हरा दिया और वि० सं० १८०८ में उसके प्रदेशों में से उड़ीसा ले लिया।

६—पहले आक्रमण के समय अहमदशाह अबदाली मुहम्मदशाह से हार गया था। मुहम्मदशाह विक्रम संवत् १८०५ में मर गया। इसके मरने पर अहमदशाह नाम का बादशाह हुआ। जिस समय अहमदशाह दिल्ली का बादशाह था उस समय अहमदशाह अबदाली ने दिल्ली पर दूसरी बार आक्रमण किया। यह आक्रमण विक्रम संवत् १८०८ में हुआ। अबदाली ने बादशाह को हरा दिया और बादशाह के पास जो पंजाब का भाग था उसे ले लिया। अहमदशाह बादशाह को वजीर गाजिउद्दीन ने तख्त से उतार दिया और बादशाह और उसकी मा को पकड़कर वि० सं० १८११ में अंधा कर दिया। फिर वजीर गाजिउद्दीन ने जहाँदारशाह के लड़के को आलमगीर (दूसरा) के नाम से दिल्ली का बादशाह बनाया।

७—विक्रम संवत् १८१३ से और भी झगड़े भारतवर्ष में शुरू हुए। सारे देश में राजाओं में लड़ाइयाँ होने लगीं। अँगरेज लोगों ने भी अपनी सेना बढ़ाना आरंभ कर दिया। जब किसी राजा को सहायता की आवश्यकता होती थी तब अँगरेज लोग सहायता

देते थे और सहायता के बदले में उसके देश का कुछ भाग ले लेते थे। इसी प्रकार अँगरेजों ने अपना राज्य बढ़ाना आरंभ कर दिया। फरासीसी लोग भी इस तरह से अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। संवत् १८१३ में दक्षिण में तीन ही प्रबल राज्य थे। ये तीनों राज्य मराठों, अँगरेजों और फरासीसियों के थे। यूरोप में अँगरेजों और फरासीसियों में युद्ध छिड़ गया। यूरोप में युद्ध होने के कारण भारतवर्ष में भी इन दोनों में युद्ध होने लगा। इसी समय (विक्रम संवत् १८१३) में बंगाल का नवाब अलीवर्दीखाँ मर गया और उसका नाती सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब हुआ। दिल्ली के वजीर गाजिउद्दीन ने अहमदशाह अबदाली पर चढ़ाई करके पंजाब अपने अधिकार में कर लिया। इसलिये अहमदशाह अबदाली ने दिल्ली पर फिर से चढ़ाई की। उसने बादशाह की सेना को हरा दिया। दिल्ली में खूब लूटमार हुई और निवासियों का निर्दयतापूर्वक वध किया गया। दिल्ली की दुर्दशा करने के पश्चात् अबदाली ने मथुरा को लूटा। यहाँ भी उसने निवासियों को निर्दयता से मारा।

८—इस समय ऐसे झगड़ों के कारण किसी राजा को भी चैन न था। सब राजाओं का ध्यान अपनी रक्षा की ओर लगा हुआ था। राज्य-व्यवस्था की ओर किसी का ध्यान न था। पूने में भी राज्य-व्यवस्था कुछ अच्छी न थी। बुंदेलखंड में मराठों की व्यवस्था कुछ ठीक थी, परंतु यहाँ भी एक नया राज्य स्थापित हो रहा था। झाँसी के समीप ही गोसाईं लोगों ने बहुत सी सेना एकत्र की थी और वे मराठों को हराकर एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करना चाहते थे। गोसाईं लोगों का पहला राजा इंद्र गिरि था। इसने अपनी सेना लेकर संवत् १८०२ में मोठ परगने पर अपना अधिकार कर लिया। यहाँ पर गोसाईं लोगों ने एक किला

भी बनवाया। अपनी सेना बढ़ाकर वे लोग आसपास का देश अपने अधिकार में करने लगे। थोड़े ही दिनों में उन लोगों ने ११४ गाँव अपने अधिकार में कर लिए। उस समय झाँसी में मराठों की ओर से नारोशंकर नाम के एक सरदार नियत थे। नारोशंकर ने गोसाईं लोगों को दबाने का प्रयत्न किया। संवत् १८०७ में उन्होंने गोसाईं लोगों को एक युद्ध में हरा दिया। इंद्र गिरि को हारकर मोठ से भाग जाना पड़ा। मोठ से भागने पर इंद्र गिरि इलाहाबाद गया और इलाहाबाद से वह अवध के वजीर शुजाउद्दौला के पास आया। इंद्र गिरि बड़ा शूर-वीर पुरुष था। अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला ने इंद्र गिरि से प्रसन्न होकर उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया। नवाब शुजाउद्दौला इंद्र गिरि का बड़ा सम्मान करता था और वह अवध के मुख्य सैनिक सरदारों में से था। इंद्र गिरि की मृत्यु विक्रम संवत् १८०९ में हुई और उसके पश्चात् उसका चेला अनूप गिरि अवध में सेना का सरदार हो गया।

९—बुंदेलखंड में महाराज छत्रसाल के वंशज आपस में लड़ रहे थे। विक्रम संवत् १८१३ में हिंदूपत ने अपने भाई अमानसिंह को मरवाकर महाराज छत्रसाल के कुल को कलंकित किया। दो वर्ष के बाद ही जैतपुर के महाराज जगतराज की मृत्यु हुई। इनकी मृत्यु के बाद पहाड़सिंह, खुमानसिंह और गुमानसिंह के बीच में जो झगड़े हुए उनका उल्लेख हो चुका है। इन राज्यों के जागीरदार लोग भी राज्य-व्यवस्था न होने का लाभ उठाकर जहाँ-तहाँ स्वतंत्र बनने का प्रयत्न कर रहे थे।

१०—चारों ओर की गड़बड़ के कारण बुंदेलखंड के मराठों का लक्ष्य चारों ओर बँटा हुआ था। बुंदेलखंड का सब कार्य गोविंदराव पंत देखते थे। बुंदेलखंड महाराष्ट्र राज्य का उत्तरीय भाग होने से उत्तरीय भारतवर्ष के राजाओं की देखरेख भी गोविंदराव पंत

करते थे। जब दिल्ली के झगड़ों का हाल गोविंदराव पंत को मालूम हुआ तब उन्होंने उत्तर के जिलों की रक्षा करना बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य समझा। इसी उद्देश्य से वे सागर को छोड़कर कालपी में रहने लगे। सागर में गोविंदराव पंत की ओर से उनके दामाद[1] विसाजी गोविंद चांदोरकर राजकार्य देखने लगे। गोविंदराव पंत के पुत्र गंगाधर गोविंद और बालाजी गोविंद भी अपने पिता के साथ कालपी चले गए।

---

(१) वंशावली विसाजी गोविंद चांदोरकर सागर सुभेदार अंताजी पंत
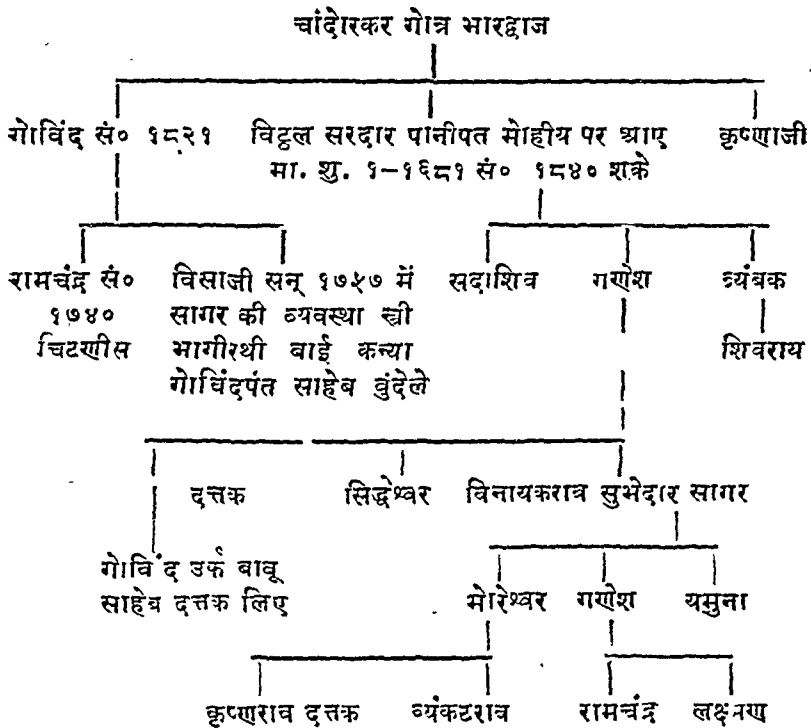
* दिए थे रामचंद्र राव र.जा झांसी।

यह वंशावली सागर के सूबेदार घराने से मिली है।

११—अहमदशाह अबदाली गाजिउद्दीन को हराकर, दिल्ली और मथुरा लूटता हुआ, वापिस चला गया। पंजाब पर फिर से अहमदशाह अबदाली का अधिकार हो गया। अहमदशाह अबदाली के चले जाने पर गाजिउद्दीन ने बदला लेना चाहा। उस समय भारतवर्ष में मराठों का राज्य सबसे शक्तिशाली था, इसलिये उसने मराठों से सहायता माँगी।

१२—अहमदशाह अबदाली की बढ़ती हुई शक्ति मराठों को अच्छी न लगती थी। अहमदशाह अबदाली के दिल्ली लूट लेने से मराठों को बहुत बुरा लग रहा था। मराठे किसी प्रकार अहमदशाह अबदाली की शक्ति को कम करना चाहते थे, इससे दिल्ली के वजीर गाजिउद्दीन का संदेश पाते ही मराठों ने अबदाली से युद्ध करने का निश्चय कर लिया। अवध के नवाब और रोहिले लोग दिल्ली के बादशाह से प्रसन्न थे। दिल्ली में भी वजीर और सरदारों में अनबन थी। मराठों ने युद्ध की तैयारी बिना दिल्ली दरबार की सहायता के की।

१३—पूना से मराठों की, चार लाख सैनिकों की, सेना उत्तर की ओर रवाना हुई। इस सेना को मार्ग में मराठों के सरदार सहायता के लिये मिलते गए। सेना बुरहानपुर, हरदा और नरवर होती हुई गई। बुंदेलखंड की मराठों की सेना गोविंद पंत की अध्यक्षता में अंतर्वेद होती हुई गई। इस युद्ध में बुंदेलों ने मराठों को बहुत सहायता दी। बुंदेलों की सेना के सिवा बुंदेलखंड से बहुत सा द्रव्य भी मराठों की सहायता के लिये भेजा गया था[1]।

१४—जिस समय दिल्ली में मराठों की सेना पहुँची उस समय

(१) "बुंदेले यार्णी व बागलकोटकर यार्णी व बंगाले खंडकर यार्णी सवाई राय जयसिंह यार्णी, व चित्तोडकर यार्णी गुप्तरूपे खजीना पाठविला तो कुंज पुरावरच होता" रघुनाथ यादवकृत पाणिपत ची बखर पृष्ठ १९।

सेना के खर्चे के लिये खजाना न पहुँच पाया था। फौज को खर्चे की बड़ी जरूरत थी और बादशाह ने मराठों की कोई सहायता न की। इसलिये मराठों ने जबरदस्ती बादशाही खजाने पर अधिकार कर लिया। दिल्ली पर भी मराठों ने अपना अधिकार कर लिया और दिल्ली के प्रबंध के लिये नारोशंकर मराठों की ओर से नियत किए गए।

१५—अवध का नवाब शुजाउद्दौला और रोहिले पहले से ही मराठों के विरुद्ध थे। इन्होंने अहमदशाह अबदाली को सहायता दी। मराठों ने वि० सं० १८१६ में दिल्ली के आगे बढ़कर अबदाली के राज्य पर आक्रमण करना आरंभ किया। शाहगढ़ से बुंदेलों की एक बड़ी फौज इस समय मराठों की सहायता के लिये पहुँची[1]। अहमदशाह अबदाली से जो युद्ध हुआ उसमें गोविंद पंत ने विशेष वीरता दिखाई। एक स्थान पर गोविंद पंत ने अहमदशाह अबदाली की एक सेना को हरा दिया और उसका पीछा भी किया। अबदाली की सेना को जो रसद जाती थी उसका जाना भी गोविंद पंत ने बंद कर दिया। गोविंद पंत से अबदाली की सेना को बड़ा डर लगने लगा। इन्हें हराने का अबदाली ने बड़ा प्रयत्न किया और अबदाली की सेना ने अचानक गोविंद पंत को घेर लिया। गोविंद पंत की सेना हरा दी गई और गोविंद पंत ने भागने का प्रयत्न किया। परंतु गोविंद पंत वृद्ध थे और बहुत मोटे थे। ये अचानक भाग न सके। अबदाली की सेना ने इन्हें पकड़ लिया और इनका सिर काट लिया।

१६—गोविंद पंत की हार होते ही सारी मराठी सेना निरुत्साहित हो गई। शेष सेना को अबदाली की सेना ने पानीपत में हरा

(१) शाहगढ़ से पचास हजार मनुष्यों की सेना गई। दत्तात्रेय बलवंत पारसनीस-कृत मराठ्यां चे पराक्रम बुंदेलखंड, पृष्ठ १२४ देखिए।

दिया। युद्ध बहुत देर तक होता रहा और इस युद्ध में दोनों ओर के बहुत से सैनिक मारे गए। मराठों की जो हानि हुई उसका वर्णन करना कठिन है। मराठों का अधःपतन इसी हार के पश्चात् आरंभ हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि लगभग दो लाख सैनिक मराठों की सेना के मारे गए और मराठों के कई नामी सरदार भी इस युद्ध में काम आए। युद्ध संवत् १८१८ में हुआ।

१७—इस युद्ध का हाल सुनते ही नाना साहब को इतना शोक हुआ कि उनकी मृत्यु उसी शोक के कारण हुई। गोविंद पंत की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र बालाजी गोविंद और गंगाधर गोविंद ने बुंदेलखंड का काम कुछ समय के लिये सँभाला। गोविंद पंत ने पानीपत के युद्ध के पहले बालाजी गोविंद को अंतर्वेद में नियत कर दिया था और जालौन और कालपी गंगाधर गोविंद के अधिकार में कर दिए थे। विसाजी गोविंद चांदोरकर पहले से ही सागर के शासक नियत थे।

१८—जब मराठे पानीपत के युद्ध में हारे तब अंतर्वेद मराठों के राज्य से निकल गया और उस पर अवध के नवाब ने अधिकार कर लिया। अंतर्वेद से बालाजी गोविंद आ गए और सागर तथा जालौन का कार्य देखने लगे। बालाजी गोविंद ने गंगाधर गोविंद की सहायता से अंतर्वेद ले लेने का प्रयत्न किया परंतु सफल न हुए। बुंदेलखंड में गोसाईं लोगों ने फिर आक्रमण करना आरंभ कर दिया और मराठों को अपने बचे हुए राज्य की रक्षा करने की फिक्र पड़ गई। यमुना के उत्तर का जो कुछ भाग मराठों के अधिकार में हो गया था उस पर फिर से रोहिलों ने अधिकार कर लिया। बुंदेलखंड के सब बुंदेले राजा मराठों को अभी तक चौथ देते आए थे परंतु पानीपत के युद्ध के पश्चात् उन्होंने भी चौथ देना बंद कर दिया। बुंदेलों और मराठों में जैसा प्रेम महाराज छत्रसाल के

समय में था वैसा अब न रहा। मराठों ने धन एकत्र करना ही अपना उद्देश्य समझा और मराठे लोग बुंदेले राजवंश के कुमारों के झगड़ों में सहायता दे उनसे राज्य लेकर अपना अधिकार बढ़ाते रहे। बुंदेले और मराठे दोनों ही आपसी झगड़ों के कारण बल-हीन हो गए और बुंदेलों के अद्वितीय गुण, रणचातुर्य और रण-विक्रम आपसी कलहों के कारण इन्हें कोई लाभ न पहुँचा सके।

अध्याय २७

गोसाईं लोगों के आक्रमण

१—जैतपुर के राजा पहाड़सिंह ने अपने वंशजों का भावी झगड़ा मिटाने के लिये अपने राज्य के तीन भाग कर दिए जिसमें एक गुमानसिंह को, दूसरा खुमानसिंह को और तीसरा गजसिंह को मिला। इसी प्रबंध के अनुसार गुमानसिंह का राज्य बाँदा और अजयगढ़ में, खुमानसिंह का चरखारी में और गजसिंह का जैतपुर में हुआ। इनके समकालीन पन्ना के राजा हिंदूपत थे।

२—अवध के नवाब शुजाउद्दौला के यहाँ अपने गुरु के मरने पर अनूप गिरि सैनिक सरदार हो गया था। अनूप गिरि बड़ा वीर सैनिक था, इसलिये नवाब ने इसे हिम्मतबहादुर की उपाधि दी थी। एक हजार सवार इसके अधिकार में रहते थे। जब बक्सर में संवत् १८२० में कंपनी की सरकार और अवध के नवाब के बीच में युद्ध हुआ तब हिम्मतबहादुर ने बड़ी वीरता दिखलाई थी। एक घाव अपनी जाँघ में खाकर हिम्मतबहादुर ने शुजाउद्दौला की जान बचाई थी। जब नवाब हारकर भागा तब भी हिम्मतबहादुर ने नवाब को बड़ी सहायता दी थी। इस पर नवाब ने प्रसन्न होकर हिम्मत-बहादुर को सिकंदरा और विंदकी के परगने दिए थे।

३—बुंदेलखंड पर आक्रमण करने का विचार हिम्मतबहादुर का पहले से ही था। शुजाउद्दौला ने हिम्मतबहादुर को इस कार्य में पूरी सहायता दी और अपने सरदार करामतखाँ को हिम्मत-बहादुर के साथ कर दिया। इस सेना को साथ लेकर हिम्मत-बहादुर ने बाँदा पर आक्रमण किया। बाँदा में इस समय गुमानसिंह के यहाँ नोने अर्जुनसिंह नाम के एक बड़े वीर सैनिक थे। अपनी सेना तैयार करके नोने अर्जुनसिंह ने तेंदवारी नामक ग्राम के समीप हिम्मतबहादुर से युद्ध किया। हिम्मतबहादुर को अच्छी तरह हराके उसकी सेना को भगा दिया और फिर उस भागती हुई सेना का पीछा किया। हिम्मतबहादुर तथा करामतखाँ को यमुना तैर-कर अपनी जान बचानी पड़ी। इस युद्ध में राजा गुमानसिंह को हिंदूपत ने भी सहायता दी थी।

४—हिम्मतबहादुर की हार के पश्चात् वीर बुंदेले फ़िर अपनी आपसी कलह में लग गए। जिन कलहों से इनका सर्वनाश हो रहा था उन्हें मिटाने के लिये इन्होंने कभी प्रयत्न न किया। चर-खारी के राजा खुमानसिंह और उनके भाई गुमानसिंह में भी वि० सं० १८३९ में युद्ध हो गया। नोने अर्जुनसिंह की सहायता से खुमानसिंह मार डाले गए और गुमानसिंह की जीत रही। यह युद्ध पँडवारी नामक ग्राम के निकट हुआ।

५—हिम्मतबहादुर ने फिर नवाब से सहायता लेकर बुंदेल-खंड पर आक्रमण किया। बुंदेलखंड में पहले हिम्मतबहादुर ने दतिया पर चढ़ाई की। दतिया के राजा रामचंद्र को हराकर हिम्मत-बहादुर ने चौथ वसूल की और फिर मोठ, गुरसराय आदि परगनों पर अपना अधिकार कर लिया। ये परगने मराठों के अधि-कार में थे। मराठों ने यह देखते ही पूना दरबार से सहायता माँगी। पूना दरबार में भी इस समय बड़े बड़े झगड़े हो रहे

थे। पेशवा बनने के लिये राघोबा नामक एक सरदार ने अपने भतीजे नारायणराव को वि० सं० १८२९ में मरवा डाला था। मराठे सरदार राघोबा से असंतुष्ट थे और वे चाहते थे कि राघोबा पेशवा न बन पावे। नाना फड़नवीस नामक एक सरदार राघोबा के बहुत विरुद्ध थे। परंतु जब बुंदेलखंड से सहायता माँगी गई तब नाना फड़नवीस ने सहायता भेजी। नाना फड़नवीस बुंदेलखंड के सूबेदार बालाजी गोविंद से प्रसन्न थे। बालाजी गोविंद भी राघोबा के विरुद्ध थे। इसलिये बालाजी गोविंद और नाना फड़नवीस में मित्रता थी। नाना फड़नवीस के हुक्म के अनुसार सेंधिया और होल्कर ने भी बालाजी गोविंद की सहायता की। यह सेना साथ ले बालाजी गोविंद ने हिम्मतबहादुर का सामना किया।

६—हिम्मतबहादुर की ओर से गुरसराय के किले पर सिंगार गिर और प्राणसिंह नाम के दो सरदार नियत थे। इनके पास सेना भी बहुत थी। इनसे लड़ने के लिये मराठों की ओर से दिनकर राव अन्ना तैयार हुए। दिनकर राव अन्ना ने गोसाईं लोगों से युद्ध करना बड़ा कठिन कार्य समझ बालाजी गोविंद से और भी सहायता माँगी और झाँसी के सूबेदार रघुनाथराव हरी नेवलकर दिनकरराव अन्ना की सहायता के लिये भेजे गए। इन दोनों ने गोसाईं लोगों को हरा दिया और उन्हें हारकर किला छोड़कर चला जाना पड़ा। बालाजी गोविंद ने दिनकरराव से प्रसन्न होकर गुरसराय का सब प्रबंध उनके अधिकार में कर दिया।

७—मराठों के पास होल्कर और सेंधिया की सहायता भी पहुँची। इस सेना को लेकर रघुनाथराव हरी नेवलकर ने फिर गोसाईं लोगों पर आक्रमण किया। इस समय अवध के नवाब और हिम्मतबहादुर में अनबन हो गई थी। जब नवाब ने देखा

कि हिम्मतबहादुर अवध के राज्य की परवा न करके अपना स्वतंत्र राज्य जमाने के प्रयत्न में लगा है तब वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने हिम्मतबहादुर के भाई उमराव गिर को कैद कर लिया। मराठों को यह झगड़ा मालूम हो गया था और उन्होंने ऐसे समय में हिम्मतबहादुर को हरा देने का अच्छा अवसर सोचा।

८—कालपी के निकट गोसाइयों और मराठों में गहरी लड़ाई हुई। अनूप गिर उर्फ हिम्मतबहादुर हार गया और वह अवध की ओर भागा। उसके सब सैनिक सेंधिया की सेना में भरती हो गए। पीछे से अनूप गिर भी सेंधिया की सेना में भरती हो गया। मराठों ने गोसाईं लोगों को संवत् १८३२ के लगभग हराया।

अध्याय २८

अँगरेजों का आक्रमण

१—अँगरेजों और फरासीसियों का युद्ध संवत् १८२० में समाप्त हुआ और इस युद्ध में अँगरेजों की जीत हुई। अँगरेज लोग धीरे धीरे अपना राज्य बढ़ा रहे थे। मुगलों से सनदें लेकर अँगरेजों ने कारखाने खोले और इन कारखानों की रक्षा के बहाने वे लोग सेना रखने लगे और कारखानों के आसपास किले भी बनवाने लगे। जिस समय राजाओं में आपसी युद्ध हो रहे थे उस समय अँगरेजों ने अपनी सेना बढ़ाई और कमजोर राजाओं से देश लेना इन्होंने आरंभ कर दिया। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते अँगरेज लोग भारतवर्ष के सबसे अधिक शक्तिमान् राज्य के अधिकारी हो गए[1]। बक्सर के युद्ध के पश्चात

---

(१) एक अँगरेजी लेखक ने अँगरेजों की वृद्धि का निम्नलिखित वर्णन किया है—

From factories to forts, from forts to fortifications, from fortifications to garrisons, from garrisons to

अँगरेजों को बंगाल की आमदनी वसूल करने का अधिकार मिल गया। इस समय अँगरेजों की ओर से गवर्नर लार्ड क्लाइव था।

२—बाजीराव के पश्चात् उनका पुत्र बालाजी बाजीराव उर्फ नाना साहब पेशवा हुआ। नाना साहब के मरने पर पूना में फिर झगड़े शुरू हो गए। अधिकतर सरदारों की सम्मति से माधवराव पेशवा हुए पर थोड़े ही दिनों के बाद वि० सं० १८२६ में वे राजयक्ष्मा रोग से मर गए। इनके मरने पर इनके भाई नारायणराव पेशवा बनाए गए। नारायणराव पेशवा राघोबा की सहायता से मार डाले गए और राघोबा ने स्वयं पेशवा होने का दावा किया। महाराष्ट्र के सरदार चाहते थे कि राघोबा पेशवा न हो। इन सरदारों में मुख्य नाना फड़नवीस थे। जब राघोबा ने पेशवा बनना बहुत कठिन देखा तब इसने अँगरेजों से सहायता माँगी। अँगरेज लोगों को यह सुनकर बहुत हर्ष हुआ और उन्होंने राघोबा की सहायता के लिये अपनी सेना भेजी। इस सहायता के कारण महाराष्ट्र में बहुत परिवर्तन हुए परंतु इनका सबसे पहला धक्का बुंदेलखंड को लगा।

३—बुंदेलखंड की स्थिति इस समय बड़ी शोचनीय थी। बुंदेलखंड के दक्षिण में गोंड लोगों का राज्य था। गोंड राज्य धीरे धीरे छोटा होता जाता था और इस समय गोंड राजा और मराठों से भी झगड़े हो रहे थे। पेशवा ने महाराजशाह पर आक्रमण करके उसे हरा दिया और महाराजशाह युद्ध में मारा भी गया।

---

armies, and from armies to conquests, the gradations were natural and the result inevitable; where we could not find a danger, we were determined to find a quarrel—

Philip Francis, Speech on Indian affair. 1687 A.P.

महाराजशाह के पुत्र शिवराजशाह ने मराठों से सुलह कर ली और मराठों को चार लाख रुपए सालाना मिलने भी लगे। यह रकम चौथ के रूप में सागरवालों को दी जाती थी। भोंसले भी ललचाए और उन्होंने भी गोंड राज्य से चौथ माँगी। परंतु गोंड-राज्य चौथ न दे सकता था और नागपुरवालों से लड़ भी न सकता था। इसलिये राजा शिवराजशाह ने अपने राज्य के ६ गढ़ भोंसलों को दे दिए। शिवराजशाह के मरने पर उसका लड़का दुर्जनशाह संवत् १८०६ में गद्दी पर बैठा परंतु इससे प्रजा असंतुष्ट थी और इसके काका निजामशाह ने इसे मरवा डाला और वह राजा बन गया। निजामशाह ने शासन अच्छा किया और मराठों को चौथ देना बंद कर दिया। सागरवालों ने निजामशाह पर आक्रमण करके उसे हराया और उसके भतीजे नरहरशाह को राजा बनाया। नागपुरवालों ने निजामशाह के पुत्र सुमेरशाह का पक्ष लेकर नरहर-शाह को गद्दी से उतार दिया और सुमेरशाह को राजा बनाया। सागरवालों ने फिर गढ़ा पर चढ़ाई की, सुमेरशाह को कैद कर लिया और नरहरशाह को राजगद्दी दी। नरहरशाह राजा था, परंतु मराठे नरहरशाह के राज्य में बहुत हस्तक्षेप करते थे और गढ़ा में मराठों की एक सेना भी रहती थी। नरहरशाह यह पसंद न करता था और वह अपने मंत्री गंगा गिर की सहायता से मराठों से स्वतंत्र होने का प्रयत्न कर रहा था।

४—बुंदेलखंड के बुंदेले राजाओं में भी झगड़े हो रहे थे। गुमानसिंह और खुमानसिंह के युद्ध का हाल लिखा जा चुका है। पन्ना राज्य में भी इसी प्रकार के आपसी झगड़े हो रहे थे। राजा हिंदूपत की मृत्यु विक्रम संवत् १८३४ में हुई। इनके बड़े पुत्र सरमेदसिंह को राज्य न दिया गया परंतु छोटे पुत्र अनिरुद्धसिंह को राज्य मिला। पन्ना राज्य में इस समय दो दीवान थे। इन दोनों

में राजा अनिरुद्धसिंह बेनी हजूरी का पक्ष लेते थे और दूसरे दीवान कायमजी चौबे की कुछ न चल पाती थी। इसलिये कायमजी चौबे भी सरमेदसिंह को उसकाने का प्रयत्न कर रहे थे। कई राजा लोग भी सरमेदसिंह की सहायता के लिये तैयार थे। सारा बुंदेलखंड इस पन्ना राज्य-संबंधी झगड़ों में लगा हुआ था। इसी समय अँगरेजों ने इस झगड़े से फायदा उठाया।

५—राघोबा को अँगरेजों ने सहायता देने के लिये सेना भेजने का निश्चय कर लिया। फौज कलकत्ते से भेजी जानेवाली थी। साधारणतः फौज कलकत्ते से बंबई को जलमार्ग से भेजी जाती थी। परंतु अँगरेजों को मध्यभारत का हाल मालूम था इसलिये उन्होंने अपनी सेना मध्यभारत में से भेजने का निश्चय किया। अवध के सूबेदार अँगरेजों के मित्र थे इसलिये अँगरेजों की सेना यहाँ तक आसानी से आ सकती थी। अँगरेज लोग किसी प्रकार काल्पी पर अपना अधिकार कर लेना चाहते थे और इसी लिये उन्होंने अपनी सेना मध्यभारत होती हुई भेजी थी। काल्पी एक बड़ा प्रधान नगर समझा जाता था। जिसके अधिकार में यह नगर आ जाता था उसे चारों ओर आक्रमण करना आसान हो जाता था। मुसलमानों ने जब बंगाल पर पहले आक्रमण किया था तब उन्होंने काल्पी पर अपना अधिकार सबसे पहले किया था। मराठों ने दिल्ली पर जब आक्रमण किया तब काल्पी का उनके अधिकार में होना उन्हें बहुत सहायक हुआ था। अँगरेज लोग काल्पी को मध्यभारत की कुंजी समझते थे और चाहते थे कि किसी भी प्रकार उनका अधिकार काल्पी पर हो जाय। उन्हें काल्पी पर चढ़ाई करने का बहाना यही था कि वे राघोबा पेशवा की सहायता को जाना चाहते थे। बुंदेलखंड के मराठे राघोबा के विरुद्ध थे और उन्होंने अँगरेजों की गति रोकने का निश्चय कर लिया था। काल्पी, जालौन और

कौंच के प्रबंध की देख-रेख इस समय गंगाधर गोविंद करते थे।

६—कलकत्ते की सेना जो मध्यभारत की ओर रवाना हुई उसके नायक कर्नल वेलेस्ली थे। इन्होंने गंगाधर गोविंद से मध्य भारत होते हुए जाने की अनुमति माँगी पर गंगाधर गोविंद ने अनुमति न दी। कर्नल वेलेस्ली ने बुंदेलखंड में घुसने का निश्चय कर ही लिया था और उन्होंने संवत् १८३५ में काल्पी पर आक्रमण कर दिया। काल्पी के समीप मराठों से अँगरेजों ने युद्ध किया। अँगरेजों ने मराठों को हराकर काल्पी पर अधिकार कर लिया। इतने पर भी मराठों ने धैर्य न छोड़ा और उन्होंने अँगरेजों की सेना को काल्पी से आगे न बढ़ने दिया। चार मास तक अँगरेज लोग काल्पी में रहे आए और आगे न बढ़ सके। परंतु अँगरेज लोग भी वहीं पर अड़े रहे। उस समय अँगरेजों का गवर्नर वारेन् हेस्टिंग्ज बड़ा कूटनीतिज्ञ था। उसने नागपुर के भोंसले से एक गुप्त संधि कर ली थी जिसके अनुसार भोंसले ने अँगरेजों की सेना को न रोकने का वचन दिया था। भोपाल के नवाब को भी अँगरेजों ने मिला लिया था। इसलिये अँगरेजों को डर केवल यमुना से विंध्यगिरि तक का ही था, क्योंकि इस भाग पर ही गंगाधर गोविंद का अधिकार था। शेष भाग पर भोपाल के नवाब और भोंसले का अधिकार था और इन लोगों ने अँगरेजों की फौज को न रोकने का वचन दे दिया था। परंतु गंगाधर गोविद के राज्य से निकलना ही अँगरेजों को असंभव मालूम होने लगा। इसलिये अँगरेजों ने दूसरी युक्ति सोची। वेलेस्ली के एक सहायक सेनापति गॉडर्ड ने कायमजी चौबे को मिलाया। कायमजी चौबे को आशा दी गई कि अँगरेज लोग तुम्हारी सहायता करेंगे। विश्वास में आकर कायमजी ने केन नदी के किनारे से बुंदेलखंड में से होते हुए जाने का मार्ग दे दिया। अँगरेज लोग इस मार्ग से निकल गए। यह सेना कर्नल

गॉडर्ड के साथ मालथैान, खिमलासा, भिलसा और हुशंगाबाद होती हुई दक्षिण में पहुँची। भोपाल के नवाब और भोंसले ने अँगरेजों की संधि के अनुसार अँगरेजी सेना को न रोका। गॉडर्ड सेंधिया को हराता हुआ महाराष्ट्र में पहुँचा और वहाँ मराठों से उसका युद्ध हुआ। इस युद्ध का अंत संवत् १८३९ में हुआ। अँगरेजों और मराठों से संधि हो गई और राघोबा पेशवा न बनाया गया, वरन नारायण राव का पुत्र माधव नारायण पेशवा बनाया गया। इस प्रकार नाना फड़नवीस की बात रह गई। नाना फड़नवीस पहले से ही माधव नारायण के सहायक थे।

७—बुंदेलखंड में से अँगरेजों के निकलने से मराठों की व्यवस्था शिथिल हो गई। परंतु मराठों ने अँगरेजों के चले जाने पर काल्पी पर फिर अधिकार कर लिया। अँगरेजों ने कायमजी चौबे को सहायता देने का वादा किया था। परंतु कायमजी चौबे और बेनी हजूरी में जो युद्ध हुआ उसमें अँगरेजों की कोई सहायता न थी।

८—कायमजी चौबे ने सरमेदसिंह का पक्ष लिया। बाँदा के राजा गुमानसिंह ने अपने प्रसिद्ध सेनापति नोने अर्जुनसिंह को सरमेदसिंह की सहायता को भेजा। इस युद्ध के लिये दोनों ओर से बड़ी तैयारियाँ हुईं। यह युद्ध इतना घोर हुआ कि इसे कई विद्वानों ने बुंदेलखंड का महाभारत कहा है। पन्ना राज्य की सेना का नायक बेनी हजूरी था। बेनी हजूरी और नोने अर्जुनसिंह का युद्ध गठेवरा के निकट संवत् १८४० में हुआ। इस युद्ध में कई वीर मारे गए। कहा जाता है कि इस युद्ध के कारण सारा बुंदेलखंड वीरों से खाली हो गया। नोने अर्जुनसिंह बड़ी वीरता से लड़े। उनके शरीर में १८ घाव लगे थे। अंत में नोने अर्जुनसिंह की विजय हुई। बेनी हजूरी युद्ध में मारा गया। पन्ना का राज्य सरमेदसिंह को मिला।

अध्याय २९

गोंड राज्य का पतन

१—जिस समय अँगरेजों और मराठों से युद्ध हो रहा था और अँगरेजों की फौज बुंदेलखंड होती हुई दक्षिण पहुँची उस समय बुंदेलखंड के मराठों ने अँगरेजों से कालपी वापिस ले लेने का प्रयत्न किया। ज्योंही कर्नल गॉडर्ड नर्मदा पार करके दक्षिण में गया त्योंही मराठों ने झाँसी और सागर की फौज इकट्ठी करके कालपी पर चढ़ाई की और अँगरेजों के हाथ से कालपी ले ली। जिस समय सागर की सेना कालपी गई उस समय गोंड लोगों ने मराठों से बदला लेने का अच्छा अवसर सोचा। नरहरशाह और उनका मंत्री गंगा गिर ये दोनों मराठों से पहले से ही नाराज थे।

२—मराठों की ओर से सागर का प्रबंध विसाजी गोविंद कर रहे थे। इन्होंने एक बड़ी भारी सेना के साथ चढ़ाई कर गढ़ा मंडला का इलाका नरहरशाह से छीन लिया था। संवत् १८३९ में विसाजी गोविंद जबलपुर में ही थे। इस समय नरहरशाह गोंड ने सात हजार सैनिकों की सेना लेकर मराठों पर हमला किया। गंगा गिर ने विसाजी गोविंद को गढ़ा के निकट हरा दिया। हारकर विसाजी गोविंद जबलपुर की ओर भागे। अंत में गोंड लोगों ने इन्हें घेरकर मार डाला।

३—इस विजय से गोंड लोगों का मन खूब बढ़ गया। उन्होंने मराठों के किलों को लूटना आरंभ कर दिया। दमोह जिले का तेजगढ़ का किला गोंड लोगों ने अपने अधिकार में कर लिया। फिर वे लोग जबलपुर की ओर वापिस गए और मराठों की जो सेना जबलपुर में रह गई थी उसे उन्होंने वहाँ से मार भगाया।

४—गोंड लोगों से लड़ने के लिये मराठों ने अपने सरदार बापूजी नारायण को एक बड़ी सेना के साथ चैारागढ़ की ओर भेजा। गोंड लोगों ने भी अपनी सेना मराठों से लड़ने के लिये चैारागढ़ भेजी। मराठों ने गोंड लोगों की बड़ी सेना का सामना करना ठीक न समझा। वे चैारागढ़ को छोड़कर बलेह की ओर आ गए। जबलपुर से मराठों की जिस सेना को गोंड लोगों ने भगा दिया था उसे साथ लेकर विसाजी गोविंद के दीवान अंताजीराम खांडेकर दमोह पहुँचे और मराठों की एक दूसरी सेना केशव महादेव चांदोरकर नामक सरदार के साथ मराठों की सहायता के लिये पहुँच गई। फिर मराठों से और गोंड लोगों से तेजगढ़ के समीप युद्ध हुआ। यह युद्ध बहुत दिनों तक होता रहा और इसमें मराठों की जीत हुई। तेजगढ़ का किला मराठों के अधिकार में आ गया और गोंड राजा नरहरशाह अपनी सेना लेकर चैारागढ़ की ओर भाग गया।

५—जिस समय यह युद्ध हो रहा था उस समय बालाजी गोविंद कालपी में थे। उन्होंने सागर में अपने पुत्र रघुनाथ राव उर्फ आबा साहब को नियत कर दिया। आबा साहब ने हटा, तेजगढ़ इत्यादि किलों पर उचित सेना रखकर सब राज्य-व्यवस्था देखी। फिर अपनी सब सेना लेकर ये गोंड लोगों से लड़ने जबलपुर की ओर चले। जबलपुर में इन्हें कोई युद्ध न करना पड़ा और ये अपनी सेना लेते हुए मंडला पहुँचे। मोरो विश्वनाथ नामक मराठे सरदार भी यहाँ सहायता के लिये आ पहुँचे। आबा साहब ने मंडला की गोंड सेना को भगाकर मंडला पर अधिकार कर लिया। फिर वे जबलपुर में आए और पाटन के निकट मोरो विश्वनाथ को जबलपुर का सूबेदार नियत किया। गोंड राजा नरहरशाह इस समय अपनी सेना लेकर चैारागढ़ के किले में था। आबा साहब अपनी सेना लेकर चैारागढ़ पहुँचे। तेजगढ़ से भी कुछ सेना यहाँ

सहायता के लिये आ पहुँची। चौरागढ़ पर गोंड लोगों की सेना बिलकुल हरा दी गई और राजा नरहरशाह औ दीवान गंगा गिर कैद कर लिए गए। इन दोनों को आबा साहब ने खुरई के किले में रखा। परंतु कुछ दिनों के बाद गंगा गिर हाथी के पैर से बँधवाकर मरवा डाला गया।

६—आबा साहब को गोंड लोगों के राज्य की लूट में बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ मिली थीं। इनकी और मोरो पंत की वीरता से मराठों ने गोंड लोगों के राज्य पर फिर भी अपना अधिकार कर लिया।

७—मोरोपंत का देहांत संवत् १८५४ में हुआ। उस समय आबा साहब अपने पिता बालाजी के पास काल्पी में थे। मोरो पंत के पश्चात् उनके पुत्र विश्वासराव सागर के सूबे का कार्य देखने लगे। इस समय होल्कर और सेंधिया का पेशवा से झगड़ा हो गया। झगड़े का कारण यही था कि होल्कर और सेंधिया पेशवा से स्वतंत्र बनना चाहते थे। जब आबा साहब काल्पी में थे और मोरो पंत का देहांत हुआ तब होल्कर ने सागर को अपने अधिकार में कर लेने का अच्छा अवसर सोचा। होल्कर ने अपने मीरखाँ नामक सरदार को सागर पर आक्रमण करने के लिये भेजा। मीरखाँ ने आकर सागर को घेर लिया। सागर की सेना ने होल्कर की सेना से बड़ा घोर युद्ध किया। यह समाचार आबा साहब को काल्पी में मालूम हुआ। काल्पी से वे एक बड़ी सेना लेकर सागर की ओर आए। सागर के समीप आकर उन्हें मालूम हुआ कि होल्कर की सेना बहुत भारी है और उससे लड़ना बड़ा कठिन कार्य होगा। इसलिये उन्होंने नागपुर के भोंसला से सहायता माँगी। भोंसला ने सहायता दी और उस सेना की सहायता से होल्कर की सेना बिलकुल हरा दी गई

होलकर का सरदार मीरखाँ हार मानकर वापिस चला गया। इस सहायता के बदले सागरवालों ने नागपुर के भोंसला को मंडला, तेजगढ़, धामौनी तथा चौरागढ़ के किले और उनके आसपास का देश दे दिया।

८—काल्पी में आबा साहब के पिता बीमार थे। इसलिये आबा साहब फिर काल्पी गए और सागर का प्रबंध उन्होंने लक्ष्मण परशुराम को सौंप दिया। आबा साहब काल्पी न पहुँच पाए थे कि उनके पिता बालाजी गोविंद की मृत्यु हो गई। बालाजी गोविंद के मरने के नौ मास पीछे उनके भाई गंगाधर गोविंद की भी मृत्यु हो गई। गंगाधर गोविंद महाराष्ट्र के योग्य शासकों में गिने जाते हैं।

९—रघुनाथराव उर्फ आबा साहब बालाजी गोविंद के इकलौते पुत्र थे। गंगाधर गोविंद के भी एक ही पुत्र था जिसका नाम गोविंद गंगाधर उर्फ नाना साहब था। बालाजी और गंगाधर जब वृद्ध हुए तब उन्होंने अपने अपने पुत्रों की देख-रेख दिनकरराव अन्ना के सुपुर्द कर दी।

१०—बालाजी और गंगाधर की मृत्यु से मराठों की सत्ता को बड़ी चोट पहुँची। रघुनाथराव ने राज्य-प्रबंध उत्तम करने का प्रयत्न किया। इनके दरबार में पद्माकर कवि रहते थे। पद्माकर कवि का जन्म संवत् १८१० में सागर में हुआ था। ये सेंधिया और हिम्मतबहादुर के दरबार में भी रहे थे। ये नोने अर्जुनसिंह के गुरु थे और इन्होंने एक तलवार सिद्ध करके नोने अर्जुनसिंह को दी थी। परंतु जब हिम्मतबहादुर ने नोने अर्जुनसिंह को हरा दिया तब पद्माकर ने नोने अर्जुनसिंह की कीर्ति न गाई परंतु हिम्मतबहादुर-विरदावली बनाई। इनका देहांत संवत् १८९०

में हुआ[1]। रघुनाथराव का देहांत संवत् १८५९ में हुआ। इनके पिता बालाजी गंगाधर से बड़े थे इसलिये पेशवा ने चाहा कि रघुनाथ राव की ही संतति बुंदेलखंड की सूबेदारी करे। इसलिये यह निश्चय हुआ कि जब नाना साहब के पुत्र हो तब वह रघुनाथराव की विधवा की गोद में दिया जाय।

११—संवत् १८५२ में माधव नारायण पेशवा का देहांत होने पर पूना में राघोबा का पुत्र बाजीराव पेशवा हुआ। सेंधिया और होल्कर इस बाजीराव का पेशवा होना पसंद न करते थे। इस पेशवा ने नाना फड़नवीस को भी पदच्युत कर दिया। नाना फड़नवीस का देहांत संवत् १८५७ में हुआ। इनके पश्चात् पूना में कोई चतुर राजनीतिज्ञ न रहा। सेंधिया और होल्कर ने पेशवा को हराकर कैद कर लिया। इससे उसने अपने पिता राघोबा के मित्र अँगरेजों से सहायता माँगी। इसका परिणाम जो हुआ सो आगे लिखा जायगा।

अध्याय ३०

अलीबहादुर की नवाबी

१—बुंदेलखंड में राजाओं का प्रबंध ठीक न होने से जहाँ तहाँ जागीरदार स्वतंत्र राजा बनते जाते थे। सोनेशाह पँवार पन्ना

---

(१) पद्माकर ने रघुनाथराव का यश-वर्णन निम्नलिखित किया है—

दाहन तैं दूनी तेज तिगुनी त्रिशूलन तैं
        चिल्लिन तैं चौगुनी चलाँक चक्र चाली तैं।
कहै पद्माकर महीप रघुनाथराव
        ऐसी समसेर शेर शत्रुन पै घाली तैं॥
पाँचगुनी पव्व तैं पचीसगुनी पावक तैं
        प्रगट पचासगुनी प्रलय-प्रनाली तैं।
साठगुनी सेस तैं सहसगुनी स्रावन तैं
        लाखगुनी लूक तैं करोरगुनी काली तैं॥

के राजा सरमेदसिंह के जागीरदार थे। ये केरुआ नामक ग्राम में रहते थे परंतु पन्ना-नरेश ने प्रसन्न होकर इन्हें छत्रपुर की जागीर दी थी। सोनेशाह धीरे धीरे अपनी जागीर के स्वतंत्र राजा बन गए। वीरसिंह भी, जिन्हें गुमानसिंह ने बिजावर की जागीर दी थी, अब स्वतंत्र राजा बन गए। पृथ्वीराज को शाहगढ़ और गढ़ाकोटा का राज्य मराठों की सहायता से मिला था। मराठे पृथ्वीराज से चौथ लेते थे और सदा इन्हें दबाए रखते थे। पृथ्वीराज के तीन पुत्र थे। इनके नाम किसुनजू, नारायणजू और हरीसिंह थे। पृथ्वीसिंह के मरने पर किसुनजू राजा हुए, परंतु शीघ्र ही इनका देहांत हो गया। किसुनजू के पश्चात् उनके भाई हरीसिंह संवत् १८२९ में राजा हुए। हरीसिंह बड़े धार्मिक और ईश्वरभक्त थे। इनसे प्रजा संतुष्ट थी और इनका प्रबंध भी उत्तम था। इनका देहांत काशी में संवत् १८४२ में हुआ। इनके पश्चात् इनके पुत्र मर्दनसिंह राजगद्दी पर बैठे। मर्दनसिंह ने राज्य-प्रबंध में बहुत उन्नति की। ये महलों के बनवाने के बड़े शौकीन थे। गढ़ाकोटा के निकट इनके बनवाए कई मकान पाए जाते हैं। गढ़ाकोटा में जो 'रहस' अर्थात् चौपायों का बड़ा भारी मेला लगता है वह इनके समय से ही चला है।

२—मर्दनसिंह को मराठों का हस्तक्षेप पसंद न था। मराठे चौथ के सिवा जब चाहे तब अधिक द्रव्य माँगा करते थे। जब मराठों की शक्ति अँगरेजों के युद्ध के कारण क्षीण हो गई तब मर्दनसिंह ने मराठों को चौथ देना बंद कर दिया। सागर के आबा साहब ने मर्दनसिंह को फिर से अपने अधिकार में करने के लिये सेना भेजी। मर्दनसिंह के पास भी यथेष्ट सेना थी। इनके दीवान का नाम जालमसिंह था। जालमसिंह ने आबा साहब की सेना को गढ़ाकोटा के निकट हरा दिया और मराठों की सेना

को वापिस जाना पड़ा। आबा साहब ने फिर से अपनी सेना मर्दनसिंह से युद्ध करने के लिये भेजी। इस समय आबा साहब स्वयं युद्धक्षेत्र में पहुँच गए। मर्दनसिंह की सेना ने आबा साहब को इस बार भी हरा दिया। इस युद्ध के समय मर्दनसिंह को नागा लोगों ने सहायता दी थी।

३—मराठों को इस प्रकार शाहगढ़ और गढ़ाकोटा के राजा मर्दनसिंह ने हरा दिया और मर्दनसिंह का राज्य मराठों से स्वतंत्र हो गया। अन्य बुंदेले राजाओं ने भी मर्दनसिंह का अनुकरण किया और मराठों को चौथ देना बंद कर दिया। सारे बुंदेलखंड से मराठों की सत्ता उठने लगी। ऐसे संकट के समय बुंदेलखंड के मराठों ने पूना से सहायता माँगी। पूना से सहायता के लिये बड़ी भारी सेना भेजी गई। इस सेना का नायक अलीबहादुर था।

४—अलीबहादुर बाजीराव पेशवा के वंश का था। जिस समय बाजीराव पेशवा को महाराज छत्रसाल ने अपने राज्य का तृतीयांश दिया उस समय बाजीराव के साथ पन्ना दरबार की वेश्या की पुत्री मस्तानी पेशवा के साथ चली गई। बाजीराव पेशवा इसे बहुत चाहते थे और इसके गर्भ से बाजीराव पेशवा का एक पुत्र शमशेरबहादुर नाम का हुआ। शमशेरबहादुर ने पानीपत के युद्ध में सेनानायक का काम किया था और उसकी मृत्यु उसी युद्ध में हुई। शमशेरबहादुर के लड़के का नाम अलीबहादुर था। यही अलीबहादुर पूना से मराठों की सहायता के लिये बुंदेलखंड में भेजा गया।

५—पूना में नाना फड़नवीस के कहने के अनुसार राज्य-कार्य चलता था। ये सेंधिया को अपने अधिकार में कर लेना चाहते थे। सेंधिया की शक्ति इस समय बहुत बढ़ गई थी और उनकी बढ़ती शक्ति के कारण पेशवा को भी डर लगने लगा था। सेंधिया

का राज्य उत्तर हिंदुस्तान में फैला हुआ था और बादशाह शाह-आलम से भी सेंधिया की मित्रता थी। सेंधिया ने बादशाह शाह-आलम को सहायता देकर बादशाह के दुश्मन गुलाम कादिर को हरा दिया था। इससे बादशाह ने सेंधिया को कई उपाधियाँ भी दी थीं। नाना फड़नवीस अलीबहादुर पर बहुत विश्वास करते थे और सेंधिया की शक्ति को हीन करने का उद्देश्य अलीबहादुर को बतला दिया गया था। नाना फड़नवीस का यह उद्देश्य सबको न बतलाया गया था। प्रकट रूप से नाना फड़नवीस ने होल्कर और सेंधिया को मित्रता बताते हुए पत्र भी लिख दिए और उनमें सेंधिया और होल्कर को अलीबहादुर की सहायता करने का आदेश दिया।

६—अलीबहादुर संवत् १८४६ में बुंदेलखंड पहुँचा। अलीबहादुर ने पहले हिम्मतबहादुर (उर्फ अनूप गिर) को मिलाया। हिम्मतबहादुर को जब सेंधिया ने हरा दिया तब वह सेंधिया की सेना में नौकर हो गया। हिम्मतबहादुर को बुंदेलखंड का सब हाल मालूम था और अलीबहादुर किसी प्रकार हिम्मतबहादुर से मित्रता कर लेना चाहता था। हिम्मतबहादुर बड़ा लालची मनुष्य था। उसने अपना लाभ अलीबहादुर की मित्रता में समझा। उसने सेंधिया की नौकरी छोड़ दी और अली-बहादुर को सहायता देने का वचन दे दिया। अलीबहादुर ने हिम्मतबहादुर को देश का कुछ भाग देने का वचन दिया और हिम्मतबहादुर ने अलीबहादुर को बाँदा का नवाब बना देने की प्रतिज्ञा की।

७—अलीबहादुर के साथ पूना से बहुत सी सेना भेजी गई थी। कई मराठों के प्रसिद्ध सरदार अलीबहादुर के साथ आए थे। इस बड़ी सेना की सहायता के लिये हिम्मतबहादुर की बीस

हज़ार सैनिकों की सेना भी मिल गई। जब सेंधिया ने देखा कि हिम्मतबहादुर अलीबहादुर के पास चला गया तब उन्होंने अली-बहादुर को एक पत्र लिखा और हिम्मतबहादुर को वापिस माँगा, परंतु अलीबहादुर ने हिम्मतबहादुर को न दिया।

८—बाँदा में इस समय बखतसिंह का राज्य था। बखतसिंह संवत् १८३५ में गुमानसिंह के मरने पर राज-गद्दी पर बैठे थे। गुमानसिंह के कोई पुत्र न था इसलिये उन्होंने अपने संबंधी दुर्गा-सिंह के पुत्र बखतसिंह को गोद लिया था। जिस समय बखत-सिंह राजगद्दी पर बैठे उस समय उनकी उमर बहुत कम थी। इनकी ओर से राज्य-कार्य्य इनके दीवान और सेनापति नोने अर्जुनसिंह देखते थे।

९—नोने अर्जुनसिंह गुमानसिंह के बड़े विश्वासी नौकर थे और इनकी योग्यता बुंदेलखंड भर में विख्यात थी। इनके पिता जैतपुर राज्य के जागीरदार थे और कुँवरपुर नामक ग्राम में रहते थे। यह गाँव अब सुंगरा कहलाता है। अर्जुनसिंह साधुओं की सेवा किया करते थे और एक साधु ने इन्हें वरदान भी दिया था। अर्जुन-सिंह पहले चरखारी के राजा के यहाँ नौकर थे। परंतु चरखारी के राजा से इनकी अनबन हो गई इसलिये ये फिर बाँदा के राजा के यहाँ नौकर हो गये। इन्होंने हिम्मतबहादुर को हरा के यमुना के पार भगा दिया था। जब गुमानसिंह और चरखारी के राजा खुमानसिंह के बीच में युद्ध हुआ तब अर्जुनसिंह ने खुमानसिंह को हराया और युद्ध में खुमानसिंह की मृत्यु भी हुई। अर्जुनसिंह ने गठेवरा के बड़े युद्ध में भी विजय पाई थी।

१०—बखतसिंह छोटे थे इससे अर्जुनसिंह उन्हें लेकर अजय-गढ़ में रहने लगे। चरखारी के राज्य से भी इस समय अनबन थी। अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर ने अजयगढ़ पर आक्रमण

किया। नोने अर्जुनसिंह ने हिम्मतबहादुर से युद्ध किया। यह युद्ध अजयगढ़ और बनगाँव के बीच के मैदान में हुआ। इस युद्ध में अर्जुनसिंह मारे गये और हिम्मतबहादुर की जीत हुई। युद्ध के पश्चात् बाँदा पर अलीबहादुर का अधिकार हो गया*। यह युद्ध वि० सं० १८४९ वैशाख बदी १२ बुधवार (१८-४-१७९२) को हुआ था।

११—अर्जुनसिंह बुंदेलखंड के बड़े वीर पुरुष गिने जाते थे। परन्तु इनके पास अधिक सेना न होने से इनकी हार हुई। अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर के पास असंख्य सेना और धन था। इस सेना से सामना करना एक वीर मनुष्य के लिये कठिन कार्य था। अर्जुनसिंह की वीरता अभी तक बुंदेलखंड में प्रसिद्ध है। अर्जुनसिंह देश और जाति के बड़े प्रेमी थे। इन्होंने हिम्मतबहादुर के समान विदेशियों की नौकरी कर अपने देश और जाति को हानि न पहुँचाई। अर्जुनसिंह सदा ही सच्चे स्वामिभक्त बने रहे। उन्होंने हिम्मतबहादुर के समान नमकहरामी नहीं की। हिम्मतबहादुर ने अपने स्वार्थ के लिये जिसका सहारा लेना उचित जान पड़ा, ले लिया। यदि हिम्मतबहादुर और अर्जुनसिंह से तुलना की जाय तो हिम्मतबहादुर से अर्जुनसिंह प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ जान पड़ते हैं†।

---

* इस युद्ध का वर्णन पद्माकर ने हिम्मतबहादुर-विरदावली में किया है। उसमें अर्जुनसिंह का हिम्मतबहादुर के हाथ से मारा जाना लिखा है। परंतु यह ठीक नहीं, क्योंकि अर्जुनसिंह अपने ही घराने के एक मनुष्य के भाले से मारे गए थे। यह मनुष्य चरखारी का था। चरखारी का राजा हिम्मतबहादुर का सहायक था।

† लाला भगवानदीन ने, इन दोनों के संबंध में, ये बातें लिखी हैं।

१—"अर्जुनसिंह क्षत्रिय था। और सच्चा क्षत्रिय था। हिम्मतबहादुर भिक्षा-वृत्तिधारी सनाढ्य ब्राह्मण का लड़का और पराया माल उड़ानेवाले गोसाईं का चेला था।

१२—अर्जुनसिंह की हार के पश्चात् अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर का डर सारे बुंदेलखंड में हो गया। चरखारी का राजा हिम्मतबहादुर का सहायक था परंतु फिर जान पड़ता है कि चरखारी के राजा से भी अनबन हो गई। क्योंकि हिम्मतबहादुर ने फिर चरखारी पर भी चढ़ाई की थी। चरखारी के राजा की सहायता को बिजावर के वीरसिंह भी पहुँचे थे। इस युद्ध में वीरसिंह की मृत्यु चरखारी के पास हुई। इससे चरखारी और बिजावर के राजा अलीबहादुर के अधीन हो गए। वे इन राज्यों के राजा बने रहे, पर अलीबहादुर को चौथ देने लगे। इसी

२—अर्जुनसिंह ने स्वदेशवासी क्षत्रियों की क्षत्रिय की भाँति सेवा की। हिम्मतबहादुर ने ब्राह्मणवीर्य तथा गोसाईं धर्म का शिवभक्त होकर विदेशी और विधर्मी यवन की सेवा की।

३—अर्जुनसिंह ने कभी किसी से सहायता नहीं माँगी। वह सदैव निज भुजबल से लड़ता रहा और दूसरों की सहायता करता रहा। हिम्मतबहादुर हमेशा दूसरों की सहायता का प्रयासी रहा।

४—हिम्मतबहादुर अपना स्वार्थ विचार के लड़ाई करता था और अपना राज्य स्थापित करना चाहता था जो न हो सका। अर्जुनसिंह लड़ाई लड़कर जो गाँव या परगने जीतता था वह अपने नाबालिग़ मालिक के अर्पण करता था और यदि अर्जुनसिंह चाहता तो उस समय अपना निज का राज्य स्थापित कर लेता।

५—उतरती उम्र में हिम्मतबहादुर ने अपने चाल-चलन में धब्बा लगा लिया था जो एक वीर पुरुष के लिये बड़ी निंदा की बात है। अर्जुनसिंह के विषय में ऐसी कोई बात सुनी नहीं जाती।

६—हिम्मतबहादुर ने एक प्रकार से देशद्रोह किया। अर्जुनसिंह इस दोष से बरी है। वरन् देशद्रोहियों से लड़ने के कारण हम उसे स्वदेश-भक्त कह सकते हैं।"

अर्जुनसिंह का ईजाद किया हुआ 'लग्गी' नाम का रणवाद्य आज तक बुंदेलखंड में प्रचलित है। (लाला भगवानदीन द्वारा संपादित हिम्मत-बहादुर-विरदावली देखिए।)

प्रकार अलीबहादुर ने छत्रपुर आदि राज्यों को हराया और वहाँ के राजाओं ने अलीबहादुर के अधीन रहना स्वीकार किया। पन्ना में बेनी हजूरी के पुत्र राजधर ने अलीबहादुर से युद्ध किया परंतु अलीबहादुर ने उसे भी हरा दिया और पन्ना के राजा को अधिकार में कर लिया।

१३—अर्जुनसिंह के मरने पर बखतसिंह भागे और बाँदा और अजयगढ़ पर अलीबहादुर का अधिकार हो गया। अलीबहादुर ने बाँदा के नवाब का विरुद धारण किया। बखतसिंह ने अपनी जीविका का कोई उपाय न देख अलीबहादुर के यहाँ नौकरी कर ली। अजयगढ़ का राज्य फिर अँगरेजों ने बखतसिंह को दिया।

१४—अलीबहादुर बाँदा में रहने लगा। उसने अपनी राजधानी वहीं बनाई। अलीबहादुर को पेशवा से सदा सहायता मिलती रही और अलीबहादुर पेशवा के अधीन रहा आया। इस तरह पेशवा का अधिकार फिर से बुंदेलखंड के राज्यों पर अलीबहादुर के द्वारा हो गया।

१५—अलीबहादुर के पास यशवंतराव नाम का एक बड़ा शूर सैनिक था। इसके साथ दस हजार मनुष्यों की सेना देकर अलीबहादुर ने इसे वि० सं० १८५३ में रीवाँ पर आक्रमण करने भेजा। उस समय रीवाँ में बघेल राजा अजीतसिंह राज्य करता था। इसने अपनी सेना कलिंदरसिंह कलचुरी के सेनापतित्व में भेजी। रीवाँ की सेना यशवंतराव की सेना से हार गई। अंत में राजा ने एक लाख रुपया नकद देकर अलीबहादुर से संधि कर ली। अलबत्ता वि० सं० १८६० में मराठों की चढ़ाई को रोकने के लिये अँगरेजी सेना मकुंदपुर में कुछ दिनों तक पड़ी रही। पर कुछ लोगों का ऐसा मत है कि वि० सं० १८५३ के युद्ध में अलीबहादुर को नीचा देखना पड़ा था इससे उसका दबदबा बुंदेलखंड से उठ गया। इससे

यहाँ के राजा लोग अलीबहादुर से स्वतंत्र होने का प्रयत्न करने लगे। यह हाल देखकर अलीबहादुर बहुत घबराया और पूना के पेशवा से सहायता माँगने के लिये उसने दूत भेजा। हिम्मतबहादुर ने अलीबहादुर को हिम्मत दी और उसने भी सेना तैयार करने का काम आरंभ कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् पूना से भी सहायता आ पहुँची। इस सेना की सहायता से अलीबहादुर ने पहले जैतपुर पर आक्रमण किया। जैतपुर में इस समय गजसिंह का राज्य था। गजसिंह ने भी अलीबहादुर से लड़ने की तैयारी कर ली थी। परंतु अलीबहादुर ने जैतपुर की सेना को हरा दिया और जैतपुर के राजा को निकालकर उस राज्य पर अधिकार कर लिया। अजयगढ़ में कुछ सेना ने अलीबहादुर से लड़ने का प्रयत्न किया परंतु इस सेना को भी अलीबहादुर ने अच्छी तरह से हरा दिया।

१६—बुंदेलखंड में अपना अधिकार जमाने के बाद अलीबहादुर ने रीवाँ पर यशवंतराव की मृत्यु का बदला लेने के लिये चढ़ाई की। रीवाँ के राजा को हिम्मतबहादुर ने हरा दिया। रीवाँ-नरेश ने अलीबहादुर को प्रति वर्ष बारह लाख रुपए, चौथ के रूप में, देने का वचन दिया।

अध्याय २१

हिम्मतबहादुर की लड़ाइयाँ

१—अलीबहादुर ने रीवाँ-नरेश को हरा दिया परंतु कालिंजर के चौबे ने अलीबहादुर की अधीनता स्वीकार न की। कालिंजर का किला कायमजी चौबे के पुत्र रामकिसन के अधिकार में था।

यह चौबे वास्तव में जागीरदार था परंतु अब पन्ना राज्य से स्वतंत्र हो गया था और अलीबहादुर का आधिपत्य भी स्वीकार न करता था। अलीबहादुर को जहाँ जहाँ पर विजय हुई उसका मूल कारण हिम्मतबहादुर की वीरता ही थी। अब कालिंजर को वश में करने के लिये अलीबहादुर ने हिम्मतबहादुर से सलाह ली। कालिंजर का किला ऊँचे पहाड़ पर है और बहुत दृढ़ बना हुआ है। इसको लेने के लिये हिम्मतबहादुर ने बड़ी भारी तैयारी की। फिर किले पर आक्रमण किया परंतु किला दुर्भेद्य होने से वह किसी प्रकार हिम्मत-बहादुर के अधिकार में न आ सका। हिम्मतबहादुर और अली-बहादुर दोनों ने प्रयत्न न छोड़ा और किले के लेने के लिये ये लोग लड़ते ही रहे। जब इन्हें मालूम हुआ कि किले के लेने में कई वर्ष लग जायँगे तब अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर ने किले के समीप मैदान में रहने के लिये मकान भी बनवा लिए। यहाँ से हिम्मत-बहादुर और अलीबहादुर दो वर्ष तक बराबर लड़ते रहे पर कालिंजर का किला इनके हाथ में न आया। इसी युद्ध के समय, विक्रम संवत् १८५९ में, अलीबहादुर की मृत्यु हो गई। उसके मरने पर भी हिम्मतबहादुर ने कालिंजर लेने का प्रयत्न न छोड़ा। हिम्मत-बहादुर की ओर से सबसुखराम सेनापति थे।

२—अलीबहादुर के दो लड़के थे जिनके नाम शमशेरबहादुर और जुलफिकारअली थे। इनमें से शमशेरबहादुर बड़ा था परंतु जब अलीबहादुर की मृत्यु हुई तब शमशेरबहादुर पूना में था। इसलिये अलीबहादुर के चाचा गनीबहादुर और हिम्मतबहादुर ने मिलकर जुलफिकारअली को ही अलीबहादुर की जगह नवाब बना दिया। यह हाल शमशेरबहादुर को पूना में मालूम हुआ। समाचार पाते ही शमशेरबहादुर पेशवा से सहायता लेकर कालिं-जर पहुँचा। पेशवा भी गनीबहादुर से नाराज था। गनीबहा-

दुर ने जुल्फिकारअली को नवाब बनाकर सब राज्य-कार्य अपने हाथ में कर लिया था। गनीबहादुर वास्तव में स्वतंत्र ही हो गया था। पेशवा से उसका कोई संबंध न रह गया था। इस कारण पेशवा ने शमशेरबहादुर को सहायता देना ठीक समझा। शमशेर-बहादुर ने मराठों की सेना की सहायता से अलीबहादुर का राज्य अपने अधिकार में कर लिया और कालिंजर में जाकर गनीबहादुर को पकड़कर अजयगढ़ के किले में कैद कर दिया। इस किले में गनीबहादुर को शमशेरबहादुर ने जहर दिलवाकर मार डाला। हिम्मतबहादुर गनीबहादुर का सहायक था। जब उसने देखा कि गनीबहादुर मार डाला गया है तब उसने भी शमशेरबहादुर से सब संबंध तोड़ दिए। अभी जो कुछ युद्ध हुए थे उनमें हिम्मत-बहादुर के कारण ही अलीबहादुर को विजय मिली थी। जब शमशेरबहादुर ने देखा कि हिम्मतबहादुर ने सहायता देना बंद कर दिया तब उसने भी कालिंजर के किले को लेने का प्रयत्न छोड़ दिया। वह बाँदा को वापिस आ गया।

३—हिम्मतबहादुर ने बाँदा के नवाब को सहायता देकर बुंदेलखंड का बहुत सा भाग बाँदा के नवाब के अधिकार में कर दिया था। हिम्मतबहादुर ने देखा कि नवाब से अनबन होने के कारण मुझे कोई लाभ न पहुँच सकेगा इसलिये उसने अँगरेजों से बातचीत आरंभ की। विक्रम संवत् १८५९ में मराठों और अँगरेजों के बीच बसीन नामक नगर में एक संधि हुई थी जिसके अनुसार बाजीराव पेशवा हुआ और उसने अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार किया। परंतु इस संधि से सब मराठे सरदार असंतुष्ट थे और थोड़े ही दिनों के बाद पेशवा ने फिर से अँगरेजों से स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया। जिस समय हिम्मतबहादुर ने अँग-रेजों से मेल करने की बातचीत की उस समय अँगरेज बड़े प्रसन्न

हुए क्योंकि उन्हें हिम्मतबहादुर की सहायता से मराठों को दबाने का मौका मिल गया। इस समय नागपुर के भोंसले और सेंधिया पूना के पेशवा से मिल गए थे और पेशवा को अँगरेजों के हाथ से बचाने का प्रयत्न कर रहे थे। ऐसे समय में अँगरेजों को हिम्मतबहादुर की सहायता बहुत लाभदायक प्रतीत हुई। हिम्मतबहादुर की वीरता सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध थी। बुंदेलखंड के प्रत्येक भाग का उसे पूरा ज्ञान था। अतः अँगरेज लोगों को वह बहुत सहायता पहुँचा सकता था।

४—हिम्मतबहादुर की सेना में कर्नेल मिसेल बैक नामक एक सर्दार था। अँगरेजों की और हिम्मतबहादुर की बातचीत इसी की सहायता से हुई। हिम्मतबहादुर ने जो जो शर्तें अँगरेजों से कहीं, उन्होंने मान लीं। अँगरेजों ने हिम्मतबहादुर से राजा के समान बर्ताव करने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की कि वे हिम्मतबहादुर के भाई उमरावगिर को अवध के नवाब के बंधन से मुक्त करा देंगे। अँगरेजों ने अंतर्वेद में सिकंदरा और बिंदकी के परगने हिम्मतबहादुर को देने का वचन दिया। बुंदेलखंड में भी हिम्मतबहादुर को एक लाख की जागीर देने की प्रतिज्ञा अँगरेजों ने की। ये शर्तें कराके हिम्मतबहादुर ने अँगरेजों की सहायता की। अँगरेजों ने हिम्मतबहादुर से प्रसन्न होकर उसको महाराजा बहादुर की पदवी भी दी।

५—इस समय अँगरेजों का राज्य बंगाल और बिहार में जम गया था और बनारस तक पहुँच गया था। वरन् मद्रास के तट पर भी बहुत दूर तक फैला हुआ था। बंबई के निकट के कई नगर भी अँगरेजों के अधिकार में थे। इसके सिवा कई राजा लोग अँगरेजों के अधीन हो चुके थे। हिम्मतबहादुर और अँगरेजों की संधि का हाल सुनते ही शमशेरबहादुर ने

पेशवा से सहायता माँगी। इस समय सेंधिया, होल्कर आदि सब मराठे सरदार अँगरेजों के विरुद्ध हो रहे थे। इस समय जालौन में गोविंदराव गंगाधर उर्फ नाना साहब सूबेदार थे। इन्होंने शमशेर-बहादुर की सहायता के लिये अपनी सेना भेजी।

६—हिम्मतबहादुर के पास भी बहुत बड़ी सेना थी। इस सेना का खर्च हिम्मतबहादुर को अँगरेजों से मिल रहा था। अँगरेजों का एक सेनापति कर्नल पोल भी अपनी सेना लिए हुए हिम्मतबहादुर के साथ था। यह सब सेना लेकर हिम्मतबहादुर बुंदेलखंड में घुसा। पहला युद्ध केन नदी के किनारे के "बरा" नामक ग्राम के पास हुआ। शमशेरबहादुर इस युद्ध में हार गया और उसे भागना पड़ा। शमशेरबहादुर फिर भींरागढ़ पहुँचा परंतु यहाँ पर भी हिम्मतबहादुर ने उसे हराया। इसके पश्चात् कैशा नामक ग्राम में तीसरी लड़ाई हुई। यहाँ पर शमशेरबहा-दुर अच्छी तरह से हरा दिया गया। शमशेरबहादुर यहाँ से भागा और अँगरेजों ने उसका पीछा किया। शमशेरबहादुर ने अँगरेजों से युद्ध करने में कोई लाभ न देखकर संधि कर ली। यह संधि अँगरेजों की ओर से कैप्टेन बेली और शमशेरबहादुर के बीच में हुई। संधि के अनुसार शमशेरबहादुर का सब प्रदेश अँगरेजों को सौंप दिया गया और शमशेरबहादुर को चार लाख रुपयों की जागीर दी गई। यह संधि विक्रम संवत् १८६१ में हुई।

७—इस युद्ध में अँगरेजों के विजय का कारण हिम्मतबहादुर ही था। हिम्मतबहादुर बड़ा ही शूर सैनिक था परंतु अपने स्वार्थ के लिये उसने जो कुछ सामने देखा, बिना परिणाम सोचे कर डाला। अवध के नवाब की हार होने पर वह सेंधिया से मिल गया और सेंधिया के विरुद्ध होकर फिर वह अलीबहादुर से मिल गया। पश्चात् इसी अलीबहादुर के लड़के के विरुद्ध होकर वह

अँगरेजों से जा मिला। हिम्मतबहादुर को अँगरेजों से शर्तों के अनुसार अंतर्वेद के परगने और बुंदेलखंड में मौदहा, छौन, हमीरपुर और दोसा के परगने मिले। हिम्मतबहादुर इस समय बहुत वृद्ध हो गया था और थोड़े ही दिनों के बाद विक्रम संवत् १८६१ में उसकी मृत्यु हो गई। हिम्मतबहादुर के मरने पर उसका पुत्र निरंदगिर (या नरेंद्रगिर) हिम्मतबहादुर की जागीरों का अधिकारी हुआ। परंतु निरंदगिर की अवस्था बहुत कम थी, इस कारण हिम्मतबहादुर का भाई उमरावगिर उन सब जागीरों की देख-भाल करता था। यह उमरावगिर पहले अवध के नवाब के यहाँ कैद था परंतु अँगरेजों ने इसे छुड़वा दिया। विक्रम संवत् १८९७ में निरंदगिर मर गया और अँगरेजों ने उसकी जागीर जब्त कर ली। उस समय उमरावगिर के खर्च के लिये अँगरेजों की ओर १०००) रुपए मासिक मुकर्रर हुए और निरंदगिर के भाई कंचनगिर को २०००) रुपए मासिक मुकर्रर कर दिए गए। इनके मरने के पश्चात् इनके वंशजों को अँगरेजों की ओर से पेंशन दी गई।

८—अँगरेजों ने शमशेरबहादुर को चार लाख रुपयों की पेंशन देकर बाँदा को अपने अधिकार में कर लिया था। परंतु थोड़े ही दिनों के बाद उसी वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् १८६१ में शमशेरबहादुर मर गया। शमशेरबहादुर के बाद उसके भाई जुल्फिकारअली और उसके लड़के अलीबहादुर को चार लाख की पेंशन मिली और ये सब लोग नवाब बाँदा कहलाते रहे। इनके वंशज अभी तक इंदौर में मौजूद हैं, जिन्हें आजकल, पेंशन के रूप में, सालाना १३ हजार रुपए मिलते हैं।

९—अलीबहादुर ने बुंदेलखंड के जिन राजाओं को अपने अधिकार में कर लिया था वे सब अब अँगरेजों के अधिकार में हो गए। ओड़छा, दतिया और समथर को छोड़कर लगभग

सब राजा अँगरेजों के अधीन हो गए। अँगरेजों ने इन राजाओं को अपने अपने राज्य का अधिकारी बना रहने दिया और उन्हें सनदें दीं। इन सनदों को पाने पर ये सब सदा अँगरेजों के भक्त बने रहे।

अध्याय ३२

अँगरेजों से संधियाँ

१—अलीबहादुर और पेशवा से संधि हो गई थी। इससे इसके मरने पर अलीबहादुर का जीता हुआ सारा प्रदेश पेशवा के अधिकार में आ गया। यह वि० सं० १८५९ में कालिंजर की चढ़ाई के समय मरा। इसके शमशेरबहादुर और जुल्फिकारअली ये दो लड़के थे। पर इसकी मृत्यु के समय शमशेरबहादुर पूना ही में था।

२—अँगरेजों और पेशवा से वि० सं० १८५९ (१-१-१८०२) में बसीन में संधि हुई थी पर इसके कुछ समय के उपरांत वि० सं० १८६० (सन् १८०३) में बसीन की शर्तों में कुछ फेरफार कर पूना में फिर से संधि हुई। इस संधि से अँगरेजों को अन्यान्य लाभों के सिवा एक विशेष लाभ यह हुआ कि इन्हें बुंदेलखंड में ३६,१६,००० की रियासत अनायास मिल गई। अब इन लोगों ने दौलतराव सेंधिया और बरार के भोंसलों पर चढ़ाई करने की घोषणा कर दी और वे गुप्त रूप से यशवंतराव होल्कर पर भी चढ़ाई करने की तैयारी करने लगे।

३—हिम्मतबहादुर ने सेंधिया की नौकरी छोड़कर अलीबहादुर के यहाँ सेनापति की नौकरी कर ली थी। अलीबहादुर की मृत्यु के पश्चात् यद्यपि वह उसी के यहाँ था पर मन ही मन अपना स्वतंत्र

राज्य जमाने की चिंता में लगा हुआ था। इसी समय अँगरेजों ने बुंदेलखंड के भीतर से सेना भेजने का प्रबंध किया। हिम्मतबहादुर तो यह चाहता ही था। इसने बात की बात में अलीबहादुर की नौकरी छोड़कर शाहपुर जाकर अँगरेजों से विक्रम संवत् १८६० (४-९-१८०३) में संधि कर ली। इस संधि से अँगरेजों ने इसे अपनी सहायता के लिये सेना रखने को २० लाख रुपए की जागीर देने का वचन दिया और कुछ इलाका भी इसकी जागीर में छोड़ दिया। इससे इसका राज्य इलाहाबाद से कालपी तक हो गया।

४—इस संधि के समय शमशेरबहादुर भी पूना से आ गया था। इसने भी अँगरेजों से मिलकर रहना उचित समझा और वि० सं० १८६० (१२-१-१८०४) में संधि कर ली। अँगरेजों ने इसे चार लाख रुपए की जागीर दी और बाँदा रहने के लिये दिया। इस समय कालपी और जालौन गोविंद गंगाधर उर्फ नाना साहब के पास थे। अब होलकर पर चढ़ाई करने के समय अँगरेजों के आड़े आनेवाले सिर्फ होल्कर के हितैषी राजा ही रह गए। इससे अँगरेजों ने पश्चिमी बुंदेलखंड के राजाओं से भी संधि कर अपना रास्ता साफ कर लेना उचित समझा। इस समय बुंदेलखंड में छोटी बड़ी कुल ४३ रियासतें और जागीरें थीं। इनमें से १२ (जालौन, झाँसी, जैतपुर, खुद्दी, चिरगाँव, पुरवा, चौबियाने की दो जागीरें, तरौंहा, विजयराघोगढ़, शाहगढ़ और बानपुर) तो सरकारी राज्य में मिला ली गईं, शेष अधिकारियों में से ३ के साथ संधियाँ हुई हैं, बाकी लोगों को सनदें दी गई हैं।

५—अँगरेजों को पूना की संधि से बुंदेलखंड मिल ही गया था और अलीबहादुर की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने हिम्मतबहादुर और शमशेरबहादुर से संधियाँ भी कर ली थीं। इस समय झाँसी में रघुनाथराव नेवालकर के छोटे भाई शिवराव भाऊ सूबेदार

थे। इनसे भी सं० १८६० विक्रमीय (१८-११-१८०३) में संधि हो गई।

६—झाँसी के सूबेदार शिवराव भाऊ ने अँगरेजों के साथ संधि कर ली थी। इस संधि के अनुसार ये अँगरेजों के मित्र हो गए थे। इसी समय कालपी के सूबेदार गोविंद गंगाधर और शिवराव भाऊ में अनबन हो गई। पर शिवराव भाऊ संधि के अनुसार अँगरेजों के मित्र थे। इससे गोविंद गंगाधर और अँगरेजों में भी अनबन सी हो गई और ये ही अकेले इनके विरुद्ध रह गए। इसलिये इन्होंने भी अँगरेजों के साथ वि० सं० १८६३ (२३-१०-१८०६) में संधि कर ली। इस संधि में अँगरेजों की ओर से जान वेलो और गोविंद गंगाधर की ओर से भास्करराव अन्ना ने दस्तखत किए। इस संधि की शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) नाना साहब और ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार एक दूसरे से मित्रता का वर्ताव करे और एक दूसरे के दुश्मनों को कभी सहायता न दे।

(२) नाना साहब कालपी और रायपुर का इलाका हमेशा के लिये अँगरेजों को दें।

(३) यदि अँगरेजों का कोई अपराधी नाना साहब के राज्य में आवे तो नाना साहब उसे अँगरेजों के हवाले करें।

(४) वेतवा नदी के पूर्व का भाग और कौंच जिला नाना साहब के अधिकार में रहे और इस प्रदेश में से जो अँगरेजी फौज निकले उसकी सहायता नाना साहब करें।

(५) नाना साहब पर अँगरेजों का कोई दावा न रहे और कोई हक उपर्युक्त शर्तों के सिवा अँगरेज लोग नाना साहब से न माँगें।

(६) नाना साहब के विरुद्ध किसी भी शिकायत का फैसला अँगरेज न करें।

(७) पन्ना के हीरों का तीसरा भाग नाना साहब पूर्ववत् लेते रहें। उसमें अँगरेज कुछ हस्तक्षेप न करें। यदि हीरों की खान का कोई भाग अँगरेजों के अधिकार में आ जावे तो भी हीरों की आमदनी का तीसरा भाग नाना साहब को मिलता रहे।

(८) नाना साहब की जो निजी संपत्ति—अर्थात् बाग, मकान या हवेलियाँ—कालपी और बनारस में हो उस पर अँगरेज अधिकार न करें।

(९) नाना साहब के बुंदेलखंड के राज्य-प्रबंध में अँगरेज हस्त-क्षेप न करें।

उपर्युक्त संधि के अनुसार जालौन नाना साहब के अधिकार में रहा।

७—अमृतराव रघुनाथराव पेशवा का लड़का था। जब बाजीराव बसीन से भाग गया तब होल्कर ने इसका भागना अनु-चित समझकर अमृतराव को ही उत्तराधिकारी मान लिया। यह अँगरेजों को न भाया और इन्होंने पूना पर चढ़ाई कर दी। इससे होल्कर का उद्योग निष्फल हो गया। अंत में अमृतराव ने अँगरेजों से संधि कर ली। इससे इसके और इसकी संतान के भरण-पोषण के लिये ७ लाख रुपए की पेंशन नियत कर दी गई। इसने तरौंहा (बाँदा जिले में) में रहना पसंद किया। इससे उसे ४६९७ रुपए की जागीर और भी दी गई। यह संवत् १८८१ ई० मरा और विनायकराव जागीर का अधिकारी हुआ। विनायकराव के मरने पर पेंशन बंद कर दी गई।

८—विनायकराव को जो पेंशन मिलती थी वह तो बंद हो ही गई थी। इधर इसने नारायणराव और माधवराव को गोद ले लिया था। पर इन्हें पेंशन न मिली। ये संवत् १९१४ को सिपाही विद्रोह में मिल गए। इससे इनकी खानदानी जागीर जब्त कर ली गई और दोनों कैद कर लिए गए। नारायणराव तो सन् १८६०

में हजारीबाग में मर गया पर माधवराव ने माफी माँग ली। इससे यह बरेली में रखकर पढ़ाया गया। यह संवत् १९२३ में राज्याधिकार करने के लायक हो गया था। इससे उसे तीस हजार रुपए वार्षिक ेंशन मिलने लगी।

ओड़छा

९—भारतीचंद के पश्चात् वि० सं० १८३३ में इनके भाई विक्रमाजीत राजा हुए। इस समय ओड़छा का राज्य नाममात्र को था। यदि अँगरेज लोग न आ गए होते तो इनका राज्य मराठों ने ले लिया होता। राज्य की ऐसी हीनावस्था हो गई थी कि राजा के पास सिर्फ ५० जवान, १ हाथी और २ घोड़े रह गए थे। तो भी राजा ने हिम्मत न हारी वरन् अपने योग्य मंत्री जंगबहादुर की सलाह से अपने राज्य का बहुत सा इलाका मराठों से ले लिया। इसने वि० सं० १८४० में अपनी राजधानी टीकमगढ़ बनाई और संवत् १८६९ (२३-१२-१८१२) विक्रमीय में अँगरेजों से संधि की।

इस समय राजा ने बड़े गर्व से कहा था कि हमारे पूर्वज सदा स्वतंत्र बने रहे, कभी किसी की मातहती (अधीनता) स्वीकार नहीं की। इन्होंने वि० सं० १८७४ में अपने कुँवर धर्मपाल को गद्दी दे दी पर यह वि० सं० १८९१ में निस्संतान मरा। इससे फिर भी राजा विक्रमाजीत को राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेनी पड़ी। पर होता वही है जो ईश्वर को मंजूर होता है। ये वृद्ध तो थे ही इधर पुत्रशोक से और भी जर्जर हो गए। इससे शीघ्र ही मर गए। इससे इनके भाई तेजसिंह राजा हुए। यह ७ वर्ष राज्य कर वि० सं० १८९८ में परलोकवासी हुआ।

१०—तेजसिंह की मृत्यु के पश्चात् इनका पुत्र सुजानसिंह राजा हुआ किंतु धर्मपाल की महिषी लँड़ई रानी ने आपत्ति की

और गोद लेने का दावा किया। इससे रियासत के दो भाग हो गए जिन्हें नया और पुराना राज्य कहने लगे। लँड़ई रानी का हिस्सा पुराना राज्य कहाता था। इस झगड़े के सबब ये राजा सुजानसिंह झाँसी चले गए और वहाँ दो वर्ष तक रहे। पीछे से ओड़छा आए पर इनके साथी पृथ्वीपुर में लड़ाई में मारे गए, जिससे ये फिर भी झाँसी चले गए। सरकार ने राजा तेजसिंह की मृत्यु के पश्चात् इनकी गद्दीनशीनी स्वीकार कर ली थी इससे ये ही गद्दी पर बने रहे और लँड़ई रानी का दावा खारिज कर दिया गया किंतु ये छोटे थे इससे लँड़ई रानी ही प्रबंधकर्तृ नियत की गई। इनके कोई संतान नहीं हुई। इससे इनकी मृत्यु के पश्चात् देवीसिंह ने दावा किया परंतु सरकार ने उसका दावा खारिज करके लँड़ई रानी को हमीरसिंह को * वि० सं० १९११ में गोद लेने की आज्ञा दे दी। इनके पिता मदनसिंह दिगोड़ा में रहते थे। स्वर्गवासी सुजानसिंह और हमीरसिंह इन दोनों का राज्य-प्रबंध अच्छा न था; किंतु रानी की बुद्धिमानी से राज्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुँची। वि० सं० १९१४ के राज-विद्रोह के समय रानी ने अँगरेजों का पक्ष समर्थन किया। जब अँगरेज लोग ग्वालियर से भागकर बानपुर से टीकमगढ़ वापिस आए तब राजा ने अपने गुरु प्रेमनारायण की सम्मति से इनका अच्छा सत्कार किया और झाँसी तोड़ने के समय नत्थेखाँ वजीर ने स्वतः जाकर अँगरेजों की सहायता की। वि० सं० १९१९ में हमीरसिंह को भी गोद लेने की सनद मिली। महारानी लँड़ई रानी सं० १९२४ में मरीं।

---

* ये हरदौल की दसवीं पीढ़ी में थे। हरदौल, विजयसिंह, परतापसिंह, भगवंतसिंह, रतनसिंह, खुमानसिंह, शत्रुजीतसिंह, रामसिंह, मदनसिंह, हमीरसिंह।

दतिया

११—बसीन की संधि के पूर्व दतिया राज्य मराठों के अधीन था। यहाँ के राजा पारीछत मराठों के आश्रित थे किंतु वि० सं० १८५९ (१—१—१८०२) में बसीन नामक स्थान पर जो संधि हुई थी उसके अनुसार दतिया का राज्य अँगरेजों के अधिकार में हो गया। इससे यहाँ के राजा पारीछत ने वि० सं० १८६१ (१५—३—१८०४) में अँगरेजों के साथ संधि की। यह संधि कुंजनघाट पर हुई थी। इसमें सरकार की ओर से कप्तान बेली साहब ने दस्तखत किए थे।

१२—दतिया के राजा पारीछत ओड़छे के महाराजा वीरसिंह-देव के वंशज हैं। ये वि० सं० १८९६ में मरे किन्तु इन्होंने अपनी मृत्यु के पूर्व ही विजयबहादुर को गोद ले लिया था। इसकी सूचना भी उन्होंने अँगरेज सरकार को दे दी थी जिसकी मंजूरी भी आ गई थी। पीछे से बड़ौनी के दीवान मर्दनसिंह ने इस गोद का विरोध किया, लेकिन मंजूरी तो सरकार ने पहले ही दे दी थी। इससे दावा खारिज कर दिया गया। इसके बाद मर्दनसिंह ने कंपनी की सरकार से बड़ौनी जागीर की अलग सनद चाही परंतु वह भी न दी गई। राजा विजयबहादुर वि० सं० १९१४ में मरे। ये वि० सं० १८९६ में गद्दी पर बैठे थे।

समथर

१३—वि० सं० १७९० में, दतिया के राजा इंद्रजीत के समय, गद्दी के लिये झगड़ा हुआ था। उस समय नन्हेशाह गूजर ने इंद्रजीत की बहुत सहायता की थी। इसके उपलक्ष में इसके पुत्र मदनसिंह को समथर के किले की किलेदारी और राजधर की पदवी दी गई। पीछे से इसके पुत्र देवीसिंह को ५ गांवों की

जागीर भी दी गई। इस समय मरहटों की चढ़ाइयाँ शुरू हो गई थीं। इससे समथर का किलेदार स्वतंत्र बन बैठा।

१४—अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने के समय राजा रनजीतसिंह ने अँगरेजों से संधि करना चाहा। इससे ६ शर्तों का एक इकरारनामा अँगरेजों को लिख दिया परंतु वि० सं० १६६९ तक कुछ भी न हुआ। अंत में वि० सं० १८७४ (२७-११-१८१७) में संधि हो गई।

१५—राजा रनजीतसिंह वि० सं० १८८४ (११-७-१८२७) में मरे। पर न तो इनके ही पुत्र था और न इनके दोनों भाई पहाड़सिंह और विजयसिंह के ही लड़के हुए थे। इससे रनजीतसिंह के मरने पर इनके चचेरे भाई हिंदूपत राजा हुए। पर पीछे से इनका भी दिमाग खराब हो गया था। इससे इनकी रानी ही राज्य-प्रबंध करती रही। इनके चतुरसिंह और अर्जुनसिंह नाम के दो लड़के हुए।

पन्ना

१६—पन्ना में इस समय राजा किशोरसिंह का राज्य था। बाँदा के नवाब की हार के पश्चात् पन्ना राज्य अँगरेजों के अधीन हो गया। इससे इन्होंने राजा किशोरसिंह को वि० सं० १८६४ (१४-५-१८०७) में पहली सनद दी। पर सनद मिलने के समय राजा किशोरसिंह स्वतः न जा सके। इन्होंने अपनी ओर से अपने मंत्री राजधर गंगासिंह को भेजा।

१७—वि० सं० १८६४ की सनद लेने के लिये महाराज किशोरसिंह की तरफ से उनका मंत्री राजधर गंगासिंह गया था। यह बड़ा ही चालाक और स्वार्थी था। इसने मौका मिलते ही कंपनी की सरकार को धोखा दे कर पवई और खटोला नाम के दोनों परगने

अपने नाम करा लिए और उनकी सनद भी ले ली। पीछे से इस बात की खबर महाराज को लगी। तब वे स्वतः गए और कंपनी की सरकार को दूसरा इकरारनामा लिखा। इससे उन्हें वि० सं० १८६८ (२२-३-१८११) में पूरे राज्य की दूसरी सनद मिली।

१८—राजा किशोरसिंह अँगरेजों के बड़े मित्र रहे। वे सदा उन्हें सहायता देते रहे। परंतु उनका प्रबंध अच्छा न था। इससे अँगरेजों ने राज्य-प्रबंध करने के लिये छतरपुर के राजा कुँवर प्रतापसिंह को ४ वर्ष के लिये नियत किया था। परंतु यह बीच ही में अलग कर दिया गया। किशोरसिंह वि० सं० १८९१ में मरे और उनके पुत्र हरवंशराय राजा हुए।

१९—हरवंशराय के कोई संतान न थी। ये संवत् १९०६ में परलोक को सिधारे। इससे इनके भाई नृपतिसिंह राज्य के अधिकारी हुए। परंतु पन्ना राज्य में सती की प्रथा अब तक बंद न हुई थी। यही कारण बतलाकर अँगरेजों ने राजा नृपतिसिंह का गद्दी पर बैठना मंजूर न किया। अंत में राजा ने बाध्य होकर अपने राज्य में भी सती होने की प्रथा बंद करने की घोषणा कर दी।

२०—संवत् १९१४ में राजा नृपतिसिंह ने अँगरेजों की बहुत सहायता की थी। इससे इन्हें गोद लेने की सनद दी गई और बहुमूल्य सिरोपाव (खिलअत) तथा २०००० हजार रुपए नगद दिए गए। किंतु इसी साल एक सरहदी झगड़े में इन्होंने सरकारी हुक्म की अवहेलना की जिससे इनका ध्यान इकरारनामे की ओर दिलाया गया। संवत् १९२४ में इन्हें फौजदारी के अख्तियार मिले और संवत् १९२६ में महेंद्र की पदवी दी गई। ये विक्रम-संवत् १९२७ में स्वर्ग को सिधारे।

अजयगढ़

२१—अलीबहादुर ने जब राजा बखतसिंह को हरा दिया और अजयगढ़ पर अधिकार कर लिया तब वे उसी के यहाँ नौकर

हो गए। वि० सं० १८६० में जब अँगरेजों ने बुंदेलखंड पर अपना अधिकार जमाया तब इन्होंने राजा बखतसिंह को ३०००) गौहरशाही रुपए प्रतिमास देना नियत कर दिया। पर पीछे से वि० सं० १८६४ (८-६-१८०७) में राजा बखतसिंह को अजय-गढ़ रियासत का कुछ भाग दिया और उस पर राज्य करने की सनद भी दे दी किंतु जो गौहरशाही ३०००) रुपए राजा बखतसिंह को प्रतिमास मिलते थे वे बंद कर दिए गए।

२२—अजयगढ़ रियासत का जो भाग शेष था उसे लछमन दौआ किलेदार दबा बैठा। इससे अँगरेज सरकार ने इसे भी राजा माना। इसके पलटे में लछमन दौआ ने कंपनी की सरकार को ४०००) रुपए प्रतिवर्ष कर देने की प्रतिज्ञा की और दो वर्ष के बाद राजा बखतसिंह को अजयगढ़ का किला वापस कर देने का करार किया। यह बड़े ही उद्दंड स्वभाव का था। इससे अँगरेज लोग नाराज हो गए। फलतः इसे जो ३०००) रुपए मासिक पेंशन मिलती थी वह वि० सं० १८६६ (१३-२-१८०६) में बंद कर दी गई और इसका राज्य छीनकर राजा बखतसिंह को दे दिया गया। कर्नल मार्टिन ने इसे युद्ध में हराया था।

२३—बखतसिंह सं० १८६४ (२१-६-१८३७) में मरे। उनके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र माधवसिंह गद्दी पर बैठे। ये भी वि० सं० १६०६ में परलोक सिधारे और इनके भाई महिपतिसिंह गद्दी पर बैठे। यद्यपि इन्हें गद्दी न देने का प्रश्न उठा पर इन्हीं के पक्ष में निर्णय हुआ। ये वि० सं० १६१० (२२-६-१८५३) में परलोक सिधारे। इससे इनका पुत्र विजयसिंह राजा हुआ किंतु यह केवल दो वर्ष राज्य कर वि० सं० १६१२ (२२-६-१८५५) में मर गया।

२४—इसके मरने पर इसकी मा ने रनजोरसिंह को गद्दी देनी चाही पर कंपनी की सरकार ने रनजोरसिंह को गद्दी देने के पूर्व

स्वर्गवासी राजा वखतसिंह के कुटुंव के किसी अन्य व्यक्ति का पता लगाकर गोद लेने की तजवीज की। इतने में विद्रोह हो गया और फरजंदअली नाम के एक विद्रोही ने महीपतिसिंह के पुत्र लोकपाल-सिंह को गद्दी पर वैठा दिया।

२५—राजा महीपतिसिंह की विधवा रानी सरकार के पक्ष में वनी रही। इससे अँगरेजों ने उसे रनजोरसिंह को ही गोद लेकर गद्दी पर विठाने की इजाजत दे दी। उस समय ये छोटे थे। अत: राज्य-प्रवंध रानी ही करती रही। यह विक्रम-संवत् १६२५ में पर-लोकवासिनी हुई।

चरखारी

२६—जैतपुर के राजा जगतराज ने अपने तीसरे कुमार कीरतसिंह को अपना उत्तराधिकारी वनाया था, पर यह राजा जगतराज की मृत्यु के पूर्व ही मर गया। इससे राजा जगतराज के मरने पर वि० सं० १८१४ में कीरतसिंह के पुत्र गुमानसिंह ने गद्दी लेनी चाही। पर इनके चचा पहाड़सिंह ने विरोध किया। अंत में गुमानसिंह और खुमानसिंह दोनों भाई चरखारी भाग आए और यहाँ के किले में रहने लगे। पीछे से विक्रम-संवत् १८२१ में पहाड़सिंह ने गुमानसिंह को वाँदा और खुमानसिंह को चरखारी दे दी। इस समय चरखारी की आमदनी ६ लाख रुपए थी। खुमान-सिंह वि० सं० १८३६ में मरा।

२७—राजा खुमानसिंह के मरने पर विक्रमाजीत उर्फ विजय-वहादुर राजा हुआ। इनसे और इनके चचेरे भाई वाँदा के राजा अर्जुनसिंह से हमेशा झगड़े होते रहे। अंत में अर्जुनसिंह ने इन्हें चरखारी से मार भगाया। जव अलीवहादुर ने हिम्मतवहादुर के साथ वि० सं० १८४६ में वुंदेलखंड पर चढ़ाई की तव ये उनसे

मिल गए और चरखारी की चढ़ाई में उसके साथ गए। अंत में इन्होंने वि० सं० १८५५ में एक इकरारनामा अलीबहादुर को लिख दिया और इसने इन्हें चरखारी की सनद दे दी। इस समय इसकी आमदनी चार लाख रुपए थी।

२८—विक्रम-संवत् १८६० में राजा विजयबहादुर ने कंपनी की सरकार से संधि कर ली। परंतु इस समय राजा विजयबहादुर और अजयगढ़ तथा छतरपुर राज्य के बीच सरहदी झगड़े मचे हुए थे। इसलिये कंपनी की सरकार ने वि० सं० १८६१ में एक चंद-रोजा सनद दी। परंतु इन सब झगड़ों का निपटारा होते ही वि० सं० १८६८ में दूसरी सनद दे दी। यह वि० सं० १८८६ (नवंबर सन् १८२९) में मरा।

२९—इसके ईश्वरीसिंह, पूरनमल, गोविंददास, रनजीतसिंह इत्यादि ८ लड़के थे। पर राजा विक्रमाजीत (विजयबहादुर) के मरने पर रनजीतसिंह का लड़का रतनसिंह राजा हुआ। दीवान गोविंद-दास और रनजीतसिंह भी वि० सं० १८७९ में मर चुके थे। यद्यपि रतनसिंह को राजगद्दी मिल गई थी पर राज्यारोहण के समय कई झगड़े खड़े हुए। इससे रतनसिंह को इन सबके भरण-पोषण का प्रबंध करना पड़ा।

३०—विक्रम-संवत् १९१४ में यह प्रश्न उठा कि राजा रतनसिंह की मृत्यु के पश्चात् चरखारी की रियासत क्यों न जब्त कर ली जाय। परंतु सनदों और राज्यारोहण के झगड़ों की कारखाइयों से यह निश्चय हुआ कि राज्य वंशपरंपरागत दिया गया था। इससे जब्त न किया गया वरन् यह तजवीज हुई कि राजकुमार उत्तराधिकारी होगा।

जैतपुर

३१—जैतपुर की जागीर महाराज छत्रसाल के वंशज गजसिंह के पुत्र केसरीसिंह के पास थी। इन्हें अँगरेजों ने वि० सं० १८६९

में सनद दी। इनके मरने पर इनके पुत्र पारीछत को राज्य दिया गया पर इसने पीछे से विद्रोह किया। इससे वि० सं० १८६६ में सनद जब्त कर दीवान खेतसिंह को जागीर दे दी गई। यह वि० सं० १६०६ में निस्संतान मरा। इससे कंपनी की सरकार ने जैतपुर राज्य अपने राज्य में मिला लिया।

बिजावर

३२—ऐसा कथानक है कि विजावर ग्राम विजयसिंह नाम के एक गोंड़ सरदार ने बसाया था। यह गढ़ामंडला के राजा का नौकर था। उस समय इस इलाके पर गोंड़ों का ही राज्य था। इन लोगों से महाराज छत्रसाल ने जीता था। पीछे से यह जगतराज के हिस्से में आया। वि० सं० १८२६ में गुमानसिंह ने इसे अपने चचा वीरसिंहदेव को दे दिया। इस समय गुमानसिंह अजयगढ़ के राजा थे। वीरसिंहदेव विक्रम-संवत् १८५० में अलीबहादुर के साथ चरखारी के पास युद्ध में मारे गए। तब हिम्मतबहादुर ने इसके लड़के केसरीसिंह का पक्ष लिया और वि० सं० १८५६ में उसे अलीबहादुर से सनद दिलवाई। वि० सं० १८६० में जब अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने लगी तब राजा केसरीसिंह और चरखारी तथा छतरपुर राज्य के बीच सरहदी झगड़े चल रहे थे। इससे केसरीसिंह को इन झगड़ों के निपटारे तक सनद न मिल सकी। यह विक्रम-संवत् १८६७ में मरा और इसका लड़का रतनसिंह गद्दी पर बैठा। इस समय झगड़ों का फैसला हो गया था। इसलिये वि० सं० १८६८ (२७-३-१८११) में इसे गद्दी दी गई। इसने अपने नाम का सिक्का चलवाया। यह २२ वर्ष राज्य करने के बाद सं० १८६० (१७-१२-१८३३) में निस्संतान मरा।

३३—इसके कोई लड़का तो था नहीं; इससे विधवा रानी ने खेतसिंह के लड़के लछमनसिंह को गोद लिया। यह वि० सं०

१९०४ में मरा और इसका लड़का भानुप्रतापसिंह राजा हुआ। इसने राजविद्रोह के समय सरकार को बहुत मदद दी थी। इससे इसे बहुमूल्य सिरोपाव और वंशपरंपरागत ११ तोपों की सलामी दी गई। पश्चात् वि० सं० १९१९ में गोद लेने की सनद भी मिली। इसे वि० सं० १९२३ में महाराजा की पदवी दी गई और यह वि० सं० १९२४ में फौजदारी के अपराधों के फैसले करने के अधिकारों से विभूषित किया गया है। इसका राज्य-प्रबंध प्रशंसनीय न रहा, तो भी सरकार ने महाराजा की पदवी, जो वि० सं० १९२३ में मिली थी, वि० सं० १९३४ में वंशपरंपरागत सवाई महाराजा की कर दी। इन सब कारणों से इसका खर्च अधिक बढ़ गया। इससे वि० सं० १९५४ में सरकार की ओर से प्रबंधक नियत कर दिया गया। भानुप्रतापसिंह के कोई लड़का न था। इससे इसने ओड़छा के महाराजा के पुत्र सामंतसिंह को वि० सं० १९५५ में गोद लिया। यह वि० सं० १९५६ में सवाई महाराजा भानुप्रतापसिंह के परलोकवासी होने पर गद्दी पर बैठा। इस समय लखनगवाँ के ठाकुरों ने विरोध किया था। परंतु यह सरकार की मंजूरी से गोद लिया गया था। इससे इन लोगों की कुछ न चली।

छतरपुर

३४—अठारहवीं शताब्दी के अन्त में कुँवर सोनेशाह पँवार ने छतरपुर की रियासत कायम कर ली। पूर्व में यह पन्ना के राजा किशोरसिंह के प्रपितामह महाराजा हिंदूपत के यहाँ नौकर था। हिंदूपत वि० सं० १८३४ में मरे और इनके पुत्र सरनेतसिंह को रियासत छोड़कर राजनगर में रहना पड़ा। इसके मरने पर हीरासिंह राजा हुआ पर यह बहुत ही छोटा था। इससे रियासत का प्रबंध कुँवर सोनेशाह करता रहा। पर यह बहुत ही चालाक था।

इससे इसने यह मौका हाथ से न जाने दिया और वि० सं० १८४२ में अपने लिये एक अलग जागीर कायम कर ली। बल्कि मराठों की चढ़ाई के समय इसने कुछ और भी इलाका उसमें मिला लिया।

३५—इस समय इसका दबदबा सारे बुंदेलखंड में जमा हुआ था। इससे अँगरेजों ने भी कई राजनैतिक कारणों से इसे अपने हाथ में कर लेना उचित समझा और वि० सं० १८६३ (५-६-१८०६) में इसे सनद दे दी। इस समय इसके पास १५१ गाँव खालसा और १४३ गाँव नानकार, पदारख और सेवा चाकरी के थे। परंतु छतरपुर खास और चारों थाने, जिन पर अलीबहादुर के समय भी इसी का अधिकार था तथा मऊ और सालट इसने अलीबहादुर की मृत्यु के बाद दबा लिए थे, अँगरेजों ने ले लिए और उनके बदले में कुँवर सोनेशाह को १९०००) रुपए वार्षिक का खिराज, जो अलीबहादुर को दिया जाता था, सरकार ने छोड़ दिया।

३६—वि० सं० १९२२ में सरकारी सेना हटा लेने पर सोनेशाह को मऊ और उसके लड़के प्रतापसिंह को छतरपुर दे दिया गया। कुँवर सोनेशाह ने विक्रम-संवत् १८६९ में अपनी रियासत अपने पाँचों पुत्रों में बाँट दी परंतु छोटे लड़के ने समान भाग माँगा। इससे प्रतापसिंह का हिस्सा छोटा हो गया। इस बँटवारे से ये सब स्वतंत्र हो गए। परंतु इस तरह का बँटवारा सरकारी सिद्धांत के प्रतिकूल था। इससे अँगरेज सरकार ने यह बँटवारा नामंजूर कर दिया और सोनेशाह को यह सूचना दे दी गई कि तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् यदि किसी किस्म की गड़बड़ हुई तो सरकार प्रतापसिंह का ही पक्ष लेगी। सोनेशाह वि० सं० १८७२ में मरे।

३७—सोनेशाह की मृत्यु के पश्चात् हिम्मतसिंह, पिरथीसिंह, हिंदूपत और बखतसिंह राजा प्रतापसिंह के अधीन कर दिए गए और इन्हें हीनहयाती जागीरें दी गईं। वि० सं० १८७३ (२८-

७-१८१६) में सबने मिलकर सरकार को एक इकरारनामा लिखा जिसकी सनद राजा प्रतापसिंह को संवत् १८७४ (११-१-१८१७) में मिली। इस समय पुराने बँटवारे में भी कुछ परिवर्तन किया गया। इस परिवर्तन से कढ़निया और देवराय का किला तो राजा प्रतापसिंह को मिला और राजगढ़ तथा तिलोहा बखतसिंह ने पाए। परंतु पिरथीसिंह के पास एक भी अच्छा स्थान न था। इससे बखतसिंह ने राजगढ़ पिरथीसिंह को देकर उसके बदले में छः गाँव ले लिए।

३८—हिम्मतसिंह, पिरथीसिंह और हिंदूपत की मृत्यु के पश्चात् इनकी जागीरें छतरपुर राज्य में मिला दी गईं और बखतसिंह ने भी अपनी जागीर राजा प्रतापसिंह को देकर उससे २२५०) रुपए मासिक लेना मंजूर कर लिया। बखतसिंह की जागीर में बिलहरी के दीक्षित घराने की माफी के ३ गाँव भी थे। इन गाँवों को राजा प्रतापसिंह ने निकालना चाहा। परंतु यह माफी पन्ना के राजा हिंदूपत ने इस घराने को दी थी। इससे कंपनी की सरकार ने ऐसा करना मंजूर न किया। क्योंकि ऐसा करना सरकारी नीति के विरुद्ध था। यद्यपि माफीदार स्वतंत्र हैं परंतु उन्हें माफी संबंधी हर बात की मंजूरी रियासत से लेनी पड़ती है।

३९—राजा प्रतापसिंह को वि० सं० १८८४ (१८-१-१८२७) में राजाबहादुर की पदवी दी गई। इन्होंने वि० सं० १९०९ में जगतराज को गोद लेना चाहा। यह बखतसिंह का लड़का था। नियमानुसार इन्हें अपने ज्येष्ठ भ्राता पिरथीसिंह के लड़के कुंजलशाह को गोद लेना चाहिए था किंतु इन्होंने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् अपने दोनों भाइयों को लेकर राजविद्रोह किया था, इससे इनके अधिकार जब्त कर लिए गए थे।

४०—जगतराज को गोद लेने के संबंध में टेहरी, चरखारी, बिजावर, पन्ना, अजयगढ़, दतिया और शाहगढ़ के राजाओं से भी

सम्मति ली गई थी। इन सब लोगों ने बुंदेलखंड की प्रचलित प्रथा के अनुसार जगतराज का गोद लिया जाना उचित बतलाया परंतु 'कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स' ने ऐसे प्रश्नों पर सम्मति लेना नामंजूर कर दिया। राजा प्रतापसिंह गोद-संबंधी प्रश्न का निपटारा होने के पूर्व ही वि० सं० १९११ (१९-५-१८५४) में मर गए। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने यहाँ के राजाओं की सम्मतियों की अवहेलना तो कर ही दी थी, अब उन्होंने यह निर्णय किया कि सोनेशाह को वि० सं० १८०६ में हीनहयाती सनद दी गई थी और वि० सं० १८७४ की सनद में सिर्फ प्रतापसिंह के पुत्रों को ही गद्दी के हक थे पर प्रतापसिंह के कोई लड़का नहीं हुआ इससे गोद लेकर गद्दी देना अनुचित है। परंतु यह राजकुटुंब सदा से स्वामिभक्त रहा है और राजा प्रतापसिंह का राज्य-प्रबंध भी अच्छा था। अंत में कंपनी की सरकार ने इन सब बातों का विचारकर जगतराज का गोद लिया जाना मंजूर कर लिया। पर ये छोटे थे इससे राज्यप्रबंध राजा प्रतापसिंह की विधवा रानी करती रही। इन्हें वि० सं० १८११ (५-९-१८५४) में दूसरी सनद दी गई।

पूर्व में राजा प्रतापसिंह की विधवा रानी ही रियासत का प्रबंध करती रही पर पीछे से वि० सं० १९२० में उससे अधिकार ले लिए गए और सरकार की ओर से एक प्रबंधक नियत किया गया। राजा जगतराज को वि० सं० १९२८ में राज्याधिकार मिले। पर यह उसी साल मर गया। इससे राजा विश्वनाथसिंह को गद्दी दी गई पर ये उस समय सिर्फ १४ महीने के थे।

कालिंजर

४१—पन्ना के राजा सरमेदसिंह के समय में कालिंजर में रामकिसुन चौबे किलेदार थे। पीछे से ये यहाँ के स्वतंत्र राजा

बन बैठे। इस समय इन्होंने इसे दस वर्ष तक दृढ़तापूर्वक अपने अधिकार में रखा। इसी समय संवत् १८५६ में अलीबहादुर ने इस पर चढ़ाई की और वह यहीं मर गया।

४२—अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने के समय कालिंजर के किले में रामकिसुन चौबे के लड़के (बलदेव, दरियावसिंह, भरतजू, गोविंददास, गंगाधर, नवलकिशोर, सालिगराम और छत्रसाल) रहते थे। इनमें से बलदेव की मृत्यु हो गई थी और दरियावसिंह किलेदारी करते थे। इन्होंने भी अँगरेजों से संधि करना चाहा और बुंदेले राजाओं के समान ही हक माँगे। परंतु ऐसा होना संभव न था। अँगरेज लोग तरेंघाट में भी शांति रखना चाहते थे। इससे चौबे कुटुंब की ओर से दरियावसिंह को सनद दी गई। इस समय इन्होंने और भी कुछ ग्रामों का दावा किया था। पर वे सब गाँव अजयगढ़ के किलेदार के पास थे, इससे न मिल सके।

४३—यद्यपि दरियावसिंह ने अँगरेजों से सुलह कर ली और उसे सनद भी मिल गई थी, पर यह गुप्त रूप से राजविद्रोहियों को सहारा दिया करता था। इससे अँगरेजों ने इसके पास से किला ले लेना ही उचित समझा। पर ये ऐसा करने पर राजी न थे इससे वि० सं० १८६६ (जनवरी सन् १८१२) में चढ़ाई कर दी गई पर कुछ लाभ न हुआ। पीछे से दरियावसिंह ने उतनी ही आमदनी का दूसरा इलाका ले लेने की शर्त पर आत्मसमर्पण कर दिया। इस समय चौबे कुटुंब में घरेलू झगड़े मचे हुए थे। इससे कुटुंब के प्रत्येक व्यक्ति को तथा चौबे कुटुंब के वकील राव गोपाललाल को भी अलग अलग सनदें देना उचित समझा गया।

४४—इस बँटवारे के समय गोविंददास और गंगाधर का स्वर्गवास हो गया था। इससे इनकी ओर से पोकरप्रसाद (पुष्कर-प्रसाद) और गयाप्रसाद उपस्थित हुए। ऐसे ही दो हिस्सों पर

छत्रसाल की मा और भरतजू की स्त्री इन दो विधवाओं का अधिकार था। इन दोनों ने अपने अपने हिस्से में पोकरप्रसाद और गयाप्रसाद के हिस्से क्रमानुसार मिला दिए पर पीछे से नवलकिशोर और भरतजू की विधवा में झगड़ा हो गया। इससे वि० सं० १८७४ में इन दोनों के हिस्से भी अलग अलग कर दिए गए और दोनों को सनदें भी अलग अलग दे दी गईं।

भरतजू की विधवा वि० सं० १८६३ में मर गई। इससे इस वंश की प्रचलित प्रथा के अनुसार इसका हिस्सा और छत्रसाल की मा "ओरी" का हिस्सा भी दूसरे दूसरे हिस्सों में मिला दिए गए।

४५—पोकरप्रसाद का लड़का विसेनप्रसाद (विष्णुप्रसाद) पुरुवा जागीर का मालिक था। यह वि० सं० १९१२ में एक कत्ल के मामले में शामिल था। इससे इसकी जागीर जब्त कर ली गई।

४६—छत्रसाल के मरने पर जगरनाथ (जगन्नाथ) को जागीर मिली। यह वि० सं० १९०० में मर गया। इससे इसकी विधवा नन्ही दुलैया अधिकारिणी हुई। इसके कोई पुत्र न था। अतः इसने वंशगोपाल को गोद लेना चाहा। परंतु हिस्सेदारों ने यह एतराज किया कि यह रामकिसुन चौवे के वंश में से नहीं है। किंतु "हिंदू लॉ" और चौवे वंश की प्रथा के अनुसार अँगरेजों ने उसका गोद लेना उचित माना लेकिन हुक्म होने के पूर्व ही वंशगोपाल मर गया और नन्ही दुलैया भी वि० सं० १९२१ (जनवरी सन् १८६४) में मर गई। यद्यपि इसने अपने मरने के पूर्व ही वंशगोपाल के लड़के विहारीलाल को गोद लेने की वसीयत की थी लेकिन ऐसा गोद लेना सनद की शर्तों के विरुद्ध था। इससे यह नामंजूर कर दिया गया और छत्रसाल का हिस्सा भी दूसरे दूसरे हिस्सों में मिला दिया गया। इस तरह रामकिसुन चौवे की जागीर के अब ९ हिस्से रह गए हैं। इनमें से चार (पालदेव, तराँव, पहरा और भसौंदा)

तो चौबे वंश में हैं और पाँचवीं जागीर कामता-रजोला है। यह राव गोपाललाल वकील के वंश में है।

पालदेव

४७—पालदेव की जागीर चौबे दरियावसिंह को वि० सं० १८६६ में मिली थी। दरियावसिंह के मरने पर उसका पुत्र नाथूराम और इसके पीछे वि० सं० १८९७ में इसका लड़का राजाराम जागीर का मालिक हुआ। पर इसके कोई संतान नहीं हुई इससे इसके मरने पर इसके चचा शिवप्रसाद को ही जागीर दे दी गई।

यह वि० सं० १९२२ में मरा। इसके पीछे इसका लड़का मुकुंदसिंह मालिक हुआ। यह वि० सं० १९३१ में निस्संतान मरा। इससे इसका भाई अनिरुद्धसिंह गद्दी पर बैठा और इसके पश्चात् जगतराज को जागीर दी गई। इनके गोविंदप्रसाद और दरियावसिंह ये दो लड़के हुए थे किंतु गोविंदप्रसाद का स्वर्गवास हो गया है। जागीरदार को रावबहादुर का खिताब है। जागीर की आमदनी २६०००) रुपए है।

तराँव

४८—गयाप्रसाद के हिस्से में तराँव आया था। इसके मरने पर वि० सं० १८९७ में कामताप्रसाद ने जागीर पाई। यह गयाप्रसाद का लड़का था। यह भी वि० सं० १९१३ में परलोक को सिधारा। तब इसका लड़का रामचंद्र अधिकारी हुआ। रामचंद्र वि० सं० १९२९ में मरा। तब इसके लड़के चतुर्भुज को गद्दी मिली। यह वि० सं० १९५१ में परलोकवासी हुआ। इससे ब्रजगोपाल को जागीर दी गई।

भैसौंदा

४९—रामकिसुन चौबे के एक लड़के का नाम नवलकिशोर था। इसका हिस्सा इसके भाई तीरथप्रसाद को मिला था। तीरथप्रसाद

के मरने पर अचलजू ने जागीर पाई। यह नवलकिशोर का लड़का था। यद्यपि पं० छत्रसाल को, जो जागीरदार हैं, १९४२ में जागीर मिली थी पर उस समय ये छोटे थे, इससे इन्हें वि० सं० १९६० में जागीर का प्रबंध सौंपा गया था।

चौबेपुर-पहरा

५०—सालिगराम चौबे रामकिसुन चौबे जागीरदार के पुत्र थे। इन्हें वि० सं० १८६९ में जागीर दी गई थी। सालिगरामजी ने अपने जीते-जी अपनी जागीर अपने तीनों पुत्रों में बराबर बराबर बाँट देने का विचार किया था परंतु सरकार ने ऐसा करना मंजूर न किया। ये वि० सं० १९०० में मरे। इससे रामप्रसाद चौबे के ज्येष्ठ पुत्र को जागीर दी गई। इनकी मृत्यु होने पर इनका भतीजा मकसूदनप्रसाद तराँव जागीर से गोद में लिया गया। इन्होंने सिपाही-विद्रोह के समय सरकार को अच्छी सहायता पहुँचाई थी इससे इन्हें रावबहादुर की पदवी दी गई। इनके भी पुत्र न हुआ। इससे वि० सं० १९२५ में राधाचरणजी गोद लिए गए। इस समय ये छोटे थे इससे ११ वर्ष के पश्चात् वि० सं० १९३६ में इन्हें जागीर के अधिकार दिए गए।

कामता-रजोला

५१—जिस समय पं० दरियावसिंह चौबे को कंपनी की सरकार ने जागीर की सनद दी उस समय राव गोपाललाल इस कुटुंब के वकील थे। इससे इन्हें भी वि० सं० १८६९ में जागीर दी गई। इनके मरने पर वि० सं० १९३० में राव भारतप्रसाद गोपाललाल के पुत्र जागीरदार हुए। आजकल राव रामप्रसाद जागीरदार हैं। इन्हें वि० सं० १९४९ में जागीर मिली थी। ये जाति के कायस्थ हैं। इनकी जागीर कामता-रजोला कहाती है। राव रामप्रसाद भारतप्रसाद के पुत्र हैं।

मैहर

५२—पन्ना के राजा हिंदूपत ने बेनी हजूरी को वि० सं० १८२७ में मैहर की जागीर दी थी पर ये राजा अनिरुद्धसिंह के समय स्वतंत्र हो गए। बेनी हजूरी के पितामह ठाकुर भीमसिंहजी राजा छत्रसाल के यहाँ नौकर थे। कहते हैं कि ठाकुर भीमसिंहजी के पूर्वज अलवर की ओर से आए थे। शुरू में ये ओड़छे में नौकर हुए। इससे यहाँ के राजा ने इन्हें कुछ जमीन दी थी। ये कछवाहे राजपूत हैं।

५३—बेनी हजूरी के मरने पर राजधर राजा हुआ। इससे और अलीबहादुर से युद्ध हुआ था। इस युद्ध में राजधर हार गया। अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने पर राजधर के भाई दुर्जनसिंह को वि० सं० १८६३ (१८-११-१८०६) में सनद मिली थी पर पीछे से इसमें कुछ परिवर्तन किया गया। इससे वि० सं० १८७१ (१८-३-१८१४) में दूसरी सनद दी गई।

५४—वि० सं० १८८३ में इसके मरने पर राज्य के दो हिस्से हो गए। मैहर तो बिसुनसिंह के पास रहा और विजयराघवगढ़ इसके छोटे भाई प्रयागदास को मिला। परंतु प्रयागदास के लड़के सरजूप्रसाद ने सिपाही-विद्रोह के समय राजविद्रोह किया। इससे वि० सं० १९१५ में विजयराघवगढ़ का राज्य सरकार ने जब्त कर लिया।

५५—वि० सं० १८८३ में मैहर में बिसुनसिंह राजा थे। इनका प्रबंध अच्छा न था जिससे इन पर कर्ज हो गया। इससे वि० सं० १८९६ में यहाँ सरकारी प्रबंध रखा गया। ये वि० सं० १८९७ में मरे और इनका लड़का मोहनप्रसाद राजा हुआ। इसने सिर्फ दो वर्ष राज्य किया। इसके मरने पर वि० सं० १९०८ में रघुवीरसिंह राजा हुए पर ये छोटे थे। इससे इन्हें वि० सं० १९२२ में राज्याधिकार मिले। इनका प्रबंध अच्छा था। इससे इन्हें वि०

सं० १९२६ में खानदानी राजा की पदवी दी गई। इन्हें वि० सं० १९३४ में जो ९ तोपों की सलामी मिली थी वह एक वर्ष के बाद ही वि० सं० १९३५ में वंशपरंपरागत कर दी गई।

गौरिहार का हाल

५६—अजयगढ़ के राजा गुमानसिंह के समय पं० राजाराम तिवारी भूरागढ़ के क़िलेदार थे। इनके प्रपितामह पं० विद्यापति तिवारी मलपुरा में रहते थे। यह ग्राम चरखारी रियासत में है। राजारामजी पीछे से राजा गुमानसिंह से बिगड़ खड़े हुए और धीरे धीरे स्वतंत्र हो गए। अलीबहादुर ने इन पर भी चढ़ाई की पर लाभ न हुआ। इन्होंने बड़ी बहादुरी से उसका सामना किया। पीछे से ये लूट-मार करने लगे। इससे अशांति छा गई।

५७—अजयगढ़ के राजा और अँगरेजों से संधि हो गई थी। उसके अनुसार राजाराम तिवारी को दबाकर शांति रखना राजा का पहला काम था पर ऐसा करना उसकी शक्ति के बाहर था। इसलिये कंपनी की सरकार ने इन्हें पकड़ने के लिये ३००००) हजार रुपए का पारितोषिक मुकर्रर किया परंतु इस घोषणा के पूर्व ही इन्होंने बुंदेलखंड के राजा लोगों के समान जागीर मिलने की शर्त पर आत्मसमर्पण कर दिया। इससे इन्हें भी वि० सं० १८६४ में सनद दी गई। इन्होंने अपनी राजधानी गौरिहार नियत की।

५८—ये वि० सं० १९०३ (जनवरी सन् १८४६) में मरे और इनके एकमात्र बचे हुए पुत्र राजधर रुद्रसिंह को गद्दी दी गई। इन्होंने वि० सं० १९१४ में सिपाही-विद्रोह के समय बहुत अच्छा काम किया और कई अँगरेजों की जान बचाई। इससे इन्हें १००००) रुपए की खिलअत और रावबहादुर की पदवी दी गई और वि० सं० १९०९ में इन्हें भी अन्यान्य राजाओं के समान गोद लेने की सनद

मिली। इनके पश्चात् पं० श्यामलेप्रसादजी जागीरदार हुए। आज-कल पं० प्रतिपालसिंहजी जागीरदार हैं। पं० श्यामलेप्रसाद के पश्चात् आपको गद्दी दी गई है। आपका जन्म वि० सं० १९४३ में हुआ था और १९६१ में गद्दी मिली थी। आपके दो पुत्र हैं। ज्येष्ठ कुमार का नाम अवधेंद्रप्रतापसिंह है और छोटे का देवेंद्रप्रतापसिंह।

बरौंडा या पाथर कछार का हाल

५९—कालिंजर से दस मील पर बरौंडा या पाथर कछार नाम की एक रियासत है। आजकल यह बघेलखंड के पोलिटिकल एजेंट के अधीन है। यहाँ के राजा राजवंशी राजपूत हैं। यह बहुत पुराना घराना है। पूर्व समय में यहाँ के राजा को हिरदेशाह (पन्ना के राजा) और अलीबहादुर ने सनदें दी थीं। जब अँगरेजों का राज्य हुआ तब इन लोगों ने भी तत्कालीन राजा मोहनसिंह को वि० सं० १८६४ में सनद दी। यह वि० सं० १८८४ (४-१-१८२७) में परलोक सिधारा। इसके कोई लड़का न था। इससे इन्होंने मरने के समय एक वसीयतनामा लिखा जिसमें अपनी सारी संपत्ति अपने भतीजे सर्वजीतसिंह को दे दी। यह वसीयत सरकार ने भी मान ली।

६०—सर्वजीतसिंह वि० सं० १९२४ में मरा। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसके तीसरे लड़के रामदयालसिंह ने, अपने बड़े भाई धर्मपालसिंह के होते हुए भी, राजगद्दी पाने के लिये दावा किया पर यह नामंजूर हो गया। राजा छतरपालसिंह २५ वर्ष की अवस्था ही में वि० सं० १९३१ में परलोकवासी हुआ। तब इसके चचा रघु-वरदयालसिंह को गद्दी दी गई। इन्हें वि० सं० १९३४ में ९ तोपों की सलामी और १९३५ में राजाबहादुर की पदवी मिली। ये वि० सं० १९४२ में मरे। राजा रघुवरदयालसिंह के न तो कोई लड़का था और न इन्होंने किसी को गोद ही लिया था। इससे सरकार ने

ठाकुरप्रसादसिंह को उत्तराधिकारी चुना। यह वि० सं० १९४३ में गद्दी पर बैठा।

जस्सो का हाल

६१—महाराज छत्रसाल ने अपने लड़के हिरदेशाह को पन्ना और जगतराज को जैतपुर दिया था। जगतराज के हिस्से के ३ भाग करके पहाड़सिंह, गुमानसिंह और खुमानसिंह ने बाँट लिए। गुमानसिंह को अजयगढ़, खुमानसिंह को चरखारी और पहाड़सिंह को जैतपुर मिला था। इसमें कोटरा और जस्सो दोनों शामिल थे। ये दोनों गुमानसिंह और खुमानसिंह को पीछे से दे दिए गए। गुमानसिंह को कोटरा और खुमानसिंह को जस्सो मिला। महाराज छत्रसाल के चौथे पुत्र भारतीचंद अपने बड़े भाई के साथ में रहे। इससे इनकी जागीर बनघोरा और जस्सो भी हिरदेशाह के राज्य में मिली रही पर पीछे से इन्होंने इसके दो हिस्से कर दिए और अपने पुत्र दुर्जनसिंह और हरीसिंह को दे दिए। बनघोरा दुर्जनसिंह ने पाया और जस्सो हरीसिंह ने। पहले तो ये दोनों महाराज हिरदेशाह के अधीन बने रहे पर पीछे से स्वतंत्र हो गए। दुर्जनसिंह के पश्चात् मेदनीसिंह ने बनघोरा पाया पर इसके कोई पुत्र न था। इससे इसने अपना हिस्सा भी हरीसिंह के पुत्र चैतसिंह को दे दिया। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका अल्पवयस्क बालक मूरतसिंह राज्य का अधिकारी हुआ। इस समय चैतसिंह का एक नौकर गोपालसिंह मालिक बन बैठा।

६२—बुंदेलखंड की अन्यान्य रियासतों के समान अलीबहादुर ने जस्सो पर भी चढ़ाई की। इस समय यहाँ पर गोपालसिंह था पर यह पीछे से मूरतसिंह की भी देखरेख करने लगा था। मूरतसिंह कोटरा का भी मालिक था। पर कोटरा अजयगढ़वालों के

अधीन था। लेकिन मूरतसिंह ने इनका आधिपत्य न माना। वह लूट मार भी मचाने लगा। वि० सं० १८७० में भारत-सरकार ने भी बखतसिंह के ही पक्ष में फैसला किया और यह भी कहा कि खिराज के २५००) रुपए सीधे न भेजकर अँगरेजों की मारफत भेजा करो। परंतु मूरतसिंह ने किसी प्रकार अजयगढ़ के अधीन रहना मंजूर न किया।

६३—अंत को तहकीकात की गई। इसमें बुंदेलखंड के बड़े बड़े राजाओं ने मूरतसिंह का पक्ष लिया, जिससे यह सिद्ध हो गया कि जस्सो पर अजयगढ़ का नाममात्र को आधिपत्य था। इससे अँगरेज-सरकार ने इसे भी अन्यान्य राजाओं के समान वि० सं० १८७३ में सनद दी, पर यह वि० सं० १८७० में अजयगढ़ के राजा बखतसिंह को दे दिया गया था। इससे सरकार ने बखतसिंह को २५००) की वार्षिक छूट अपने खजाने से देना मंजूर किया।

६४—मूरतसिंह के दो लड़के थे। इनमें से ज्येष्ठ कुमार को लड़का नहीं था इससे द्वितीय पुत्र ईश्वरीसिंह को संपूर्ण जागीर मिल गई। पर इसे अपने चचेरे भाई रघुनाथसिंह और मूरतसिंह के भतीजे सतरजातसिंह से बहुत कष्ट उठाना पड़ा। अंत में इसने इनकी जागीरें भी अपने राज्य में मिला लीं। इन लोगों ने वि० सं० १८८९ में दरखास्तें भी भेजीं, पर कुछ लाभ न हुआ। पीछे से इन्होंने लूट-मार करना शुरू कर दिया। लाचार रघुनाथसिंह को वि० सं० १९०२ में जागीर दी गई और सतरजीत को १०००) हजार रुपए सालाना नगद दिलाए गए। यह जागीर का प्रबंध नहीं कर सकता था। इसे पहले दौराहा जागीर में दिया गया था।

६५—ईश्वरीसिंह वि० सं० १९१७ में मर गया। इसके लड़के का नाम रामसिंह था। इसे वि० सं० १९१९ में गोद लेने की सनद दी गई। यह थोड़े दिनों के पश्चात् परलोक को सिधारा। इसके

मरने से मूरतसिंह के वंश का अंत हो गया। इससे अजयगढ़ के राजा ने फिर भी जस्सो की जागीर पर अपना अधिकार चाहा परंतु उसका यह दावा वि० सं० १८७३ की सनद के प्रतिकूल था। इससे सरकार ने मूरतसिंह के भतीजे सतरजीतसिंह (शत्रुजीतसिंह) के लड़के रनजीतसिंह का गोद लिया जाना उचित ठहराया; तदनुसार यह गोद लिया गया। दीवान सतरजीतसिंह तो पेंशन पाते ही थे। ये वि० सं० १९२९ में परलोक को सिधारे। इससे उनकी पेंशन उनके ज्येष्ठ कुमार गोपालसिंह को मिलने लगी।

६६—रनजीतसिंह के बाद वि० सं० १९४५ में जगतराजसिंह ने जागीर पाई पर ये बराबर प्रबंध न कर सके। इससे जागीर इनके पुत्र गिरवरसिंह को दे दी गई पर ये छोटे थे इससे सरकार की ओर से प्रबंध किया गया।

आलीपुरा का हाल

६७—वि० सं० १७६५ में महाराज छत्रसाल की सेना में गरीब-दास नामक एक आदमी नौकर हुआ। यह जाति का राजपूत और कुल का पड़िहार था। इसने महाराज की सेना में अच्छा काम किया। इसके पौत्र अचलसिंह को पन्ना-नरेश हिंदूपत ने वि० सं० १८१४ में आलीपुरा की जागीर दी। पीछे से ये स्वतंत्र हो गये। अलीबहादुर की चढ़ाई के समय दीवान प्रतापसिंहजी जागीरदार थे। अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित होने के समय कंपनी की सरकार ने इन्हें वि० सं० १८६५ में आलीपुरा जागीर की सनद दी। इनके पंचमसिंह, तिलोकसिंह, जवाहरसिंह और किशोरसिंह नाम के चार लड़के थे। पिता के मरने पर राव पंचमसिंह ने वि० सं० १८९२ में जागीर पाई। इन्होंने इसके चार भाग करके आपस में बाँट लिए परंतु कंपनी की सरकार ने रियासत के टुकड़े करना मंजूर नहीं किया।

६८—किशोरसिंह वि० सं० १९०३ में मरे। इनके ज्येष्ठ पुत्र जगतराज का तो पहले ही स्वर्गवास हो गया था। इससे इनके पौत्र बखतसिंह ने हिस्सा पाया। परंतु किसी कारण से आपस में झगड़ा उठ खड़ा हुआ और कंपनी की सरकार ने भी रियासत के टुकड़े करना मंजूर न किया था। इससे किशोरसिंह का हिस्सा असली जागीर में मिला लिया गया और बखतसिंह को ३०००) वार्षिक आमदनी की जमीन परवरिश के लिये दी गई।

६९—जवाहरसिंह वि० सं० १९०६ में मरे। इन्होंने बखतसिंह के लड़के को गोद लिया था। बखतसिंह को किशोरसिंह की जागीर के बदले सिर्फ ३०००) रुपए वार्षिक मिलते थे। इससे अब इन्होंने जवाहरसिंह की जागीर पर अधिकार करना चाहा। परंतु ये निकाल दिए गए और इन्हें ३०००) वार्षिक और भी इस जागीर के बदले मिलने लगे। वि० सं० १९०९ तक यह रकम इन्हें जमीन के रूप में मिलती रही। पर इसी साल जमीन तो निकाल ली गई और नकद रुपए मुकर्रर कर दिए गए। इसी समय तिलोकसिंह भी मर गए।

७०—तिलोकसिंह के मरने पर उनका हिस्सा उनके दोनों लड़कों—अचलसिंह और मजबूतसिंह—में बाँट दिया गया। अब बखतसिंह ने फिर भी गड़बड़ मचाई। इस पर उन दोनों के हिस्से भी जागीर में मिला दिए गए और उनके भरण-पोषण का प्रबंध जागीर (रियासत) से किया गया।

७१—सिपाही-विद्रोह के समय बखतसिंह ने ६०००) रुपए लेना नामंजूर कर दिया और विद्रोहियों से जा मिला। यह वि० सं० १९२२ में पकड़ा गया था परंतु प्रमाणाभाव से सरकार ने उसे छोड़ दिया। वि० सं० १९२५ में ६०००), जो बखतसिंह को मिलते थे, किशोरसिंह के कुटुम्ब में बाँट दिए गए। तत्कालीन प्रथा के

अनुसार किशोरसिंह के लड़के जगतराज को २३००) और उसके दोनों भाइयों में से हरएक को १८५०) मिले। बखतसिंह जगतराज का ज्येष्ठ पुत्र था। इससे इसे प्रचलित प्रथा के अनुसार ८८०) और उसके दोनों भाइयों को ७१०) मिले। पर बखतसिंह राजी न हुआ। इसने दुबारा उपद्रव मचाना चाहा। इस अपराध के बदले वह ग्वालियर में नजरबंद रखा गया।

७२—स्वर्गवासी राव हिंदूपत राव प्रतापसिंह के प्रपौत्र थे। ये वि० सं० १८९७ में गद्दी पर बैठे थे। वि० सं० १९२८ में इनका परलोकवास हुआ। इनके पिता का नाम राव दौलतसिंह और पितामह का राव पंचमसिंह था। राव हिंदूपत सिपाही-विद्रोह के समय राजभक्त बने रहे। इससे सरकार ने खुश होकर इन्हें ५०००) नकद पारितोषिक में दिए।

७३—राव हिंदूपत का स्वर्गवास होने पर छत्रधारीसिंह गोद लिए गए। इनको वि० सं० १९३४ में राव बहादुर की पदवी मिली। वि० सं० १९४४ में ये सी० एस० आई० की पदवी से विभूषित किए गए।

७४—वि० सं० १९६० में आपको राजा की पदवी दी गई है। राजा साहब को माल और दीवानी के सिवा फौजदारी के भी अधिकार हैं। पर बड़े बड़े अपराध—जिनमें आजन्म कारागार, फाँसी या देश-निकाले की सजा दी जाती है—पोलिटिकल एजेंट नौगाँव (छावनी) किया करते हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र का नाम हरपालसिंह है।

अठभैया जागीर का हाल

७५—दीवान रायसिंह महाराज वीरसिंहदेव के पुत्र हरदौल के प्रपौत्र थे। हरदौल को महाराज वीरसिंहदेव ने बड़गाँव जागीर में दिया था। बहुत दिनों तक यह जागीर इसी नाम से प्रसिद्ध रही। दीवान रायसिंह के ८ पुत्र थे। इन्होंने वि० सं० १८४७ में

जागीर के भी ८ भाग करके हर एक को एक एक भाग दे दिया। इससे यह जागीर अठभैया जागीर कहलाने लगी। इसमें करीं, पसराई, टारौली, चिरगाँव, धुरवई, विजना, टोरी फतेपुर और बंकापहाड़ी ये ८ जागीरें थीं।

७६—पोलिटिकल एजेंट नौगाँव (छावनी) ने अपनी वि० सं० १८७८ (सन् १०-१-१८२१) की रिपोर्ट में यह लिखा था कि करीं और पसराई की रियासतें लावारिस हो जाने से अन्यान्य रियासतों में मिल गई हैं पर एचिंसन ट्रीट्रीज और सनद नामक पुस्तक में दूसरे कागजों के आधार पर ऐसा लिखा है कि ये दोनों रियासतें झाँसी में मिला दी गई थीं। पीछे से ये सरकारी राज्य में शामिल कर ली गईं। ऐसे ही टारौली भी टेहरी (ओड़छा) में शामिल कर ली गई थी। पर अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित हो जाने पर वि० सं० १८७८ में यह निर्णय हुआ कि टारौली जागीर तो सरकार की देख-रेख में रहे पर वार्षिक कर झाँसी को दिया जाय और सेवा-चाकरी तथा हाजरी ओड़छे में की जाय। पीछे से झाँसी की सरकार ने बराबर कर न पटने के कारण धुरवई, विजना, टोरी फतेपुर और बंका पहाड़ी में से कई गाँव निकाल लिए और टारौली भी लछमनसिंह के पश्चात् ओड़छे में मिल गई क्योंकि इनके कोई पुत्र न था। इससे टारौली का ३०००) वार्षिक कर ओड़छे से झाँसी को दिया जाने लगा। लछमनसिंह रायसिंह के पुत्र थे। जब वि० सं० १८८० में उपर्युक्त चारों जागीरदारों को सनदें दी गईं तब उनकी सनदों में जागीरों के गाँव निकालने का हाल भी लिख दिया गया था।

चिरगाँव

७७—रावबहादुर बखतसिंह ने एक इकरारनामा कंपनी की सरकार को तारीख २७-११-१८२१ को इस शर्त का लिख दिया था

कि मैं और मेरे खानदान के लोग सदा सरकार अँगरेज के शुभचिंतक और आज्ञाकारी बने रहेंगे। इससे इन्हें ता० ११-४-१८२३ को १० ग्रामों की सनद दी गई थी पर इन्होंने सन् १८४१ में अँगरेज-सरकार से राजविद्रोह किया इससे जागीर छीन ली गई।

टोरी फतेपुर

७८—दीवान रायसिंह ने टोरी फतेपुर की जागीर अपने ज्येष्ठ कुमार दीवान हिंदूसिंह को दी थी। इसके मरने पर दीवान मेदनीमल को जागीर मिली। दीवान मेदनीमल दीवान हिंदूसिंह के पुत्र थे। इनके कोई पुत्र न था। इससे इन्होंने विजना के जागीरदार दीवान सुरजनसिंह के छोटे पुत्र हरप्रसाद को गोद लेकर उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया।

७९—दीवान हरप्रसाद को सरकार ने वि० सं० १८८० (११-४-१८२३) में इस जागीर की सनद दी। इसमें १४ गाँव थे। ये वि० सं० १९१५ में मरे। इनके भी कोई संतान न हुई थी। इससे इन्होंने अपनी मृत्यु के पूर्व ही विजना की जागीर से कुँवर पृथ्वीसिंह को गोद ले लिया था और इस गोदनामे को अँगरेज सरकार ने भी स्वीकार कर लिया था। कुँवर पृथ्वीसिंह छोटे थे। इससे जागीर का प्रबंध हरप्रसाद की विधवा रानी करती रही। आज-कल राव अर्जुनसिंह जागीरदार हैं। इन्हें वि० सं० १९३७ में गद्दी मिली थी पर अधिकार वि० सं० १९५४ में दिए गए।

धुरवई

८०—दीवान रायसिंह ने धुरवई की जागीर अपने चौथे पुत्र अमानसिंह (मानसिंह) को दी थी। इसके खेतसिंह, जयसिंह और जसवंतसिंह ये तीन लड़के थे। अँगरेजी राज्य स्थापित होने के समय सरकार ने दीवान बुधसिंह को वि० सं० १८८० (११-४-१८२३)

में सनद दी थी। ये जयसिंह के लड़के हैं। इसमें ८ गाँव थे जिनमें से ६ तो इस इलाके के और दो जतारा के थे। बुधसिंह के मरने पर नाहरसिंह को गद्दी मिली। नाहरसिंह वि० सं० १९०८ में मरे और रनजोरसिंह जागीरदार हुआ। रनजोरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र का नाम कुँवर हमीरसिंह है।

विजना

८१—विजना की जागीर दीवान रायसिंह ने अपने पुत्र सामंतसिंह को वि० सं० १८४७ (१७९० ई०) में दी थी। दीवान सामंतसिंह के ३ बेटे थे—अजीतसिंह, जगतराज और प्रानसिंह। अजीतसिंह के पश्चात् दीवान सुरजनसिंह ने गद्दी पाई। ये सात भाई थे। सुरजनसिंह को कंपनी की सरकार ने वि० सं० १८८० (११-४-१८२३ ई०) में जागीर की सनद दी। इसमें ६ गाँव थे।

८२—सुरजनसिंह वि० सं० १८९६ में मरे और खांडेराय इनके ज्येष्ठ पुत्र जागीरदार हुए। इनको दुर्जनसिंह भी कहते थे। ये दो भाई थे। खांडेराय ने लगभग ११ वर्ष राज्य किया। ये वि० सं० १९०७ में मरे। इनके पश्चात् मुकुंदसिंह ने गद्दी पाई। इनके मर्दनसिंह, रतनसिंह और हीरासिंह तीन पुत्र और दो पौत्र (हीरासिंह के पुत्र) हिम्मतसिंह और लछमनसिंह नाम के हैं।

८३—दीवान अजीतसिंह के ७ बेटे थे। इनमें से बखतसिंह चिरगाँव और धुरमंगद. टोरी फतेपुर की जागीर में गोद गए और कुँवर विजयबहादुर को उसके चचा प्रानसिंह ने गोद लिया था।

बंका-पहाड़ी

८४—पहाड़ी जागीर के संस्थापक दीवान उम्मेदसिंह हैं। ये दीवान रायसिंह के पुत्र थे। इन्हें ५ गाँव मिले थे। परंतु मरहठों की चढ़ाई के समय ४ गाँव निकल गए। कहा जाता है कि जागीर

पर झाँसी का खिराज बाकी रह गया था। इससे झाँसी के तत्कालीन सूबेदार ने ४ गाँव निकाल लिए। संभवतः यह हाल वि० सं० १८७८ का होगा।

८५—दीवान उम्मेदसिंह के पश्चात् दीवान वंका दुर्गसिंह ने जागीर पाई थी। इनके दीवान वंका छत्रपति और दीवान बहादुरसिंह ये दो लड़के थे। दीवान वंका दुर्गसिंह ने भी अपनी जागीर दोनों लड़कों को दे दी थी। दीवान छत्रपति के दीवान शत्रुजीतसिंह और वंका ईश्वरीसिंह ये दो लड़के थे। दीवान वंका ईश्वरीसिंह को सरकार ने वि० सं० १८८० (११-४-१८२३) में जागीर की सनद दी थी। दीवान वंका ईश्वरीसिंह के भी वंका विजयबहादुर, परतापसिंह और परबतसिंह ये तीन लड़के थे। दीवान वंका ईश्वरीसिंह वि० सं० १९०७ में मरे।

८६—दीवान वंका ईश्वरीसिंह के मरने पर दीवान वंका विजयबहादुर गद्दी पर बैठे। ये भी वि० सं० १९२८ में परलोक सिधारे और जागीर दीवान वंका प्यारेजू को दी गई। ये वि० सं० १९४७ में मरे। इनके बाद वंका मिहरबानसिंह गद्दी पर बैठे।

बेड़ी का हाल

८७—बेड़ी जागीर के संस्थापक (पानेवाले) अछर जू (अचल जू) पँवार ठाकुर थे। इनके पितामह दीवान पृथ्वीपतिसिंह कहैया के रहनेवाले थे। यह ग्राम ग्वालियर रियासत में है। इनके पुत्र का नाम महिमाराय था। दीवान अछरजू अठारहवीं शताब्दी के अंत में संडी (जिला जालौन) में आकर रहने लगे थे। इनका विवाह जैतपुर के राजा जगतराज की कन्या के साथ हुआ था। इस विवाह में राजा जगतराज ने इन्हें १२ लाख की जागीर दहेज में दी थी। इस जागीर में उमरी, ददरी और चिल्ली नाम के ग्राम भी

थे। दीवान अछरजू के उमरावसिंह, गंधर्वसिंह, खुमानसिंह और विजयसिंह नाम के ४ बेटे थे। दीवान अछरजू के मरने पर खुमानसिंह ने जागीर पाई। जब तक बुंदेलों की सत्ता रही तब तक जागीर को किसी प्रकार की हानि न पहुँची। पर पीछे से जागीर का बहुत सा भाग निकल गया, यहाँ तक कि सिर्फ ददरी, उमरी और चिल्ली ग्राम ही रह गए। खुमानसिंह के पश्चात् दीवान जुगलप्रसाद को जागीर मिली। अलीबहादुर की चढ़ाई के समय जुगलप्रसाद के पास ३ गाँव थे। इससे नवाब अलीबहादुर ने इन्हीं तीनों गाँवों की सनद दी थी।

८८—अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित होने के समय जब अँगरेजों और गोविंदराव से संधि हुई तब अँगरेजों ने इस जागीर में से चिल्ली और ददरी निकाल लिए। अब सिर्फ उमरी ही रह गई। इससे वि० सं० १८६६ में इसी की सनद दी गई। जुगलप्रसाद वि० सं० १८७१ में मरे। इनके पुत्र न था इससे इनके चचेरे भाई रावजू के पुत्र फेरनसिंह गोद लिए गए। रावजू गंधर्वसिंह के पुत्र और अछरजू के पौत्र थे। इस समय फेरनसिंह के पिता रावजू जीवित थे और नियमानुकूल यही गद्दी पाते परंतु इन्होंने स्वतः फेरनसिंह को गोद लेने के लिये कहा था।

८९—फेरनसिंह के मरने पर वि० सं० १९१४ में राव विश्वनाथसिंह को जागीर दी गई। परंतु ४ ही वर्ष के बाद वि० सं० १९१८ में विश्वनाथसिंह भी मर गए। इनके मरने पर इनकी विधवा रानी ने अपने दूर के एक रिश्तेदार बलभद्रसिंह को गोद लेना चाहा। परंतु सरकार ने जागीरदार के भतीजे विजयसिंह को गोद लेने की सलाह दी और वही गोद लिया गया।

९०—राव विश्वनाथसिंह ने विद्रोह के समय सरकार की बड़ी सहायता की थी। इससे सरकार ने गद्दीनशीनी का नजराना, जो

हर रियासत से सरकार को दिया जाता है, बंद कर दिया। विजयसिंह की मृत्यु के पश्चात् रघुराजसिंह और उनकी मृत्यु के पश्चात् वि० सं० १९६१ में लोकेंद्रसिंह को गद्दी दी गई।

बीहट का हाल

९१—"एचिंसन के अहदनामे" नाम की पुस्तक में बीहट की जागीर के विषय में सिर्फ इतना ही लिखा है कि यह जागीर ओड़छा वंश की एक शाखा है परंतु श्यामलालजी ने उर्दू भाषा में जो बुंदेलखंड का इतिहास लिखा है उसमें इसके संस्थापक की वंशावली का विशेष वर्णन है। उन्होंने यहाँ के जागीरदार को अर्जुनपाल के पुत्र सोहनपाल का वंशज माना है और वंशावली इस प्रकार बतलाई है।

९२—अर्जुनपाल के सोहनपाल, दयापाल और वीर, ये तीन लड़के थे। सोहनपाल के इंद्रजीत और इसके परसराम हुए। परसराम के ३ पुत्र थे। इनमें से मझले पुत्र राव नारायणदास के भीमसेन और रूपशाह ये दो पुत्र हुए। रूपशाह के एक ही लड़का मानशाह हुआ पर इसके जामशाह, अचलसिंह और महाराजसिंह ये ३ पुत्र हुए। ऐसे ही जामशाह के भी नरिंद्रसिंह, सभासिंह और माखनजू ये तीन लड़के थे। सभासिंह के लड़के का नाम दीवान खुमानसिंह था। खुमानसिंह के दीवान सरदारसिंह, दीवान अपरबलसिंह, सकतसिंह और सबदलसिंह ये ४ लड़के थे।

९३—सोहनपाल को कोटरा जागीर में मिला था। इसका लड़का इंद्रजीत वि० सं० १५०७ में इटौरा में रहने लगा। इससे इसके वंशज इटौरिया कहलाए। इसी से बीहट के जागीरदार भी इटौरिया कहलाते हैं। परसराम के तीन लड़कों में से राव नारायणदास ने गुढ़ा जीता इससे ये गोढ़हा कहलाए।

९४—बीहट जागीर को कब, किसने और कैसे कायम किया—इसका तो पता लगता नहीं; पर ऐसा भी कहना अनुचित न होगा कि एक के बाद दूसरे जागीर की गद्दी पर बैठते गए, यहाँ तक कि नवाब अलीबहादुर की चढ़ाई के समय भी यह ज्यों की त्यों बनी रही।

९५—अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित होने के समय बीहट में अपरबलसिंह और लोहरगवाँ में इनके चचेरे भाई दीवान धाधूसिंह के लड़के दीवान छतारेजू थे। पर जागीर के सातों गाँवों की सनद दीवान अपरबलसिंह को वि० सं० १८६४ (२२-६-१८०७ ई०) में मिली और दीवान छतारेजू ने, जो लोहरगवाँ में रहते थे, लोहरगवाँ की सनद पाई। दीवान अपरबलसिंह के मरने पर राव वेंकटराव गद्दी पर बैठा। यह वि० सं० १८८५ तक जीता रहा। इसके मरने पर राव कमोदसिंह वि० सं० १८८५ में जागीर का अधिकारी हुआ। यह वि० सं० १९०३ में परलोक को सिधारा। इसके मरने पर हिरदेशाह को गद्दी मिली पर यह ३ ही वर्ष के भीतर वि० सं० १९०६ में मर गया।

९६—हिरदेशाह के मरने पर कमोदसिंह के भाई गोविंददास को जागीर मिली। राव गोविंददास सं० १९२९ (९-४-१८७२) में मरा और राव महमसिंह को जागीर मिली।

गरौली का हाल

९७—गरौली की जागीर दीवान गोपालसिंह को वि० सं० १८६९ में अँगरेज-सरकार ने दी थी। दीवान गोपालसिंह दीवान भगवंतसिंह के पुत्र हैं। इनकी वंशावली इस प्रकार बतलाई जाती है कि राव उदयाजी के क्रमानुसार प्रेमचंद, मानशाह, इंद्रमन, शाहमन, पर्वतसिंह, अनिरुद्धसिंह, अजीतसिंह और भगवंतसिंह हुए।

९८—पूर्व में गोपालसिंह जस्सो के जागीरदार दुर्जनसिंह व हरीसिंह के यहाँ नौकर था। दीवान दुर्जनसिंह महाराज छत्रसाल के पुत्र भारतीचंद के पुत्र हैं। गोपालसिंह ने अलीबहादुर की चढ़ाई के समय कोटरा इलाका अपने अधिकार में कर लिया था। नवाब ने इसे अपने अधीन करना चाहा पर न कर सका। यह जैसा शूर था वैसा ही निर्भीक भी था। यह अपने विरोधियों से लड़ने के लिये सदा तैयार रहता था।

९९—अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित होने के समय भी इसने अँगरेजों का घोर विरोध किया। अनेक बार सेना भेजने पर भी ये इसे वश न कर सके। पर पीछे से अन्यान्य लोगों के समान माफी मिलने और जागीर पाने की शर्त पर गोपालसिंह ने भी आत्म-समर्पण कर दिया। इससे अँगरेज सरकार ने इसे वि० सं० १८६९ (१२-२-१८१२) में १८ गाँवों की सनद दे दी। पर पीछे से पन्ना के राजा किशोरसिंह ने इन गाँवों का दावा किया और जाहिर किया कि सेवा-चाकरी के बदले ये गोपालसिंह को दिए गए थे। परंतु वि० सं० १८७८ की तहकीकात से सेवा-चाकरी के बदले इन गाँवों का दिया जाना प्रमाणित न हुआ। इससे ये सब गाँव गोपालसिंह के पास ही बने रहे। यह वि० सं० १८८८ में मरा।

१००—गोपालसिंह के मरने पर उसके बेटे दीवान पारीछत ने जागीर पाई। परंतु राज-विद्रोह के समय अँगरेजों के प्रति इसका व्यवहार अच्छा न था। इससे इसे अपनी जागीर के बाबत संदेह होने लगा। इसलिये इसने अपने जीते-जी अपने पुत्र रनधीर को राज्य देने की सरकार से अनुमति चाही। परंतु स्वीकृति मिलने के पश्चात् दोनों में अनबन हो गई। तब पारीछत ने उसके भरण-पोषण के लिये एक गाँव दे दिया। रणधीर वि० सं० १९४० में मर गया। इसके मरने पर पुत्रशोक के कारण दीवान पारीछत ने रण-

धीर के पुत्र चंद्रभानसिंह को वि० सं० १९४१ (१०-१०-१८८४ ई०) में राजगद्दी दे दी। उस समय यह छोटा था। इससे सरकार ने जागीर का प्रबंध किया। इसे वि० सं० १९६१ में अधिकार दिए गए।

खनियाधन का हाल

१०१—खनियाधन एक छोटी सी रियासत है। पूर्व में यह इलाका भी ओड़छा रियासत में था। यहाँ के राजा उदोतसिंह ने इसे अपने लड़के अमरसिंह को वि० सं० १७८१ में दिया था। इसमें मोहनगढ़ और अहार भी शामिल था। पीछे से मरहठों की चढ़ाई के समय यह ओड़छे से अलग कर दी गई। पेशवा ने इसे वि० सं० १८०८ में सनद दी और यह झाँसी के अधीन कर दी गई।

१०२—संवत् १८७४ में जब बुंदेलखंड में अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित हो गई तब यहाँ का राजा भी अधीन हो गया। परंतु वि० सं० १९११ में जब झाँसी में अँगरेजी राज्य स्थापित हो गया, तब यहाँ के राजा ने अँगरेजों से स्वतंत्र सनद चाही। इस समय खनियाधन में राजा पृथ्वीपाल का राज्य था। अमरसिंह से लेकर पृथ्वीपाल तक महाराजदेव और जवाहरसिंह इन दो राजाओं ने भी राज्य कर लिया था। पर महाराजदेव ने कितने वर्ष राज्य किया इसका ठीक पता नहीं लगता। जवाहरसिंह असाढ़ सुदी ३ वि० सं० १८९९ (११-७-१८४२) को मरा। राजा पृथ्वीपाल के सतरजीतसिंह, खुमानसिंह और गुमानसिंह, ये तीन लड़के थे। राजा पृथ्वीपाल अगहन सुदी १३ संवत् १९१९ में बसई नामक ग्राम में परलोक को सिधारा। इस समय राव खुमानसिंह को गद्दी मिलती पर अपने पिता की मृत्यु के सातवें दिन ये भी चल बसे। इससे राव गुमानसिंह को जागीर दी गई।

१०३—यहाँ के राजा ने अब तक अँगरेजी सरकार को किसी भी प्रकार का इकरारनामा नहीं लिखा था। इससे गोद लेने की सनद देने के पूर्व सरकार ने इससे इकरारनामा तावेदारी लिखवा लेना उचित समझा। इससे राजा गुमानसिंह ने वि० सं० १९२० (१-८-१८६३) में इकरारनामा तावेदारी का लिख दिया। अतः इसे गोद लेने की सनद दी गई। यह ७ वर्ष राज कर अगहन सुदी ९ वि० सं० १९२६ (१२-१२-१८६९) में परलोक को सिधारा। इसके मरने पर कुमार चतरसिंह ने गद्दी पाई। इस समय चतरसिंह केवल ७ वर्ष का छोटा सा बालक था। इससे प्रबंध इनकी मा करती रही। पर पीछे से एक प्रबंधक भी नियत कर दिया गया था। इन्हें संवत् १९३४ में राजा की पदवी दी गई है।

नैगवाँ रिबई का हाल

१०४—जैतपुर के पास किसी गाँव में अनंतराम दौआ रहता था। उसके लछमनसिंह और दलसिंह नाम के दो लड़के थे। अनंतराम एक साधारण आदमी था। यह मवेशी आदि चराकर अपनी गुजर किया करता था। पर इसका लड़का लछमनसिंह एक होनहार बालक था। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की कहावत उसके लिये बहुत उपयुक्त होती है।

१०५—जिस समय जैतपुर के राजा किशोरसिंह ने नवाब अली-बहादुर के साथ कालिंजर पर चढ़ाई की उस समय किशोरसिंह के साथ लछमनसिंह भी गया था। वहाँ जाने पर इसका उत्साह बहुत बढ़ गया। अलीबहादुर की वि० सं० १८५९ में, कालिंजर में, मृत्यु हो गई। तब किशोरसिंह जैतपुर चला आया। यहाँ आते ही लछमनसिंह ने लूट-मार शुरू कर दी।

१०६—उस समय राज्य-व्यवस्था ठीक नहीं थी। जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत चरितार्थ हो रही थी। इतने में

अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने लगी। लछमनसिंह ने और लोगों की देखा-देखी यह मौका हाथ से न जाने दिया। यह अजयगढ़ के राजा बखत सिंह के साथ अँगरेजों से मिला। इन्होंने इसे वि० सं० १८६४ (१६-६-१८०७) में नैगवाँ आदि ५ गाँवों की सनद दी। यह वि० सं० १८६५ में परलोक को सिधारा। आजकल इस जागीर को नैगवाँ रेबई कहते हैं।

१०७—लछमनसिंह के मरने पर इसके लड़के जगत्‌सिंह ने जागीर पाई। लछमनसिंह को हीनहयाती सनद दी गई थी। इससे उसके मरते ही जागीर छीन ली जाती परंतु उस समय ऐसा करना उचित न समझा गया और अधिकार उसके ज्येष्ठ पुत्र जगत्‌सिंह को दे दिए गए। पीछे से जागीर जब्त करने का प्रश्न उठा पर इस समय यही निश्चय हुआ कि जागीर जगत्‌सिंह के मरने पर जब्त कर ली जाय। इस बीच में जगत्‌सिंह ने यह दरखास्त दी कि मेरे मरने पर मेरी स्त्री सवाई लाड़ली दुलैया को जागीर दी जाय। इसकी मंजूरी भी भारत-सरकार से आ गई। पीछे से अन्यान्य राजाओं के समान इसको भी वि० सं० १९१९ में गोद लेने की सनद मिल गई। यह संवत् १९२४ (ता० २८-६-१८६७) में परलोक को सिधारा।

१०८—वि० सं० १९०७ में यह तजवीज हुई थी कि जगत्‌सिंह के मरने पर जागीर जब्त कर ली जाय पर पीछे से उसे गोद लेने की सनद भी मिल गई और भारत-सरकार ने उसकी विधवा को जागीर का प्रबंध करने की मंजूरी भी दे दी थी। इससे जब्ती का फिर कोई प्रश्न न उठा। जागीरदार जगत्‌सिंह की विधवा स्त्री सवाई लाड़ली दुलैया ने कुँवर विश्वनाथसिंह को गोद लिया है। यह वि० सं० १९३८ में पैदा हुआ था।

कदौरह अर्थात् बावनी का हाल

१०९—कदौरह उर्फ बावनी की रियासत को स्थापित करनेवाला नवाब गाजीउद्दीन है। यह आसफजाह निजामुलमुल्क का उत्तराधिकारी

(नाती) था। गाजीउद्दीन हैदराबाद का निजाम और दिल्ली के बादशाह का मंत्री भी था। इस रियासत के स्थापित होने का हाल इस प्रकार बतलाया जाता है कि जब गाजीउद्दीन अपने पिता से नाराज होकर दक्षिण की ओर जा रहा था उस समय पेशवा ने इसे यह जागीर दी थी। परंतु इतिहासों से ऐसा पता लगता है कि जब गाजीउद्दीन ने वि० सं० १८४१ में पेशवा से संधि की थी तब उसने कालपी के पास गाजीउद्दीन को ५२ गाँव की रियासत दी थी। पर पीछे से कालपी के सूबेदार ने इस रियासत में से ३ गाँव निकाल लिए थे। इससे नवाब नसीरुद्दौला के पास ४९ ही गाँव रह गए थे। इससे अँगरेजी अमलदारी स्थापित होने के समय नवाब नसीरुद्दौला जफरजंग को इन्हीं गाँवों की सनद दी गई थी। पीछे से नवाब ने तीनों गाँवों के मिलने के लिये एक दरखास्त दी; पर उस समय तक कालपी के नाना गोविंदराव का फैसला नहीं हुआ था, अतः फैसला होने तक कार्रवाई स्थगित रही पर पीछे से ये तीनों ग्राम सरकार ने नवाब को वापस कर दिए। यह संवत् १८७२ (११-५-१८१५) में, कालपी में, मरा।

११०—इसके पीछे इसका लड़का नाजिमुद्दौला नवाब अमीरुल्-मुल्क जफरजंग गद्दी पर बैठा और इसके बाद नसीरुल्मुल्क नवाब मुहम्मद हुसेनखाँ ने गद्दी पाई। यह २२ वर्ष राज्य कर वि० सं० १८९५ (१८-१०-१८३८) में परलोक को सिधारा।

१११—इसने वि० सं० १९१३ में मक्का जाने की इच्छा प्रकट की। इससे इसने अपने बेटे मेहदीहुसेनखाँ को गद्दी दिलवा दी और भावी झगड़े मिटाने के लिये अपने कुटुंब के अन्य मनुष्यों को ९०००) रुपए प्रति वर्ष नक्द मुकर्रर कर दिए। इतने में बलवा शुरू हो गया इससे नवाब मक्का न जा सका। यह संवत् १९१६ में मरा। मेहदीहुसेनखाँ मुहम्मदहुसेनखाँ के समय से ही राज्य-प्रबंध कर रहे

थे और ये ही ज्येष्ठ पुत्र थे। इससे इन्हीं को गद्दी मिली। पर मुहम्मद हुसेनखाँ के द्वितीय पुत्र अब्दुल्लाखाँ ने मेहदीहुसेन को नाजायज लड़का कहकर उसके विरुद्ध दरखास्त दी पर तहकीकात से उसका दावा झूठा निकला। इससे वही गद्दी पर कायम रहा।

११२—राजविद्रोह के समय मुहम्मदहुसेनखाँ और उसके लड़के मेहदीहुसेनखाँ ने कई अँगरेजों की जान बचाई थी। इससे मेहदीहुसेनखाँ को वि० सं० १९१९ में मुसलमानी धर्म-शास्त्र के अनुसार गोद लेने की सनद दी गई। यह वि० सं० १९५० में मरा।

इसके मरने पर इसके भतीजे रियाजुलहसनखाँ को गद्दी मिली पर यह छोटा था। इससे सं० १९५९ तक सरकारी प्रबंध रहा।

लुगासी का हाल

११३—लुगासी जागीर का प्राचीन इतिहास तो उपलब्ध नहीं है पर तवारीखों से ऐसा पता चलता है कि महाराज छत्रसाल के पौत्र और राजा हिरदेशाह के पुत्र सालिमसिंह (जालिमसिंह) गोद में आए थे। अलीबहादुर के समय इनके पुत्र दीवान धीरजसिंह के पास सिर्फ ७ ही ग्राम थे। इससे अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने के समय ये उसी के अधिकारी बने रहे और वि० सं० १८६५ (९-१२-१८०८) में इन्हें उन्हीं ७ गाँवों की सनद दी गई।

११४—दीवान धीरजसिंह वयोवृद्ध थे। इससे इन्होंने अपने जीवन-काल ही में अपने द्वितीय पुत्र सरदारसिंह को गद्दी देने की सरकार से अनुमति चाही क्योंकि इनके ज्येष्ठ पुत्र पदुमसिंह ने ४ वर्ष पूर्व वि० सं० १८६७ में इनसे विद्रोह किया था। जब अँगरेजी सेना ने इन पर चढ़ाई की थी तब इन्होंने आत्म-समर्पण किया था। इससे शांतिपूर्वक रहने और भविष्य में गद्दी का दावा न करने की शर्त पर भरण-पोषण के लिये इन्हें अलग जमीन दे दी गई थी।

पर दीवान धीरजसिंह वि० सं० १८७६ में परलोक को सिधारे और सरदारसिंह ने जागीर पाई।

११५—सिपाही-विद्रोह के समय सरदारसिंह राजभक्त बना रहा। इससे विद्रोहियों ने इसके कई गाँवों को उजाड़ डाला। विद्रोह शांत होने पर अँगरेज सरकार ने इसे वि० सं० १९१७ में रावबहादुर की पदवी और १००००) रुपए का खिलअत (सिरोपाव) दिया। इसके सिवाय २०००) रुपए सालाना आमदनी के ४ गाँव भी जागीर में दे दिए। विक्रम संवत् १९१७ (८-४-१८६०) में इसका स्वर्गवास हो गया।

११६—इसके ज्येष्ठ पुत्र मूरतसिंह का पहले ही स्वर्गवास हो गया था। इससे इसके पौत्र (मूरतसिंह के पुत्र) हीरासिंह को गद्दी दी गई। इसके पितामह सरदारसिंह को सरकार ने बगावत के समय शांति स्थापित करने के जो २०००) रुपए सालाना आमदनी के ४ गाँव जागीर में दिए थे उनमें से एक गाँव में नौगाँव छावनी के रिसाले के लिये घास रखवाई जाती थी। इससे इसने वहाँ गाड़ियों के आने-जाने के लिये सड़क बनवाने और उसे सदा साफ रखने के लिये एक इकरारनामा वि० सं० १९१९ (२५-१-१८६२) में लिख दिया था। यह वि० सं० १९२९ (अप्रैल सन् १८७२) में मरा।

इसके मरने पर खेतसिंह को गद्दी दी गई। यह सं० १९५९ में मरा और दीवान छत्रपतिसिंह जागीर के अधिपति हुए।

सरीला का हाल

११७—महाराज छत्रसाल के पुत्र जगत्‌राज के लड़के पहाड़-सिंह को जैतपुर का राज्य मिला था। इसके गजसिंह और अमानसिंह ये दो लड़के थे। गजसिंह को जैतपुर मिला। इसने अपने हिस्से में से अपने भाई अमानसिंह को सरीला जागीर में दे दिया था। अमानसिंह के खेतसिंह और तेजसिंह ये दो लड़के थे। अमानसिंह के मरने पर तेजसिंह ने जागीर पाई।

यह जागीर वि० सं० १८१२ के लगभग स्थापित हुई है। इसकी स्थापना करनेवाले तेजसिंह के पिता अमानसिंह ही हैं।

११८—नवाब अलीबहादुर ने तेजसिंह की कुल जागीर जब्त कर ली पर पीछे से राजा हिम्मतबहादुर के कहने पर उसे कुछ इलाका दे दिया। जिस समय बुंदेलखंड में अँगरेजी राजसत्ता स्थापित हो रही थी उस समय तेजसिंह के पास सरीला गाँव और उसकी गढ़ी तथा कुछ गाँव थे, जिनकी वार्षिक आमदनी ९०००) रुपए थी। इससे कंपनी की सरकार ने उसे १०००) रुपए माहवार और भी सरकारी खजाने से देना नियत कर दिया। पीछे से तेजसिंह ने अपनी जागीर वापस पाने के लिये कंपनी की सरकार से निवेदन किया इससे उसे २३६००) वार्षिक आमदनी की जागीर वि० सं० १८६४ (१७-१-१८०७) में अँगरेजी सरकार ने दी। इसमें सरीला सहित कुल ११ गाँव थे। पर इसे जो एक हजार रुपए माहवार सरकारी खजाने से मिलते थे वे बंद कर दिए गए और इसे सनद दे दी गई।

११९—तेजसिंह के मरने पर इसका लड़का अनिरुद्धसिंह जागीरदार हुआ। यह बहुत ही अच्छा प्रबंधक था। इसके प्रबंध से सारी प्रजा खुश रहती थी। यह मितव्ययी भी ऐसा था कि इसने अपने खजाने में कई लाख रुपए जमा कर लिए। अनिरुद्धसिंह के भाई का नाम बुद्धिसिंह और लड़कों के नाम दलीपसिंह, जवाहरसिंह और हिंदूपत थे। अनिरुद्धसिंह के मरने पर वि० सं० १८९९ (२३-३-१८४२) में हिंदूपत को जागीर मिली। इनके भाई जवाहरसिंह का वि० सं० १८९५ में ही स्वर्गवास हो गया था। हिंदूपत के भानुप्रताप नाम का एक ही लड़का था, पर यह हिंदूपत के सामने ही मर गया था।

१२०—हिंदूपत ने अपनी जेठा रानी को गोद लेने का अधिकार अपने मरने के समय दे दिया था। इससे इसने खलकसिंह को गोद लिया। यह महाराज जगत्‌राज के पुत्र केहरीसिंह के वंश में

से था। इसके अर्जुनसिंह, अर्जुनसिंह के जसवंतसिंह और इसके फतेसिंह हुए। फतेसिंह के लड़के का नाम बखतसिंह था। खलकसिंह बखतसिंह का पौत्र और समरसिंह का पुत्र था। गोद लेने के समय यह बहुत ही छोटा था, इससे राज-प्रबंध इसकी मा, हिंदूपत की जेठी रानी, करती रही। खलकसिंह के लड़के का नाम पहाड़सिंह है। यह संवत् १९५७ में गद्दी पर बैठा था।

जिगनी का हाल

१२१—महाराज छत्रसाल के एक पुत्र का नाम पदुमसिंह था। इन्हें कोई जागीर न मिली थी। इससे इनके मामा ने इन्हें अपने यहाँ बुलवा लिया। ये अपनी जागीर जिगनी में रहते थे। इनके कोई संतान न थी। इससे उनकी जागीर और संपत्ति के अधिकारी ये ही हो गए। पीछे से पदुमसिंह ने अपने बाहुबल से इसे और भी बढ़ा लिया। वि० सं० १७८७ में इन्होंने वदौरा और रायसिन भी जीतकर अपने राज्य में मिला लिए। परंतु इतने बड़े राज्य का प्रबंध वे न कर सके। इधर मराठों की चढ़ाइयाँ भी शुरू हो गईं जिससे इनका राज्य बहुत घट गया। यहाँ तक कि इनके मरने पर इनके पुत्र लक्ष्मणसिंह के पास सिर्फ राठ और पड़वारी के परगने ही रह गए थे।

१२२—अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने के समय इनके पास वि० सं० १८६१ में १६ ग्राम थे। पर ये बड़े ही उद्दंड प्रकृति के थे। इससे दस गाँव छीन लिए गए, सिर्फ ६ ही बाकी रह गए। इससे वि० सं० १८६७ (१०-१२-१८१०) में इन्हें उन्हीं ६ मौजों की सनद मिली। ये वि० सं० १८८७ में मरे, पर इनके कोई पुत्र न था। इससे अँगरेज सरकार ने जागीर जब्त करने का विचार किया। पर इस समय रानी गर्भवती थी इससे जब्ती का विचार कुछ दिनों के लिये रोक दिया गया। पीछे से भोपालसिंह पैदा हुआ और इसी को जागीर दे दी गई पर राज्य-प्रबंध इसकी माता करती रही।

१२३—वि० सं० १८६७ में इससे और इसके भाई से, जो इसे सलाह दिया करता था, बिगाड़ हो गया। इससे सरकारी प्रबंधक नियत किया गया। भोपालसिंह के सयाने होने पर इसे वि० सं० १९०२ में अधिकार दिया गया। पर यह बहुत ही कमजोर दिमाग का था, इससे प्रबंध न कर सका और राज्य में उपद्रव होने लगे। फलतः बाध्य हो सरकार को फिर राज-प्रबंध सँभालना पड़ा। यह वि० सं० १९२७ में निस्संतान मरा। इससे पन्ना के राजा महाराज नृपतसिंह के पुत्र लक्ष्मणसिंह गोद लिए गए। पर इसके भी पुत्र न हुआ। इससे महाराजा चरखारी के पुत्र भानुप्रतापसिंहजी वि० सं० १९४९ में गोद लिए गए।

१२४—ऊपर जिन राज्यों का वर्णन हुआ है वे सब महाराज छत्रसाल के विशाल राज्य के छोटे छोटे टुकड़े हैं। जो राज्य किसी समय मुगल-सम्राट् का मान-मर्दन करने को तैयार रहता था वही आज गृह-कलह के कारण स्वतः पद-दलित हो गया। बुंदेले लोग महाराज छत्रसाल के आदर्शों को भूल गए और अपने भाइयों का खून बहाने में भी उन्होंने पाप न माना।

१२५—कोठी पर एक छोटी सी रियासत है। पूर्व में यह पन्ना के राजा के अधिकार में थी। ऐसा कहते हैं कि यहाँ के बघेल राजा ने भाड़ों को निकालकर अपना राज्य कायम किया था पर समय सदा एक सा नहीं रहता। महाराज छत्रसाल ने यहाँ के तत्कालीन राजा को परास्त कर उसे अपने अधीन कर लिया जिससे यह भी महाराज का करद राज्य हो गया। पर शेष बातों में स्वतंत्र ही सा था। नवाब अलीबहादुर के समय भी इसका अलग ही बंदोबस्त हुआ था पर यह पन्ना के अधीन माना जाता था। इसी से राजा किशोर की सनद में यह भी शामिल कर दिया गया था पर पीछे से इसकी सब ऊपरी बातों का विचारकर कंपनी की सरकार ने राय लाल दुनिया-

पतिसिंह को वि० सं० १८६७ (७-१२-१८१०) में अलग सनद दे दी और वि० सं० १९१९ में राव बहादुरसिंह को गोद लेने की सनद दी गई। सिपाही-विद्रोह के समय यहाँ के राजा राजभक्त बने रहे इससे वि० सं० १९३५ में उन्हें राजा बहादुर की पदवी दी गई। पूर्व में राव बहादुर ही की पदवी थी। आजकल राजा बहादुर अवधेंद्रसिंह जागीरदार हैं। ये वि० सं० १९५२ में गद्दी पर बैठे थे। जिस प्रकार कोठी में महाराज छत्रसाल के पूर्व स्वतंत्र राज्य था उसी प्रकार उचेहरा अर्थात् नागोद और सुहावल भी स्वतंत्र राज्य थे। पर महाराज छत्रसाल ने इनके राजाओं को भी परास्त कर अपने अधीन कर लिया था। इससे ये रियासतें भी राजा किशोरसिंह की सनद में शामिल हो गई थीं पर पीछे से कंपनी की सरकार ने उचेहरा की सनद लाल शिवराजसिंह को और सुहावल की राय लाल अमानसिंह को दे दी जिससे ये लोग भी पूर्ववत् स्वतंत्र हो गए।

१२६—सागर के मराठों को गढ़ाकोटावाले मर्दनसिंह पहले से ही तंग कर रहे थे। आवा साहब को मर्दनसिंह ने युद्ध में हरा दिया था परंतु फिर दिनकरराव अन्ना ने उसे शांत कर दिया। पीछे से नागपुर के भोंसला ने भी मर्दनसिंह को तंग किया परंतु उन्हें भी इसने हरा दिया। किंतु एक बार हारने के पश्चात् भोंसले ने फिर भी गढ़ाकोटे पर आक्रमण किया। इस समय नागपुर के भोंसले के पास सेना बहुत थी इसलिये मर्दनसिंह ने सेंधिया से सहायता माँगी। सेंधिया ने सहायता दी परंतु सहायता के बदले मर्दनसिंह से आधा राज्य लेने का वचन ले लिया। सेंधिया की सेना में जान वेपटिस्ट नाम के एक सेनापति थे। सेंधिया की सेना की सहायता से भोंसले की सेना हरा कर भगा दी गई। पहले ठहराव के अनुसार सेंधिया ने आधा राज्य माँगा। इस समय मर्दनसिंह का देहांत हो गया था और उनके पुत्र अर्जुनसिंह राजा हुए थे। अर्जुनसिंह ने अपने

राज्य के दो भाग कर दिए। उसमें से एक भाग सेंधिया को दिया गया। सेंधिया को गढ़ाकोटा, मालथोन और उनके आस-पास का इलाका मिला। शाहगढ़ और उसके आस-पास का इलाका अर्जुन-सिंह के पास रहा। देवरी, नाहरमऊ और गौरझामर—गढ़ाकोटा के साथ—सेंधिया के पास गए।

१२७—सागर के सूबेदारों को सेंधिया का यह कार्य बहुत बुरा लगा। गढ़ाकोटा और शाहगढ़ पहले सागरवालों के अधीन थे। अब इनका सागर से कोई संबंध न रहा और ये सब सेंधिया के अधिकार में आ गए। सागर में मराठों की ओर से सब कार्य दिनकरराव अन्ना करते थे। देवरी में सेंधिया और दिनकरराव अन्ना मिले। यहाँ पर सेंधिया ने दिनकरराव को कैद कर लिया। फिर सेंधिया ने सागर को लूटा। परंतु दिनकरराव ने फिर सेंधिया से सुलह कर ली। दिनकरराव को राज-कार्य में विनायकराव चांदोरकर बहुत सहायता देते थे। कुछ दिनों के पश्चात् दिनकर-राव अन्ना जालौन चले गए और सागर का सब प्रबंध विनायकराव चांदोरकर के अधिकार में रहा।

१२८—पहले यह ठहराव हो चुका था कि नाना साहब का पुत्र आबा साहब की विधवा की गोद में दिया जायगा। परंतु नाना साहब का पहला पुत्र अल्पायुषी होकर मर गया और दूसरा पुत्र आबा साहब की विधवा की गोद में न दिया गया क्योंकि नाना साहब ने उसे गोद में देना ठीक न समझा। इसलिये सागरवाले जालौनवालों से नाराज हो गए। सागर और जालौन से कोई संबंध न रहा। आबा साहब की विधवा का नाम रुक्माबाई था और विनायकराव चांदोरकर रुक्माबाई की ओर से सूबेदार थे। इस समय सागर में पिंडारे लोगों ने धूम मचाई पर विनायकराव ने उन्हें दबा दिया।

अध्याय ३३

पेशवाई का अंत और अँगरेजों का राज्य

१—जिस समय बुंदेलखंड में अँगरेजों ने अपना राज्य जमाया उस समय सारे भारतवर्ष में गड़बड़ मची हुई थी। विक्रम-संवत् १८६४ में लार्ड मिंटो कंपनी की सरकार के गवर्नर हुए। इस समय राजपूताने के राजा लोग भी आपस में लड़ रहे थे। उदयपुर की राजकुमारी कृष्णाकुमारी के कारण जयपुर और जोधपुर के राजाओं में युद्ध हो गया। जब उदयपुर की राजकुमारी ने विष खाकर आत्महत्या कर ली तब वह युद्ध बंद हुआ। पिंडारे लोग मालवा, बुंदेलखंड और राजपूताने में अपने दौरे कर रहे थे। सिर्फ पंजाब में ही इस समय महाराज रणजीतसिंह के कारण शांति थी। अँगरेज लोगों ने भी रणजीतसिंह से सुलह कर ली थी।

२—इसी समय मराठों और अँगरेजों से युद्ध हुआ। बाजीराव पेशवा, सेंधिया और होल्कर अँगरेजों की बढ़ती रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। अँगरेजों के गवर्नर लार्ड मिंटो के चले जाने पर लार्ड हेस्टिंग्ज गवर्नर हुए। इन्होंने मराठों से विक्रम-संवत् १८७४ में दूसरी संधि की। इस संधि के अनुसार बुंदेलखंड के मराठे अँगरेजों के अधीन हो गए और उनका संबंध पेशवा दरबार से जाता रहा। यह संधि मराठों की ओर से नाना गोविंदराव ने की। इस संधि की मुख्य शर्तें ये थीं—

(१) संवत् १८६३ की संधि की शर्तें जिनमें कोई फेरफार न हुआ हो ज्यों की त्यों रहेंगी।

(२) अँगरेज-सरकार राजाओं के वारिसों के राज्य पर कायम होने पर नजराना न लेगी और नाना गोविंदराव का और उनके वारिसों का राज्य का मालिक होना स्वीकार करेगी।

(३) यदि नाना गोविंदराव के प्रांत पर कोई आक्रमण करेगा तो अँगरेज उनकी सहायता करेंगे और बाहरी दुश्मन या राजा से जो संधि अँगरेज करेंगे उसे नाना साहब को मंजूर करना होगा।

(४) नाना साहब महोबे के आस-पास का इलाका अँगरेजों को दें।

(५) नाना साहब बिना अँगरेजों की आज्ञा के किसी बाहरी शत्रु से न लड़ें और न उस पर आक्रमण करें।

(६) नाना साहब सरकार अँगरेज की आज्ञा बिना किसी राजा से संधि न करें।

(७) मराठों और अँगरेजों की सीमा के झगड़ों का फैसला अँगरेजों का पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट करेगा। उसका फैसला नाना साहब को मानना पड़ेगा।

(८) सागर के विनायकराव और जालौन के नाना साहब के बीच में जो झगड़े होंगे उनका फैसला सरकार अँगरेज के कहने के अनुसार ही होगा।

(९) यदि अँगरेज-सरकार की फौज को नाना साहब के राज्य में से निकलने की जरूरत होगी तो नाना साहब उसे हर प्रकार की सहायता देते रहेंगे।

इस प्रकार यह संधि जालौन में तारीख १ फरवरी सन् १८१७ को हुई।[1]

---

(१) इस संधि के अनुसार निम्न-लिखित गांव अँगरेजों को मिले—

खंदेह, खुई, चांदे बुजुर्ग, बरदेई, जरौली, खैरार, अछरोन, बिहगा, कमा, हरयोली, फतेहपुर, रतवा, अपहोली, रेवंद, अकिहानी, बिहनी, अमखार, चमरकथा, खरा, भरखा, लचहरा, कदार, कोदसा, खजहा, कमूखर, ऊजरहटा, अकौना, भयानी, सदोई, काँधा, नूरपुर, खैरा, सरोली, कंजुला, मोई, सोंटई, सिरसई कलाँ, सिरसई खुर्द, अधारी पुरना, कुस्यारी, खरदई, जसकुर माफी, खसरिया, कलकया, जरारा, लोई, मानपुर और नकरई।

३—इस संधि के थोड़े ही दिनों के पश्चात् मराठों और अँगरेजों में फिर लड़ाई हो गई। उपर्युक्त संधि के अनुसार पूना के पेशवा अँगरेजों के अधीन हो गए और बुंदेलखंड पर पेशवा दरवार का कोई अधिकार न रहा। इसलिये पेशवा वाजीराव ने फिर अँगरेजों से स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया। पूना में जो अँगरेजों का रेजिडेंट रहता था उसे वाजीराव के इरादों का हाल मालूम हो गया और वह पूना से भागकर किरकी पहुँचा। वहाँ पर भी पेशवा ने उस पर आक्रमण किया परंतु रेजिडेंट को अँगरेजों से सहायता मिल जाने के कारण उसने पेशवा को हटा दिया। पेशवा को भागना पड़ा और अँगरेजी सेना ने पेशवा का पीछा किया। पेशवा फिर वंदो कर लिया गया। नागपुर के भोंसले ने भी सीतावर्डी में अँगरेजों पर आक्रमण किया परंतु भोंसले भी हार गए। होल्कर ने भी इसी प्रकार प्रयत्न किया परंतु होल्कर भी हार गए। इस युद्ध के पश्चात् वाजीराव पेशवा के सव प्रदेश विक्रम-संवत् १८७५ में अँगरेजों ने अपने अधिकार में कर लिए। वाजीराव कानपुर के पास विठूर में रहने लगे और उन्हें अँगरेज सरकार की ओर से ८ लाख रुपए वार्षिक पेंशन मिलने लगी। मराठों को हराकर इस प्रकार अँगरेज सारे भारतवर्ष में सबसे अधिक वलशाली हो गए। बुंदेलखंड का (वाँदे के समीप) उत्तरीय भाग तो उनके राज्य में आ गया था और शेष भाग के राजाओं ने अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था पर जिन राजाओं से पहले संधियाँ न हुई थीं उनसे भी अव संधियाँ कर ली गईं और, इन संधियों के अनुसार, उन सव राजाओं ने अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इन सव वातों का उल्लेख पूर्व अध्याय में हो चुका है।

४—जालौन में नाना साहव के साथ जव अँगरेजों ने संधि की उसी समय पेशवा का सव राज्य अँगरेजों ने ले लिया और पेशवा

बिठूर में जा रहे। इस समय सागर विनायकराव चांदोरकर के अधिकार में था। विनायकराव अपना राज्य स्वतंत्र रीति से चलाते थे और जालौन के नाना साहब से कोई संबंध न रखते थे। इस कारण जालौन की संधि का सागर से कोई संबंध न था। विनायकराव ने भोंसले को सहायता दी थी और कुछ पिंडारे लोगों को भी सहायता दी थी। इस कारण अँगरेज-सरकार ने विनायकराव का सब प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इससे विनायकराव सूबेदार को अँगरेज सरकार की ओर से २॥ लाख रुपए वार्षिक पेंशन के मिलने लगे[1]।

५—रुकमाबाई ने बलवंतराव उर्फ बाबा साहब को गोद ले लिया था। इस कारण रुकमाबाई के पश्चात् ये बलवंतराव ही राज्य के अधिकारी होते। परंतु यह प्रांत अँगरेजों के अधिकार में आ जाने के कारण बलवंतराव को पाँच हजार रुपए साल की पेंशन दी गई। ये आजकल भी सागरवाले राजा कहलाते हैं और जबलपुर में रहते हैं। झाँसी में रघुनाथ हरी के मर जाने पर उनके भाई शिवराव भाऊ सूबेदार हुए थे। शिवराव भाऊ के मरने पर उनके अल्पवयस्क पुत्र रामचंद्रराव सूबेदार हुए। रामचंद्रराव के समय उनकी माता सखूबाई राज-काज देखती थीं परंतु उन्होंने एक बार अपने पुत्र को

(१) विनायकराव चांदोरकर की मृत्यु संवत् १८८२ में हुई। इनके पुत्र मोरेश्वरराव को सरकार से १० हजार रुपए पेंशन मिलती थी। ये झाँसी के रामचंद्रराव सूबेदार के बहनोई थे। मोरेश्वरराव के दो पुत्र कृष्णराव और व्यंकटराव हुए। ये दोनों पुरुष बड़े प्रसिद्ध थे। कृष्णराव से लार्ड विलियम बैंटिंक ने स्वयं भेंट की थी और उन्हें उन्होंने "राव" की उपाधि तथा एक हजार रुपए की जागीर दी थी। व्यंकटराव सूबेदार के पुत्र वासुदेवराव ने इस इतिहास के लेखन में विशेष सहायता दी है।

जब सागर में अँगरेजी राज्य हुआ तब विनायकराव और अँगरेजों के बीच ये शर्तें हुई थीं।

ही मरवा डालने का प्रयत्न किया। इस कारण सखूबाई कैद कर ली गईं और रामचंद्रराव स्वतंत्रतापूर्वक सूबेदारी करने लगे। जब पेशवा का राज्य अँगरेजों ने ले लिया तब झाँसी में रामचंद्रराव ही सूबेदार थे। अँगरेजों और झाँसी राज्य से सीपरी की छावनी में संधि हुई थी। इस संधि-पत्र के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने झाँसी का राज-वंश परंपरा के लिये रामचंद्रराव को दिया। यह संधि विक्रम-संवत् १८७४ में हुई थी। विक्रम-संवत् १८७५ में पेशवा की दूसरी संधि होने के समय झाँसी रामचंद्रराव के अधिकार में था और नाना गोविंदराव जालौन तथा गुरसराय के अधिकारी थे।

६—सागर जिले का धामौनी परगना भोंसलों के अधिकार में था। यह परगना अँगरेजों ने भोंसलों से विक्रम-संवत् १८७५ (सन् १८१८) की संधि के समय ले लिया। गढ़ाकोटा, मालथोन, देवरी, गौर झामर और नाहरमऊ सेंधिया को अर्जुनसिंह ने दिए थे[1]। विक्रम-संवत् १८७५ में ये सेंधिया के अधिकार में ही थे पर संवत् १८७८ में ये परगने सेंधिया ने अँगरेजों को प्रबंध के लिये सौंप दिए थे। दमोह अँगरेजों के अधिकार में सागर के साथ ही आ गया था।

---

(१) राहतगढ़ मधुकरशाह के समय में सागर जिले में था और इस पर गोंड़ लोगों का राज्य था। जब इसे मुसलमानों ने लिया तब यह भोपाल के नवाब मुहम्मदखाँ के अधीन हो गया। मुहम्मदखाँ के वंशज यहाँ पर विक्रम-संवत् १८६४ तक रहे। इस वर्ष सेंधिया ने राहतगढ़ पर अधिकार कर लिया और राहतगढ़ के नवाब हैदर को पेंशन दे दी गई। विक्रम-संवत् १८७४ में राहतगढ़, गढ़ाकोटा आदि के साथ, अँगरेजों को दिया गया।

अध्याय ३४

राजविद्रोह के पहले बुंदेलखंड का हाल

१—जालौन के नाना गोविंदराव की मृत्यु विक्रम-संवत् १८७९ में हुई। इनके पश्चात् इनके पुत्र बालाजी गोविंद जालौन के शासक हुए। अँगरेजों के पोलिटिकल एजेंट ने भी बालाजी गोविंद का नाना साहब की गद्दी पर बैठना स्वीकार किया। नाना साहब एक योग्य शासक थे इससे बुंदेलखंड के कई राजाओं ने उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया। नाना गोविंद के समय से ही जालौन का शासन, नाना साहब की ओर से, नारो भास्कर करते थे और गुरसराय का प्रबंध दिनकरराव अन्ना देखते थे[1]। बालाजी गोविंद के शासन से प्रजा बहुत प्रसन्न थी। बालाजी गोविंद की मृत्यु के पश्चात् वारिसों में झगड़े उठ खड़े हुए और नारो भास्कर तथा दिनकरराव अन्ना में भी अनबन हो गई।

२—दिनकरराव अन्ना और नारो भास्कर में अनबन होने का कारण यह था कि बालाजी गोविंद की विधवा ने राव गोविंदराव नाम का एक पुत्र गोद लिया पर दिनकरराव अन्ना ने यह बात

---

(१) समकालीन कवि राजाराम ने बालाजी की निम्न-लिखित प्रशंसा की है—

जनक ज्यों ज्ञानिन में जामवंत स्वापद में
ध्रुव जिमि ध्यानिन में सुंदर विराजा है।
परसुराम वीरन में राम रनधीरन में
गंगाजल नीरन में सिद्ध करत काजा है॥
राजाराम कहे सदा वेद ज्यों विधानन में
कुबेर धनमानन में दूसरो न ताजा है।
उदित उदार महाराज वीर बालाराव
राजन में राजा दुजराजन में राजा है॥

स्वीकार न की। इस कारण इन दोनों का झगड़ा अँगरेजों ने तय किया और राव गोविंदराव का गोद लिया जाना अँगरेजों ने मंजूर किया। इस फैसले के अनुसार राव गोविंदराव जालौन के राजा हो गए। राव गोविंदराव अल्पवयस्क थे इसलिये इनकी ओर से राज्य का सब कार्य इनको गोद लेनेवाली माता लक्ष्मीबाई देखती थीं। नारो-शंकर को यह बात अच्छी न लगी और वे अलग रहने लगे तथा वहाँ पर धोखे से मारे गए। इनके मरने के पश्चात् राव गोविंदराव से राज्य-कार्य भले प्रकार न चल सका। राज्य-प्रबंध ठीक न होने से विक्रम-संवत् १८६५ (सन् १८३८) में जालौन का प्रबंध अँगरेजों ने अपने अधिकार में ले लिया। जालौन सूबे में उस समय महोबा, रामपुरा, मुहम्मदाबाद आदि परगने थे। दो वर्ष के बाद राव गोविंदराव की मृत्यु बाँदे में हो गई। राव गोविंदराव के कोई पुत्र न था। उनके मरने पर बालाजी गोविंद की बहिन और दिनकर-राव अन्ना के पुत्र केशवराव ने अपना दावा राज्य पर किया। दिनकरराव अन्ना गोविंद पंत के नाती थे इसलिये केशवराव का हक राज्य पर था। परंतु कंपनी की सरकार ने किसी की न सुनी और जालौन पर अधिकार कर लिया।

३—गुरसराय (या गुलसराय) बाजीराव पेशवा को महाराज छत्रसाल ने दिया था। बुंदेलखंड के मराठी राज्य के शासक, पेशवा की ओर से, गोविंद पंत नियत किए गए थे। गोविंद पंत ने अपनी ओर से गुरसराय के प्रबंध के लिये दिनकरराव अन्ना को नियत किया था। इन्होंने गुरसराय का प्रबंध बहुत अच्छा किया। इनके बड़े पुत्र बालकृष्ण भाऊ का देहांत जल्दी हो गया था इससे इनके दूसरे पुत्र केशवराव गुरसराय के शासक हुए। अँगरेजों ने केशवराव को गुरसराय का शासक माना और इन्होंने सन् सत्तावन के विद्रोह के समय अँगरेजों की बड़ी सहायता की।

४—सीपरी में संवत् १८७४ (सन् १८१७) की संधि के अनुसार रामचंद्रराव को वंश-परंपरा के लिये झाँसी का राज्य मिला था। इनकी मृत्यु संवत् १८९२ में हुई। इनके निस्संतान होने से इनकी विधवा ने अपनी ननँद का, कृष्णराव चांदोरकर नामक, लड़का गोद लिया। यह सागर के सूबेदार विनायकराव चांदोरकर का नाती और रामचंद्रराव की बहिन का लड़का था। परंतु सरकार ने यह गोदनामा स्वीकार न किया। इसलिये शिवरामराव भाऊ के दूसरे पुत्र रघुनाथ-राव झाँसी के राज्य के मालिक हुए। रघुनाथराव दुर्व्यसनी थे। इससे इनका राज्य-प्रबंध अँगरेजों ने अपने हाथ में कर लिया। रघु-नाथराव संवत् १८९५ में मरे। इनके मरने पर चार मनुष्यों ने राजा होने के अपने अपने हक बताए। रघुनाथराव की स्त्री स्वयं रानी होना चाहती थी। इनका गजरा नामक दासी से उत्पन्न हुआ पुत्र अलीबहादुर भी गद्दी पर दावा करता था। शिवरामराव भाऊ के पुत्र गंगाधर ने भी राजगद्दी पाने का दावा किया। चौथा, राज्य का माँगने-वाला, रामचंद्रराव के मरने के पश्चात् गोद लिया हुआ पुत्र कृष्णराव था[1]।

---

(१) रामचंद्रराव की वंशावली इस प्रकार है—

श्री

वंशावली राजे झाँसीवाले नेवालकर गोत्र गौतम

राजा हरी दामोदर नेवालकर (पान्होला के)

|

शिवरामराव भाऊ राजा (स्त्री सखूबाई)

|

कन्या भृ० शाहोर नागपूर	कन्या भृ० ना० गोविंद चांदोरकर	रघुनाथराव राजे	कृष्णराव उर्फ छोटे भाऊ (स्त्री सरस्वती बाई)	गंगाधरराव राजे मृत सं० १९११ (स्त्री महारानी लक्ष्मी बाई मृत सन् १८५७ लश्कर में)

रघुनाथराव राजे — वेश्या पुत्र: अलीबहादुर, नसरत जंग
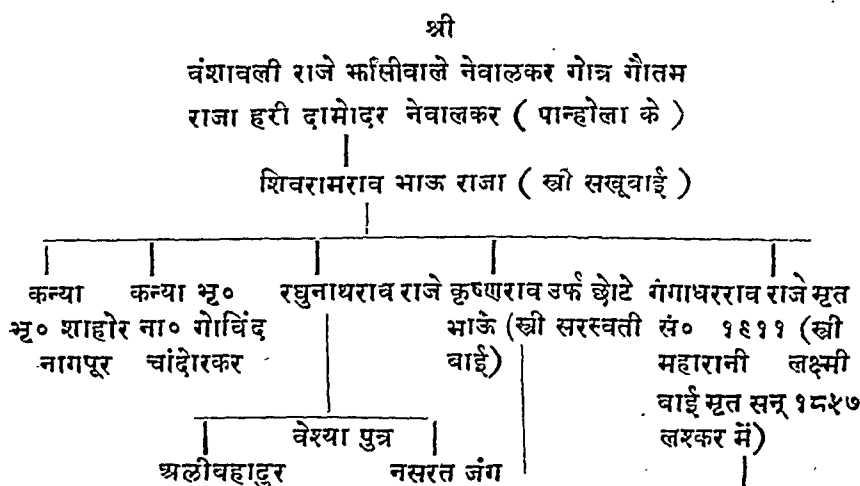
इनके हकों का तसफिया करने के लिये अँगरेज सरकार ने एक समिति नियत की जिसके सदस्य ग्वालियर के रेजिडेंट स्पेअर्स तथा दो और अँगरेज थे। इन्होंने यही निश्चय किया कि रघुनाथराव के पश्चात् गद्दी के अधिकारी गंगाधरराव ही हैं। उसी निश्चय के अनुसार गंगाधरराव झाँसी के राजा बनाए गए।

५—गंगाधरराव ने झाँसी का बहुत उत्तम प्रबंध किया। झाँसी राज्य पर जो कर्ज था वह अदा कर दिया और आमदनी भी बढ़ाई। ये बड़े धार्मिक मनुष्य थे और तीर्थाटन बहुत करते थे। इनकी स्त्री ही प्रसिद्ध महारानी लक्ष्मीबाई हैं। गंगाधरराव को इन महारानी से एक पुत्र भी हुआ था परंतु उसका देहांत, तीन मास की अवस्था में ही, हो गया। संवत् १९१० में गंगाधरराव का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और उन्होंने उस समय वासुदेव नेवालकर नाम का एक पुत्र गोद लिया। इस पुत्र का नाम गोद लेने के पश्चात् दामोदर गंगाधरराव रखा गया। कुछ दिनों के पश्चात् गंगाधर-

यह वंशावली सागर के सूबेदार घराने से मिली है।
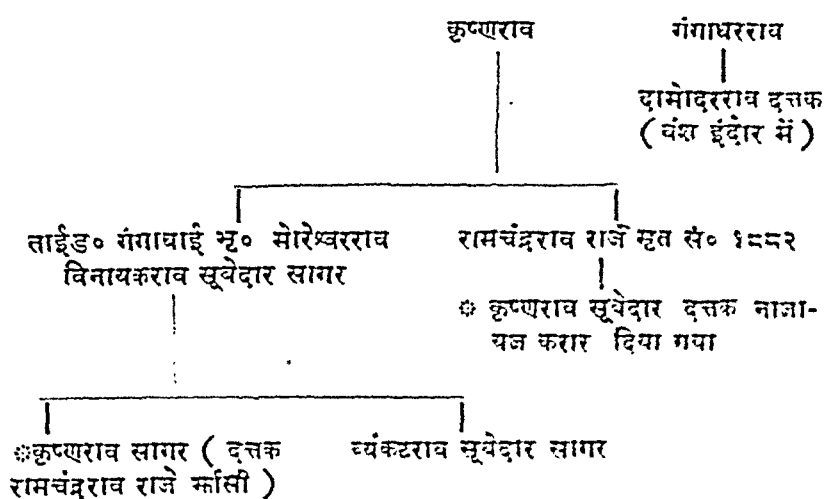
राव का देहांत हो गया। उस समय महारानी लक्ष्मीबाई की अवस्था केवल अठारह वर्ष की थी।

६—संवत् १८६२ में आगरा और इलाहाबाद आदि के प्रदेशों का एक अलग प्रांत अँगरेजों ने बनाया। इसका नाम पश्चिमोत्तर प्रदेश रखा गया। इस प्रदेश में बुंदेलखंड के वे सब भाग आ गए जो अँगरेजों के अधिकार में थे। इसमें जालौन, हमीरपुर, बाँदा और सागर के जिले थे। उन दिनों दमोह जिला सागर जिले के भीतर ही था। पश्चिमोत्तर प्रदेश का सदर मुकाम आगरे में था।

७—बुंदेलखंड के राजाओं के साथ अँगरेजों की संधियाँ हुई थीं। उन सब लोगों को अपने अधिकार में रखने के लिये इन लोगों ने छावनियों में फौज रखी और उनके प्रबंध की देख-रेख के लिये पोलिटिकल एजेंट रखे। संवत् १८६२ (सन् १८३५) में पश्चिमोत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेंट गवर्नर के सुपुर्द उन सब राजाओं की देख-रेख का भार था। ४ वर्ष के बाद सागर और दमोह के जिले पश्चिमोत्तर प्रदेश से अलग कर दिए गए और इन जिलों का अधिकार एक कमिश्नर को दिया गया। यह कमिश्नर झाँसी के पोलिटिकल एजेंट के अधीन था। पीछे से झाँसी का पोलिटिकल एजेंट नौगाँव चला गया और बुंदेलखंड ग्वालियर के रेजीडेंट के अधीन हो गया। कुछ वर्षों के बाद संवत् १९११ में मध्यभारत के सब राज्य सेंट्रल इंडिया कहलाने लगे और इनकी देख-रेख इसी एजेंसी के एजेंट के सुपुर्द कर दी गई। तदुपरांत संवत् १९४५ में खनियाधन नामक राज्य ग्वालियर के रेजिडेंट के अधिकार में कर दिया गया और १९५३ में कालिंजर के चौबों की जागीरें और बरोड़ा बघेलखंड के पोलिटिकल एजेंट के अधिकार में कर दिया गया।

८—बुंदेलखंड की रियासतों में ओड़छा, दतिया और समथर ये विशेष महत्त्व की समझी जाती हैं। इन तीनों में से सबसे मुख्य

रियासत ओड़छे की है। ओड़छे के राजा टीकमगढ़ में रहते हैं इससे इस रियासत को टीकमगढ़ का राज्य भी कहते हैं। ओड़छे के राजा झाँसी के राजा को ४५००) रुपए सालाना दिया करते थे। जब अँगरेज सरकार ने झाँसी का राज्य ले लिया तब अँगरेज सरकार को यह रकम मिलने लगी। परंतु फिर अँगरेजों ने इस रकम का लेना भी छोड़ दिया क्योंकि ओड़छे के राजा ने राज-विद्रोह के समय सन् १८५७ (विक्रम-संवत् १९१४) में अँगरेज सरकार को सहायता दी थी। इनसे और अँगरेजों से बराबरी की संधि हुई है परंतु राजा अँगरेजों की सलाह के बिना बाहरी राज्य से राजनीतिक बात-चीत नहीं कर सकते। दतिया और समथर के राज्यों से भी अँगरेजों से इसी प्रकार की संधियाँ हुई हैं। ये राज्य अपने आंतरिक प्रबंध में अँगरेजों से स्वतंत्र हैं।

९—बुंदेलखंड के अन्य राज्यों को सनदें मिली हैं और अँगरेज सरकार को इन राज्यों के आंतरिक प्रबंध में भी हस्तक्षेप करने के बहुत कुछ अधिकार हैं। इन राज्यों पर अँगरेजों ने उस समय अधिकार किया था जिस समय अलीबहादुर हराया गया था। अँगरेजों ने सनदें देकर इन राज्यों के शासकों को उनके राज्य से न हटाया और शासकों ने अँगरेजों से सनदें लेकर अँगरेजों की अधीनता स्वीकार की। इन सनदवाले राज्यों के भी दो विभाग हैं। पहले विभाग में वे राज्य आते हैं जिन्हें फौजदारी और दीवानी के पूरे अधिकार हैं परंतु खून के मामलों में पोलिटिकल एजेंट की अनुमति लेनी पड़ती है। इस विभाग में पन्ना, चरखारी, अजयगढ़, बिजावर, बावनी और छत्रपुर के राज्य हैं। दूसरे विभाग के राजाओं को फौजदारी मामलों में भी पूरे अधिकार नहीं हैं। इन राज्यों के बड़े बड़े मुकदमे पोलिटिकल एजेंट करता है। इस विभाग में सरीला, धुरवाई, बिजना, टोड़ी-फतेहपुर, पहाड़ी (बांका),

जिगनी, लुगासी, बिहट, बेरी, अलीपुरा, गौरहार, गरौली और नयगवाँ रिवई हैं।

१०—संवत् १८९८ और १८९९ में बुंदेलखंड में कई स्थानों पर अँगरेज सरकार के विरुद्ध विद्रोह हुए। इस समय चिरगाँव के राव बखतसिंह ने बगावत की। इसने बहुत सी फौज इकट्ठी करके अँगरेजी सत्ता को उखाड़ने का प्रयत्न किया। परंतु झाँसी के राजा केशवराव ने अँगरेजों की सहायता की और राव बखतसिंह हमीरपुर जिले में पँडवारी नाम के स्थान पर, अँगरेजों की फौज के हाथ से, मारा गया। चिरगाँव पर फिर अँगरेजों का अधिकार हो गया। राव बखतसिंह के राव रघुनाथसिंह नाम का एक पुत्र था। इसने सन् १८५७ ई० के राज-विद्रोह के समय अँगरेजों को सहायता दी थी इसलिये अँगरेजों की ओर से इसे ४५००) रुपए की वार्षिक पेंशन मिली। अब राव रघुनाथसिंह के पुत्र दलीपसिंह को २२५०) रुपए की वार्षिक पेंशन मिलती है।

११—संवत् १८९९ में सागर जिले में राज-विद्रोह हुआ। चंद्रापुर के बुंदेला ठाकुर जवाहिरसिंह और मालथोन के समीप नराट घाटी के मधुकरशाह और गणेशजू पर सागर की दीवानी अदालतों की डिक्रियाँ तामील की गईं। इस पर वे लोग उठ खड़े हुए और उन्होंने कुछ पुलिसवालों को मार डाला। उन लोगों ने फिर बहुत से आदमियों के साथ खिमलासा, खुरई, नरयावली, धामौनी और विनैका लूट लिए। नरसिंहपुर के जमींदार देलनशाह गोंड ने भी उपद्रव आरंभ कर दिया। उसने देवरी और उसके आस-पास का इलाका लूट लिया। यह धूम साल भर तक मची रही। अंत में मधुकरशाह और गणेशजू भानपुर में पकड़े गए। मधुकरशाह को फाँसी दी गई और गणेशजू को कालापानी हुआ। इस उपद्रव से सारे जिले में अशांति फैल गई और सरकारी जमा भी वसूल न हो सकी।

अध्याय ३५

राज-विद्रोह का कारण

१—संवत् १९०५ (सन् १८४८) में अँगरेजों के राज्य के गवर्नर लार्ड डलहौजी हुए। लार्ड डलहौजी ने, जिस प्रकार हो सका, अँगरेजी राज्य की सीमा बढ़ाने का प्रयत्न किया। जिस समय वे आए उस समय पंजाब में महाराज रणजीतसिंह के अल्पवयस्क पुत्र दिलीपसिंह का राज्य था और दिलीपसिंह की ओर से उनकी माता महारानी जिंदा राज्य-कार्य देखती थीं। अँगरेजों ने महारानी जिंदा के शासन-प्रबंध को अयोग्य बताकर प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। जिस समय अँगरेज शासकों ने मुल्तान पर अधिकार किया उस समय मुल्तान में झगड़े हुए जिसमें कई अँगरेज मारे गए। अँगरेजों ने इन उपद्रवों का दोष महारानी जिंदा पर लगाया और उन्हें पंजाब छोड़कर काशी में जाकर रहना पड़ा। महारानी जिंदा के निर्वासन से सारे पंजाब में अशांति फैल गई। महारानी के काशी चले जाने के थोड़े दिनों के बाद पंजाब में फिर विप्लव हो गया और अँगरेजों ने सिक्खों को हराकर पंजाब पर अपना पूरा अधिकार कर लिया। दिलीपसिंह इँगलैंड भेज दिए गए और उन्हें कुछ पेंशन दी गई। दिलीपसिंह के प्रति जो व्यवहार अँगरेजों ने किया उससे पंजाब में बहुत अशांति फैल गई। पंजाब को अधिकार में करने के पश्चात् लार्ड डलहौजी ने सतारे पर अपनी दृष्टि डाली। सतारे में महाराज शिवाजी के वंशज प्रतापसिंह नाम के एक राजा राज्य कर रहे थे। इनके कोई संतान न होने से इन्होंने एक दत्तक पुत्र लिया था। प्रतापसिंह के ऊपर अँगरेजों ने यह अभियोग लगाया कि ये पुर्तगाली लोगों से मिले हुए हैं। इस अभियोग के कारण प्रतापसिंह कैद कर लिए गए और काशी भेज दिए गए। सतारे का राज्य अँगरेजों ने

प्रतापसिंह के भाई आपा साहब को दे दिया। आपा साहब के भी कोई पुत्र न था। इससे आपा साहब ने भी एक बालक गोद लिया था। परंतु लार्ड डलहौजी ने देशी राज्यों को अँगरेजी राज्य में मिला लेने की नीयत से एक कानून ऐसा बनाया था जिसके अनुसार कोई देशी राजा, अँगरेजों की अनुमति लिए बिना, दत्तक न ले सकते थे। इस कानून के अनुसार आपा साहब और प्रतापसिंह के दत्तक पुत्रों को अँगरेजों ने न माना और आपा साहब के मरने पर सतारा भी अँगरेजी राज्य में मिला लिया गया।

२—झाँसी के गंगाधरराव की मृत्यु का समाचार बुंदेलखंड के पोलिटिकल एजेंट मेजर मालकम के पास, ता० २१ नवंबर सन् १८५३ ईस्वी को, पहुँचा। इसकी खबर एजेंट ने अँगरेज सरकार के परराष्ट्र-सचिव को भेजी। इस विषय में एजेंट ने जो पत्र परराष्ट्र-सचिव के पास भेजा था उसमें गंगाधरराव की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया था और दामोदरराव के गोद लिए जाने का हाल भी लिखा गया था। उसके साथ एजेंट ने परराष्ट्र-सचिव को यह भी लिखा कि नियमानुसार झाँसी के राजा को गोद लेने का अधिकार नहीं है इसलिये अँगरेज लोग झाँसी का राज्य अँगरेजी राज्य में मिला सकते हैं। रानी लक्ष्मीबाई के विषय में एजेंट साहब ने पाँच हजार रुपए माहवार की पेंशन दी जाने की सलाह दी। उपर्युक्त आशय का पत्र भेजकर मेजर मालकम ने झाँसी का बंदोबस्त स्वयं करना आरंभ कर दिया। प्रबंध में कोई अड़चन न पड़े इस उद्देश्य से मालकम साहब ने सेंधिया की कंटिंजेंट पलटन का एक भाग और बंगाल नेटिव इनफेंट्री का एक भाग अपने पास रखा और कुछ सेना झाँसी और करेरा के किलों में रखी।

३—झाँसी के दरबार ने गंगाधरराव के दत्तक पुत्र दामोदरराव के नाम से राज्य-कार्य चलाने का निश्चय कर लिया। जिस

समय दामोदरराव गोद लिए गए थे उस समय बुंदेलखंड के असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट मेजर एलिस भी उपस्थित थे। गोद का संस्कार होने के पहले अँगरेजों को खबर भी दे दी गई थी। इस खबर के पश्चात् मेजर एलिस गोद के समय पहुँचे थे और झाँसी के राज-कर्मचारियों ने यही समझा था कि दामोदरराव के गोद लिए जाने के विषय में अँगरेजों ने अनुमति दे दी है। झाँसी राज्य और अँगरेजों से जो शर्तें हुई थीं उनके अनुसार भी वंशपरंपरा के लिये राज्य रामचंद्रराव को मिला था। परंतु लार्ड डलहौजी की नीयत झाँसी राज्य को अँगरेजी राज्य में मिला लेने की थी। मेजर मालकम की भी यही सलाह थी कि झाँसी का राज्य अँगरेजों के राज्य में मिला लिया जाय। मालकम साहब के पत्र का बहुत दिनों तक उत्तर न दिया गया। इसलिये महारानी लक्ष्मीबाई ने दूसरा पत्र अँगरेजों को लिखा। इस दूसरे पत्र में महारानी लक्ष्मीबाई ने अँगरेजों की पुरानी संधियों का उल्लेख करते हुए झाँसी राज्य को रामचंद्रराव के वंश में कायम रखने के उद्देश्य से दत्तक पुत्र लेने की आवश्यकता बतलाई और अँगरेज सरकार से प्रार्थना की कि दामोदरराव का गोद लिया जाना स्वीकार किया जाय। एलिस साहब ने एक पत्र अँगरेजों के गवर्नर को लिखा था। उस पत्र में एलिस साहब ने झाँसी का राज्य दामोदरराव को दिए जाने की सलाह दी थी। परंतु एलिस साहब की सलाह नहीं मानी गई।

४—इस समय झाँसी की राजगद्दी खाली देखकर गंगाधरराव के प्राचीन निवासस्थान खानदेश में रहनेवाले उनके घराने के पुरुषों में से सदाशिव नारायण नाम के एक व्यक्ति ने मालकम साहब को राज्य पाने के लिये एक प्रार्थना-पत्र भेजा। मालकम साहब ने सदाशिव नारायण के पत्र का समर्थन किया और गवर्नर-जनरल को एक पत्र भेजा जिसमें यह लिखा कि झाँसी के राज्य का अधिकारी

सदाशिव नारायण ही है। अँगरेजों के गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी संवत् १९११ (सन् १८५४) में दौरे से लौटकर कलकत्ते पहुँचे। यहाँ पर इनके सामने झाँसी राज्य-सम्बन्धी पत्र पेश किए गए। लाट साहब के परराष्ट्र-सचिव मिस्टर ग्रंट ने झाँसी के मामले की एक बड़ी मिसल तैयार की। इसमें झाँसी और अँगरेजों के प्राचीन संबंध का उल्लेख करने के पश्चात् यह रिपोर्ट लिखी गई कि झाँसी का राज्य लावारिस हो गया है और नियमानुसार वह अँगरेजी राज्य में मिला लिया जाय। यह रिपोर्ट लार्ड डलहौजी के सामने पेश की गई। रिपोर्ट पढ़कर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने झाँसी राज्य को अँगरेजी राज्य में मिला लेने का हुक्म दे दिया। गंगाधरराव ने दामोदरराव को गोद लिया था परंतु अँगरेजों ने इस गोदनामे को, नियम-विरुद्ध बताकर, नहीं माना।

५—झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई अँगरेजों के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थीं। उत्तर आने में विलंब होने के कारण रानी लक्ष्मीबाई ने दूसरा प्रार्थना-पत्र अँगरेज सरकार के पास भेजा। इस पत्र पर मालकम साहब ने रानी लक्ष्मीबाई के अनुकूल राय दी। परंतु यह पत्र अभी गवर्नर के पास न पहुँच पाया था कि गवर्नर ने झाँसी को अँगरेजी राज्य में मिला लेने का हुक्म दे दिया। गवर्नर का हुक्म मालकम और एलिस के पास होता हुआ रानी लक्ष्मीबाई के पास पहुँचा। हुक्म पाते ही रानी लक्ष्मीबाई मूर्च्छित हो गईं। मूर्च्छा दूर होने पर अचानक उनके मुँह से ये शब्द निकले कि "मैं झाँसी न दूँगी।" अँगरेजों ने झाँसी की रानी के खर्च के लिये पाँच हजार रुपए माहवार नियत किए थे परंतु रानी ने इसे लेना स्वीकार न किया। दामोदरराव की निजी संपत्ति रानी लक्ष्मीबाई के अधिकार में कर दी गई। अँगरेजों ने अपने खजाने से छः लाख रुपए दामोदरराव के नाम से जमा करा दिए। ये रुपए रानी लक्ष्मीबाई के अधिकार में नहीं दिए गए।

६—झाँसी में अँगरेजी राज्य हो गया। रानी लक्ष्मीबाई को झाँसी का किला छोड़कर शहर में रहना पड़ा। अँगरेजों की पलटन झाँसी में रहने लगी। रानी लक्ष्मीबाई की सेना को अँगरेजों ने छः मास का वेतन देकर सदा के लिये विदा कर दिया। अँगरेजों की ओर से झाँसी के कमिश्नर मेजर स्कीन साहब नियत किए गए। परंतु रानी लक्ष्मीबाई अपना राज्य लेने के लिये अँगरेजों से लिखा-पढ़ी करती रहीं। इन्होंने अपना मुकदमा लंदन के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के सामने पेश करने के लिये वकील नियुक्त किए। इन वकीलों में एक कलकत्ते के उमेशचंद्र बनर्जी थे और दूसरे एक यूरोपियन थे। इन महाशयों को रानी ने साठ हजार रुपए मिहनताने के रूप में दिए। इन महाशयों ने क्या किया इसका कुछ पता न चला परंतु लंदन के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने भारत के गवर्नर का हुक्म कायम रखा। भारतवर्ष के अँगरेजी राज्य का कर्ता-धर्ता उस समय लंदन का कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ही था।

७—निराश होकर रानी लक्ष्मीबाई अपना समय दान-धर्म में बिताने लगीं। परंतु उन्होंने अँगरेजों से विद्रोह करने की बात न सोची। दामोदरराव के यज्ञोपवीत के समय रुपयों की आवश्यकता पड़ी। इनके जो रुपए अँगरेजों ने जमा करा दिए थे वे रानी ने माँगे। अँगरेजों ने ये रुपए रानी को तब दिए जब कि रानी ने एक जमानतनामा इस आशय का लिख दिया कि यदि दामोदरराव बड़े होने पर रुपयों का दावा अँगरेजों से करें तो इन रुपयों की देनदार रानी लक्ष्मीबाई होंगी।

८—झाँसी को किसी प्रकार अपने अधिकार में करने के पश्चात् लार्ड डलहौजी ने नागपुर की ओर ध्यान दिया। नागपुर के आपा साहब को गद्दी से उतारकर अँगरेजों ने भोंसला-वंश के तृतीय रघुजी नामक एक बालक को नागपुर का राज्य दिया। संवत् १८१०

(ता० ११ दिसंबर सन १८५३ ईस्वी) को तृतीय रघुजी का देहांत हो गया। रघुजी के अल्पवयस्क होने के कारण उनकी नानी बंकोबाई नागपुर का राज्य-कार्य देखती थीं। रघुजी के मरने पर बंकोबाई ने बालक गोद लेने की इच्छा प्रकट की। यह भी तय कर लिया गया कि अहरराव नामका बालक गोद लिया जाय। अँगरेजों के रेजिडेंट ने न तो इसका विरोध किया और न अनुमति दी। बंकोबाई ने अहरराव को गोद ले लिया और गोद के पश्चात् अहरराव का नाम जानोजी भोंसला रखा गया। अँगरेजों ने यह गोदनामा नियम-विरुद्ध बताकर नागपुर का राज्य अँगरेजी राज्य में मिला लिया और भोंसले की सब संपत्ति अपने अधिकार में कर ली।

६—संवत् १८७५ में पूना के पेशवा बाजीराव गद्दी से उतारे गए थे और वे कानपुर के निकट बिठूर में रहने लगे थे। बिठूर में इन्हें अँगरेजों की ओर से आठ लाख की वार्षिक वृत्ति मिलती थी। यहाँ उन्हें एक जागीर भी दी गई थी। बाजीराव के कोई पुत्र न था इससे वे एक बालक को गोद लेना चाहते थे। दत्तक लेने के लिये उन्होंने अँगरेजों से अनुमति माँगी। अँगरेजों ने इस पत्र का यही संदिग्ध उत्तर दिया कि पेशवा के मरने पर उनके वंशजों की उचित व्यवस्था की जायगी। बाजीराव के तीन दत्तक पुत्र थे। बड़े का नाम नाना साहब धोंडू पन्त था। जिस समय बाजी-राव मरने लगे उस समय उन्होंने वसीयतनामे के द्वारा नाना साहब को सब संपत्ति का मालिक बनाया। बाजीराव का देहांत संवत् १९०८ में हुआ। उनके मरने पर नाना साहब को बिठूर की जागीर तो मिल गई परंतु अँगरेजों ने उन्हें आठ लाख की पेंशन न दी क्योंकि उनका गोदनामा अँगरेजों ने न माना। नाना साहब ने आठ लाख की वार्षिक वृत्ति के लिये बहुत लिखा-पढ़ी की परंतु कुछ सुनाई न हुई। लंदन से भी यही हुक्म आया कि आठ

लाख की वृत्ति नाना साहव को न दी जाय। कुछ दिनों के वाद अँगरेजों ने अवध के वाजिदअली शाह का प्रबंध बुरा बताकर उस राज्य पर भी अपना अधिकार कर लिया।

१०—लार्ड डलहौजी की इस नीति से इन सब राज्यों में असंतोष फैल गया। अँगरेजी राज्य की व्यवस्था भी ठीक न थी। अँगरेज किसी प्रकार रुपए वसूल करना ही अपना ध्येय समझते थे। अंतर्वेद के जमींदार भी असंतुष्ट हो गए थे क्योंकि उनके अधिकारों की परवाह न करके कई जमींदारों के नाम कृषकों में लिख लिए गए थे। जमा की वसूली भी बहुत सख्ती से होती थी। इससे भी सारे देश में असंतोष फैल रहा था। विद्रोह का असली कारण यही असंतोष था परंतु प्रासंगिक कारण बहुत तुच्छ था। विप्लव का प्रासंगिक कारण सैनिकों का असंतोष ही था और इस असंतोष का कारण सैनिकों में इस अफवाह का फैल जाना था कि अँगरेज लोग गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूस सैनिकों को देकर उन्हें धर्मभ्रष्ट करना चाहते हैं।

अध्याय ३६

विद्रोह का आरंभ

१—लार्ड डलहौजी संवत् १९१३ (सन् १८५६) में इँगलैंड चले गए। उनके स्थान पर लार्ड केनिंग भारतवर्ष के अँगरेजी राज्य के गवर्नर हुए। लार्ड डलहौजी की राजनीति से जो असंतोष भारतवर्ष में उत्पन्न हो गया था वह लार्ड केनिंग को भली भाँति मालूम था। उन्होंने भारतवर्ष में आते समय कहा भी था कि अशांति होने के कारण कोई भी छोटी बात भारतवर्ष में विप्लव उत्पन्न कर सकेगी। लार्ड केनिंग का अनुमान सत्य निकला। भारतवर्ष

में विप्लव होने का प्रासंगिक कारण बहुत ही तुच्छ था। अँगरेज-सरकार की सेना में यह खबर फैल गई कि हिंदू और मुसलमानों का धर्म भ्रष्ट करने के लिये गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूस दिए जाते हैं। बस, इसी कारण से सेना ने विद्रोह कर दिया। सबसे पहले बरहमपुर की सेना ने विद्रोह किया। आरंभ में यह विद्रोह सिपाही-विद्रोह था परंतु देश की अशांति से यही विद्रोह राष्ट्र-विप्लव बन गया। बंगाल के पश्चात् मेरठ की सेना ने विद्रोह किया। मेरठ पर बागियों का अधिकार हो गया। फिर दिल्ली में उपद्रव हुआ। दिल्ली की सेना ने आखिरी मुगल बादशाह को दिल्ली के तख्त पर बैठाया। मेरठ और दिल्ली की खबर चारों ओर शीघ्र ही फैल गई। बरेली, मुर्शिदाबाद, लखनऊ, इलाहाबाद, काशी इत्यादि स्थानों में बलवे होने लगे। अँगरेजों ने विद्रोहियों को दंड देने के लिये एक विशेष कानून भी बनाया जिसके अनुसार फौजी अफसर थोड़ी तहकीकात करके अपराधियों को दंड दे सकें और उनके निर्णय की फिर कहीं अपील न हो।

२—कानपुर में भी विद्रोह की खबर पहुँची। कानपुर के सिपाहियों ने सुना कि दिल्ली में फिर से मुगल राज्य स्थापित हो गया है। इसलिये कानपुर के सैनिक भी अँगरेजों को निकालकर भगाने की चेष्टा करने लगे। यहाँ पर विद्रोहियों को अजीमुल्ला नामक एक मुसलमान ने विशेष सहायता दी। अजीमुल्ला नाना साहब का मित्र था। वह नाना साहब के मुकदमे की पैरवी के लिये नाना साहब की ओर से इँगलैंड भी गया था। अजीमुल्ला ने नाना साहब को विद्रोहियों में शामिल होने की सलाह दी और नाना साहब को पेशवा बना देने का उसने वादा किया। नाना साहब अजीमुल्ला की बातों में आ गए। कानपुर के सब सिपाहियों ने नाना साहब को अपना मुखिया बनाया और वे सब काम उनके ही नाम से करने लगे।

३—कानपुर के बलवे का समाचार झाँसी पहुँचा। झाँसी में अँगरेजों की सेना के नायक कप्तान डनलाप थे। रानी लक्ष्मीबाई का विद्रोहियों से कोई संबंध न था; वे तो ईश्वराराधना में लगी हुई थीं। परंतु अँगरेजों की काली पलटन बागी हो गई थी। इस सेना के हवलदार गुरुबख्श ने अचानक बलवे का झंडा खड़ा कर दिया और गोला बारूद जो कुछ था उस पर अधिकार कर लिया। अँगरेजों ने यह हाल देखकर किले में रहना छोड़ दिया और नौगाँव को सहायता के लिये खबर भेजी। उस समय नौगाँव और नागौद में अँगरेजों की सेना रहा करती थी। अभी यह सेना सहायता के लिये पहुँच न सकी कि किले तथा शहर पर विद्रोहियों का अधिकार हो गया। अँगरेजों की स्त्रियाँ और बच्चे किले को छोड़कर बाहर आ गए थे परंतु किले में अँगरेजी सेना के सिपाही रह गए थे। इन सिपाहियों को विद्रोहियों ने हरा दिया। गार्डन नामक एक अँगरेज सेनापति इस युद्ध में मारे गए। विद्रोहियों के एक मुखिया ने अँगरेजों को अभयदान दे उनके हथियार रखवा लिए परंतु फिर उन लोगों को उसने मरवा डाला। झाँसी के कमिश्नर स्कीन साहब का वध इसी समय हुआ।

४—विद्रोह के दो या तीन दिन पहले मिस्टर गार्डन रानी लक्ष्मीबाई से मिले। उन्हें रानी लक्ष्मीबाई पर पूरा विश्वास था और वे जानते थे कि रानी लक्ष्मीबाई अँगरेजों से विद्रोह न करेंगी। जब विद्रोह हुआ तब किले के कई अँगरेजों की स्त्रियाँ और बच्चे रानी लक्ष्मीबाई के पास गए और रानी ने उनकी रक्षा की। किले में जब विद्रोहियों ने अँगरेजों को घेर लिया था तब रानी लक्ष्मीबाई ने उनकी सहायता के लिये अनाज आदि किले में भेजा था।

---

(१) आगरे से मार्टिन नामक एक अँगरेज ने दामोदरराव को ता० २० अगस्त सन् १८८९ को एक पत्र में यह लिखा था—"Your mother was

५—विद्रोहियों ने किले पर अधिकार करने के पश्चात् रानी लक्ष्मीबाई का घर घेरा। रानी लक्ष्मीबाई ने विद्रोहियों से अपना बचाव करने के लिये उन्हें तीन लाख रुपयों के जेवर दिए। फिर रानी लक्ष्मीबाई ने यह सब हाल अँगरेजों को लिख भेजा और वे सागर के कमिश्नर की ओर से झाँसी का राज्य-प्रबंध देखने लगीं[1]।

६—सदाशिव नारायण नाम का एक मनुष्य, जिसने झाँसी के राज्य का उत्तराधिकारी होने का दावा किया था, एक बड़ी भारी सेना लेकर झाँसी के समीप पहुँचा। उसने करेरा पर आक्रमण किया। करेरा के अँगरेजों की ओर के थानेदार और तहसीलदार को उसने मार भगाया और फिर करेरा पर अधिकार कर लिया। फिर यहाँ पर सदाशिव नारायण ने अपना राज्याभिषेक कराया। जब यह हाल रानी लक्ष्मीबाई ने सुना तब वे अपनी सेना लेकर सदाशिव नारायण से लड़ने गईं। सदाशिव नारायण रानी लक्ष्मीबाई की सेना से डरकर भागा और करेरा पर रानी लक्ष्मीबाई का अधिकार हो गया। सदाशिव नारायण फिर नरवर की ओर भागा। वहाँ

---

very unjustly and cruelly dealt with and no one knows her true case as I do. The poor thing took no part in the massacre of the European residents of Jhansi in June, 1857. On the contrary she supplied them with food for two days after they had gone into the Fort. * * * she then advised Major Skene and Captain Gordon to fly at once to Datia and place themselves under the Raja's protection * * "

(१) बलवे के पश्चात् झाँसी के कमिश्नर मिस्टर पिंक थे। इन्होंने लिखा था कि रानी लक्ष्मीबाई ने झाँसी का प्रबंध अँगरेजों की ओर से किया था और वे अँगरेजों के विरुद्ध न थीं।

पर सेंधिया ने उसे सहायता दी, परंतु रानी लक्ष्मीबाई ने उसे अव-सर में पकड़कर झाँसी के किले में कैद कर लिया।

७—ओड़छे के राजा के पास नत्थेखाँ नाम का दीवान था। इसने वीस हजार मनुष्यों की सेना लेकर झाँसी पर आक्रमण किया। झाँसी की रानी लक्ष्मीवाई ने अँगरेजों के पोलिटिकल एजेंट के पास सहायता माँगने के लिये एक दूत भेजा। इस दूत को नत्थेखाँ के मनुष्य ने मार्ग में ही मार डाला। फिर रानी लक्ष्मीवाई ने नत्थेखाँ से युद्ध किया। रानी लक्ष्मीवाई ने दीवान जवाहिरसिंह को अपना सेनापति बनाया। जवाहिर ने वीरता से युद्ध किया और झाँसी की सेना ने नत्थेखाँ को हरा दिया। मार्टिन साहब ने झाँसी के इस कार्य की प्रशंसा की है और दतिया और टीकमगढ़ के राज्यों के प्रति अप्रसन्नता प्रकट की है क्योंकि उन्होंने ऐसे समय में अँगरेजों को सहायता न दी[1]।

८—रानी लक्ष्मीवाई के सहायक दीवान रघुनाथसिंह थे। ये हमेशा अँगरेज-सरकार की सहायता करते रहे। इन्हें महारानी विक्टोरिया ने सहायता के वदले में पुरस्कार भी दिया था। परंतु किसी कारण अँगरेजों को यह भ्रम हो गया कि महारानी लक्ष्मी-वाई विद्रोहियों से मिली हैं। इसी भ्रम के कारण अँगरेजों ने अपने सेनापति सर ह्यू रोज को झाँसी पर आक्रमण करने के लिये भेजा। झाँसी की रानी को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ।

---

(१) मिस्टर मार्टिन ने लिखा है—

"After the mutinous troops had quited Jhansi, she certainly took possession of her country, when the two States, Datia and Tehri who could easily have protected our people, but would not do so much as raise a finger to help us c."

वे अभी तक अँगरेजों की सहायता करती आई थीं और झाँसी का शासन भी वे अँगरेजों की ओर से कर रही थीं। अँगरेजों की सेना को आते देख उन्होंने समझ लिया कि अँगरेजों के मन में कुछ भ्रम हो गया है। इस भ्रम को दूर करने के लिये रानी ने अपने दूत अँगरेजों के पास भेजे। परंतु दुर्भाग्य-वश ये दूत बिलकुल अनभिज्ञ थे और अँगरेजों के पास ये पहुँच ही न पाए। झाँसी में अँगरेजों की जो हत्या हुई थी उससे अँगरेज लोग जलकर आग हो रहे थे। ऐसे समय में कौन उनका मित्र और कौन उनका शत्रु था, इसका भी ज्ञान उन्हें न रहा। उनका यही विश्वास था कि झाँसी का हत्याकांड रानी लक्ष्मीबाई ने हो कराया है। इसी का बदला लेने के लिये अँगरेजों ने अपनी सेना झाँसी को भेजी थी।

९—अँगरेजों की सेना के दो भाग थे। एक सेना बंबई और मद्रास की थी। इस सेना ने अपने ठहरने का स्थान मऊ नियत किया और यहीं से आक्रमण करने का निश्चय किया। इस सेना के नायक सर ह्यू रोज थे। दूसरी सेना सहायता के लिये जबलपुर में रखी गई। इस सेना के नायक जनरल विटलाक थे। सर ह्यू रोज ने अपनी मऊ की सेना के दो विभाग कर दिए। एक विभाग मऊ में रहा और दूसरा सीहोर भेजा गया। सीहोर जाते समय इस विभाग के साथ भोपाल की बेगम के भेजे हुए ८०० सिपाही, अँगरेजों की सहायता के लिये, हो गए।

अध्याय ३७

दक्षिण बुंदेलखंड में विद्रोह

१—जिस प्रकार मेरठ और दिल्ली का हाल सुनते ही झाँसी में उपद्रव हुआ उसी प्रकार बुंदेलखंड के अँगरेजी राज्य के सब जिलों

में उपद्रव आरंभ हो गया। सागर में अँगरेजों की दो हिंदुस्तानी पलटनें और एक अँगरेजी पलटन रहती थी। ज्योंही झाँसी में अँगरेजों के मारे जाने की खबर सागर पहुँची त्योंही सागर की नंबर ४२ की हिंदुस्तानी पलटन बागी हो गई। बानपुर के राजा ठाकुर मर्दनसिंह ने अपनी सेना लेकर खुरई तहसील और नरयावली के परगने पर अधिकार कर लिया। खुरई में अँगरेजों की ओर से अहमदबख्श नाम का तहसीलदार था। यह भी मर्दनसिंह से मिल गया और इसने मर्दनसिंह को खुरई पर अधिकार कर लेने में सहायता दी। मर्दनसिंह फिर अपनी सेना लेकर ललितपुर पहुँचा। वहाँ से चंदेरी जाकर उसने चंदेरी के अँगरेजी अफसर को घेर लिया। शाहगढ़ के राजा ने भी विद्रोह आरंभ कर दिया। शाहगढ़ में बखतबली का राज्य था। भोपाल राज्य की आमापानी नामक गढ़ी के नवाब ने कुछ सेना लेकर राहतगढ़ पर अधिकार कर लिया[1]।

२—सर ह्यू रोज ने अपनी मऊ की सेना के दो विभाग किए थे। एक विभाग मऊ में ही रहा और दूसरा सीहोर की ओर भेजा जा रहा था। सागर के विद्रोह का समाचार मिलते ही यह सीहोर जानेवाली सेना सागर की ओर भेज दी गई। चंदेरी की ओर भी कुछ सेना भेजी गई। परंतु इस सेना को मालथोन[2] के

---

(१) राहतगढ़ पहले से ही आमापानी के नवाब के अधिकार में था। परंतु संवत् १८६४ में सेंधिया ने नवाब को हराकर राहतगढ़ उससे ले लिया था। फिर यह अँगरेजों को सन् १८२६ (संवत् १८८३) में दे दिया गया था।

(२) मालथोन को अकबर बादशाह के सरदार मुहम्मदखाँ ने बसाया था। फिर इस पर गोंड़ लोगों ने अधिकार कर लिया। तदनंतर ओड़छे के दीवान अचलसिंह ने इस पर अधिकार कर लिया पर ओड़छेवालों से सन् १७४८ में इसे गढ़ाकोटा के पृथ्वीसिंह ने ले लिया। फिर अर्जुनसिंह ने इसे सेंधिया को दिया और सेंधिया ने सन् १८२० में अँगरेजों को दिया।

निकट मर्दनसिंह की सेना ने रोक लिया। मर्दनसिंह से युद्ध करने में सहायता देने के लिये सागर से सेना भेजी गई। सागर में नंबर ३१ की हिंदुस्तानी पलटन बागी न हुई थी। सागर की सेना की सहायता से मर्दनसिंह की सेना हटा दी गई और बालाबेट पर अँगरेजों का फिर से अधिकार हो गया।

३—सागर की नंबर ४२ की हिंदुस्तानी पलटन बागी हो गई थी। इस पलटन के सरदार का नाम शेख रमजान था। शेख रमजान ने सागर में मुसलमानी झंडा खड़ा कर दिया और सब सैनिकों के सम्मिलित होने के लिये डंका बजाया। सब सिपाहियों ने मिलकर शेख रमजान को अपना जनरल बनाया। इस पलटन ने पहले सागर में लूट-मार की और लगभग १० हजार रुपए लूट के द्वारा वसूल किए। फिर इसने नंबर ३१ की हिंदुस्तानी पलटन पर आक्रमण किया। इन दोनों पलटनों में बहुत देर तक युद्ध हुआ परंतु फिर बागी पलटन शाहगढ़ की ओर चली गई। शाहगढ़ के राजा बखतबली ने इस बागी पलटन से मेल कर लिया। बानपुर के मर्दनसिंह को भी खबर दी गई। मर्दनसिंह ने बखतबली को सहायता देने का वचन दिया। फिर मर्दनसिंह और बखतबली ने सब जागीरदारों और जमींदारों के पास बलवे में शामिल होने के लिये संदेश भेजा। इनके कुछ सिपाही दमोह पहुँचे। बागी सिपाहियों के डर के मारे दमोह के डिपटी कमिश्नर अपना खजाना लेकर जेल के भीतर रहने लगे। बागियों ने दमोह के आस-पास लूट-मार की और चले गए।

४—सागर, दमोह और जबलपुर जिलों में बागियों की संख्या बहुत बढ़ गई। दमोह जिले के सब लोधी ठाकुर अँगरेजों के विरुद्ध हो गए। हिंडोरिया का ताल्लुकेदार किशोरसिंह भी बागी हो गया। शाहगढ़ के राजा ने बिनैका पर अधिकार कर लिया। शाहगढ़ के

राजा से लड़ने के लिये अँगरेजों ने सागर की नंबर ३१ की हिंदुस्तानी पलटन भेजी। इस पलटन को शाहगढ़ के राजा की पलटन ने आसानी से हरा दिया। शाहगढ़ के राजा के एक सरदार पजनसिंह उर्फ बोधन दौआ ने गढ़ाकोटा पर चढ़ाई की और शाहगढ़ के राजा की ओर से उसने गढ़ाकोटा पर अधिकार कर लिया। बानपुर के राजा ने सागर पर आक्रमण किया। इसी समय जबलपुर की नंबर ५२ की पलटन भी बागी हो गई। अँगरेजों ने देखा कि बिना बाहरी सहायता के सागर, दमोह और जबलपुर का बचाना कठिन होगा। इसलिये उन लोगों ने पन्ना के राजा से सहायता माँगी। पन्ना के राजा ने अँगरेजों को सहायता देने का पहले ही वचन दिया था और ज्योंही अँगरेजों का संदेश उनके पास पहुँचा त्योंही उन्होंने कुँवर श्यामलेजू के साथ अपनी सेना अँगरेजों की सहायता के लिये भेजी। पन्ना की सेना ने पहले सिमरिया से बागियों को भगाया और सिमरिया पर अधिकार किया। फिर इस सेना ने हटा तहसील पर अपना अधिकार कर लिया। इसके पीछे श्यामलेजू दमोह आए और वे यहाँ का प्रबंध अँगरेजों की ओर से देखने लगे। दमोह में शांति स्थापित करने का कार्य पन्ना की सेना ने ही किया।

५—जबलपुर की नंबर ५२ की बागी पलटन ने दमोह जिले में बहुत कुछ उपद्रव मचाया परंतु पन्ना की सेना ने जबलपुर की इस पलटन को हरा दिया। इस पलटन ने रेहली पर भी धावा किया। फिर यह गढ़ाकोटा पहुँची और गढ़ाकोटा के बोधन दौआ ने इसे सहायता दी। फिर गढ़ाकोटा की सेना और जबलपुर की बागी पलटन भापेल पहुँची और यहाँ पर अँगरेजों की सेना ने इन दोनों को हरा दिया। हार होने पर ये दोनों भापेल से वापस आ गईं। सन् १८५८ के आरंभ में सर ह्यू रोज की सेना राहतगढ़ पहुँची। राहतगढ़ का किला बागियों के अधिकार में था।

इस किले को लेने के लिये सर ह्यू रोज को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। तीन दिनों के घोर संग्राम के पश्चात् यह किला अँगरेजों के हाथ आया। आमापानी का नवाब किले से भागा परंतु अँगरेजों ने उसे पकड़ लिया और मार डाला। हार होने पर बागी लोग राहतगढ़ से भागे और बरौंदिया के निकट इकट्ठे हुए। बरौदिया में अँगरेजों ने बानपुर के मर्दनसिंह को हराया। फिर सर ह्यू रोज सागर की ओर आए और सागर पर अपना अधिकार करके गढ़ा-कोटा की ओर चले गए।

६—गढ़ाकोटा पर बखतबला की ओर से दौआ का अधिकार था। अँगरेजों ने किले पर गोले बरसाना आरंभ किया। किले के भीतर से दौआ बहुत देर तक अँगरेजों से लड़ता रहा। जब किले के भीतर का सामान खर्च हो गया तब दौआ किला छोड़कर शाहगढ़ की ओर भाग गया। किला बिलकुल खाली कर दिया गया और अँगरेज लोग खाली किले पर बहुत देर तक गोले मारते रहे। फिर जब किले के खाली होने का पता लगा तब अँगरेजों ने उस पर अधिकार कर लिया। गढ़ाकोटा पर अधिकार करने के पश्चात् अँगरेजों की सेना शाहगढ़ की ओर बखतबली से लड़ने के लिये गई। शाहगढ़ के राजा बखतबली का अधिकार मालथौन, मदनपुर और धामौनी पर था। सर ह्यू रोज झाँसी को जल्दी जाना चाहते थे। परंतु शाहगढ़ के राजा को हराए बिना झाँसी जाना कठिन था। यहाँ पर बागियों की बहुत सी सेना भिन्न भिन्न स्थानों पर फैली हुई थी। सर ह्यू रोज चतुर सेनापति थे इसलिये उन्होंने अपनी सेना के कई विभाग करके बागियों की इस बिखरी हुई सेना से लड़ने के लिये भिन्न भिन्न स्थानों पर उन्हें नियत कर दिया। सर ह्यू रोज स्वयं एक सेना-विभाग अपने साथ लेकर नराट की घाटी की ओर चले। इस घाटी पर मर्दनसिंह की बहुत बड़ी सेना स्थित थी

इसलिये सर ह्यू रोज ने मदनपुर होते हुए निकल जाना ठीक समझा। सर ह्यू रोज को मदनपुर की ओर जाते हुए देख मर्दनसिंह ने भी अपनी सेना के साथ मदनपुर की ओर प्रस्थान किया। यह देखते ही सर ह्यू रोज ने अपनी थोड़ी सी सेना फिर नराट की घाटी की ओर भेजी और मर्दनसिंह की सेना को वहीं पर अटका लिया। मदनपुर में सर ह्यू रोज ने शाहगढ़ की सेना को हरा दिया। यह युद्ध बड़ा भीषण हुआ और अँगरेजों की बहुत सी सेना मारी गई। सर ह्यू रोज को भी एक गोली लगी और उसी गोली की चोट से उनका घोड़ा मर गया। परंतु विजय अँगरेजों को मिली। इस समय यदि मर्दनसिंह की सेना मदनपुर पहुँच जाती तो सर ह्यू रोज को विजय पाना असंभव हो जाता। परंतु सर ह्यू रोज ने चतुराई से मर्दनसिंह को नराट की घाटी पर अटका लिया और मर्दनसिंह तथा शाहगढ़वाले बखतवली का मेल न होने पाया। शाहगढ़ का राज्य इस युद्ध के पश्चात् अँगरेजों के अधिकार में आ गया और राजा को शाहगढ़ छोड़कर भागना पड़ा। शाहगढ़ राज्य के कई सरदार, जो अँगरेजों के हाथ पड़े, मार डाले गए।

७—मर्दनसिंह नराट की घाटी के समीप अँगरेजों की सेना के एक विभाग से लड़ रहे थे। जब मर्दनसिंह को बखतवली की हार का हाल मालूम हुआ तब वे भी वहाँ से भाग गए। बानपुर, खुरई, नरयावली इत्यादि स्थानों पर अँगरेजों ने अपना अधिकार कर लिया।

८—बुंदेलखंड के दक्षिणी भाग में बागियों को हराकर सर ह्यू रोज तालबहट की ओर चले। तालबहट का किला भी विद्रोहियों के हाथ में था। अँगरेजों ने यह किला ले लिया और विद्रोहियों को भगा दिया। सर ह्यू रोज फिर चंदेरी गए और वहाँ पर भी विद्रोहियों को हराकर उन्होंने अपना अधिकार कर लिया।

९—फिर सर ह्यू रोज ने झाँसी पर आक्रमण करने की तैयारी की। आक्रमण करने के पहले उन्हें खबर मिली कि तात्या टोपे ने चरखारी के राजा रतनसिंह पर चढ़ाई की है। रतनसिंह अँगरेजों के मित्र थे और अँगरेजों का काम था कि राजा रतनसिंह की सहायता करें। परंतु सर ह्यू रोज को झाँसी ले लेने की पड़ी थी; इससे चरखारी की ओर कोई ध्यान न दिया गया।

१०—तात्या टोपे महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। ये बाल्यकाल से ही बड़े वीर थे। बाजीराव पेशवा इन्हें बहुत चाहते थे। ये बाजीराव पेशवा के साथ बिठूर में रहते थे। बाजीराव के मरने पर ये नाना साहब के विश्वासपात्र नौकर हो गए। कानपुर के विद्रोह में तात्या टोपे ने नाना साहब को बहुत सहायता दी थी। तात्या टोपे के अलौकिक शौर्य के कारण अँगरेजों ने उसे "हिंदू गैरीबाल्डी" कहा है।

अध्याय ३८

झाँसी और काल्पी की लड़ाइयाँ

१—रानी लक्ष्मीबाई झाँसी में अँगरेजों की ही ओर से शासन कर रही थीं परंतु जब उन्हें मालूम हुआ कि अँगरेजों की सेना झाँसी पर आक्रमण के लिये आ पहुँची है तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने चाहा कि अँगरेजों के पास अपना दूत भेजकर सब बातें समझावें परंतु दूत भी अँगरेजों के पास न पहुँच सका। कहा जाता है कि वह दूत रास्ते में ही मार डाला गया। अँगरेजी सेना निकट ही आ गई थी; अँगरेजों को भ्रम यही था कि रानी बागी हो गई हैं। इसलिये समझौते की कोई आशा न थी और रानी लक्ष्मीबाई को युद्ध करने का ही हुक्म देना पड़ा।

२—रानी लक्ष्मीबाई ने किले के बचाव के लिये पहले से ही सामान तैयार करा लिया था। गोले, बारूद और तोपें सब झाँसी के किले ही में तैयार हुई थीं। इन तोपों की और गोलों की अँगरेजों ने बड़ी प्रशंसा की है। कई गोले अँगरेजों के गोलों से भी अच्छे थे। रानी के पास एक चतुर गोलंदाज भी था जिसका नाम गुलाम गौसखाँ था। इसने भी बड़ी बहादुरी से काम किया था और अपने कौशल से अँगरेजों को चकित कर दिया था।

३—अँगरेजों ने किले पर आक्रमण करने के पहले ही झाँसी शहर से बाहर निकलने के सब मार्ग रोक लिए। झाँसी के आस-पास की पहाड़ियों पर भी अँगरेजी सेना रख दी गई थी। पहले तोपों से ही लड़ाई हुई। फिर जरा आगे हटकर अँगरेजों ने किले के दक्षिण से आक्रमण करना आरंभ किया। अँगरेजों ने किले के दक्षिणी भाग पर खूब गोले बरसाए और दक्षिण से तोपों का उत्तर देना झाँसी की सेना के लिये असंभव हो गया। इस समय झाँसी के गोलंदाज गुलाम गौसखाँ ने अँगरेजों के गोलंदाज को मार गिराया और फिर दोनों ओर से तोपों की मार होने लगी।

४—झाँसी के किले से जो गोले छूटते थे वे भी बहुत बड़े थे। कई गोले डेढ़ मन तक के वजन के थे। ये गोले झाँसी के ही बने थे और अँगरेज़ों के गोलों से भी उत्तम थे। दोनों ओर से गोलों का युद्ध सात दिन तक होता रहा[1]। आठवें दिन अँगरेजों की विजय के चिह्न दिखाई देने लगे। झाँसी का किला चारों ओर से घिरा था। झाँसी में अँगरेजों से लड़ने के लिये बारूद और गोले तो थे परंतु सैनिक शिक्षित न थे। सैनिकों की शिक्षा के लिये रानी को समय भी न मिला था। इस कारण झाँसी की रानी ने नाना साहब पेशवा से सहायता माँगी। नाना साहब ने अपने विश्वासी

---

(१) झाँसी का युद्ध २३ मार्च सन् १८५८ ईस्वी से आरंभ हुआ था।

और शूर सरदार तात्या टोपे को सहायता के लिये भेजा। तात्या टोपे अपने साथ बीस हजार सेना लेकर काल्पी से रवाना हुए। वे झाँसी जल्दी पहुँचे और उस समय अँगरेजों से युद्ध हो ही रहा था। सर ह्यू रोज भी चतुर सेनापति थे। उन्होंने ऐसा प्रबंध किया कि तात्या टोपे की सेना झाँसी की सेना से न मिलने पाई[1]। तात्या टोपे इस समय चरखारी की सेना को हराकर आए थे और उनकी सेना समझती थी कि अँगरेजों को हराना बहुत आसान काम होगा। अँगरेजों की सेना तात्या टोपे की सेना के दोनों ओर पहाड़ियों पर जम गई और उसने गोले बरसाना आरंभ कर दिया। तात्या टोपे की सेना का स्थान ठीक न था इसलिये इन लोगों की मार से उसे बड़ी हानि हुई। दाहिनी और बाईं ओर से अँगरेजों ने गोले बरसाना आरंभ किया और तात्या टोपे की सेना को हार जाना पड़ा। इस युद्ध में तात्या टोपे के लगभग १५०० मनुष्य मारे गए। तात्या टोपे की सेना हारकर भागी और सेना का बहुत सा सामान अँगरेजों के हाथ आया। तात्या टोपे की यह पहली हार थी और इसमें भी उन्हें बहुत हानि हुई। वे काल्पी की ओर भागकर चले गए[2]।

५—महारानी लक्ष्मीबाई वीरता से अपने किले का बचाव करती रहीं। सर ह्यू रोज ने किले के पश्चिम से गोले बरसाना आरंभ किया। अँगरेजों की जो सेना झाँसी के किले के पश्चिम भेजी गई उसके सेनापति मेजर गाल थे। किले के दक्षिण की ओर किडेल, राबिंसन और स्टुअर्ट थे। सर ह्यू रोज ने उत्तर ओर भी सेना भेजी और इस सेना के नायक मिस्टर लॉथ थे। इन्होंने तीनों ओर से झाँसी के किले पर गोले बरसाना आरंभ किया। गोलों की

(१) तात्या टोपे से युद्ध पहली अप्रेल सन् १८५८ से आरंभ हुआ।
(२) तात्या टोपे की हार तारीख ३ अप्रेल सन् १८५८ को हुई।

मार से किले की दीवारें बहुत कमजोर हो गईं। तात्या टोपे की हार का हाल सुनकर रानी लक्ष्मीबाई के सैनिक निराश हो गए थे परंतु रानी उन्हें उत्साहित करती रहीं।

६—अँगरेजी सेना धीरे धीरे किले के पास बढ़ती आ रही थी परंतु किले के भीतर से भी खूब गोलों की वर्षा होती थी जिससे अँगरेजों की सेना में बहुत हानि पहुँचती थी। अँगरेजों के सरदारों—डिक, मिकली, बोनस और फॉक्स—ने किले की दीवारों पर चढ़ने का प्रयत्न किया परंतु वे मारे गए। अँगरेजों की सेना यह सब मार सहती हुई आगे बढ़ती आई। रानी लक्ष्मीबाई को किले से बाहर निकल जाना पड़ा। फिर रानी लक्ष्मीबाई की सेना और अँगरेजों की सेना से शहर में युद्ध हुआ। शहर में भी अँगरेजों का अधिकार हो गया और रानी लक्ष्मीबाई अपने महल में से अँगरेजों की सेना से लड़ती रहीं। अँगरेजों ने शहर में घुसने पर विजन बोल दिया। जो कोई हिंदुस्तानी मिलता था वही मार डाला जाता था और उसकी संपत्ति लूट ली जाती थी। बच्चा या बूढ़ा जो कोई मिला मार डाला गया। सारे शहर में लूट-मार मच गई। जो अपना सब धन अँगरेजों की सेना के हवाले कर देता था वही अपनी जान बचा सकता था। इस प्रकार सारे शहर में अपना अधिकार करके सर ह्यू रोज ने रानी के महल पर आक्रमण किया। यहाँ पर रानी लक्ष्मीबाई ने अंतिम बार युद्ध किया। परंतु अँगरेजों की सेना ने महल को चारों ओर से घेर लिया और महल में आग लगा दी। अँगरेजों की सेना राजमहल में घुस पड़ी। राजमहल में जो मनुष्य मिले मार डाले गए। रानी लक्ष्मीबाई ने कुछ सैनिकों के साथ भाग जाने का निश्चय किया। परंतु भागना भी बड़ा कठिन कार्य था। चारों ओर से अँगरेजों की सेना थी। इतने पर भी रानी लक्ष्मीबाई ने हिम्मत बाँधी। अपने पुत्र दामोदरराव को उन्होंने

अपनी पीठ पर बाँधा और अपने मित्र मोरोपंत तांबे के साथ भागने के लिये तैयार हो गईं। वे पुरुष के वेश में अँगरेजी सेना के बीच में से तलवार चलाती हुई काल्पी की ओर भाग गईं।

७—सर ह्यू रोज को रानी के भाग जाने का हाल मालूम होने पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके सैनिकों ने रानी को पकड़ने का प्रयत्न किया परंतु रानी का पता न लगा। अँगरेजी सेना के बीच में से इस प्रकार भाग जाना रानी की वीरता और रण-कौशल का परिचय देता है[1]। रानी के चले जाने पर अँगरेजों ने शहर और क़िले पर अपना अधिकार जमा लिया। गोरे सिपाही अपने भाई-बंदों के मारे जाने के कारण बहुत क्रुद्ध थे। उनका तो यही विश्वास था कि रानी लक्ष्मीबाई और झाँसी के शहरवालों ने ही अँगरेजों को मरवाया है। अब उन्हें उसका बदला लेने का अवसर मिला। उन लोगों ने निर्दयता से झाँसी के निवासियों की हत्या करना आरंभ किया। झाँसी में जो मनुष्य, स्त्रियाँ और बच्चे बचे थे वे सैनिक नहीं थे। अँगरेजों की गोलियों के सामने वे कुछ न कर सकते थे। झाँसी शहर में लाशों के ढेर लग गए। इस प्रकार तीन दिन तक अँगरेजों के हुक्म से शहर के निर्दोष निवासियों की हत्या होती रही। झाँसी का पुस्तकालय नष्ट कर दिया गया; महालक्ष्मी के मंदिर के सब आभूषण लूट लिए गए। गोरों ने इस प्रकार तीन दिन तक लूट-मार की। फिर मद्रासी पलटन ने, तदनंतर हैदराबादी पलटन ने लूट-मार की। इस प्रकार सात दिनों तक लूट-मार होती रही। आठवें दिन लूट का माल नीलाम कराया गया और बहुत सा माल सेंधिया ने मोल लिया। उस समय

---

(१) रानी लक्ष्मीबाई झाँसी से तारीख ३ अप्रैल सन् १८५८ को भागीं।

वृत्तांत से पता लगता है कि युद्ध में उतने मनुष्य नहीं मरे जितने विजन और लूट के समय मरे[1]।

८—झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई भांडेर नामक गाँव में पहुँचीं। यहाँ पर अँगरेजों की सेना पहुँची। रानी के पास इस समय कोई सेना न थी। उन्होंने अपने पुत्र को पीठ पर बाँधा और लड़ने लगीं। रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी तलवार से अँगरेजी सेना के नायक मिस्टर बौकर को घायल करके गिरा दिया और वे कालपी की ओर चली गईं। बौकर साहब अपनी सेना लेकर लौट आए। कालपी में इस समय कानपुर के बागियों का अधिकार था। कानपुर के नाना साहब के सैनिकों ने अँगरेजों के डिपटी कलेक्टर मुंशी शिवप्रसाद को कालपी से मार भगाया था और कालपी पर अधिकार कर लिया था। नाना साहब के भाई राव साहब पेशवा कालपी में थे। कालपी में लड़ाई का बहुत सा सामान इकट्ठा था। कालपी के राव साहब ने रानी लक्ष्मीबाई का स्वागत किया। रानी लक्ष्मीबाई ने राव साहब को सहायता देने का वचन दिया और राव साहब ने भी, रानी के कहने के अनुसार, अँगरेजों से युद्ध करने का निश्चय कर लिया। जब रानी लक्ष्मीबाई और राव साहब पेशवा के मेल का हाल विद्रोहियों ने सुना तब उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई और उन्हें आशा हो गई कि वे इन दोनों की सहायता से अँगरेजों पर विजय पावेंगे। बाँदा के नवाब अलीबहादुर भी अँगरेजों के विरुद्ध थे। इनके पास भी बहुत सी सेना थी। ये अपनी सेना लेकर कालपी में आकर राव साहब से मिले। शाहगढ़ के राजा बखतवली, जिन्हें अँगरेजों ने सागर जिले में हरा दिया था, अब फिर से सेना इकट्ठी करके कालपी पहुँचे। बानपुर के मर्दनसिंह भी अपनी सेना के साथ यहाँ पर

---

(१) दत्तात्रेय बलवंत पारसनीस कृत "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" नामक ग्रंथ देखिए।

आए। इन सब सेनाओं की कवायद राव साहब पेशवा ने ली और सर्वसम्मति से इस सेना के नायक तात्या टोपे बनाए गए।

९—जब सर ह्यू रोज को यह खबर मिली तब उन्होंने भी अपनी तैयारी करके काल्पी पर आक्रमण किया। पहले सर ह्यू रोज की एक पलटन ने कौंच पर आक्रमण किया। कौंच पर भी राज-विद्रोहियों का अधिकार था। सर ह्यू रोज की सेना के इस विभाग ने कौंच में विद्रोहियों को हरा दिया और कौंच का किला अपने अधिकार में कर लिया। सर ह्यू रोज ने बानपुर और शाहगढ़ की फौज को रोकने का प्रयत्न भी किया परंतु वे सफल न हुए और उनकी सब फौज काल्पी पहुँच ही गई।

१०—अँगरेजों ने पहले कौंच के पास लोहारी नामक किले पर आक्रमण किया। यह किला भी विद्रोहियों के हाथ में था। उनकी ओर से यहाँ अफगानों की पलटन नियत थी। अँगरेजों ने अफगानों की पलटन को हराकर लोहारी के किले पर अधिकार कर लिया। जिस समय लोहारी में अँगरेजों से युद्ध हो रहा था उस समय कौंच पर फिर से विद्रोहियों ने अधिकार कर लिया था। इसलिए लोहारी से लौटकर सर ह्यू रोज ने कौंच पर आक्रमण किया। कौंच में इस समय बाँदा के नवाब, तात्या टोपे इत्यादि सब तैयार बैठे थे। अँगरेजों ने चारों ओर से कौंच को घेर लिया। अँगरेजी सेना और विद्रोहियों में बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। इस युद्ध में अँगरेजों को विजय मिली और कौंच अँगरेजों के अधिकार में आ गया।

११—कौंच को लेकर सर ह्यू रोज काल्पी की ओर चले। काल्पी पर हरदोई और उरई की ओर से चढ़ाई की गई। काल्पी पर महारानी लक्ष्मीबाई ने एक सेना अपने अधिकार में रखी। रोहिलों की सेना भी इस समय रानी लक्ष्मीबाई की सहायता को आ पहुँची

थी। दोनों ओर से गोलों की वर्षा हुई। अँगरेजों के पास बहुत सेना थी और लड़ाई का सामान भी खूब था। रानी लक्ष्मीबाई ने हारती हुई सेना को बहुत साहस दिया। परंतु अंत में काल्पी की सेना को पीछे हटना पड़ा। आगे बढ़ती हुई अँगरेजी सेना रानी की सेना को कत्ल करने लगी। सर ह्यू रोज ने आकर काल्पी पर अधिकार कर लिया। काल्पी की सेना भागी और लड़ाई का बहुत सा सामान, जो वह सेना छोड़ती गई, अँगरेजों को मिल गया। रानी लक्ष्मीबाई, राव साहब पेशवा और बाँदा के नवाब काल्पी छोड़कर चले गए। अँगरेजी फौज ने काल्पी को तीन दिन तक खूब लूटा। अँगरेजों के हाथ बहुत सी तोपें और गोले लगे।

अध्याय २९

बलवे की शांति

१—जिस समय सर ह्यू रोज झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के साथ युद्ध में लगे थे उस समय जबलपुर की सेना के नायक विट-लाक, पूर्व की ओर, बलवा करनेवालों का दमन कर रहे थे। दमोह में पन्ना के राजा ने अँगरेजों को सहायता दी थी और विटलाक ने बचे-खुचे विद्रोह को नष्ट कर दिया था। बाँदा में जो राजविद्रोह हुआ था उसे भी विटलाक ने ही शांत किया। फिर ये सर ह्यू रोज की सहायता करने काल्पी पहुँचे।

२—राव साहब पेशवा काल्पी से भागकर गोपालपुरा पहुँचे। तात्या टोपे भी यहीं पर पेशवा से मिले। बाँदा के नवाब भी इन्हें सहायता देने पहुँच गए। इस तरह गोपालपुरा में तीनों की सेना इकट्ठी हुई। महारानी लक्ष्मीबाई राव साहब पेशवा के साथ थीं

थीं। इस समय रानी लक्ष्मीबाई ने राव साहब से कहा कि झाँसी और काल्पी पर आक्रमण करना बहुत कठिन होगा क्योंकि अँगरेजों की बहुत सी सेना यहाँ पर अड़ी है और उसके पास लड़ाई का सामान भी बहुत है। इसलिये रानी ने ग्वालियर पर आक्रमण करने और आक्रमण करके ग्वालियर के राजा सेंधिया से सहायता लेने की सलाह दी। सबने रानी लक्ष्मीबाई की सलाह मानी और ग्वालियर पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया।

३—ग्वालियर के राज्य में अँगरेजों का बड़ा मान था। सेंधिया महाराज जयाजीराव के समय में अँगरेजों के रेजिडेंट ही वास्तविक शासक थे। ग्वालियर में अँगरेजों की सेना भी थी पर इस सेना का मन बदला हुआ था। यहाँ की सेना ने एक बार विद्रोह भी किया था परंतु वह दबा दिया गया था। ग्वालियर दरबार में भी अँगरेजों के विरुद्ध सलाहें हो रही थीं। राव साहब पेशवा के दूतों ने ग्वालियर की सेना को भड़काया। वहाँ की सेना चाहती थी कि सेंधिया महाराज भी अँगरेजों के विरुद्ध हो जायँ; परंतु सेंधिया अँगरेजों के मित्र ही बने रहे। इससे सेंधिया की फौज ने भी बलवे का झंडा खड़ा कर दिया। ऐसे समय में सेंधिया ने खुद सेना भरती की और विद्रोह को दबाने की चेष्टा की। तात्या टोपे और पेशवा की सेना ग्वालियर की सेना की सहायता को न पहुँच सकी क्योंकि उस सेना को इस समय कानपुर जाना पड़ा था। कानपुर में तात्या टोपे ने अँगरेजों को हरा दिया और फिर वह सेना गोपालपुरा में इकट्ठी हुई। इस सेना ने ग्वालियर की ओर कूच किया। ग्वालियर की सेना इस समय भी बदली हुई थी, इससे पेशवा की सेना को सेंधिया के राज्य में घुसने में कोई कठिनाई न हुई। पेशवा ने सेंधिया को बहुत पत्र लिखे और उनसे सहायता के लिये प्रार्थना की। सेंधिया ने बहुत

दिनों तक उत्तर न दिया। अंत में सेंधिया की सरकार ने यही निश्चय किया कि राव साहब को सहायता देना ठीक नहीं। सेंधिया ने राव साहब से लड़ने का भी निश्चय कर लिया।

४—मुरार के निकट बहादुरपुर नामक ग्राम में सेंधिया से युद्ध हुआ। रानी लक्ष्मीबाई ने सेंधिया की फौज को हरा दिया। जयाजीराव सेंधिया को हारकर आगरे की ओर भाग जाना पड़ा। रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी सेना सहित ग्वालियर में प्रवेश किया। इस समय ग्वालियर के लोग भी अँगरेजों से असंतुष्ट थे इसलिये ग्वालियरवालों ने राव साहब पेशवा का स्वागत किया। ग्वालियर के राज्य पर राव साहब पेशवा ने अधिकार कर लिया। राव साहब की सेना ने ग्वालियर की रेजिडेंसी को जला दिया और उस मकान का माल लूट लिया। परंतु पेशवा के हुक्म से शहर में लूट-मार न हुई। ग्वालियर पर अधिकार करके पेशवा ब्राह्मण-भोजन कराने और नाच-रंग में मस्त हो गए और अँगरेजों के साथ लड़ने के लिये तैयार रहने की बात बिलकुल भूल गए। रानी लक्ष्मीबाई ने पेशवा से बहुतेरा कहा कि यह समय लड़ने का है, आराम करने का नहीं; परंतु रानी के उपदेश पर राव साहब ने ध्यान न दिया।

५—सर ह्यू रोज यह खबर सुनकर बड़े अचंभे में पड़े। उन्होंने सुनते ही बहुत सी सेना एकत्र की और ग्वालियर पर आक्रमण किया। अँगरेजों की सेना मुरार के समीप तक आ पहुँची। परंतु राव साहब पेशवा और तात्या टोपे को इसकी बिलकुल खबर न हुई। वे तो वहाँ आनंद मनाने में लगे थे। अँगरेजों ने जब आक्रमण करने की पूरी तैयारी कर ली तब कहीं पेशवा की ओर से तात्या टोपे को सेना तैयार करने का हुक्म मिला। तात्या टोपे मुरार की ओर अँगरेजों से युद्ध करने चले। अँगरेजों ने अचानक तात्या टोपे की सेना पर आक्रमण किया। दो घंटे तक युद्ध हुआ

और अँगरेजों की जीत रही[1]। अँगरेजों ने मुरार पर अधिकार कर लिया।

६—ग्वालियर में जब यह खबर पहुँची तब पेशवा घबरा गए। परंतु रानी लक्ष्मीबाई ने उन्हें शांत किया और युद्ध के लिये उत्साहित किया। ग्वालियर के पूर्व की रक्षा का भार रानी लक्ष्मीबाई ने अपने ऊपर लिया। शेष और तात्या टोपे रहे। सर ह्यू रोज ग्वालियर से पाँच मील कोटा की सराय नामक स्थान पर पहुँचे और वहीं से उन्होंने आक्रमण करना निश्चित किया। उनके साथ ब्रिगेडियर स्मिथ भी थे। ये लक्ष्मीबाई की ओर नियुक्त थे। ब्रिगेडियर स्मिथ किसी प्रकार रानी लक्ष्मीबाई की सेना को पीछे न हटा सके। परंतु सर ह्यू रोज ने पेशवा की सेना के मोरचे छीन लिए। यह हाल सुनते ही रानी की सेना भी घबरा गई। सेंधिया महाराज को अँगरेजों ने अपने पास आगरे से बुला लिया था। इससे सेंधिया की सेना, जो अभी पेशवा को सहायता दे रही थी, बदल गई। अँगरेजों ने आगे बढ़कर रानी लक्ष्मीबाई की सेना को भी घेर लिया। परंतु रानी अपने कुछ सवारों के साथ लड़ती रहीं। अँगरेजों की सेना के सवारों ने चारों ओर से रानी को घेर लिया था पर रानी अपनी तलवारों की मार से सबको सामने से भगा देती थीं। उनके शरीर पर चारों ओर से तलवारों और भालों की मार हो रही थी। एक तलवार से उनके सिर का कुछ भाग छिन्न हो गया था और एक भाला उनकी छाती में भी आ लगा था। ऐसे समय में भी आक्रमणकारी सैनिकों को रानी ने अपनी तलवार से मार डाला। फिर और लड़ना ठीक न समझ रानी युद्ध से निकल गईं और संग्रामभूमि के निकट एक पर्णकुटी में ठहरीं। यहीं पर इनकी मृत्यु ज्येष्ठ शुक्ल ७ संवत् १९१५ को हुई। रामचंद्रराव

(१) यह युद्ध १६ जून सन् १८५८ ईसवी को हुआ।

देशमुख नामक सरदार ने रानी के शरीर को, घास के ढेर में रखकर, जला दिया।

७—रानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु हो जाने पर अँगरेजों ने तात्या टोपे और पेशवा को बहुत आसानी से हरा दिया। इनकी सेना भागी और ग्वालियर पर अँगरेजों ने अधिकार कर लिया। जयाजी राव फिर राजगद्दी पर बैठाए गए। ग्वालियर से भागने पर तात्या टोपे, राव साहब पेशवा और बाँदा के नवाब ने आलीपुरा में युद्ध किया परंतु वे यहाँ पर भी हारे। बाँदा के नवाब अँगरेजों से फिर मिल गए। अँगरेजों ने इन्हें फिर से पेंशन दी और ये इंदौर में रहने लगे।

८—तात्या टोपे और पेशवा अँगरेजों से न मिले। तात्या टोपे ने बहुत दिनों तक अँगरेजों को तंग किया और अंत में अँगरेजों ने उन्हें पकड़कर फाँसी दे दी। राव साहब पेशवा ने जब लड़ने में कोई सार न देखा तब वे संन्यासी-वेश धारण करके रहने लगे। परंतु अँगरेजों ने उन्हें पकड़कर बिठूर में फाँसी दे दी। यहीं पर राजविद्रोह का अंत हुआ।

९—रानी लक्ष्मीबाई ने जिस वीरता के साथ युद्ध किया उसे देखकर अँगरेजों ने भी रानी की प्रशंसा की। झाँसी के किले के भीतर ही जिस प्रकार लड़ाई का सामान हो सका उसी को देखकर अँगरेजों को अचंभा हुआ। रानी की हार का कारण पेशवा और तात्या टोपे की लापरवाही ही थी जिसके कारण वे अपने आक्रमण-कारी शत्रु अँगरेजों के राज्य में घुस आने पर भी युद्ध की तैयारी न कर सके। इस राजविद्रोह में ओड़छे के राजा ने अँगरेजों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। दतिया और समथर के राजा भी सदा अँगरेजों के मित्र बने रहे।

१०—शाहगढ़ के राजा को अँगरेजों ने कैद कर लिया और उन्हें लाहौर भेज दिया। शाहगढ़ का राज्य अँगरेजों के अधिकार में आ गया। बानपुर सेंधिया को मिला।

११—सेंधिया को ग्वालियर का राज्य अँगरेजों ने दिया परंतु मुरार में और ग्वालियर के किले पर अँगरेजों का अधिकार रहा। झाँसी भी ग्वालियर के राज्य में मिला दी गई। सन् १८८६ (संवत् १९४३) में झाँसी अँगरेजों ने ले ली और ग्वालियर सेंधिया को दे दिया गया। तब से झाँसी भी संयुक्तप्रांत का एक जिला है।

१२—सन् १८५७ के विद्रोह का एक प्रधान कारण गोद-संबंधी कानून था जिसके कारण राजा लोग, बिना अँगरेजों की अनुमति के, गोद में पुत्र न ले सकते थे। सन् १८६२ (संवत् १९१९) में यह कानून बदल दिया गया और प्रत्येक राजा को गोद लेने का अधिकार दे दिया गया। परंतु गोद के समय आश्रित राजाओं से उस वर्ष की आमदनी का चौथाई भाग नजराने में लिया जाता है।

अध्याय ४०

आधुनिक दशा

१—राज-विद्रोह शांत हो जाने पर बुंदेलखंड में कोई झगड़े नहीं हुए। राज-विद्रोह के समय अँगरेजों की ओर से लार्ड केनिंग गवर्नर थे। जब कंपनी के हाथ से अँगरेजी राज्य इँगलैंड की महारानी विक्टोरिया के हाथ में आया तब लार्ड केनिंग भारतवर्ष के अँगरेजी राज्य के वाइसराय कहलाए। झाँसी, जालौन, बाँदा, हमीरपुर और ललितपुर के जिले अँगरेजी राज्य के पश्चिमोत्तर प्रदेश में थे। पीछे से इस प्रदेश का नाम संयुक्तप्रदेश रखा गया। यह प्रदेश एक लेफ्टिनेंट

गवर्नर के अधिकार में था। अब यहाँ पर गवर्नर रहता है। गवर्नर को सलाह देने के लिये एक कौंसिल भी है। सागर और दमोह के जिले पहले पश्चिमोत्तर प्रदेश में थे, फिर ये जिले नर्मदा टेरिटरीज में शामिल कर दिए गए थे। राज-विद्रोह के पश्चात् एक नया प्रांत बनाया गया जिसका नाम मध्यप्रदेश रखा गया। इस प्रदेश की रचना संवत् १९१८ (सन् १८६१) में हुई। मध्यप्रदेश पहले चीफ कमिश्नर के अधिकार में था परंतु अब इसका शासन संयुक्तप्रदेश के समान गवर्नर और सलाह देनेवाली कौंसिल के अधिकार में है। सागर और दमोह के जिले इसी प्रदेश में शामिल हैं।

२—बुंदेलखंड के देशी राज्यों में ओड़छा, दतिया और समथर मुख्य हैं। इन राज्यों को अपने अपने आंतरिक प्रबंध का पूरा अधिकार है। ये राज्य सनदवाले राज्य नहीं हैं। इन राज्यों से और अँगरेजी राज्य से संधियाँ हुई हैं। ओड़छे के राजा हम्मीरसिंहजी वि० सं० १९३१ में निस्संतान मरे। इन्हें १९२२ में महाराजा की पदवी मिली थी। इनके मरने पर इन्हीं के छोटे भाई प्रतापसिंहजी गद्दी पर बैठे। इस समय इनकी आयु २० वर्ष की थी पर राज-नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण सरकार ने मेजर ए० मेन को राज्य का प्रबंधकर्ता नियुक्त किया। महाराजा के पूर्व रियासत ने १९१४ विक्रमीय के राज-विद्रोह के समय अँगरेजों की अच्छी सहायता की थी। इसी के उपलक्ष में टारौली जागीर का ३०००) वार्षिक कर, जो पहले झाँसी के राजा को दिया जाता था और अब अँगरेज सरकार लेने लगी थी, माफ कर दिया गया। इसके सिवा मोहनपुर का २००) वार्षिक इस्तमरारी लगान भी छोड़ दिया गया। महाराज को वि० सं० १९४३ में सरामद-ई-हाई राजा बुंदेलखंड और सवाई महेंद्र की पदवियाँ दी गईं और वि० सं० १९५५ में जी० सी० आई० ई० की पदवी मिली। इसके पश्चात् ये वि० सं० १९६३ में जी० सी० एस० आई० की पदवी

से विभूषित किए गए। इन्हें १९ तोपों की सलामी मिलती है। इनके भगवंतसिंह और सावंतसिंह नाम के दो पुत्र हुए। इनमें से ज्येष्ठ कुमार भगवंतसिंह का तो स्वर्गवास हो गया है और सावंतसिंहजी बिजावर की गद्दी पर बैठाए गए हैं। भगवंतसिंहजी के वीरसिंह, करनसिंह और घनश्यामसिंह नाम के तीन पुत्र हैं।

३—ओड़छे में काश्तकारी लगान का कानून बहुत अच्छा है। यह कानून पुरानी प्रथा के अनुसार ही है। इस कानून के अनुसार किसानों को लगान देने में कष्ट नहीं होता क्योंकि जब उपज हो जाती है तब उपज का भाग राज्य को दिया जाता है। अँगरेजी राज्य में लगान पहले से ही नियत कर दिया जाता है और काश्तकारों को वह देना ही पड़ता है। यदि उपज न हुई तो लगान देने में कठिनाई होती है। ओड़छे में किसानों को कृषि के लिये बीज और रुपए भी दिए जाते हैं। जब उपज होती है तब रुपए वसूल कर लिए जाते हैं। लगान इत्यादि की वसूली गाँव में मालगुजार करता है। यह गाँव का मालिक समझा जाता है। परंतु काश्तकारों के अधिकारों की रक्षा राज्य की ओर से होती है। यहाँ पर राजा सब भूमि का मालिक नहीं समझा जाता क्योंकि मालगुजारों के पास जो जमीन है उसके वास्तविक मालिक वे ही समझे जाते हैं। बुंदेलखंड के अधिकतर राज्यों में कृषि-संबंधी प्रथा ओड़छे के समान ही है।

४—दतिया के महाराज विजयबहादुर का देहांत संवत् १९१४ में हुआ। इनके कोई पुत्र न था इससे इनके दत्तक पुत्र भवानीसिंह संवत् १९१४ में राजा हुए। भवानीसिंह के विरुद्ध मृत महाराजा के दासी-पुत्र अर्जुनसिंह ने झगड़ा किया परंतु अँगरेजों की सहायता से वह झगड़ा शांत कर दिया गया।

५—समथर के राजा हिंदूपत के चतुरसिंह और अर्जुनसिंह नाम के दो पुत्र हुए। राजकुमार चतुरसिंह को, राज्य करने योग्य

अवस्था होने पर, गद्दी दी गई पर रियासत का एक चतुर्थांश राजा हिंदूपत, राजमहिषी और अर्जुनसिंह उर्फ अलीवहादुर इन तीनों के भरण-पोषण के लिये दिया गया था। पर राजमाता के मर जाने पर महाराजा हिंदूपत और उनके कुँवर अर्जुनसिंह को भरण-पोषण के लिये ३०००) रुपए मासिक मिलते हैं और ६०००) रुपया वार्षिक आमदनी का एक गाँव भी लगा हुआ है।

६—राजा चतुरसिंह के ४ कुँवर (राजाबहादुर वीरसिंह, रावराजा विक्रमाजीत, कुँवर जगतराज और कुँवर रघुवीरसिंह) और नन्हें राजा नाम का एक पौत्र भी है।

७—पन्ना आदि रियासतों में राजाओं को पूरे अधिकार नहीं हैं। पन्ना के राजा नृपतिसिंह का देहांत संवत् १९२७ में हुआ। उनके पश्चात् उनके पुत्र रुद्रप्रताप राजगद्दी पर वैठे। महाराज रुद्रप्रताप और उनके भाइयों में अनवन हो गई और उनके भाई खुमानसिंह ने उनकी शिकायतें भी कई वार पोलिटिकल एजेंट से कीं। उनके भाई लोकपालसिंह भी उनसे अप्रसन्न थे। परंतु महाराज रुद्रप्रताप के कोई पुत्र न होने से उनके पश्चात् लोकपालसिंह ही राज्य के अधिकारी हुए। महाराज लोकपालसिंह के पश्चात् उनके पुत्र माधवसिंह पन्ना के राजा हुए। महाराज माधवसिंह के समय में उनके काका खुमानसिंह की वहुत चलती थी इसलिये उन्होंने खुमानसिंह को जहर देकर मरवा डाला। इस अपराध पर विचार करने के लिये अँगरेजों ने एक कमिशन नियत किया। उस कमिशन ने महाराजा माधवसिंह को दोषी ठहराया। इस अपराध के कारण माधवसिंह राजगद्दी से उतार दिए गए और कैद कर लिए गए। उनकी जगह स्व० राजा खुमानसिंह के पुत्र यादवेंद्र सिंह पन्ना के राजा बनाए गए।

८—अजयगढ़ में बखतसिंह के पश्चात् उनके पुत्र माधवसिंह, उनके पश्चात् महीपतसिंह और महीपतसिंह के पश्चात् विजयसिंह,

राजा हुए। आजकल भूपालसिंह महाराज का राज्य है। इसी प्रकार अन्य राज्यों में सनदें पानेवाले राजाओं के वंशजों का राज्य है।

९—बुंदेलखंड की रियासतें बाहरी राज्यों से किसी प्रकार का राजनैतिक संबंध नहीं कर सकतीं। परराष्ट्र-संबंधी कार्य जो अँगरेज सरकार करे वही इन राज्यों को मानना पड़ता है। कई देशी रियासतों में मंत्रि-मंडल है। परंतु इन मंत्रि-मंडलों को सलाह देने के अतिरिक्त और कुछ अधिकार नहीं है। राजा जो चाहे कर सकता है। उसके कार्य में कोई बाधा नहीं डाल सकता और न कोई हस्तक्षेप कर सकता है। इसलिये राज्य के प्रबंध की उत्तमता राजा की योग्यता पर अवलंबित है। यदि राजा योग्य और उदार होता है तो वह अपनी प्रजा को सब प्रकार से सुखी कर सकता है। यदि कहीं राजा योग्य न हुआ तो प्रजा को कष्ट होता है। भारत-वर्ष के कई देशी राज्यों में राज-प्रबंध के लिये सभाएँ हैं जिन्हें राजाओं ने राज्य-प्रबंध के बहुत से अधिकार दिए हैं परंतु ऐसी राज-सभाएँ अभी बुंदेलखंड में नहीं हैं।

१०—देशी राज्यों की रक्षा का भार संधि के नियमों के अनुसार अँगरेज सरकार पर है। देशी राज्यों को अँगरेजों की सहायता के लिये ही कुछ सेना रखनी पड़ती है। इस सेना को "इंपीरियल सर्विस ट्रूप्स" कहते हैं। इस सेना के सिवा देशी राज्य थोड़ी सी सेना अपने आंतरिक प्रबंध के लिये रख सकते हैं। परंतु अपने बचाव के लिये या किसी बाहरी राजा से लड़ने के लिये ये लोग बिलकुल सेना नहीं रख सकते। यदि दो देशी राज्यों में कोई झगड़ा होता है तो उसका निर्णय अँगरेज सरकार करती है।

११—बुंदेलखंड के देशी राज्यों की देख-रेख अँगरेजों की ओर से बुंदेलखंड एजेंसी के सिपुर्द है। इस एजेंसी का एजेंट नौगाँव में रहता है।

परिशिष्ट १

पड़िहार (प्रतिहार) जाति

क्षत्रियों की इस शाखा को अँगरेज लेखकों तथा भंडारकर ने भी गुर्जरों की एक शाखा माना है किंतु 'मध्ययुगीन भारत' भाग २ पृष्ठ १९ में, कन्नौज के प्रतिहार राजा भोजदेव प्रथम के ग्वालियर में उपलब्ध शिलालेख के आधार पर, लिखा है कि पड़िहार (प्रतिहार) लोग सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। लक्ष्मणजी रामचंद्रजी के प्रतिहार थे इसी से इनके वंशज भी प्रतिहार कहाए।

परमार क्षत्रिय

इस शाखा को भी विंसेंट ए० स्मिथ आदि लेखकों ने गुर्जरों की दूसरी शाखा माना है पर ये लोग भी सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। इनका गोत्र वशिष्ठ और ३ प्रवर हैं। देखो पाट नारायण का शिलालेख (E. I., Vol. 45) और उदयगिरि का शिलालेख (E. I, Vol. I)।

नोट—ऐसे ही चाहुमान (चौहान) भी सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। इनका वत्स गोत्र है और ५ प्रवर हैं। देखो हर्ष का शिलालेख (E. I., Vol. II, p. 119), पृथ्वीराज-दिग्विजय (G. R. A. S, सन् १९०३) और बिजोलिया का शिलालेख (G. B. R. A. S. Vol. 55, p. 41)।

जगमनपुर

इसमें सेंगरों का राज्य था। इनकी उत्पत्ति राजा दशरथ की कन्या शांता और शृंगी ऋषि से बतलाई गई है। इनका गोत्र शांडिल्य है। इस वंश का ताम्रपत्र विक्रम संवत् ११५१ सन् ११३४

२५

का बनारस में मिला है। इसको जगमनपुर के तत्कालीन राजा वत्सराज सेंगर ने उत्कीर्ण करवाया था। यह एक दानपत्र है। इस कुल (राज्य) का संस्थापक कमलपाल था। इस वंश में कमलपाल, रणलहण, कुमार (कुमारपाल), लोहड़देव और वत्सराज इन ५ राजाओं के नाम मिलते हैं। इस वंश के राजा कर्ण ने कर्णावती नामक ग्राम यमुना किनारे बसाया था, जो पीछे से कनार कहलाने लगा। इस वंश के राजा लोग पहले कनार ही में रहते थे। यहाँ पर किले का भग्नावशेष अब तक विद्यमान है। इसके दर्शनों के लिये जगमनपुर के राजा दशहरे के दिन अब भी जाया करते हैं। (मध्ययुगीन भारत, भाग ३, पृष्ठ ४४३)

जुझौती (जेजाभुक्ति या बुंदेलखंड)

स्कंदपुराण कुमारखंड अध्याय ३९ में हिंदुस्थान के अनेक देशों के नाम लिखे हैं; उनमें से एक देश का नाम जहाहूति है। इस देश की ग्राम-संख्या ४२ हजार थी। इसके आसपास कांतिपुर (कुटवार), चेदि और मालव बतलाए गए हैं। इनकी ग्राम-संख्या क्रमानुसार ९ लाख, ९ लाख और ११८०९२ बतलाई गई है। संभवतः प्राचीन जहाहूति ही आधुनिक बुंदेलखंड है। (मध्ययुगीन भारत, भाग ३, पृष्ठ ४९)

बीहट

यौधेय लोगों के जो सिक्के उपलब्ध हुए हैं, उनमें से जो जो सिक्के बीहट में मिले हैं वे सबसे प्राचीन हैं। यह स्थान जमुना नदी के पश्चिम ६० मील है। (मध्ययुगीन भारत)

———

परिशिष्ट २

बुंदेलखंड के देशी राज्यों का वर्गक्षेत्र, जन-संख्या, आमदनी और राजा की उपाधियाँ

नोट—सन् १९३१ की जन-संख्या उपलब्ध न हो सकी।

नाम राज्य	वर्गक्षेत्र	जन-संख्या सन् १९२१ ई०	आमदनी	राजाओं की उपाधियाँ जो अँगरेजों ने दी हैं।
	वर्गमील		रुपए	
ओड़छा	२०७९	२८४९४८	१० लाख	हिज हाइनेस
दतिया	९११	१४८६५९	१८ लाख	"
समथर	१८०	३३२१६	३½ लाख	"
पन्ना	२५९६	१९७६००	१०¼ लाख	"
चरखारी	८८०	१२३४०५	६¾ लाख	"
अजयगढ़	८०२	८४७९०	३¼ लाख	"
बिजावर	९७३	१११७२३	३ लाख	"
बावनी	१२१	१९७३४	२ लाख	"
छत्रपुर	११३०	१६६५४९	५½ लाख	"
अलीपुरा	७३	१४५८०	५० हजार	राजा
बाँका पहाड़ी	५	१६१३	४ हजार	दीवान
बेरी	३२	४६२१	४० हजार	राव

नाम राज्य	वर्ग क्षेत्र	जन-संख्या सन् १६२१ ई०	आमदनी	राजाओं की उपाधियाँ जो अँगरेजों ने दी हैं।
बीहट	१६	४७८६	२७ हजार	राव
बिजना	८	१४५१	७ हजार	दीवान
धुरवाई	१५	१८८०	१४ हजार	"
गरौली	३६	४८१७	३५ हजार	"
गौरिहार	७१	६४८६	५० हजार	पंडित
जिगनी	२०	३६४२	१४ हजार	राव
लुगासी	४५	६१८२	३० हजार	दीवान
नैगवाँ	१२	२११३	१४ हजार	कुँअर
सरीला	३५	६०८१	६० हजार	राजा
टाड़ी फतेहपुर	३६	६५८०	२६ हजार	दीवान

परिशिष्ट ३

देशी राज्यों के शासक

राज्य	शासकों के नाम और जाति
ओड़छा	हिज हाइनेस सरमद-ए-राजा-ए-बुंदेलखंड महाराजा महेंद्र सवाई सर प्रतापसिंह वहादुर, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई० (बुंदेला ठाकुर)।
दतिया	हिज हाइनेस महाराजा लोकेंद्र सर गोविंदसिंह वहादुर, के० सी० एस० आई० (बुंदेला ठाकुर)।
समथर	हिज हाइनेस महाराजा सर वीरसिंहदेव वहादुर, के० सी० एस० आई० (गूजर)।
पन्ना	हिज हाइनेस महाराजा महेंद्र सर यादवेंद्रसिंह वहादुर, के० सी० आई० ई० (बुंदेला ठाकुर)।
चरखारी	हिज हाइनेस महाराजाधिराज सिपहदारुलमुल्क अरिमर्दनसिंहजू देव वहादुर (बुंदेला ठाकुर)।
अजयगढ़	हिज हाइनेस महाराजा सवाई भूपालसिंह वहादुर (बुंदेला ठाकुर)।
विजावर	हिज हाइनेस महाराजा सवाई सर सावंतसिंह वहादुर, के० सी० आई० ई० (बुंदेला ठाकुर)।
बावनी	हिज हाइनेस आजमुल्-उमरा इफ्तखारुद्दौला इमादु-ल्मुल्क साहिब-ए-तुद्बिन सरदार नवाब मुहम्मद मुश्ताकुल हसन खान बहादुर जंग (पठान)।
छत्रपुर	हिज हाइनेस महाराजा विश्वनाथसिंह वहादुर (पँवार ठाकुर)।

राज्य	शासकों के नाम और जाति
अलीपुरा	राजा हरपालसिंह (पड़िहार राजपूत)।
बाँका पहाड़ी	दीवान बलदेवसिंह (बुंदेला ठाकुर)।
बेरी	राव लोकेंद्रसिंह (पँवार ठाकुर)।
बीहट	राव वीरसिंहजू देव (बुंदेला ठाकुर)।
बिजना	दीवान हिम्मतसिंह (बुंदेला ठाकुर)।
धुरवाई	दीवान जुगलप्रसादसिंह (बुंदेला ठाकुर)।
गरौली	दीवान बहादुर चंद्रभानसिंह (बुंदेला ठाकुर)।
गौरिहार	जागीरदार प्रतिपालसिंह (जुझौतिया ब्राह्मण)।
जिगनी	राव भानुप्रतापसिंह उर्फ फतेहसिंह (बुंदेला ठाकुर)।
लुगासी	दीवान भूपालसिंह (बुंदेला ठाकुर)।
नैगवाँ	जागीरदार विश्वनाथ सिंह (दौआ-अहीर)।
सरीला	राजा महिपालसिंह (बुंदेला ठाकुर)।
टोड़ी फतेहपुर	राव बहादुर दीवान अर्जुनसिंह (बुंदेला ठाकुर)।

परिशिष्ट ४

बुंदेलों का वंश

(१) ओड़छा के राजाओं का वंश-वृक्ष

पंचमसिंह
|
वीरसिंह
|
करनपाल
|
अर्जुनपाल
|
सोहनपाल
|
सहजेंद्र
|
नानकदेव
|
पृथ्वीराज
|
रामचंद्र
|
मेदिनीमल
|
अर्जुनदेव
|

मलखान
राजा रुद्रप्रताप
भारतीचंद्र
मधुकरशाह
उदयाजीत
कीरतशाह
भूपतशाह
अमानदास
चंद्रदास
दुर्गादास
घनश्याम
प्रयागदास
भैरवदास
खंडेराव
(महेवा वृक्ष १२)
राजा रामशाह
(चंदेरी वृक्ष १२)
विरसिंगदेव
हरसिंगदेव
(भासनेह)
जुझारसिंह
पहाड़सिंह
भगवानदास
(दतिया, वृक्ष १३)
हरदौल
बेजानीसाह
((बिजना वृक्ष १४)
सुजानसिंह
इंद्रमन
जसवंतसिंह
भगवंतसिंह
उदेतसिंह
पृथ्वीसिंह
दीवान अमरेस
(खनियाधाना वृक्ष १५)
गंधर्वसिंह

सावंतसिंह
तेजसिंह
राजा विक्रमादित्य (विकरमाजीत)
सुजानसिंह
हमीरसिंह
महाराजा महेंद्र प्रतापसिंह बहादुर
भगवंतसिंह
जसवंतसिंह (विजावर की गद्दी मिली)
महाराज वीरसिंह
करनसिंह
घनश्यामसिंह
(२) पन्ना के राजाओं का वंश-वृक्ष
उदयाजीत (महाराज रुद्रप्रताप ओड़छावालों के पुत्र)
राघोदास
कासीदास
गंगादास
भारतीचंद्र
हृदयनारायण
प्रेमचंद्र
भागवतदास
कुँवरसेन

- खड़गराय
- चंपतराय
  - गोपालराय
  - महाराजा छत्रसाल
    - जगतराज (जैतपुर वृक्ष ३)
    - भारतीचंद्र (जसो वृक्ष ६)
    - पद्मराव (जिगनी वृक्ष १०)
    - हृदयशाह
      - सभासिंह
        - हिंदूपत
          - अनरुद्धसिंह
          - धौकलसिंह
            - किशोरसिंह
              - नृपतसिंह
                - लोकपालसिंह
                  - माधवसिंह
                - महाराजा रुद्रप्रताप
                - खुमानसिंह
                  - यादवेंद्रसिंह
              - हरिवंश राय
        - अमानसिंह
      - पृथ्वीसिंह (शाहगढ़ वृक्ष ४)
      - सालमसिंह
  - रतनशाह
  - अंगदराय
  - सारबाहन
- चंदजू
- सुजानराय

(३) जैतपुर के राजाओं का वंश-वृक्ष

जगतराज (महाराज छत्रसाल के पुत्र)

- वीरसिंह दीवान (विजावर वृक्ष ५)
- कीरतसिंह
  - खुमानसिंह (चरखारी वृक्ष ६)
  - गुमानसिंह (अजयगढ़ वृक्ष ७)
- पहाड़सिंह
  - गजसिंह
    - केसरीसिंह
      - पारीछत
        - खेतसिंह
  - मानसिंह (सरीला वृक्ष ८)

(४) शाहगढ़ के राजाओं का वंश-वृक्ष

पृथ्वीसिंह (पन्ना के राजा हृदयशाह के पुत्र)
|
हरीसिंह
|
मर्दनसिंह
|
अर्जुनसिंह
|
बखतबली
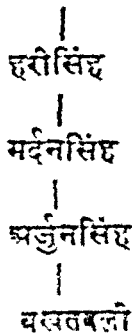
(५) बिजावर के राजाओं का वंश-वृक्ष

वीरसिंह दीवान (जैतपुर के जगतराज के पुत्र)
|
केसरीसिंह
|
रतनसिंह
|
लक्ष्मणसिंह
|
भानुप्रताप महाराज

(६) चरखारी के राजाओं का वंश-वृक्ष

खुमानसिंह (जैतपुर के जगतराज के नाती और कीरतसिंह के पुत्र)
|
राजा विक्रमाजीत (विजय बहादुर)
|
रणजीतसिंह
|
रतनसिंह
|
जयसिंह
|
महाराजा मलखानसिंह

(७) अजयगढ़ के राजाओं का वंश-वृक्ष

गुमानसिंह (जैतपुर के जगतराज के नाती और कीरतसिंह के पुत्र)
|
वखतसिंह
|
- राजा महिपतसिंह
- राजा माधोसिंह
  |
  विजयसिंह
  |
  महाराजा रंजोसिंह
  |
  भूपालसिंह
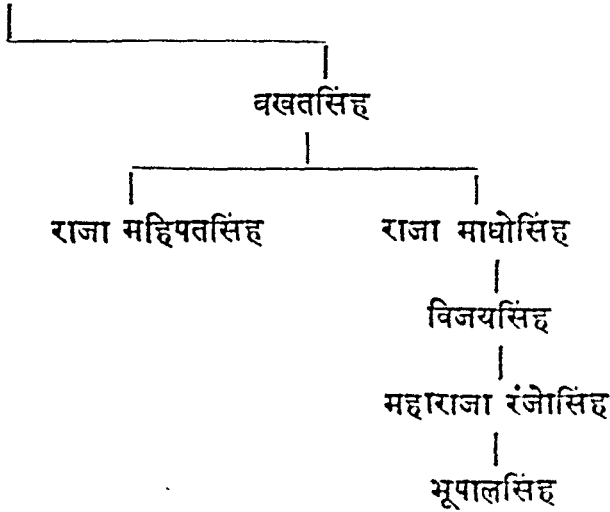
(८) सरीला के राजाओं का वंश-वृक्ष

मानसिंह (जैतपुर के पहाड़सिंह के पुत्र)
|
तेजसिंह
|
अनरुद्धसिंह
|
हिंदूपत
|
खड़कसिंह
|
पहाड़सिंह
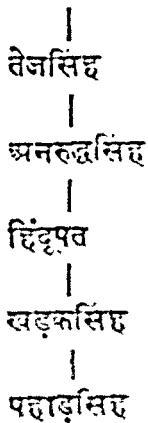
(९) जसो के राजाओं का वंश-वृक्ष

भारतीचंद्र (राजा छत्रसाल के पुत्र)
|
दुर्जनसिंह
|
चेतसिंह
|
मूरतसिंह
|
पहाड़सिंह
|
रामसिंह
|
छत्रजीत
|
भोपालसिंह
|
गजराजसिंह बहादुर

(१०) जिगनी के राजाओं का वंश-वृ

पद्मराव (महाराज छत्रसाल के पुत्र)
|
लछमनसिंह
|
हरीसिंह
|
पृथ्वीसिंह
|

|
भोपालसिंह
|
लछमनसिंह
|
भानप्रतापसिंह

(११) गरौली के राजाओं का वंश-वृक्ष

मानशाह (प्रेमचंद्र के पुत्र)
|
इंद्रमन
|
शाहमन
|
परवतसिंह
|
अनरुद्धसिंह
|
जीतसिंह
|
भगवंतसिंह
|
गोपालसिंह
|
दीवान बहादुर पारीछत
|
पंकाराव   रणधीरसिंह

(१२) चंदेरी के राजाओं का वंश-वृक्ष

राजा रामशाह (ओड़छा के भारतीचंद्र के पुत्र)
|
संग्रामशाह
|
भारतशाह
|
देवीसिंह
|
दुरगसिंह
|
दुर्जनसिंह
|
मानसिंह
|
अनरुद्धसिंह
|
राजा रामचंद्र
|
प्रजापाल — मोर प्रहलाद

मोर प्रहलाद
|
मरदनसिंह
(बानपुर के राजा)

(१३) दतिया के राजाओं का वंशवृक्ष

भगवानदास (ओरछा के विरसंगदेव के पुत्र)
|
सुभकरन
|
अर्जुनसिंह — दलपतराव
|
दलपतराव → पृथ्वीसिंह — रामचंद्र
|
रामचंद्र → रामसिंह
|
गुमानसिंह
|
इंद्रजीत
|
सत्रजीत
|
राजा पारिछत
|
महाराज विजयबहादुर
|
भवानीसिंह
|
महाराज गोविंदसिंह
|
बलभद्रसिंह

(१४) बिजना के राजाओं का वंशवृक्ष

- हरदौल (ओरछा के विरसंगदेव के पुत्र)
  - बेजानीशाह
    - परतापसिंह
      - रायसिंह
        - सावतसिंह
          - अजीतसिंह
            - सुरजनसिंह
              - खंडेराव
                - मुकुंदसिंह
                  - हीरासिंह
                  - रतनसिंह
        - मोहकमसिंह (चिरगाँव वृक्ष १६)
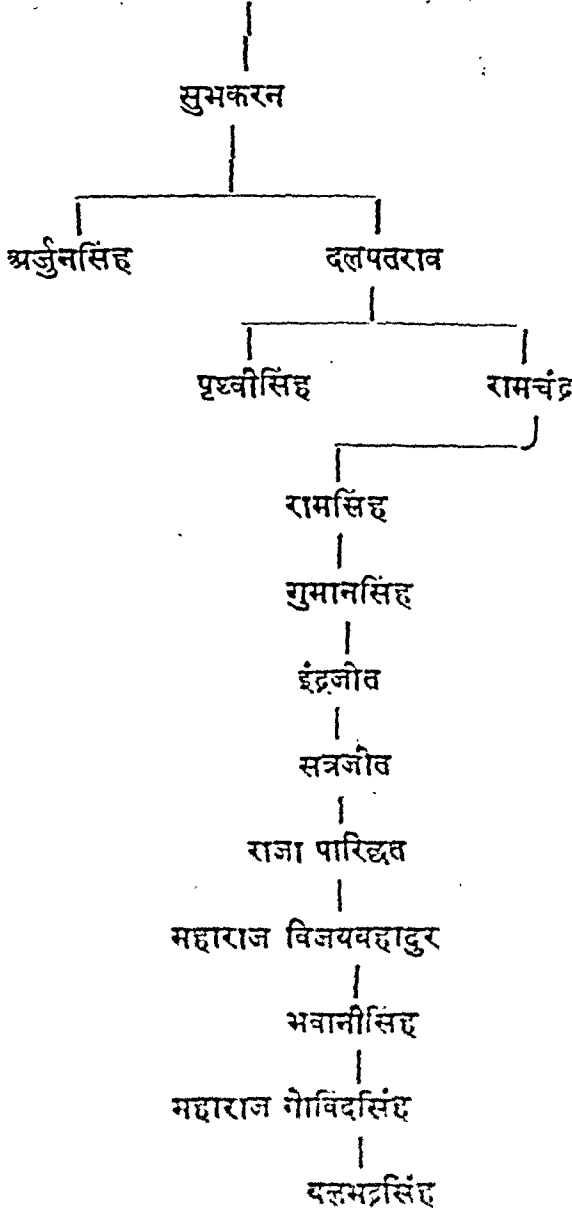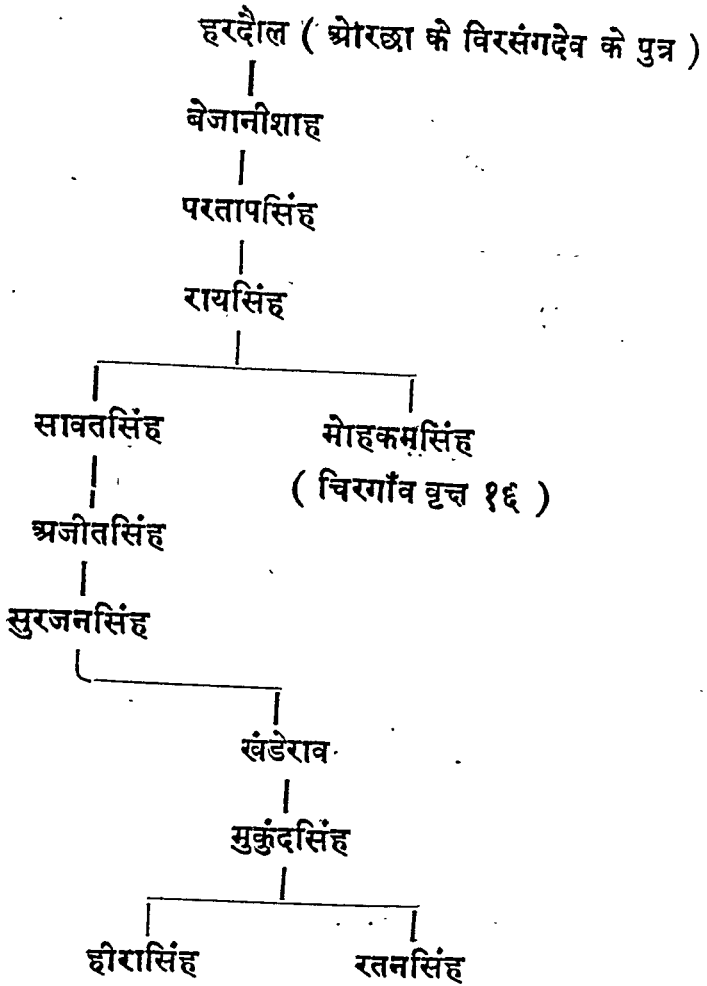
(१५) खनियाधाना के राजाओं का वंशवृक्ष

- दीवान अमरेस (ओरछा के उदेतसिंह के पुत्र)
  - महाराजदेव

|
जवाहिरसिंह
|
पृथ्वीपाल
|
गुमानसिंह
|
छत्रसिंह

(१६) चिरगाँव के राजाओं का वंशवृक्ष

मोहकमसिंह (बिजना के रायसिंह के पुत्र)
|
पारसजू
|
गनेसजू
|
बखतसिंह (सन् सत्तावन के विद्रोह में भाग लेनेवाले)

अनुक्रमणिका

अ

अकबर ६४, ६५, ६०, ६१, ६४, ६५, ६६, १०२, १०४, १०५, ११०, ११३, ११६, १२६ से १३७ तक, १७१, २५५

अकबरनामा ६२, १०२

अकिहानी २३२

अकौना २३२

अगस्त्यमुनि ३

अग्निमित्र ११

अचल जू २०३, ३१५

अचलसिंह २३१, ३०६, ३१०, ३१७, ३५५

अछर जू ३१५, ३१६

अछरौन २३२

अजनर १६५, २१७

अजयगढ़ १, ४२, ५०, ५२, ५६, ६०, ६१, ६५, ६६, ७६, ७७, ८०, ८१, २२२, २३७, २३८, २५६, २७३, २७४, २७६, २७७, २७६, २६१, २६२, २६४, २६५, २६८, ३००, ३०५, ३०७, ३०८, ३०६, ३२२, ३४१, ३०५

अजयपाल ६६, ६२

अजयसिंह ३६

अजहिता देवी २३

अजीजखाँ १०५

अजीतराय १८६, १६६

अजीतसिंह २७६, ३१४, ३१८

अजीम हुमायूँ ८५, ८६

अजीम हुमायूँ शेरवानी ८६

अजीमुल्ला २५०

अड़जार १५३

अदिति ११७

अधारी पुरवा २३२

अनंगपाल ३०

अनंत ४६

अनंतराम ३२१

अनंतसिंह २३१

अनंदी पुरोहित १२२

अनन्य कवि २२६

अनवरखाँ १६६, १६७

अंतर्वेद ५०, २२५, २४३, २५३, २५५, २८०, २८२

अन्नाजीमाणकेश्वर २४३

अनहिलवाड़ा पाटन ६२

अनिरुद्ध ११५

अनिरुद्धसिंह २३१, २३३, २३४, २३५, २६१, २६२, ३०२, ३०४, ३१८, ३२६

अनूपगिरि २५१, २५६, २५१, २७२

अनूपसिंह ६४, १०६, १६१, २३१

अपरबलसिंह ३१७, ३१८
अपराजिता २६
अपहोली ३३२
अफगान ७२
अफगानिस्तान २४७
अफजलखाँ १७४
अबूबकर ८०
अब्दुल समद २०१, २०९
अब्दुलहसन १४५
अब्दुल्लाखाँ १०७, १२७, १३१, १३६, १३७, १३८, १३९, १४२, १४३, १४५, १४६, १४७, १४९, १५८, ३२४
अब्दुल्ला सैयद २०७, २४७
अबुलफजल ६२, ७७, ८९, ९५, १०५, १३१, १३३, १३४
अभयकरन ११४
अभयभूपति १२०
अभिमन्यु ३०
अमरकुँवरि १५४, १९५
अमखार ३३२
अमरगढ़ १००
अमर दीवान १८८
अमरशाह ११९
अमरसिंह ९४, १०७, १४७, १५५, १८९, ३२०
अमानदास ९३, ९९, १२५
अमानसिंह २३४, २५१, ३१३, ३२५, ३२६, ३२९
अमृतकुँवरि १४०
अमृतराव २८६
अमोघवर्ष ३४
अमोदा १००, १०६
अयोध्या १२७
अरिवर्म्मन् ११५
अरिब्रह्म ११५, १२६
अरुनोराज ९२
अर्जुनदास ९९
अर्जुनदेव ९३, ११८, १२३
अर्जुनपाल १२०, ३१७
अर्जुनसिंह २३१, २३५, २५७, २६४, २६८, २७३ से २७६, २९०, २९३, ३१३, ३२७, ३२९, ३३०, ३३५, ३५५, ३७४, ३७५
अलखान ५६
अल्तमश ३०, ६५, ७४, ७५
अलबरूनी २९
अलवर ३०४
अलहनदेवी ३८, ६९
अलाउद्दीन ७८, ९३
अलाहाबाद (देखो इलाहाबाद)
अलीआदिलशाह १७४
अलीकुलीखाँ १२७, १४७
अलीखाँ २१३
अलीगौहर १५५
अलीबहादुर २३६, २३९, २७१ से २७९, २८२ से २८४, २९१, २९३ से २९५, ३००, ३०४ से ३०७, ३०९, ३१६, ३१८, ३१९, ३२१, ३२४, ३२६, ३२८, ३३८, ३४१, ३६५, ३७५
अलीमर्दाँ १५०

अलीवर्दीखाँ २४८, २४६, २५०

अवध १३३, २३३, २४८, २५१, २५३, २५४, २५५, २५६, २५८, २५६, २६२, २८०, २८१ २८२, ३४६

अवधूतसिंह २३३

अवधेंद्रप्रतापसिंह ३०६

अवधेंद्रसिंह २२६

अवंति १५७

अशोक १०, ११, १२, १८

असमदखाँ २०४

असाटी १२४

असुर ५

अस्करी ८८

अहमदखाँ २१०

अहमदनगर २०५

अहमदबख्श ३५५

अहमद यादगार ८६

अहमदशाह ८७

अहमदशाह अब्दाली १५५, २४८, २४६, २५०, २५३, २५४

अहमदशाह बादशाह १५५, २४६

अहरराव २४८

अहसन नदी १४

अहार ३२०

अहीरवाड़ा १६

अक्षर अनन्य (देखो अनन्य कवि)

अत्रि ऋषि २

आ

आईन अकबरी ६५

आगरा १३२, १३३, १३५ से १३६, १४२, १५८, २४०, ३४०, ३५१, ३६६, ३७०

आजमशाह २०५

आजम हुमायूँ ८५

आदिलशाह ६१

आनन्दराय १८७

आनन्दसेन ११४

आंतरी १३४

आंध्र ३७

आपा साहिब ३४४, ३४७

आबादखाँ २१२

आबा साहिब २६६, २६७, २६८, २७०, २७१, ३२१, ३३०

आभीर ४, १८

आमापानी ३५५, ३५८

आरामशाह ७४

आर्य ६७, ६८

आलमखाँ ८५

आलमगीर (दूसरा) २४६

आलीपुरा ३०६, ३४२, ३७१

आलोर ७२

आल्हा ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५६, ६५, ७०

आल्हाखंड ६७, ७०

आसफखाँ १०२, १०३, १०४, १०५

आसकरन ११४, १२७, १३०, १३१

आसफजाह ३२२

इ

इँगलैंड ५०, १४३, ३०१

इटावा ८२, ८३, १०१, १२४, २४०, २४४

इटौरा ३१७
इनकुंड ३०
इंदुरखी ११६, १६०
इंदौर २४२, २८२, ३७१
इंद्रगिरि २५०, २५१
इंद्रजीत १२८, १३०, १३२, १३५, १३६, १३७, १३८ १३६, २८६, ३१७
इंद्रदमन ११४
इंद्रद्युम्न ११४
इंद्रमणि १५१, १५३
इंद्रमणि धंधेरा १५३, १६१
इंद्रमन १८६, ३१८
इंद्रराज १२२
इबराहिम (लोधी) ८६, १२५
इबराहिमखाँ ८६
इबराहिमशाह ६७, ८१, ८२, ८३
इबराहिम सूर ६०, ६४
इमलौटा १३५
इलाहाबाद १४, १८, १६, २०, २३, ४६, १४१, १५०, २१०, २१२, २१६, २४०, २४३, २५१, २८४, ३४०, ३५०
इस्लामकुलीखाँ १४७
इस्लामाबाद ७७, १२६, १४६
इस्लामशाह ६४, ६०

ई

ईचीखाँ १३०
ईंदल ५४
ईरान १५०
ईश्वरीसिंह १२०, २६४, ३०८
ईस्टइंडिया कंपनी २८५

उ

उग्रसिंह २३१
उग्रसेन ६६, १३६, १८६
उच्छकल्प २७
उचेहरा २२, २७, ४४, ३२६
उजरहटा ३३२
उज्जैन १०, १५, १६, २७, ३५, ७५, १४३, १४६, १५७, १५८
उड़ीसा ३४, ६७, २४६
उत्तमसिंह १६५
उदयगिरि १६
उदयपुर ३५, ६२, ६६, ३३१
उदयभान १४७, १८६
उदयराज ११४
उदयशाह ११६
उदयसिंह ६६, ६६
उदयाजीत १२५, १२८, १६२, ३१८
उदयादित्य ३८, ६८
उदानशाह २००
उदेतसिंह २३१
उद्देतकुँवरि १८७
उदोतसिंह १५४, १५५, २१२, ३२०
उधरनदेव ८२
उपदगढ़ १०१
उपेंद्र २७, २८
उमरावगिरि २५८, २८०, ३८२
उमरावसिंह २३१
उमरी ३१५, ३१६
उमेशचंद्र ३४७

उम्मेदसिंह ३१४, ३१५
उरई ५८, ३६६
उलघखाँ ६२

ऊ

ऊदल ५४, ५५, ५७

ए

एटा २०
ए० मैन ३७२
एरछ १३०, १३४, १३५, १३७, १४५, १४७, १६०, १६४, २१०, २२२
एरन ११, १२, १६, २०
एरीकेना १६
एलिचपुर ७८

ऐ

ऐतपुर २७
ऐचक ७४

ओ

ओगदेव २३
ओड़छा १, ६२, ७०, ७७, ६४, ६५, ६६, १०७, १०८, ११४, १२४, १२६, १२७, १२८, १३०, १३६ से १४२, १४४ से १४६, १४८ से १५१, १५३ से १५६, १५८, १६७, १७७, १७८ से १८१, १८६, १६०, १६५, १६६, १६८, २१२ से २१४, २१६, २२२, २३२, २४३, २८२, २८७ से २८६, २६६, ३०४, ३१२, ३१७, ३२०, ३४०, ३५३, ३५५, ३७१, ३७३, ३७४

औ

औंड़ेरा १८२
औरंगजेब ६४, ६५, ६४, ६५, ६७, १०७, १०६, ११०, १४७, १५१, १५३, १५४, १५६ से १६२, १७० से १७२, १७८ से १८०, १८८, १६० से १६२, १६५ से १६७, १६६, २०१, २०४, २०५, २४६
औरंगाबाद १७६

अं

अंग ३६
अंगद १३८
अंगदजू २३१
अंगदराय १६८, १६६, १७५, १८०, २०२
अंगरेज ६६, २४६, २५०, २५६, २७०, २७६, २७६ से २६२, २६४, २६७, ३०५, ३०८, ३१२, ३१६, ३२२, ३३१ से ३३३, ३४१, ३४४, ३४६, ३५०, ३५४ से ३६१, ३६४ से ३७२, ३७४, ३७६
अंगोरी ६४
अंटेर ११६, १२०
अंताजीराव न्हांडेकर २६६

क

कनककचनए १६३
ककरेड़ी ६०
कछुरा ४४
कछुवाहा २८, ४१, ३०४
कछौवा १२८, १२६

कटनी ६८
कटिया १८७
कटेरा १६३
कटेहर ८०, ८२, ८३
कठौली १३७
कड़ा-मानिकपुर ८५, १०२, १२६, १३३
कढ़निया २६८
कदार ३३२
कदौरा-बावनी ३२२
कनकसेन ११४
कनिष्क १७
कनेशुका ४४
कंचनगिरि २८२
कंजुला ३३२
कंठाजी कदंब २०८
कंदका ३४
कंदहार १५०, १५१, १५२
कनदपाल ११५
कनौजा १००
कन्नौज २५, २६, २७, २८, ३६, ३८, ४०, ४१, ४४ से ४७, ४६ से ५१, ५४, ५६, ५७, ७६, ८८
कन्नरशाह ११६
कन्हरदास १४१
कबीर ८७
कमरुद्दीन २०७, २०८
कमलचंद्र ११८
कमला नयन ६६
कमा ३३२
कमूखर ३३२
कमोदसिंह २३१, ३१८
करन ६६
करनजू २३१
करनपाल ११४, ११५, ११६, ११६
करनवेल ३७
करनसिंह १८६, ३७४
करनसेन ११४
करनाटक १७२, १७३, २४४, २४५
करनाटा ३१
करनाल ७३
करमइलाही १६२
करवागढ़ १०१
करहरा १३०
करामतखाँ २५७
करेरा १२५, ३४४, ३५२
करैया १२३
कन्हैया ३१५
कर्णदेव ३६,३७, ४०, ४६, ६८, ६३
कर्णपुर ३७
कर्णावती ३७
कर्तृराज ११४
कर्नल पोल २८१
कर्नल वेलेसली २६३
कर्री ३१२
कलकत्ता २४६, २६२, २६३, ३४६
कलकिया ३३२
कलचर ३२
कलचुरी ३२, ३७, ३८, ३६, ४०, ४६, ६०, ६२, ६३, २७६
कलिंग ३६
कलिंदरसिंह २७६

कल्यान ६२
कल्यानदेवी ६१, १२८
कल्यानशाह ११६
कश्यप ११७
काकवर्ण ४०
काठियावाड़ १५, १६
कादंबरी २६
कादरखाँ ८२
कानपुर २२४, ३३२, ३४८, ३५०, ३५१, ३६०, ३६५, ३६८
कानाखेरा ५८
कांतिपुर (कुटवार) १३, १४
कान्वायन १२, १५, १७
कान्हपुर ११६
काबुल १७, २०५
कामताप्रसाद ३०२
कामता रजौला ३०२, ३०३
कामवख्श २०५
कामर्रा ८८
कायमखाँ २१७
कायमजू चौबे ३३५, ३६२, ३६३, ३६४, ३७७
कारघा ३२२
कारीतलाई २३, ३७
कारोबाग १०१
कार्त्तवीर्य ३२
कालंजराद्रि ५१
कालिया ३४
कालिंजर ३, २६, ३२, ३७, ३९, ४२, ४५, ४६, ५१, ५२, ५६, ५९ से ६६, ६९, ७०, ७२ से ७५, ७६, ७७, ८०, ८१, ८६, ८८, ८९, ९०, ९१, ९३, ९४, ९५, १०२, ११८, १२६, १४६, १९२, १९३, २०२, २२२, २३२, २३५, २७७ से २७९, २८३, २९९, ३०६, ३२१, ३४०
कालिंजरपुर ३२
काल्पी ५६, ५८, ५९, ६७, ६८, ७४, ८१, ८२, ८३, ८५, ८६, ८७, ९५, ११८, १२२, १३८, १४५, १९५, १९६, २०१, २१०, २२०, २२२, २३२, २४१, २४३, २४५, २५२, २५५, २५६, २६२ से २६८, २८४ से २८६, ३२३, ३६०, ३६२, ३६४ से ३६८
काशी १०, ४२, ४६, ११४, ११६, ११८, १७०, १७१, २७०, ३४३
काशीदास १२८
काशीराज ११४, ११८
काश्मीर ४५
किंडेल साहब ३६२
किरकी ३३३
किशोरसिंह २३६, २९०, २९१, २९६, ३०९ से ३११, ३१२, ३२१, ३५६
किशोरीलाल १८१
किष्किंधा ३
किसुनजू २७०
किसुनसिंह १४०, २३१
कीर ३६
कीरत २११
कीरतराज २३७

कीरतशाह १२५
कीरतसागर ४७
कीरतसिंह ४४, ६१, ६२, ६४, ७७, ८३, ८६, १२३, २३८, २६३
कीर्तिराज २६
कीर्तिवर्म्मा ३७, ४३, ४७ से ५०, ५२, ७०, ६८, २२३
कुचपहरिया १२८
कुंजकुँवरि १४०
कुंजनघाट २८६
कुंजलशाह २६८
कुजुल कड़फाइसस १७
कुटरो १६८
कुठवार १४, २८
कुंडार १२५
कुंडारगढ़
कुंतलपुरी २८
कुंतिभोज ४
कुंभकर्न १७१
कुतबुद्दीन ऐबक ३०, ५६, ६३, ६४, ६७, ७३, ७४, ११५
कुतुब ६०
कुंत्य १२
कुब्जा २१४
कुमारगुप्त १६, २०
कुमारगुप्त दूसरा २०
कुमारदेव २३
कुमारदेवी २३
कुमारपाल ६२
कुम्हो ३६, ३७, ३८, १००
कुरवई १०१, २०१
कुरार १२०
कुरु १२, ४५
कुलनंदन १२६
कुलपहार २३८
कुँवरपुर २७३
कुँवर प्रतापसिंह २६१
कुँवरसिंह १२८, २३१
कुँवरसेन १८२, २००, २०२
कुश २८, ११४, ११८
कुषाणवंश १६, १७
कुसयारी ३२२
कुहराम ७३
कूरमकल्ल १६६, १७०
केन (नदी) १, ४१, ४६, ६५, ६७, २६३, २८१
केनिंग (लार्ड) ३४६, ३७२
केप्टन वेली २८१
केयूरवर्ष ३४
केरल ३३, ३६
केलारस १३०
केशवदास १३६, १३८, १६७, २२४
केशव महादेव चांदोरकर २६६
केशवराय १३३, १८५, १८६, २३१
केशवराव ३३७, ३४२
केशवशंकर २४३
केसरीसिंह १०६, १८३, २३१, २३६, २६४, २६५
केहरीसिंह ३३६
कैकोबाद ७७
कैथा २८१

कैमूर पर्वत १६
कैरुवा २७०
कोकल्लदेव ३२, ३३, ४०, ४१, ६३
कोकल्लदेव दूसरा ३६, ४०, ४७
कोकशाह १६६, १७०
कोटरा २०१, २०३, २०४, ३०७, ३१७, ३१६
कोटला ८२
कोटा १५०
कोटा की सराय ३७०
कोठी ३२८
कोठी-सुहावल २०२
कोड़ा जहानाबाद २४३
कोदसा ३३२
कोरहट ५७
कोशल राज्य ३४, ४५
कोहनूर २४८
कौंच १२०,१४०,१४४,१५२,१५६, १८६, १६०, २०१, २१०, २२२, २६३, २८५, ३३६
कौटिल्य १०
कौंडिन्य वाचस्पति ३४
कृपाराम १३३, १४१, १६२
कृष्ण २७, ३४, ३५, २२२
कृष्ण-चरित्र ३३६
कृष्णदेव ६६
कृष्णराज ३२, ३४
कृष्णराजा ३३
कृष्णराव ३३४, ३३८, ३३६
कृष्णाकुमारी ३३१
कृष्णाजी अनंत तांबे २४१, २४२
कृष्णाजी रामलघाटे २४४
क्लाइव (लार्ड) २६०
खेमजी १६३, २२२,

ख

खजुरनाग १४
खजुराहा ३६, ४२, ४५, ४७, ४६, ५०, ५२, ५३, ६२, ६६, ६७
खजुहा ३३२
खटोला २६०
खड्गराय १२६, १३५
खड्गसिंह १२४
खड्परिखा १६, २३
खनियाधाना ३२०, ३४०
खमरिया ३३२
खम्हरौली १३६
खरगापुर १४०
खरदई ३३२
खलकसिंह ३२६
खस ४५
खंगार ११५
खंडेराव २०८
खंदेह ३३२
खरा ३३२
खा (खर्जुर नाग) १४
खांडेराव १२५, १३६
खान आज़म ११५
खानखाना १३१, २०८
खानजू ३३१
खानदेश १७, २०१, ३४४

खानेजहाँ १४२, १४५, १४६, १४६, २३१
खानेदौरान ६४, १०७, १०८, १४७, २४०
खिजरखाँ ७८, ८२
खिमलासा १०१, २६४, ३४२
खिलजी ७८
खुई ३३२
खुद्दी २८४
खुमानसिंह ११६, २३५, २३८, २५१, २५६, २५७, २६१ २७३, २८८, २६३, ३०७, ३१६, ३१७, ३२०, ३७५
खुरई १३, ११२, २६७, ३४२, ३५५, ३५६
खुरजा २४३
खुशरू ७८
खुशरो १३८
खूबसिंह ११५, १२०, २३१
खेतसिंह २३१, २३४, २३६, २६५, ३१३, ३२५
खेमराज चौबे २३५
खैरवान १४०
खैरा ३३२
खैरार ३३२
खोह २२, २३
ख्वाजा अब्दुलमजीद १०२
ख्वाजाजहाँ ८१

ग

गगनसेन ११४
गजनी ४५, ७३
गजरा ३३८
गजसिंह २३८, २५६, २७७, २६४, ३२५
गजाधर ११६
गठेवरा २३५, २६४, २७३
गढ़कुंडार ११४, १२०, १२१, १२२, १२४, १२५, १२६, १३५, १३६
गढ़पहरा १०१, २००, २०१
गढ़वा १६, २०
गढ़ा (मंडला) ५६, ६१, ६२, ७०, ६८, १००, १०१, १०३, १०४, १०५, १०८, १११, ११२, २६१, २६५, २६५
गढ़ाकोटा ८६, १८६, १६०, २२२, २३२, २३३, २४२, २७०, २७१, ३२६, ३३०, ३३५, ३५५, ३५८
गणपत ६१
गणपतदेव ८२
गणपत नाग १४, १८
गणेशजू ३४२
गनीबहादुर २७८, २७६
गया ११४
गयाकर्ण ३८, ४०, ७०
गयाप्रसाद ३००, ३०१, ३०२
गयासशाह ८४
गयासुद्दीन २३, ७५, ७७, ७६, ८०
गरीबदास ३०६
गरुड़सेन ११४
गरौली १४०, ३१८, ३४२
गहरवार ४२, ११४, ११६
गहरवारपुरा ११७

गहोरा ११६
गंगाऋषि ११४
गंगागिरि २६१, २६५, २६७
गंगादास १२५, १२८
गंगाधर ३००, ३३८
गंगाधर गोविंद २४, ३२, ५२, २५५, २६३, २६८,
गंगाधर यशवंत २४३
गंगाधरराव ३३६, ३४५, ३४६
गंगा नदी २
गंगाबाई ३३६
गंगाराम १६६
गंडदेव ४०, ४३, ४६, ४७, ५१, ६३, ६६, ७२
गंधर्वसिंह १५५, २३१, ३१६
गागरौन ८७, ९१
गाजीउद्दीन २४६, २५०, २५३, ३२२, ३२३
गाजी मलिक तुगलक ७८
गाजीशाह १८६
गाजीसिंह २२१
गादखादा १०१
गाइडे २६३, २६४, २६५
गार्डन ३५१
गारागढ़ ५८
गाल (मेजर) ३६५
गांगेयदेव ३६, ४०, ४६
गिरधरसिंह ३०६
गुजरात १०, ३८, ४८, ७८, ८४, ८८, ९३, १००, ११५, १२३, २०८, २११
गुढ़ा ६०, १४०, २१७
गुना २२२, २६२
गुनौर १०१
गुप्त १८, ७१
गुमानकुँवरि १४०
गुमानसिंह १८६, २३८, २४९, २५१, २५६, २५७, २६१, २६४, २७०, २७३, २९३, २९५, ३०५, ३०७, ३२०, ३२१
गुरदासपुर १५४
गुरसराय २३२, २५७, २५८, ३३५, ३३६, ३३७
गुरबख्श २५१
गुर्जर ३६, ४५, ५१, ६६
गुलाब ५७
गुलामकादिर २७२
गुलाम गौसखाँ ३६१
गुलामचंद्र २३, ७५
गुहादित्य २७
गुहिल ३८, ६६, ७०
गृहवर्मा २५, २६
गोदावरी ३
गोंड ६२, ७०, ९०, ११२
गोंडवाना ६५, १०२, ११०
गोपचंद्र ११८
गोप राजा २१
गोपाल ६०
गोपालपुर ९३
गोपालपुरा ३६०, ३६८
गोपालराम १९८
गोपालराव बर्वे २९३

गोपाललाल ३००, ३०२, ३०३
गोपालशाह ६६
गोपालसिंह ३०७, ३०६, ३१८, ३१६
गोपीनाथ ६६
गोर ७३
गोरखदास ६६
गोरेलाल पुरोहित २२५
गोलकुंडा १४७, १७४
गोलकी मठ ३४
गोविंद ११८
गोविंद गंगाधर २६८, २८१, २८४, २८५
गोविंदचंद ३८
गोविंददास १३१, २६४, ३००,३१८
गोविंददेव ६०, ६१
गोविंद पंत २४२, २४३, २४४, २४५, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, ३३७
गोविंदप्रसाद ३०२
गोविंद बल्लाल खेर २४१, २४२
गोविंदराय १८१
गोविंदराव ३१६, ३३६, ३३७
गोविंदसिंह ६६, २३१
गोशलादेवी ३६
गोसरई २५०, २५१, २५५, २५६
गौड़ ४५, ६७, ६८, ११६
गौतमीपुत्र १५
गौर ११७
गौर झामर १०१, ११२, १२८,३३०, ३३५
गौरिहार ३०५, ३४२
ग्वालियर (गोपगिरि) १४, १८, २२, २८, २६, ३०, ३३, ४१, ५५, ६०, ७३, ७५, ७६, ८०, ८१, ८२, ८३, ८५, ८६, ८७, ६०, १२२, १२३, १२७, १२८, १३०, १३२, १३३, १४८, १४६, १७६, १८०, १८६, १८७, १६४, १६६, २१०, २८८, ३०६, ३१५, ३३६, ३६८, ३६६, ३७०, ३७१, ३७२
ग्रंट साहब ३४६,

घ

घटोत्कच १८
घनश्यामदास १२५
घनश्यामसिंह ३७४
घुनसौर १०१

च

चच ७२
चतुर्सिंह २६०, ३३१, ३७४, ३७५
चतुर्भुज १४६, २३१,३०२
चमरकथा ३३२
चरखारी १, ४२, २३२, २३७ से २३६, २५६, २५७, २७३, २७४, २७५, २६३ से २६५, २६८, ३०५, ३०७, ३२८, ३४१, ३६०, ३६२ .
चंगेजखाँ ७५, ८१
चंडीदास ८७
चंद १२६
चंदेरी ४, ७६, ७७, ७६, ८०, ८४ से ८७, ६४, १०७, १२८, १२६, १४४, १४५, १४७, १४८, १५४,

१८९, १९०, २१३, ३५५, ३५६
चंदेल ३७, ३९, ४१, ६०, ७०, ७१, ८९, ११५, १२२
चंद बरदाई ६२, ७३, ९७
चंद्र ७२
चंद्रगुप्त (दूसरा) १९
चंद्रगुप्त मौर्य १०, ११
चंद्रगुप्त विक्रमादित्य १८, १९
चंद्रदास १२५
चंद्रभान १४०, १४५, १४७
चंद्रभानसिंह ३१९
चंद्रमा ४२
चंद्रवर्म्मा ४२, ५१, ६७
चंद्रशाह १०५, १०६, ११०
चंद्रात्रेय ४२
चंद्रापुर ३४२
चंपतराय १२९, १३३, १३४, १४१ से १४४, १४८ से १५१, १५३, १५५ से १६९, १७५, १७८, १८०, १८३, १८४, २०३, २१३, २२०
चंबल नदी १, ४, ४५, १४९, १५७, १५८, २२२, २३२
चांदपुर १३०
चांदा ९७, १०८, १४६
चांदे गुसाँ ३३२
चामुंडराय ७३
चालुक्य ३२, ३४, ३५, ९२
चांवड़ क्षत्रिय ९२
चाहड़देव ७६
चिंतामणि २२४
चित्तौड़ ६६, ७८, ८५, ८६, ८९, ९१, ९५, ९६
चित्रकूट २, ३, १९८, २००, २२२, २२६
चित्रपाल ११८
चिदि ३१
चिनकिलीजखाँ २०७
चिरगाँव २८४, ३१२, ३१४, ३४२
चिल्ली ३१५, ३१६
चुनार ९०, १०५
चेदि ४०
चेदि देश ४, ६, ७, १२, १७, २३, ३१, ३२, ३५, ३८, ३९, ४१, ४५, ४९, ६३, ७१, ११६
चेदिराज ३४, ३७
चेष्टन १६
चैतन्य ८७
चैतसिंह ३०७
चोल ३६
चौकीगढ़ १०१
चौरागढ़ १०१
चौरागढ़ १०२, १०३, १०५, १०७, १०८, १०९, ११०, १२२, १४६, १५१, २६६, २६७, २६८
चौहान १२०

छ

छतारेन्द ३१८
छत्रधारीसिंह ३११
छत्रपति ३१५
छत्रपतिसिंह ३२५
छत्रसालसिंह ३०१
छतरपुर १, ४८, ६०, ६७, ११२,

२३०, २३३ से २३७, २३६, २७०, २७६, २६१, २६४ से २६७, ३४१
छत्रसाल ६४, ६५, ६५, ११०, ११८, १५२, १५३, १५४, १५८, १६१, १६३ से १७०, १८८, १६० से २०७, २१० से २१४, २१५ से २२६, २२८, २३० से २३४, २३७, २४०, २४२, २४५, २४६, २५१, २५५, २७१, २६४, २६५, ३००, ३०१, ३०३, ३०४, ३०७, ३०६, ३१६, ३२४, ३२५, ३२७, ३२६, ३३७
छत्रसाल दशक २२४
छत्रप्रकाश १७६, २२५
छत्रशाह १०६
छिंदवाड़ा १०१, १६६
छीनपरसौदा ११८
छौन २८२

ज

जगजीतसिंह १२४
जगतराज २२०, २२१, २३२, २३७, २३८, २३६, २४०, २४१, २४२, २४३, २६३, २६५, २६८, २६६, ३०२, ३०७, ३१०, ३११, ३१४, ३१५, ३२५, ३२६, ३७५
जगतराजसिंह ३०६
जगतसिंह ६६, १५०, १८६, २०३, ३२२
जगनायक ५४, ५६, ५७, ६७, ६८
जगन्नाथ ६६, १३१, १३४, ३०१
जगमन १३०
जगमनपुर ११५, ११८
जगरनाथ ३०१
जगशाह १२०
जटवारा १५३
जटाशंकर ६६
जतारा ७७, १२६, १२७, १४६, ३१४
जनकपुर ५३
जफरखाँ ८०
जबलपुर १, ३, ११, १५, ३१, ३६ से ३६, ७०, १००, १०१, १०५, १११, ११२, २६५, २६६, ३३४, ३५४, ३५६, ३५७, ३६७
जमानखाँ १३५
जमालखाँ १३५
जयगोविंद ६८
जयचंद्र ५४, ५७
जयदेव ४७, १४६
जयनाथ २३
जयपाल ४५, ४७
जयपुर २६, २०१, ३३१
जयवर्म्मदेव ४३, ५०
जयसिंह ३८, ७२, १६६, १८६, २०१, २०८, २१३, २१६, ३१३, ३१४
जयसिंहदेव ३८, ३६, ४०
जयस्वामी २३
जयस्वामिनी २३
जयाजीराव ३६८, ३६६, ३७१
जरारा ३३२
जरासंध ६, ७
जरौली ३३२
जलालखाँ ८६, ६४, १६४

जलाल ख्वाजा २३
जलालपुर ५६, १६४, २०४
जलालुद्दीन ७८
जवाहरसिंह ३०६, ३१०, ३१३, ३२०, ३२६, ३४२, ३५३
जसकुर ३३२
जसवंतसिंह ११६, १५३, १५४, १६६, १७७, १८६, ३२७
जसोपुर १६८
जस्सो ३०७, ३०८, ३०६, ३१६
जहाँगीर ६६, १०६, १२८, १३७, १३८, १३६
जहाँगीरपुर १४०
जहाँगीरमहल १४०
जहाँदरशाह १५४, २४६
जंगबहादुर २८७
जाट २४५, २४८
जान बेपटिस्ट ३२६
जान बेली २८५
जानोजी २४८
जामकुलीखाँ १२७
जामनगर १६३, २२२
जामशाह ११६, १८६, २१७
जालमसिंह २००, ३२४
जालौन १, २१०, २२२, २३२, २४१ २५५, २६२, २८१, २८४, २८६, ३१५, ३३०, ३३२, ३३३, ३३४, ३७२
जाहिरदेव ७६
जिगनी १६१, ३२७, ३४२
जिंदा महारानी ३४३
जुकोही ८०
जुगलप्रसाद ३१६
जुझारखंड १
जुझारसिंह ६४, ६६, १०७, १०८, १४०, १४४, १४७, १४८, १५१, १६८
जुझौती १, २४, २७, ४२, ६६, ११४
जुड़ावनसिंह ३३१
जुलचीखाँ ७६
जुलफिकारअली २७८, २७६, २८२, २८३
जूदेव २२२
जेजा ४२
जेजाभुक्ति (जेजाकभुक्ति) १, ४२, ५०, ११४
जैतकरन ११२
जैतपुर ४२, १२२, १४०, १४५, १४७, १८१, २१५ से २१८, २३२, २३५, २३७ से २४२, २५१, २५६, २७३, २७७, २८४, २६३, २६४, २६५, ३०७, ३१५, ३३१, ३३५
जैतसिंह ६६, १२४, २३७
जोगनीपुर ७६
जोधपुर ३३१
जोधबाई १३६
जौनखाँ ७१
जौनपुर ६७, ६८, ८१, ८३, ८५, ८६, ९१, १२३
[illegible] ३२६

झ

झरखा ३३२

झलवार ८२

झाँसी १४, १८, ७०, ११५, १२८, १४४, १५५, २२२, २३२, २४५, २५०, २५१, २५८, २६५, २८४, २८५, २८८, ३१२, ३१५, ३२०, ३३४, ३३५, ३३८ से ३४२, ३४४ से ३४७, ३५१ से ३५५, ३५८, ३६० से ३६२, ३६४, ३६५, ३६७, ३६८, ३७१, ३७२, ३७३

झंझनगढ़ १०१

ट

टाड राजस्थान ६२

टारौली ३१२, ३७३

टीकमगढ़ १२३, २८७, २८८, ३४१, ३५३

टीपागढ़ १००

टेहरी २६८, ३१२

टोरी फतेपुर ३१२, ३१३, ३१४, ३४१

ट्रावनकोर २२

ठ

ठाकुरसिंह ३०७

ठिहनपाल ११८

ड

डच ६६

डनलाप ३५१

डभोरा १४

डलहौसी (लार्ड) ३३६, ३४२, ३४४

डाहलमंडल ३१, ६६

डिक ३६३

डिंभाराय ५६

डोंगरताल १०१

डौंड़ियाखेरा ११८

त

तमसा ३०, ६२

तराँव ३०१, ३०२, ३०३

तरैन ७३

तरौंहाँ २८४, २८६

तर्डीवेग १३५

तलेहटा १२४

तहौवरखाँ ६५, ११२

तंजोर २०८

तक्षशिला १०

तातारखाँ ११८

तात्याटोपे ३६०, ३६२, ३६३, ३६८, ३६८, ३७१

ताप्ती (नदी) ६७

ताराचंद्र ६६

तालबहेट ३५६

तिकवाँपुर २२४

तिलोकचंद ८३

तिलोकसिंह ३०६, ३१०

तिलंगाना १८

तिवरो १८३

त्रिचनापल्ली २०८

त्रिपुर ३१, ३५

त्रिपुरी ३१, ३२, ३७

त्रिभुवनपाल ३०, ६३

त्रिभुवनमल्ल ६३

त्रिभुवनराय ६६

त्रिलोकपाल २६
त्रिलोचनपाल ४७
तिलोहा २६८
तीरथप्रसाद ३०२
तुगलक २३, ६५, ८०, ८१
तुमान ३१
तुरुष्क १७
तुर्क १७
तुलसीदास १४०
तेजकरन २८, २६
तेजगढ़ २६५, २६६, २६८
तेजसिंह १२०, २३१, २८७, २८८, ३२५, ३२६
तेंदवारी २५७
तेवर ३१, ३४
तैमूर ६७, ८१, ८२, ८४
त्रैलोक्यवर्म्मदेव ४३, ६०, ६६, ७६
तोमर ११८, १२०, १२१
तोमरू (तोमरगढ़) १३०
तोरमान २०, २१, २२
तोंस १, २२२

थ

थानसिंह १६१
थानेश्वर २५, २६, ७३
थुरहट २०४

द

दक्खन ६५
दंडकारण्य २, ३
दतिया १, १२४, १२५, १४०, १४४, १४५, १५२, १५४, १६०, १६०, २१२, २१३, २१४, २२६, २५७, २८२, २८६, २६८, ३४०, ३४१, ३५३, ३७१, ३७३, ३७४
ददरी ३१५, ३१६
दमघोष ३१
दमयंती ६
दमोह १, ३, ४, १६, २३, २७, ३६, ४६, ६८, ६६, ७०, ७६, ८०, ८४, ६५, ६६, १००, १०१, १०५, ११०, ११२, ११३, १२६, १६४, १६८, २२२, २६५, २६६, ३३५, ३४०, ३५६, ३६७, ३७३
दयापाल १२०, ३१७
दलकेश्वर ७६
दरियाखाँ १३७
दरियावसिंह २३१, ३००, ३०२, ३०३
दलपतराय २२६, २३१
दलपतिशाह ६१, १०१, १०२, १०५
दलसिंह २३१, ३२१
दलीपसिंह ३२६
दलीपुर २३७
दलेलखाँ २०३, २१०, २११, २३७
दलेल दौआ १५३
दशरथ ११, ११७
दशरथ (दस्सराज) ५३, ५७
दशार्ण (देश) १, ४, ५, ६, ७
दशार्ण (नदी) ४
दस्यु २
दक्षिण कोशल ४
दाऊदखाँ २०७, २०८
दादाजी कोनदेव १७२

दादीराय ६६
दानकुँवरि १८३
दानियाल १३३, १३७
दामोदर २२, १३३
दामोदर गंगाधर ३३६
दामोदरराव ३४४ से ३४७, ३५१, ३६३
दाराशिकोह १५२, १५६, १५७, १५८, १५६
दाहिर ७२
दिगोड़ा २८८
दिनकरराव ३३०
दिनकरराव अन्ना २५८, २६८, ३२६, ३३०, ३३६, ३३७
दिनदूला २३१
दिलावरखाँ ८०, ८३
दिलीपखाँ २०१
दिलीपसिंह ३४२, ३४३
दिल्ली ५५, ५८, ६०, ६४, ६७, ६८, ६६, ७३, ७६, ७७, ७८, ७६, ८०, ८१, ८२. ८३, ८६, ८७, ८८, ६०, ६४, ६५, १०२, १०६, १०७, ११०, ११७, १२४, १२६, १३६, १४२, १४४, १४७, १५८, १५६, १६०, १६६, १७०, १७३, १८८, १६२, १६६, २०१, २०४, २०५, २०६, २०७, २०६, २१०, २११, २१२, २१३, २२५, २४०, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४६, २५०, २५२, २५३, २५४, २६२, ३२३, ३५०, ३५४
दिवोदास ११४
दीवान दीपचंद १८६
दीवान सेनापति २२७
दुआब ८५
दुदाही ६७
दुनियापतिसिंह ३२८
दुर्गभान १४६
दुर्गसिंह ३१५
दुर्गादास १२५, १३१, १३४
दुर्गापुर १२५
दुर्गावती ६१, ६२, ८५, ८६, ६५, १०१, १०२, १०३, १०४, १०६, ११२, १२६
दुर्गासप्तशती २२६
दुर्गासिंह २७३
दुर्जनमल ६६
दुर्जनशाह १११, २६१
दुर्जनसाल १४७
दुर्जनसिंह १६५, २१३, २३१, ३०४, ३०७, ३१६
दुलचीपुर ८०
दूनी १३५
देलनशाह ३४२
देवकरन २०२
देवकुँवरि १७५
देवगढ़ १३, ४७, ४८, ४६, ७०, ६७, ६८, १६८, १६६, १७०, १७५, १७८, २०१
देवगाँव १२०
देवगिरि ७६, ६३
देवगुप्त २५

देवचंद्र २२२
देवदीवान १८९
देवनाग १४
देवपाल २६, ७२
देवपुर १२२
देवभूति १२
देवराय १२६, २६८
देवराय हिंगणे २०६
देवरी १०१, २२०, २२५, २४२
देवल ७५
देवलदेवी ५४, ५८
देवलवारा १६६, १७५
देवराहा १४०
देवद्वार १००
देववर्म्मा ४३, ४७
देवागढ़ २१३
देवाध्य २२
देवापायक १३२
देवीसिंह ६४, १०७, १०८, १२४, १४७, १४८, २३१, २८८, २८६
देवेंद्रप्रतापसिंह २०६
दोराहा २०८
दोसा २८२
दैालतखाँ ८२, ८६
दैालतराव २८३
दैालतसिंह २११
दैालताबाद ७१, १४९, १५१
द्वारका ७
द्रुपद ५
द्रौपदी ६, २१४

ध

धरमपुरी १४६
धर्मकुँवरि १२२
धर्मपाल १३, ३०, २८७
धवल ६२
धवलगढ़ ६२
धवलसाय ८२
धसान १, ४, ४१, ४४, ५६, ६६, ७०, ८०, ६५, ११५, १६५
धंगदेव ४२, ४३, ४५, ४६, ४७, ४६, ५०
धंधेरखंड १८२
धान्यविष्णु २०, २१, ६६
धांधूराय ५८
धांधूसिंह २१८
धामौनी १०१, १०७, १०८, १४०, १४४, १४५, १४६, १४७, १४६, १५१, १८४, १८६, १६०, १६७, १६८, २०३, २६८, ३२५, ३४२, ३५८
धार २७, २८, ३८, ३६, १४६
धारूखाड़ १८६
धीर १२१
धीरजमल २३१
धीरजसिंह २२४, २२५
धुरमांगद १८१, २१४
धुरगढ़ २१२, २११, २४१
धूनघाट १८६
धौकलसिंह २१४, २१५, २१६
धौलपुर ८६, ११२, ११३, ११७

न

नकरई ३३२
नत्थेखाँ २८८, ३५२
ननयौरा ४७
नंद (घराना) ६
नंदन (छीपी) १६३
नंदराम २०५
नंदादेवी ३२, ६३
नन्नुक ४२, ४४, ४५, ६२
नन्हीं दुलैया ३०१
नन्हेराजा ३७५
नन्हेशाह २८६
नरयावली ३४२, ३४५, ३५६
नरवर १४, २६, ४१, ५७, ७६, १३०, १३२, १३३, १४५, १५८, १६१, २५३, ३५२, ३५३
नरवर्म्मा ३८
नरसिंह ६६
नरसिंहगुप्त २०
नरसिंहदेव ३८, ३६, ४०, ६३, ६६
नरसिंहपुर ३६, १०१, ३४२
नरसिंहराय ८०, ८१, ८२
नरहरदास १४०, १४४, १४५
नरहरशाह११२,२६१,२६५,२६६,२६७
नरिंद्रशाह १०६, ११०, ११३
नरिंद्रसिंह ३१७
नरेंद्रगुप्त २५, २६
नर्मदा (नदी) १, २, १०, २०, २४, ३१, ३४, ६०, ६७, १४६, १४६, २६५, २७३
नर्मदेवी ४४
नलपुरा ६०, ६१
नवलकिशोर २३६, ३००, ३०१, ३०२, ३०३
नवलसिंह १२३, २३१
नसरतजंग ३३८
नसीमुद्दौला १४६, १५०
नसीरुद्दीन तायसी ६०
नसीरुद्दीन महमूद २३, ७५, ७६, ७७, ८०
नसीरुद्दौला ३२३
नहपाण १५
नाग (राजघराना) १३, १४, १५
नागपुर ३५, १०१, १११, २२४, २६७, २८०, ३२०, ३३३, ३४७, ३४८
नागानंद २६
नागौद ११, ३२६, ३५१
नाजिमुद्दौला ३२३
नाथूराम ३०२
नादिरशाह २४७, २४८
नानकचंद ११८
नाना ६१, ६६
नाना गोविंदराव (मंत्री) ३२३, ३३१, ३३२, ३३५, ३३६, ३३८
नाना फड़नवीस २५८, २६०, २६४, २६६, २७१, २७२
नाना साहब धोंडू पंत ३४८, ३५०
नाना साहब पेशवा २४२, २४४, २४५, २५५, २६०, २६८, २६६,

२८१, २८४, २८५, २८६, ३३०, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३६०
नाराट (घाटी) ३४२, ३५८, ३५६
नारायण ११७
नारायणजू २७०
नारायणदास १८१, १६६, ३१७
नारायणराव २५८, २६०, २६४, २८६
नारोभास्कर ३३६
नारोशंकर २४३, २५१, २५४, ३३७
नाशिक ३१५
नासिरशाह ८४
नाहरमज ३३०, ३३५
नाहरसिंह ३१४
निजामखाँ ८५
निजामशाह १११, ११२, २६१
निजामुद्दीन ६५, ७२
निजामुल्मुल्क २४६, २४७
निमुर्वांगढ़ १०१
निरंदगिरि २८२
निर्शापुर ७४
निहालसिंह २००
नीमरान १२०
नीमी १४६
नीलकंठ ५२
नूरजहाँ १६
नूरपुर ३३२
नेयर २४२
नेवाज (कवि) २२५
नेयारी १२४
नैगवाँ (रिबई) ३३२, ३४२
नैपाल १८
नोने अर्जुनसिंह (देखो अर्जुनसिंह)
नोने दीवान २३१
नोहटा ६८
नोहला ३४, ३५
नैागाँव २०५, ३४०, ३११, ३५१, ३७६
नैानकदेव ११६, १२२
नैारोजखाँ १४३
नैाली २०४
न्यामतकुलीखाँ १२७
नृपतिसिंह ३३६, ३६१, ३२८, ३७५
नृसिंह ५२

प

पचेलगढ़ १००
पजनसिंह ३५७
पटियाला ७३
पठारी १३७, १३८, १३६
पड़िहार २७, ४१, ४४, ५१, ६६, ११२, ११३, ११६
पदुमसिंह ३२४, ३३७
पद्मकुँवरि ६३
पद्मपाल २६, ३०
पद्मपुराण ५१
पद्मसिंह ३३१
पद्माकर २६८
पद्मावती १३, १८
पनागढ़ १०१
पन्ना १, ४२, ६५, १५३, १८७, १६३, २०२, २०६, २०७, २१८,

२२०, २२२, २३०, २३१, २३२, २३३, २३६, २४०, २४२, २४५, २५६, २६१, २६२, २६४, २६६, २७१, २७६, २७८, २८६, २९०, २९१, २९६, २९८, २९९, ३०४, ३०६, ३०७, ३१९, ३२८, ३४१, ३६७, ३७५
पवई २९०
परकोटा २०१
परतापगढ़ ११०, २३३
परतापराव १२८, १३०, १३९
परतापसिंह २८८, ३१५
परमानंद १४०
परमार्दि दूसरा ४१, ६३
परमार ४१, १२२
परमाल ४१, ४३, ५२, ५३, ५५ से ६०, ६३, ६४, ६६ से ६८, ७४, ९८, ११५
परसराम १४६, १९९, ३१७
परसोजी भोंसला २०८
पराग (कवि) २३४
परायछ १३४
पर्वतसिंह २३१, ३१५, ३१८
पल्हव १६
पवई-करही १०१
पवायाँ १३, १४, १२२, १३०, १३१, १८६, २३६
पश्चिमोत्तर प्रदेश २४०, ३७३
पसराई ३१२
पहरा ३०१
पहलवानसिंह २३१
पहाड़सिंह ९४, १०८ से ११०, १४०, १४४ से १४९, १५० से १५३, १५५, १५६, १६१, १७७, २३७, २३८, २५१, २५६, २९०, २९३, ३०७, ३२५
पहाड़सिंहपुरा १५१, १५४
पहाड़ी (बंका) १४०, १४६, ३१४, ३४१
पहेबा ३३
पहोज (नदी) ५५, ७०
पंचम ११८
पंचम कवि २२६
पंचमकुँवरि १४०
पंचमसिंह ३०९, ३११
पंचवटी ३
पंजाब २, १५, १७, २४, ७३, १५४, २४८ से २५०, २५३, ३३१, ३४३, ३४५, ३४६, ३४७, ३४९
पंडरा १२५
पँड़वारी १९५, २५७, ३२७, ३४२
पांचाल ४, १२
पाटन ११८, २६६
पाटनगढ़ १००
पांडुचेरी २४९
पांडोर १९०
पांड्य ३६
पाथर कछार ३०६
पानीपत ८६, ८७, ९०, ९१, २५४, २५५, २७१
पारीछत २८९, २९५, ३०२, ३१९
पालदेव ३०१, ३०२

पाल्हदेवी ७२
पिंक (मिस्टर) ३५२
पिछौर १२७
पिपरिया ६६
पिरथीसिंह २९७, २९८
पीपरहट १३७
परिर्ना २१०
पीरमुहम्मद ४६
पुण्यपाल १२२, २३६
पुरवा २८४, ३०१
पुरी ११४
पुरुगुप्त २०
पुरुषोत्तम २२६
पुर्तगाली ६६
पुलुमायी १६
पुष्करप्रसाद ३००
पुष्पा ४४
पुष्पावती ६८
पुष्यमित्र ११
पूना १७२, १७५, २४५, २५०, २५२, २५७, २६०, २६६, २७१, २७२, २७७, २७८, २८०, २८३, २८४, २८६, ३३३, ३४८
पूरन जाट ५५
पूरनमल २०४, २३१
पृथु ५०
पृथ्वीचंद २२६
पृथ्वीपति ३००, ३०१
पृथ्वीपाल ३२०
पृथ्वीपुर ११६, २८८
पृथ्वीवर्म्मदेव ४३, ५१
पृथ्वीराज ५०, ५३, ५५ से ५६, ६३, ६६, ६७, ६८, ६६, ७०, ७३, ७४, ६८, ६६, ११५, १२२, १४८, १८६, २२३, २४२, २४५, २७०
पृथ्वीराज रायसा ६२, ६७, ६८
पृथ्वीसिंह १९५, २१२, २४४, २४५, २७०, ३१३, ३५५
पेशवा १११, २५८, २६०, २६७, २६६, २७१, २७६ से २८१, २८२, ३२०, ३२३, ३३३, ३३५, ३४८, ३६७ से ३७१
पेशावर १६
पोकरप्रसाद ३००, ३०१
पोंढ़ी ३४
पौरंदरी ३१
प्रतापपाल ११८
प्रतापमल्ल ६२
प्रतापराय १२४
प्रतापसिंह ६२, ६६, १८१, २६८, २६६, ३०६, ३११, ३४३, ३४४, ३७३
प्रतापसिंह जू देव २३७
प्रतापादित्य ६६
प्रतिपालसिंह ३०६
प्रद्युम्न सूरि ११४
प्रबोधचंद्रोदय ३७, ४६
प्रभाकरवर्धन २५
प्रभंजन २२
प्रमादसिंह १४०
प्रयाग ८, ३६, ४६, ११४, ११६, १३४, १३६

प्रयागदास १२५, २०४
प्रहलाद २१४
प्रहलाददेव ११४
प्राणनाथ १६३, १६४, २२१, २२७
प्राणसिंह २५८, ३१६
प्रियदर्शिका २६
प्रेमचंद ११८, १२३, १२८, ३१८
प्रेमनारायण १०६, १०७, १०८, २८८
प्रेमशाह १०६, १४६, १४७
प्रेमा १३८
प्यारेजू ३१५

फ

फतहपुर ६६, १०१
फतेहखाँ ८०, १४३, १४८
फतेहपुर ३३२
फत्ते वैश्य १८१
फत्तेसिंह ३२७
फफूँद २४४
फरजंदअली २६३
फरहत्तुलमुल्क ८४, ६६
फरासीसी २४६, २५०, २५६
फरुखसियर १५४,२०७, २०८, २०६, २१०
फाक्स २६३
फारस ५,६०, २४७
फिदईखाँ १७६, १८०
फीरोज ८०, ८१, ८४
फीरोजजंग १०७, १४७
फूफी ७२
फूलसिंह २३१
फेरनसिंह ३१६

ब

बकसराय १३२
बक्सर ८८, २५६, २५६
बखतवली ३५५, ३५६, ३५८, ३५६, ३६५
बखतसिंह १८६, २७३, २७६, २६१ से २६३, २६७, २६८, ३०८, ३१०, से ३१२, ३२२, ३२७, ३४२, ३७५
बगमार १०६
बगौनी १६०
बघेला ६२
बघेलखंड १, १६, ६४, ३०६, ३४०
बघेल ३६, ६२, ६४, ६५, ७०, ७६, ६१ से ६४, १०६, ११८, २७६
बघेलन ६१
बघेलबाड़ी ६१
बटियागढ़ २३, ७६, ८४
बटिहाड़िम (बड़िहारिन) ७६
बड़गाँव १४०, ३११
बड़ौनी १२८, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, २८६
बदौरा ३२७
बनगवाँ १३८
बनगाँव २७४
बनघोरा ३०७
बनारस ३२, ३३, ३५, ३७, ११६, २८०, २७६
बबीना १३८
बब्बर १७१
बयाजिद ८५

बयाना ७३
बरगी १०१
बरजोरसिंह २३१
बरदेई ३३२
बरहटा १९४, २००
बरहमपुर ३५०
बरा ११४, १४६, २८१
बरार १३१, २४६, २४९, २८३
बरुआसागर १५५
बरेठी १२४
बरेली २८७, ३५०
बरोदिया ३५८
बरौंडा २०६, २४०
बलदिवान १७९, १८०, १८२, १८५, १८९, १९०, १९२, २००, २०२, २०३
बलदेव ३००
बलभद्र तिवारी ६१
बलभद्र मिश्र २२४
बलभद्रसिंह २१६
बलबन ७७
बलवंत यादव १३२
बलवंत राव ३२४
बलवंतसिंह २३१
बलारशाह ११९
बलेह २६६
बसई ३२०
बसराही ५६
बसिया १६१, १६२
बर्सीन २७९, २८३, २८६, २८९
बहरान ७५
बहरामखाँ ९०, ९१, १२१
बहरायच ७५, ८५
बहलूलखाँ १९८, २०३
बहलूल लोधी ८३, ८५, १२३
बहाउद्दीन ७३
बहादुरखाँ १०७, १४३, १४५, १५९, १६९, १७७, १८६
बहादुरपुर ३६९
बहादुरशाह ८४, ८५, ८८, १००, १५४, २०६, २०७, २२२, २२३
बहादुरसिंह ३१५, ३२९
बहुरीबंद ६९
बहमनी ७९
बंकागढ़ १०१
बंका पहाड़ी ३१२
बंकोबाई ३४८
बंग ३६
बंगाल ९०, १५७, २४८, २४९, २५०, २६०, २६२, २८०, ३५०
बंदा १५४
बंधा १२९
बंबई २४९, २६२, २८०, ३५४
बंचल कहार १८१
बाकीखाँ १०५, १२१, १२३, १२८, १६२, १६८
बावजंग जगड़ा १३०
बापराज १२०, १२३
बाजबहादुर ९१
बाजीराव २०८, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २७१, २८८, ३३३, ३४८

बाजीराव (पेशवा) २१६, २२०, २३१ से २३३, २४० से २४२, २४४, २४७, २६०, २७१, ३३१, ३३७, ३६०
बाड़ी १०१, १०५
बाणभट्ट २६
बाँदा १, ४२, ७७, १६४, २०३, २११, २१२, २२२, २२३, २३७, २३८, २४१, २५६, २५७, २६४, २७२ से २७४, २७६, २७९, २८२, २८४, २८६
बाँधोगढ़ ९३, ९४, १०९, २६०, २६३, ३४०, ३६५ से ३६७
बानपुर १२८, १३६, २८४, २८८, ३४२, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६५, ३६६, ३७२
बापूजी नारायण २६६
बावर ८६, ८७, ८८, १२५, १७१
बाबा साहब ३३४
बारविक ८५
बारीगढ़ ५९
बालकृष्ण १९९
बालकृष्ण भाऊ ३३७
बालहर्ष ३४
बालाजी गंगाधर २६१
बालाजी गोविंद २४३, २५२, २५५, २५८, २६६, २६७, २६८, ३३६, ३३७
बालाजी बाजीराव २४२, २६०
बालाजी विश्वनाथ २०९
बालाहट ३५६
बावनी ३२२, ३४१
बाँसा १८५, २२२
बिश्रोना १२०
बिजना ३१२, ३१३, ३१४, ३४१
बिजलीखाँ ९४
बिजावर १४१, २२२, २३७, २३९, २७०, २७५, २९५, २९८, ३४१
बिजौरी १८१
बिठूर ३३३, ३३४, ३४८, ३६०, ३७१
बिंदकी २५६, २८०
बिंदुसार १०
बिनैका ३४२, ३५६
बिलहरा २०१
बिलहरी ३२, ३३, ३४, ३५, ६८, ६९, १००, ११२, ११३, ११८
बिलासपुर १०१
बिसुनसिंह ३०४
बिहगा ३२२
बिहार २, ८८, ९०, २८०
बिहारीलाल ३०१
बिहूनी ३२२
बीजापुर १५३, १७२, १७३, १७४
बीझलदेव ११८
बीना (नदी) १३, १९
बीर ११७
बीरम १२०
बीहट १३९, ३१७, ३१८, ३४२
बुद्ध ९, ४०
बुद्धगुप्त २०, २१
बुद्धराज ३२

बुद्धसिंह २१३, २१४, २२६
बुद्धिपाल ११८
बुंदेलखंड १ से ५, ६ से १२, १५ से २३, २६ से २६, ३१, ३६, ४१, ६०, ६२, ६५, ६६, ७२, ७६, ७७, ८०, ८३, ८७, ८८, ६१, ६५, ६७, १०१, १०२, ११०, ११४, ११६ से ११८, १२६, १४१ से १४३, १४५, १५५, १५७, १६०, १६१, १६८, १७७ से १७६, १८३, १८६, २०१, २०४, २०६, २०७, २१०, २१२, २१४, २१५, २१६, २२१ से २२४, २३२, २३४ से २३७, २४०, २४२, २४३, २४५, २४६, २५०, २५१, २५३, २५५, २५७, २५८, २६० से २६५, २६६, २७१ से २७७, २७६ से २८४, २८६, २६२, २६३, २६७, ३०५, ३०७, ३०८, ३२०, ३२६, ३३१, ३३३, ३३६, ३३७, ३४०, ३४२, ३४४, ३४५, ३५४, ३५६, ३७२ से ३७४, ३७६
बुंदेला ६२, ७७, ८६, ६५ से ६७, ११५, ११६, १२१ से १४४, १४६, १५५, १५८, १६१, १६३, १६८, १७८ से १८१, १८३, १८७, १६१ से १६३, २००, २०१, २०४, २०५, २१२, २१४, २१५, २१७, २२१, २३४, २३५, २३८, २४० से २४३, २४६, २५३, २५५, २५६, २६०, २६१, २७१
बुरहानपुर २५२
बूँदी १८८, २२५
बृहन्नृप ४, ११
बृहस्पतिनाग १४
बेढ़ो ३१५
बेतवा १, ४, ४२, ४६, ४६, ५६, ५८, १२१, १३६, १४३, १६४, २८५
बेदपुर १६१
बेनीदास १४६
बेनीसिंह १४०
बेनीहजूरी २३५, २६२, २६४, २७६, ३०४
बेम-कडफाइसेस १७
बेरछा १२३, १३०, १३४, १४०, १४२
बेरी ३४२
बेली २८६
बेसनगर ११
बेहड़िया ६६
बैल ११८
बोधन दौआ ३४७
बोनस ३६३
बौंकर ३६५
ब्रजगोपाल ३०२
ब्रह्मावाद ७२
ब्रह्मा ११७
ब्रह्माजीत ५६
ब्रह्मदेव ५३, ५४, ८१

भ

भगदत्त ७
भगवानकुँवरि १११
भगवानदास १२८
भगवंतराय ११६, १२४, १२६, २३१

भगवंतसिंह १५४, १६५, २८८, ३१८, ३७४
भटिंडा ४५
भद्राचलम् ३
भदौरिया ११८
भभूरा २३
भरतजू २००, ३०१
भरतपुर २४५, २४८
भवभूति ३
भवानी १२१
भवानीदास ६६
भवानीसिंह ३७४
भँवरगढ़ १०१
भँवरसो १०१
भाड़ ३२८
भानपुर (बानपुर) ३४२
भांडेर १३०, १३५, १४६, १६०, ३६५
भानुगुप्त २२
भानुप्रताप ३२६
भानुप्रतापसिंह २३६, ३६६, ३२८
भानुभाट १८१
भनुमित्र ६६
भापेल ३५७
भारत ३४७
भारतप्रसाद २०३
भारतवर्ष १, २, ६, ११, १२, १५, १६, १७, २०, ३६, ७३, ७५, ७८, ८१, ९०, ९६, १४१, १७५, १८३, २०५, २१५, २२१, २२३, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५३, २५९, २८०, ३३१, ३३३, ३४७, ३४९, ३७२, ३७६
भारतशाह १३७, १३८, १३९, १४४, १४५, १८९
भारतीचंद ६२, ७७, ९९, १२५, १२६, १२८, १२९, १५१, २३१, २८७, ३०७, ३१९
भावसिंह २२५
भासनेह १२८, १३५
भास्करराव अन्ना २८५
भिलमादेव ४३, ६१
भिलसा ४, ११, २४, २५, ७५, ८५, ८७, १४९, १६६, २०२, २०३, २६४
भीकाजीराव २४३, ३६५
भीम १५०, १५२
भीम दूसरा ९२, ९३
भीमदेव ४८
भीमनाग १४
भीमपाल ५०
भीमराज ३७
भीमसिंह २३१, ३०४
भीमसेन ५, ३१७
भीमा नदी १७६
भीमेश्वर ३७, ३८
भुवनपाल २९, ११८
भुवनादेवी ४७
भूपति ८५
भूपालशाह ९९
भूपालसिंह ३७६
भूमक १५
भूषण १५८, १७१, १८३, २०७, २२४, २२५

भूराबढ़ २२२, २२७, ३०५
भेड़ाघाट १५
भैरोंदास १२५
भैसोंढ़ा ३०१, ३०२
भोज २६, ३५, ३६, ३७, ४०, ४७
भोजदेव ३२३, ३४०
भोज परमार २७, २८, ४८
भोजराय १२४
भोजवर्म्मदेव ४१, ४३, ४६, ६१
भोपाल ४, १००, १०१, १०५, ११२, ११३, १२६, १६८, २६३, २६४, ३२५, ३३४, ३५५, ३५७
भोपालसिंह ३२७, ३२८
भोरादेव ७७
भोंसला १६, ६२, १११, २६१, २६३ २६४, २६७, २८०, २८३, ३२६, ३३२, ३३४, ३३५, ३४७
भौंरागढ़ २८१

म

मऊ २७, ३७, ४४, ४६, १५३, १५५, १८७, १८६, १६२, १६३, २०३, २०४, २०५ २३०, २३२, २३७, ३५४, ३५५
मकरंदशाह २२४
मकरही १०१
मकसूदनप्रसाद ३०२
मकुंददेव ६३
मकुंदपुर २०६,
मकुंदसिंह १२२, १२३, १२७
मगध ४, ६, १०, १८, २२
मजबूतसिंह ११६, ३१०
मटौंद २०४
मड़फा ५६, ६१,६३
मड़ियादो १०१, ११०
मणिकर्णिका ११६
मतिराम २२५
मत्स्य ४, ५, १२
मथुरा १७, २०, ३०, १४०, १३१, २४०, २५०, २५३
मदनपाल १२३
मदनपुर ५०, ५१, ५२, ६८, ३२८, ३५६
मदनरतनी ६२
मदनवर्म्मा ४३, ५१, ५२, ६८
मदनसागर ५१
मदनसिंह ६६, २८८, २८९
मदरास ५४
मद्रास २४६, २८०, ३५४
मधुकरशाह ६२, ७७, ८६, १०६, १२५, १२८, १२९, १३२, १३८, १३६, १४७, ३३५ ३४२
मधुवर्णी ६०
मधुसूदन ३०
मध्यदेश १२
मध्यप्रदेश ३१, ३०३
मध्यभारत ३४०
मनियागढ़ ३६, ६२, ६७
मनियादेवी ५६
मनोरथ ३०
मनोहरसिंह ६६
मयूर ३३१
मराठी ३३३

मयाराम १३०
मरजादसिंह २३१
मराठे ६७, ३३२
मरीच ११७
मर्दनसिंह २७०, २७१, २८९, ३१४, ३२६, ३५५, ३५६, ३५८, ३५९, ३६५
मलकेश्वर ७६
मलखान ५५, ५६
मलखानसिंह १२३, १२४
मलपुरा ६१, ३०५
मलय ३३
मलक १२
मलिक ६६
मलिक एकबालखाँ ८२
मलिक काफूर ७८
मलिकवासिल मुबारकशाह ८१
मल्हारराव २४०, २४३, २४५
मल्हारराव (हुलकर) २१६
मवई २३९
मसऊद ७५
मसराही ५६
मस्तानी २७१
महमूद ५३, ७९, ८१, ८२
महमूद गजनवी २९, ४६, ५१, ६३, ७२
महमूदशाह ८४
महमूदशाह दूसरा ८४
महम्मदशाह १५४, १५५
महाकोशल ३१
महादेवी ३३
महाभारत ३, ४, ५, ६, ९, ३१, ६४, २२१
महाराजदेव ३२०
महाराजशाह ११०, १११, २६०, २६१
महाराजसिंह ३१७
महाराष्ट्र १५, ९७, १११, २२१, २२२, २२३
महालक्ष्मी ३६४
महावतखाँ १३९, १४५
महासिंह ९९
महिपतिसिंह २९२, २९३, ३७५
महिपाल ३०, ४४, ११८
महिमाराय ३१५
महिराज ११४
महीधर ४९
महूमसिंह ३१८
महेंद्रपाल ३३, ४६, ४७
महेवा १२५, १२८, १४१, १५६, १६२, १६७, १६८, १८१, २२०, २३०
महेशपाल १२०
महेश्वरपुरा २७
महोनी ११८, १२०, १२१
महोबा ४२, ४४, ४७, ४९, ५१, ५२, ५३, ५५, ५६, ५८, ६७, ६८, ७४, ८१, १२३, १५५, १९५, २००, २०३, २३८, २४३, ३३२, ३३७
मंगल ३२, ४०
मंगलराज २९

मंडला १००, १०३, १०८, १११, २६६, २६८
मंडसर १६, २०, २२
माखनजू ३१७
माघ ११४
माचलदेवी ५४
मातृविष्णु २०, २१, २४, ६६
माधव नारायण २६४, २६६
माधोराव २६०, २८६, २८७
माधोसिंह ६६, १४०, १८४, १८६, २३१, २६२, ३७५
मानकुँवर २०
मानजू ५२, ५४
मानपुर ११८, ३३२
मानशाह १२८, १८१, २२१, ३१७, ३१८
मानसिंह ८५, ८६, ८७, १२५, १५५, २३१, ३१२
मानसिंहघाट ११६
मान्धाता १६२
मांडो ७८, ९१, १३२
मानिकपुर ८५, २४२
मालगढ़ १००
मार्टिन २६२, ३५१, ३५३
मालकम ३४४, ३४५, ३४६
मालथौन २६४, ३३०, ३३५, ३४२, ३५५, ३५८
मालवा १३, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २५, २६, २९, ३३, ३५, ३७, ३८, ३९, ४१, ४५, ४८, ६८, ६९, ७५, ७६, ७७, ७८, ८०, ८१, ८३, ८४, ८७, ८८, ८९, ९१, ९५, १०६, ११२, १२६, १४७, १५१, २०६, २१३, २१५, २४६, २४७, ३३१
माहिलदेव ५४, ५५, ५६
माहिष्मती ३१
मिकली ३६२
मिंटो (लार्ड) ३३१
मिहरसेन १२४
मिथिला ५३
मिरजापुर १६४
मिरजा राजा २३१
मिसेल पैक २८०
मिहरबानसिंह ३१५
मिहिरकुल २२
मीरखाँ २६७, २६८
मीरतालन ५८
मुअज्जम २०५, २०६, २०८
मुइज्जुद्दीन साम ७३
मुइज्जुद्दीन महमूद ८०
मुईनुद्दीन ददरान ७५
मुकुट गौड़ १३३
मुकुटमणि १२०, १२३
मुकुंदसिंह २३१, ३०२, ३१४
मुचकुंद ३३, ३४, ४०
मुबारकखाँ ८४, १२६, १२७
मुंज ३५
मुर्तिजाखाँ १८६, १८७
मुलतान ७८, ८३
मुल्ला ३
मुराद (शाह) १२३, १२५, १३१,

१३७, १५०, १५७, १५८
मुरादखाँ २०३
मुरार ३६६, ३७०, ३७२
मुरुंड १६
मुर्शिदाबाद २०८, ३५०
मुल्तान ८२, ३४३
मुवाड़ ६२
मुस्करा १६४
मुहम्मद २२२
मुहम्मद आदिलशाह ६०
मुहम्मद कासिम ७२
मुहम्मदखाँ ६७, ८१, ८२, २३५
मुहम्मदखाँ (लोधी) ८५
मुहम्मदखाँ बंगस २०६, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २३७, २४०, २४१
मुहम्मद गोरी ७३, ६२
मुहम्मद तुगलक ७६, ८०
मुहम्मद (दूसरा) २३७
मुहम्मदशाह २०६, २१०, २४६, २४७, २४८, २४९
मुहम्मद सुभान १४२, १४३
मुहम्मद सादिकखाँ १२७
मुहम्मद हाशिमखाँ १८३, १८७
मुहम्मदहुसेन ३२३, ३२४
मुहम्मदाबाद ३३७
मूरतसिंह ३०७, ३०८, ३०६, ३२५
मूर्धराज ११४
मूलराज ६२
मेगास्थिनीज ११
मेघराज १८१, १६६
मेदनीमल १२३, ३१३
मेदनीराय ८४, ८६, ८७
मेदनीसिंह ३०७
मेरठ ३५०
मेवाड़ ३८
मेहदीहुसेन ३२३, ३२४
मेहराज २२२
मैगवाँ १२५
मैसूर २०८, ३४८
मैहर ५६, १८४, २२२, २३५, ३०४
मोई २२२
मोंठ २५०, २५१, २५७
मोरनगाँव १६१
मोरपहाड़ी १६२, १७६, १८०
मोराजी ११२
मोरी ११६
मोरेश्वर राव ३३४, ३३६
मोरो पंत २४४, २४७, ३६४
मोरो विश्वनाथ २४४, २६६
मोहनगढ़ ३२०
मोहनपति ११६
मोहनपुर ३७३
मोहनप्रसाद ३०४
मोहनसिंह ६३, ६४, २३१, ३०६
मोहनसेन ११४
मोहानी ५८
मौखरी २५
मौदहा १६४, १६८, २०२, २१०, २१३

य

यजुर्होति ४२

यमुना १, २, ४, २०, २४, ४१, ४६, ५८, ७०, १५८, २१२, २२३, २३२, २४०, २४३, २५५, २५७, २६३, २७३
यशकर्ण ६६
यशःकर्ण ३८, ४०, ५०
यशचंद्र ६६
यशवंतराव २७६, २७७, २८२
यशवंतसिंह १६५
यशोधर्मन २२
यशोवर्धन २४
यशोवर्म्मदेव ४३, ४४, ४५, ६३,६६
यातुधान २
यादव गौड़ १३३, १४१
यादव राय ६८, ६६, १८६
यादववंश ७८, २४८
यादवेंद्रसिंह ३७५
युवराज (दूसरा) ४०
युवराज ३४, ३५, ३६, ४०, ४७
यूनान ६, ११
यूरोप २४८, २५०
यौधेय १२

र

रघु ११
रघुजी २४६, २४६, २५०, २४८
रघुनाथ ६६
रघुनाथराव २६६, २६८, २६६, २८६, ३३८
रघुनाथराव हरि ३३४
रघुनाथराव हरि नेवालकर २८८, २८४
रघुनाथशाह ११२
रघुनाथसिंह १२१, २०८, ३४२, ३५३
रघुवरदयालसिंह ३०६
रघुवीरसिंह ३०४, ३७५
रघुराजसिंह ३१७
रजिया बेगम ७५
रणजीत ५६
रणजीतसिंह २६०, २६२, ३०१, ३३१, ३४२
रणदूलहखाँ १८८, १८६, १६०, १६१
रणधीर ११६, ३१६
रणधीरसिंह १२८
रतनपुर ६३, ६४, ६५
रतनशाह १३३, १६८, १८१, १८३, १८८
रतनसिंह २८, ८२, ६४, ६६, १२८, १३३, २३६, २४५, २६५, ३१४, ३६०
रतना ३३२
रतिराम १८०
रत्नागिरि २४२
रत्नावर्मा ९१, ९८
रत्नेश्वरसिंह २१२, २१३, ३१४
रफीउद्दरजात २६१
रफीउद्दौला २०१
रमादेवी ६३
रमार्मा ११४
रम्स २७०
रांगेदास १३८
राठौड़ २४८,२६०,२६२,२६६,२६६

राजगढ़ १७३, १६४, २२४, २६८
राज़धर २७६, ३०४
राजधर गंगासिंह २६०
राजधर रुद्रसिंह ३०५
राजनगर २६६
राजपूताना २४३, २४५, ३३१
राजसिंह १२३, १३७, १८६
राजसेन ११४
राजाराम १३०, १३२, १३४, १३७, १३८, १३६, २३१, ३०२, ३०५, ३३६
राजौरी १४५
राज्यवर्धन २५, २६
राज्यश्री २५, २६
राठ ६२, ८६, १०१, १६५, ३२७
राठौर ३८, ११६, २१०
राधाचरण ३०३
रानगिर १०८
रानसिंह २३१
राना ६५
राना साँगा ८५, ८६
रानाजी सेंधिया २४६
रानीताल १०५
रानीपुरा १५३, १५५
रामकिसुन चौबे २३५, २७७, २६६, ३००, ३०१, ३०२, ३०३
रामगढ़ १००
रामचंद्र २, ३, ५, ६, २८, ६४, ६५, ६४, ६५, ६६, ११४, १२३, २५७, ३०२
रामचंद्र गोविंद चांदोरकर २४२
रामचंद्रराव ३३४, ३३८, ३३६, ३४४, ३७०
रामचंद्रशाह ६६
रामदयालसिंह ३०६
रामदास १३६, १४५, २२२
रामदेव ७८, ६३
रामनगर ६८, १०८
रामप्रसाद ३०३
रामपुर ११८, २८५
रामपुरा ३३७
राममन दौआ १८१, २०४
रामराजा १८१
रामशाह १२७ से १३२, १३४
रामराव गोविंद २४३
रामसिंह ६६, ११८, १२२, १२३, २८८, ३०८
रामानंद ८७
रामायण २, ३, २२१
रायकोट ५४
रायचंद २३१
राय रामचंद्र २१३
राय रामराव २४५
रायसिंह ३११, ३१२, ३१३, ३१४
रायसीन ८४, ८५, ८६, ८७, ८६, १००, १०१, ३२७
रावजू ३१६
रावण ३१
राव प्रताप १३२, १३६
राव भूपाल १३६
राव राजा ५७

राव साहब (पेशवा) २६५, २६७, २६८, २६९, २७१
राबिनसन २६२
राहतगढ़ ३६, १०१, १०५, ३३५, ३५५, ३५७, ३५८
राहिल (राहिल्य) ४३, ४४, ६३
राघस २
रियाज़ुलहसन ३२४
रीवाँ ६४, ६५, ७६, ९२, ९४, ९९, १०७, १४७, १५१, १५५, ३३३, २७६, २७७
रुकनुद्दीन फ़ीरोज़ ७५
रुक्माबाई ३३०, ३३४
रुक्मिणी ६
रुद्रदमन १६
रुद्रदेव ९९
रुद्रप्रताप १२४, १२५, १२६, १२८, १६२, ३७५
रुद्रशिव ३८
रूपनाथ ११
रूपशाह ३१७
रेवंद ३३२
रेहली १०१, ३७५
रोशन खलतर २०६
रोहिला ४४, २४३, २४५, २४८, २५३, २५४, २५५

ल

लखनऊ ८५, ३५०
लखनवां २१९
लगदगा ३३२
लख्मे रावन १८१
लछमन ३९, ३५, ४०
लछमनदेव ३४, ३५, ३८, ५०
लछमन दौआ ३६२
लछमन परसराम २९८
लछमन सागर ३५, ४०
लछमनसिंह २१६, ३३९, ३३५, ३१२, ३१४, ३३१, ३३३, ३३८
लछमनसेन ११२, ११३
लँड़ई रानी २८७, २८८
लंदन ३४७
ललितपुर १, ४६, ८८, १११, ३५५, ३७२
लव ११४, ११८
लवणप्रसाद ९२
लहुरा १३५
लक्ष्मीबाई ३३७ से ३४०, ३४४ से ३४७, ३५१ से ३५४, ३६० से ३६८, ३६४ से ३७०
लार्ड ३३२
लाखन (राना) ५७, ५८
लांजी ९९, १०८
लाड़ली दुलैया ३३२
लाम ३६२
लफिगढ़ १०१
लाल मणि ३३५
लालकुँवरि १११, ११२
लालदास ३१०
लालदीवान २१८
लालमनि ३३६
लाहौर ३७३
लिच्छवी १८
लुइस साइम ११

लुगासी ३२४, ३४२
लोकपालसिंह २९३, ३७५
लोकमहादेवी ४०
लोकमानसिंह ८४, ८५
लोकेंद्रसिंह ३१७
लोहनदेव ७३
लोहरगवाँ ३१८
लोहागढ़ २०६
लोहाधार ११८
लोहारी ३६६

व

वज्रदामा २९
वजारतअलीखाँ २१३
वत्स १
वत्सराज ४९
वनराज ९२
वर्धा ६७
वल्लभीपुरा ११४
वसु ४
वसुदेव १२
वसुनाग १४
वा १४
वाक्पति २५, ४२, ४४
वाजिद्अलीशाह ३४६
वायावाँ १०८
वारेन् हेस्टिंग्ज २९३
वाल्मीकि ३
वासुदेव १७, ६६
वासुदेवराव ३३४, ३३६
विक्टोरिया ३५३, ३७२
विक्रमसिंह ३०, १८६
विक्रमाजीत ८६, १०८, १४४, १४५, १४६, २८७, २९३, २९४, ३७५
विक्रमादित्य ३५, ४०, ६८
विजयनगर ७६
विजयपाल ३०
विजयपालदेव ३०, ४३, ४७
विजयबहादुर २३९, २८९, २९३, २९४, ३१४, ३१५, ३७४
विजयराघोगढ़ २८४, ३०४
विजयशक्ति ४२, ४३, ४४
विजयसिंह ३८, ३९, ४०, ६०, ६६, २८८, २९०, २९२, २९५, ३१६, ३१७, ३७५
विटलाक ३५४, ३६७
विट्ठल शिवदेव चिंचूरकर २१६, २४३
विदर्भ ४
विदिशा ४
विदूर २१४
विद्याधरदेव ४३, ४७
विद्यापति ८७, ३०५
विनयादित्य ४०
विनायकदेव ८६
विनायकराव २८६, ३३०, ३३२, ३३४, ३३८, ३३९
विंध्यगिरि ६४
विंध्यराज ११८
विंध्यवासिनी ११६
विंध्याचल १३, ४१, २६३
विंध्येलखंड १
विमलचंद्र ११८

विराट ४, ५
विरौदा १२०
विलसद २०
विलियम बैंटिंक (लार्ड) ३३४
विशंभरदास २४५
विशंभरसिंह २३१
विश्रामघाट १४०
विश्वनाथ १७१
विश्वनाथसिंह २६६, ३१६, ३२२
विश्वासराव २६७
विष्णुधर्मन २२
विष्णुपांडे १२१
विष्णुपुराण १३
विष्णुप्रसाद ३०१
विसाजी गोविंद २५२, २५५, २६५, २६६
विसेनप्रसाद ३०१
विहंगराज ११८
विहारीसिंह ६६
वीर ११५, ११६, ११८, ३१७
वीरगढ़ ६५, १३८
वीरधवल ६३
वीरनारायण १०२, १०३, १०५
वीरपाल १२०, १२२
वीरपुर १४०
वीरभद्र ११७, ११८
वीरभानदेव ६३, ६४
वीरम ६२, ६३
वीरमदेव ८२
वीरवर्म्मा ४३, ६०, ६१
वीरवर्म्मदेव (दूसरा) ४३, ६१
वीरसागर १४०
वीरसिंह ६६, ११६, २३६, २७०, २७५, ३७४
वीरसिंहदेव ८२, ८६, ९३, ९५, १०५ से १०७, १२८, १३० से १३६, १४१, १४४, १४७, १६८, २८६, २६५, ३११
वीरसिंहपुर २३३
वीसलदेव ६२, ६३
वेंकटराव ३१८, ३३४, ३३६
वंशगोपाल ३०१
व्याघ्रनाग १४
व्याघ्रदेव २३, ५२, ६३
व्याघ्रपल्ली ६२

श

शक १६
शकुंतला २२६
शकूराबाद २४४
शत्रुजीतसिंह २८८, ३१५
शनिराजा ११६
शमशेरबहादुर २३१, २७१, २७८, २७१, २८०, २८१, २८२, ३८३, २८४
शमसुद्दीन ६०, ७५, ८७
शारंग ऋषि २
शशांक गुप्त ४३, ६१, १२२
शहाबपुर ११३
शाहजहाँ १४८
शहाबुद्दीन ३०, ७३, ११५

शहाबुद्दीन अहमद ६१
शंकरगण ३२, ३५, ४०
शंकरशाह ११२
शंखशोभा २२, २३
शंभूसिंह २३१
शाइस्ताखाँ १७५
शादीखाँ ७८
शांतनु ५
शारदादेवी ५६
शालिवाहन १५, ६२, ७६, ७७, ८६
शाहआलम १५५, २७२
शाहकुली २०४, २०५
शाहगढ़ १०१, १८६, २०३, २३२, २३३, २४२, २५४, २७०, २७१, २८४, २६८, ३३०, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५६, ३६५, ३६६, ३७२
शाहजहाँ ६४, ६५, ६६, १०७, ११०, १४१, १४२, १४५, १४६, १४८, १४६, १५०, १५१, १५२, १५३, १५५, १५६, १५७, १६२, १७१, १७३
शाहजी १७२, १७३
शाहदीवान १२४
शाहपुर १२८, २८४
शाहबाजखाँ १४३
शाहमन ३१८
शाह शर्की ८१
शाहाबाद १२०, १२३, १४०
शाहिल्य ५७
शाहू महाराज, २०५, २०६, २०७, २०६, २१६, २२५
शिखंडी ५
शिलादित्य २४, २५, ८५, ८६, ८७
शिवनंदनसिंह १४
शिवपुर १२८
शिवप्रसाद ३०२
शिवराजशाह १११, २६१
शिवराम भाऊ २८४, २८५, ३३४, ३८८
शिवसिंह ६६, २३१
शिवाजी १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १८८, २०५, २२१, २२२, २२४, ३४३
शिवा परमार ११५
शिवाबावनी २२४
शिशुपाल ६, ७, ३१
शुक्रपाल ५०
शुंगवंश ११, १७
शुजा १५७, १५६
शुजाअतखाँ ६०
शुजाउद्दौला २५१, २५४, २५६, २५७
शुभकरन १५४, १६०, १६१, १७८
शूरसेन १२
शेखजादा मुहम्मद ८५
शेख फरीद १३४
शेख रमजान ३५६
शेर अफगान ६१, ६६
शेरखाँ ८८
शेरशाह ६१, ६२, ६४, ६५, ७७, ८८, ६३, ६४, १२६
शेरशाह (दूसरा) ८६, ६०
शौनकदेव ११८, ११६

श्यामदेव ११४
श्यामसिंह १४०, २३१
श्यामला देवी ३८
श्यामलेजू ३५७
श्यामले दौआ १४७
श्यामलेप्रसाद ३०६
शृंगवेरपुर २
श्रीकृष्ण ७, ३१
श्रीनगर ८२

स

सकतसिंह १८६, ३१७
सकरहटी १८२
सकौर १६
सखूबाई ३३४, ३३५, ३३८
सतरजीतसिंह ३०८, ३०६, ३२०
सतारा २०७, ३४३, ३४४
सदरुद्दीन १६७, १६८, १६६, २००
सदाशिव नारायण २४४, २४६, २५२
सदोई ३३२
सपट्टचर १२
सबदलसिंह ३१७
सवलसिंह ६६, १८६
सघसुखराय २७८
सभासिंह २२३, २२४, २४२, २४५, ३१७
समथर १, २८२, २८६, २६०, ३४०, ३७१, ३७३, ३७४
समरसिंह २२७
समरसेन ११४
समरोहा १२८
समुद्रगुप्त १४, १८, १६, २०, २२
सरजूप्रसाद ३०४
सरदारखाँ १०८, १४७, १४६, १५१
सरदारसिंह ३१७, ३२४, ३२५
सरनेतासिंह २२४, २६६
सरभ २२
सरमेदसिंह २३४ से २३७, २६१, २६२, २६४, २७०, २६६
सरस्वतीबाई ३३८
सरहिंद ८५, ६०
सरीला २३७, ३२५, ३२६, ३४१
सरोली ३३२
सर्वजीतसिंह ३०६
सर्वनाथ २३
सलक्षण ५०
सलीम १२८, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७
सलीमशाह ७७
सलेमनाबाद ७७
सहजेंद्र १२१, १२२
सहरा १२५, १४०, १५३, १६१, १६३
सहसराम ८८
सहस्त्रार्जुन २१
सहायसिंह २३१
संगतसिंह १२४
संग्रामपुर १००, १०२, १०३
संग्रामशाह ८३, ६६, १००, १०१, १०२, १२१, १२२, १३५, १३६, १३७, १३८
सँडी ३१५
सँदुवा-पाजने १६२

संप्रति ११
संयुक्तप्रदेश ३७२, ३७३
संयुक्त प्रांत ३७२
सागर १, ३, ४, १३, १६, ३६, ४६, ५१, ६८, ७०, ७६, ८०, १००, १०१, १०५, ११०, ११२, ११३, १२६, १६०, १६४, १६८, २००, २०१, २२२, २३२, २४१, २४३, २४४, २५२, २५५, २६५ से २६६, २७०, ३२६, ३३०, ३३२,
साँची १६
सादतअलीखाँ २४८
सादतखाँ २०८
सादिकखाँ १०५
सांतागढ़ १०१
साबितखाँ २१३
सांभर ५५, ५६
सामंतसिंह ६२, १५५, २३१, २६६, ३१४, ३२४
सामोगढ़ १५८
सारंगदेव ७५, ६३
सारंगपुर ८७
सारवाहन १४१, १६२, १६३, १६८
साल्टर २६७
सालमसिंह २३१, ३२४
सालिगराम ३००, ३०३
साहिबसिंह १६१
सिकरी ८७
सिकंदर ६, १०, ७६, ८५, ८६, ६०, ६३, १२५
सिकंदरा २५६, २८०
सिवद २४६, २४८, ३४३
सिंगरावन २३३
सिंगारगढ़ २७, ६६, १००, १०१, १०२, १०३
सिंगारगिर २५८
सिंघजैतसिंह १२४
सिंघा ५८
सिंघ ७२
सिंधु (काली सिंध) १३३
सिंधु नदी १
सिंधुरमती ६३
सिप्री २१०, ३३५, ३३८
सिमरिया ३५७
सिरसई (खुर्द, कलाँ) ३३२
सिरसा ५५, ५६, ७०
सिराजुद्दौला २५०
सिरोंज १४४, १४६, १८३, १८७, १८६, १६०, २२२, २३२, २४०
सिलहदी ८५
सिलापरी ११२
सिवनी १००, १०१
सिंहजू १६१
सीतावर्डी ३३३
सीयक २८
सीहोर २५४, ३५५
सुंगरा २७३
सुजानखाँ २१०
सुजानसागर १५३
सुजानराय १३४, १६१
सुजानशाह १३४

सुजानसिंह १०५,१५१,१५३, १८०, १८१, २८७, २८८
सुतीक्ष्ण २
सुदामा २१४
सुधर्मा ५, ६
सुनार नदी १
सुंदरप्रधान १३६
सुंदरमन १८१
सुंदरि रानी १०६
सुबुक्तगीन ४५
सुभानराय १२६, १६७
सुमेरशाह ११२, २६१
सुरजनसिंह ३१३, ३१४
सुरश्मिचंद्र २०, २४
सुरोर ८०
सुल्तानकोट ७६
सुल्तान मुहम्मद मिरजा ६१
सुल्तानसिंह ६३, ६६
सुलेमानशिकोह १५७
सुशर्म्मा २२
सुहावल ३२६
सूर ८८
सूरजपाल २८, २६
सूरजभान ६६
सूरजसेन २८
सूरपाल ३०
सूरत १७५
सूर्य ११७
सूर्यदेवी ७२
सेंट्रल इंडिया ३४०
सेंधिया २५३, २५६, २६७ से २६६, २७१ से २७३, २८०, ३८१, ३८३, ३२६, ३३०, ३३१, ३३५, ३५३, ३५५,३६४,३६८,३६६, ३७०,३७२
सेंहुड़ा १२३, १६८, २०३, २०४, २१०, २१२, २२६
सैयद अलाउद्दीन ८३, ८५
सै० कुलीखाँ १२७
सै० नजीमुद्दीन २१३
सै० महमूद ८३
सै० मुजफ्फर १३३
सै० मुबारिक ८३
सै० मुहम्मद बहादुरखाँ १८६
सै० लतीफ १६४, २०१
सोंटई ३३२
सोनेशाह २२६, २३७, २३६, २६६, २७०, २६६, २६६
सोमदत्त ६३
सोमनाथ ३४
सोलेखपाल ३०
सोलंकी ५३, ६२
सोहनपाल ११४, ११६, १२०, १२१, १२२, २१७
स्कंदगुप्त १६, २०
स्कंदनाग १४
स्कीन ३४७, ३५१
स्टुअर्ट ३६२
स्मिथ ३७०
स्वर्णागनगर १६

ह

हलब्यकुद्दीन ६४, ७४
हजारीदास २८७

हटा १६, ६६, ७०, १०१, ११०, २३२, २६६, ३३२, ३५७
हथनौरा १३०
हनुमतसिंह २३१
हनूट्टक १८७, १६१
हमीदखाँ ८५, २००
हमीरदेव ११४
हमीरपुर १, ४२, ५८, ६२, १०१, २४१, २४३, २८२, ३४०, ३७२
हमीरसिंह २८८, ३१४, ३७३
हम्मीर ७८, २३१
हरदा २५३
हरदोई ३६६
हरदौल १४०, १४४, १४५, १५४, २१२, २८८, ३११
हरधौर १३०
हरपुरा १२३
हरप्रसाद २१३
हरयोली ३३२
हरसापुर १२५
हरि १२६
हरि दामोदर नेवालकर ३३८
हरिदेव ६०
हरिनारायण ६६
हरिपाल ७३
हरिब्रह्म ११८
हरिलाल गजसिंह २०२
हरिविट्ठल डिंगणकर २४१, २४२
हरिवंश १३२
हरिवंशराय १८१, २३६, २६१
हरिसिंह १०६, १८७, २७०, ३०७, ३१६
हरिसिंहदेव १२८, १३५
हरिहर ५१
हर्पचरित्र २६
हर्पण २३
हर्पदेव ४३, ४४
हर्पवर्धन २४, २५, २६, २७, ४१, ६६
हर्पराज ६६
हलचणवर्म्मदेव ४३, ५०
हलचण (दूसरा) ४३, ५१
हविष्क १७
हसनखाँ १३०
हस्तिन २२, २३
हिंडोरिया ३५६
हिंडोल ८८
हिरनाकुश २१४
हिरनागर ५६
हिंदुस्थान २५, २७२
हिंदू गैरीबाल्डी ३६०
हिंदूपत २३४, २३५, २५१, २५६, २५७, २६१, २६०, २६६, २६७, २६८, ३०४, ३०६, ३११, ३२६, ३२७, ३७४, ३७५
हिंदूसिंह ३१३
हिम्मतबहादुर २३६, २३६, २५६ से २५६, २६८, २७२ से २७५, २७७ से २८०, २८२ से २८४, २६३, २६५, ३२६
हिम्मतसिंह २६१, २६७, २६८, ३१४

हिमालय २२
हिरण्यवर्म्मा ४, ५, ६
हिरदेशाह ११६, १८३, २११, २२०, २३१, २३२, २३३, २४०, २४१, २४२, ३०६, ३०७, ३१८, ३२४
हिरदनगर २३२, २३३
हीरादेवी १५१, १५३
हीराशाह ११६
हीरासिंह १२०, २१६, ३१४, ३२५
हुइटी ५
हुएनशिआंग २७, ६६
हुमायूँ ८८, ९०, ९३, १७१
हुरमतसिंह १२०, १२१
हुशंगशाह ६८, ८१, ८३, ८४
हुशंगाबाद १०१, २६४
हुसेनअली २०७, २०८, २०९, २४७
हुसेनशाह (शर्की) ८३, ८५, १२३
हूण २०, २१, २२, ३६
हेतसिंह १५५
हेमकर्ण ११५, ११६, ११७, ११८
हेमचंद्र ६०, ६१
हेमवती ४२
हेमसिंह ६९
हेस्टिंग्ज (लार्ड) ३२१
हैदर २३५
हैदरअली २४८
हैदराबाद १४६, ३२२
हैहय ३१, ३९, ४०
होरलदेव १२७
होल्कर २४४, २५८, २६७, २६८, २६९, २७२, २८१, २८३, २८४, २८६, ३३१, ३३३
हंसराज ११९
ह्यूरोज ३५३, ३५८, ३५९, ३६०, ३६२, ३६३, ३६४, ३६६, ३६७, ३६९, ३७०
हृदयनारायण १२८
हृदयशाह १०७, १०८, १०९, ११०, ११३, १४६, १४८, १५१
हृदयशिव २४

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	वज्र	वत्स
,,	१६	टोंस	तोंस
३	६	विध्य	विंध्य
,,	२४	महाराज...	(शुद्धिपत्र के अंत में देखो)
४	२२	धीमर	ढीमर
१०	२१	से	में
१२	१२	पंचाल	पांचाल
१४	२	कुतवार	कुटवार
१७	११	प्रतापा	प्रतापो
१९	१८	तो	तव
२३	१०	वटियागढ़	वटियागढ़
२४	१८	स्मृति	मनुस्मृति
३१	२	महिष्मती	माहिष्मती
,,	७	महिष्मती	माहिष्मती
,,	१५	कर्णाट	कर्णाटा
,,	१८	त्रिपुरा	त्रिपुरी
३५	१२	मंदि	मंदिर
,,	२२	वेंग	वंग
,,	,,	घोड़	चोल
,,	,,	पुरल	केरल

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५	२२	क्रुंग	अंग
३६	२३	हूता	हूण
३७	१७	चंदेलराज	चंदेलराजा
”	१८	चंदेलराज	चंदेलराजा
”	२४	चंदेलराज	चंदेलराजा
४०	१९	युवराज	युवराज दूसरा
४१	१५	बहुत दूर के...	सूर्यवंशी क्षत्रिय लक्ष्मणजी के वंशज थे (मध्ययुगीन भारत)
४१	१६–१७	गुर्जर लोगों की दूसरी शाखा के थे।	सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। (मध्ययुगीन भारत)
४२	२१	नानुकदेव	नन्नुकदेव
”	२५	नानुकदेव	नन्नुकदेव
४३	६	धांगादेव	धंगदेव
”	१७	परमर्द्धि	परमार्दि
”	२४	परमर्दि	परमार्दि
४६	३	दक्षिण	दक्षिणी
”	१७	प	पर
”	१८	क	कर
”	१९	बा	बार
”	२१	सवा	सवार
४८	४	था	थे
४९	१	राठौर	पड़िहार
”	१४	वत्सराजा	वत्सराज

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२	१	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
"	१३	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
"	१७	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
५३	३	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
"	१२	किया	लिया
५४	१	प	पर
५५	८	सिरस्वागढ़	सिरसागढ़
"	९	झाँसी के पहोज नदी के किनारे है।	दतिया रियासत की सेंवढ़ा तहसील में है।
५९	१५	गढ़	गढ़ा
"	१९	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
"	२२	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
"	२४	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
६०	४	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
"	७	गूढ़ा	गुढ़ा
"	११	तायसो	तायसी
६१	८	रह	रहे
"	१६	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
"	१७	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
"	२६	गढ़मंडले	गढ़ामंडले
६२	११	गढ़मंडल	गढ़ामंडले
६२	२३	नानुक	नन्नुक
६३	४	स्वभावत:	संभवत:
६४	१	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६५	८	१२८६	१२६९
६६	२	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
,,	७	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
६७	१०	देलों	चंदेलों
,,	१५	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
६८	१३	के	की
७०	,,	पहोज नदी के किनारे है	दतिया रियासत की सेंहुड़ा तहसील में है
७२	५	आलार	आलोर
,,	१६	निजामुद्दान	निजामुद्दीन
,,	२१	चंदल	चंदेल
,,	२५	देवपाल	कीर्तिराज
७४	१	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
,,	६	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
,,	२४	१२६१	१२६९
७७	१५	सलेमनाबाद	इस्लामाबाद
,,	,,	सलीमशाह	इस्लामशाह
७८	१४	रामचंद्र	रामदेव
७९	२४	नायक	नायब
८०	११	कितु	किंतु
,,	२६	मुहम्मद	महमूद
८२	५	धौलसाप	धवलसाय
,,	६	मुल्लयकबालखाँ	मलिक एकबालखाँ
,,	१३	मुल्लयकबालखाँ	मलिक एकबालखाँ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८५	६	रायसेन	रायसीन
८६	२६	रायसेन	रायसीन
९०	६	आटेमसखाँ	अलतमसखाँ
९२	२४	वघेल	वघेला
९३	२०	उलगखाँ	उलघखाँ
९६	६	जजिया	जिजिया
९८	७	गढ़	गढ़ा
१००	१	रायसेन	रायसीन
१०१	१४	लांकागढ़	लांफागढ़
,,	१५	लांका	लांफा
,,	१६	शाहनगर	शाहगढ़
,,	२१	गनौर	गुनौर
,,	२४	कुरवाई	कुरवई
१०५	८	सुजनसिंह	सुजानसिंह
१०७	२०	वहादुर	वहादुरखाँ
,,	,,	खानदौरान	खानेदौरान
१०८	१४	७०	४४
११०	२२	महाराजसिंह	महाराजशाह
११२	५	गोरझामर	गौरझामर
,,	९	मोराजी	मोरा जी
११४	६	रह	रहा
११५	,,	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
,,	७	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
,,	११	परमर्दिदेव	परमार्दिदेव
११६	१	बुंदेल	बुंदेला

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११६	२६	वष	वर्ष
११८	८	पराव्रमी	पराक्रमी
,,	२३	टिहनपाल	ठिहनपाल
११६	,,	इंदुरखाँ	इंदुरखी
१२१	१४	धरि	धीर
,,	२६	करा	कर
१२३	१०	सिंहुड़ा	सेंहुड़ा
१२४	६	जोगजीतसिंह	जगजीतसिंह
,,	६	जोगजीतसिंह	जगजीतसिंह
,,	१०	खाली	रवाली
१२५	२२	भैरोदास	भैरोंदास
,,	२५	कुंहुरा	कुंड़ार
१२८	६	रनसिंहदेव	रणधीरसिंह
१३५	१	हरसिंहदेव	हरिसिंहदेव
,,	१७	भसनेह	भासनेह
,,	२२	गढ़	गढ़कुंडार
१३८	१	दिय	दिया
१४०	१७	गड़	गड़का
,,	२३	शहर	सहरा
,,	२५	रारौली	गरौली
१४१	४	महोबा	महेबा
१५४	१६	जहाँदारशाह	जहाँदरशाह
,,	२३	महलों	महालों
१५६	२	महोबा	महेबा
१५८	,,	अपने	अपनी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५८	१६	औ गजेब	औरंगजेब
१५९	२३	नीयत	नियत
१६३	२०	१७०५	१७०६
१७०	२६	देवलगढ़	देवगढ़
१७३	४	सका	सकी
,,	२६	तो	तब
१७५	२०	परी	करी
१७७	१	देवी	तब तब देवी
१८१	११	छत्रसाल	छत्रसाल को
१८५	४	दुरंगी	डाँगी
१८९	२	अमीरसिंह	अमरसिंह
,,	४	भरतशाह	भारतशाह
,,	१६	छत्रमऊ	मऊ
१९१	६	हुआ	हुई
१९८	२०	ते	तें
,,	२३	के	की
,,	,,	मच्यो	वच्यो
,,	२३	तै	तें
,,	२६	मदौंध	मदांध
,,	२७	दलन	दलनि
२००	१९	के	कों
२०४	३	के	कों
,,	६	मदौंध	मदांध
,,	१३	फतेह	फतह
२०५	१	के	कों

	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०५	७	अलीपुरा	आलीपुरा
२०७	१२	चिनकुलीचखाँ	चिनकिलिचखाँ
२११	१०	ठारी	टारी
२१२	२२	जमादारां	जमादारों
२२६	६	में	के
२२८	२६	के को	को के
२३१	१५	कुँअर,	कुँअरसिंह,
,,	२६	खेलसिंह	खेतसिंह
२४३	१४	विंचूरकर	चिंचूरकर
,,	२०	भीकाजीराम	भीकाजीराव
२४५	२१	रायराव	रामराय
२४६	४	पांडचेरी	पांडुचेरी
,,	२०	जहाँदारशाह	जहाँदरशाह
२५२	१०	मोहाय	मोहीम
२६५	,,	गावद	गोविंद
२६६	७	अंताजीराम	अंताजी राव
२७२	२५	कई मराठों के	मराठों के कई
२७८	१७	कार्ि जर	कालिंजर
२८१	१३	कैशा	कैथा
२८४	२६	शिवराव	शिवराम
२८५	१६	कर	कर दें
२८६	२४	को	के
२८७	४	शन	पेंशन
२६२	३	रो	से
,,	२५	रनजोरासंह	रनजोरसिंह

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०१	२६	मसौदा	भैसौदा
३०६	२०	धर्मपालसिंह	छतरपालसिंह
३०८	१७	सतरजातसिंह	सतरजीतसिंह
३१२	१९	वार्ि क	वार्षिक
३१८	,,	महमसिंह	मह्रमसिंह
,,	२०	गरैली	गरौली
,,	२१	गरैली	गरौली
,,	२४	उदयाजी	उदयाजीत
३२०	४	खनियाधन	खनियाधाना
,,	५	खनियाधन	खनियाधाना
,,	१३	भा	भी
,,	१६	खनियाधन	खनियाधाना
३२१	८	चतरसिंह	चतुरसिंह
३२२	६	नैगवाँ रेवई	नैगवाँ रिवई
३२६	२४	जेठा रानी	जेठो रानी
३२७	१७	पड़वारी	पँड़वारी
३२८	१५	आदर्शां	आदर्शों
,,	१७	पर	यह
,,	२४	किशोर	किशोरसिंह
३३१	२१	शर्तें	शर्तें
३३२	२६	अधारी पुरना	अधारीपुरवा
३३५	९	घा	घी
३४०	२१–२२	खनियाधन	खनियाधाना
,,	२३	बरोड़ा	बरौड़ा
३४१	२६	धुरवाई	धुरवई

	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४२	१	बिहट	बीहट
"	"	अलीपुरा	आलीपुरा
"	"	गरौली	गर्रौली
३५४	१०	हा	ही
३५८	६	बखतबला	बखतबली
३७२	२०	गवर्नर	गवर्नर जेनरल
३७३	६	सागर और दमोह के जिले	सागर जिला (दमोह जिला टूट गया है)

पृष्ठ ११६ फुटनोट २—संवत् ११११२ में दो श्रावण हुए थे। उनमें से द्वितीय श्रावण सुदी ५ ता० १७-८-१०५५ को गुरुवार था।

पृष्ठ ३ पंक्ति २४—

अशुद्ध—महाराज रामचंद्र के राज्यकाल के लगभग आठ सौ या एक हजार वर्ष बाद।

शुद्ध—वर्तमान काल से लगभग ५१०० वर्ष पूर्व